हलवासिया स्मृति-ग्रन्थ

प्रकाशक

राय बहादुर विश्वेश्वरलाल मोतीलाल हलवासिया ट्रस्ट

१५, इण्डिया एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता-१

हलवासिया स्मृति-ग्रन्थ

प्रकाशक
राय बहादुर विश्वेश्वरलाल मोतीलाल हलवासिया ट्रस्ट
१५, इण्डिया एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता-१

हलवासिया स्मृति-ग्रन्थ

रायबहादुर विश्वेश्वरलाल हलवासिया की

जन्म शताब्दी

(१८७० १९७० ई०)

के अवसर पर प्रकाशित



सम्पादक

रामसिंह तोमर

अध्यक्ष, हिन्दी भवन

विश्वभारती, शान्तिनिकेतन ।



प्रकाशक

राय बहादुर विश्वेश्वरलाल मोतीलाल हलवासिया ट्रस्ट

१५, इण्डिया एक्सचैंज प्लेस, कलकत्ता-१

प्रकाशक
राय बहादुर विश्वेश्वरलाल
मोतीलाल हलवासिया ट्रस्ट
१५, इंडिया एक्सचेंज प्लेस
कलकत्ता-१

१९७१

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस
भेलूपुर, वाराणसी-१

प्रकाशक
राय बहादुर विश्वेश्वरलाल
मोतीलाल हलवासिया ट्रस्ट
१५, इंडिया एक्सचैंज प्लेस
कलकत्ता–१

१९७१

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस
भेलूपुर, वाराणसी–१



रायबहादुर स्व० सेठ विश्वेश्वरलाल हलवासिया
(१८७०-१९२५ ई०)

परिचय

आधुनिक हरियाणा प्रा त के हिसार जिले मे एक छोटा शहर भिवाणी है। भिवाणी के निकट स्थित हालुवास ग्राम मे स्मृतिशेष विश्वेश्वरलाल हलवासिया का ज म सन १८७० ई० मे हुआ था। विश्वेश्वरलाल जी के पितामह यमुनादास जी के पाच पत्र थे जिनमे सबसे बडे सेठ जानकीदास थे। अपने समय के अपने प्रदेश के प्रतिष्ठित व्यक्तियो मे उनकी गणना थी। यमुनादास जी श्री वष्णव सप्रदाय मे निष्ठा रखते थे। वृदावन मे श्रीरग मदिर के निर्माता श्रीरगदशिक स्वामी से उनका परिचय था। भिवाणी के श्रीरग मदिर से उनका घनिष्ठ सम्पक था। वहा के प्रत्येक उत्सव मे वे उत्साहपूवक सम्मिलित होते थे। भिवाणी के तत्कालीन सस्कृत विद्वान वासुदेवाचाय से उनकी मैत्री थी। भिवाणी पहुँचनेवाले अतिथि अभ्यागतो का आप आतिथ्य सत्कार करते थे। सेठ जानकी दास जी को भी दया, उदारता, भगवद्भक्ति आदि अनेक गुण पतक सपत्ति के रूप मे अपने पिता यमुनादास जी से प्राप्त हुए थे।

जानकीदास जी हदराबाद (दक्षिण) मे हीरादि बहुमूल्य पदार्थों का व्यवसाय करते थे। वही चालीस वष की अवस्था मे अचानक आपका स्वगवास हो गया। उस समय विश्वेश्वरलालजी की अवस्था चौदह वष थी तथा उनके छोटे भाई मोतीलाल जी की अवस्था केवल छ महीने की थी। अपनी विधवा माता तथा छोटे भाई का उत्तरदायित्व विश्वेश्वरलाल जी पर आ पडा। इसके अतिरिक्त उनके पिता पर दस हजार रुपया ऋण भी था जो उन्हे चुकाना था। भिवाणी मे आय के ऐसे साधन नही थे जिससे वे इस उत्तरदायित्व का निर्वाह कर पाते। अपनी माता जी से परामश करके सन १८८६ ई० मे वे कलकत्ता पहुँचे। कलकत्ता मे भिवाणी के अ य व्यवसायी भी थे, उ ही के सहयोग से विश्वेश्वरलाल जी ने जूट का कार-बार आरभ किया। अपूर्व निष्ठा, असाधारण व्यापार-कुशलता और प्रशसनीय अध्य वसाय के परिणामस्वरूप आपको व्यापार मे अदभुत सफलता मिली। कलकत्ता के मारवाडी समाज मे आप प्रतिष्ठित हो गये। वश-परपरा से प्राप्त वैष्णव भक्ति के सस्कार, मानवमात्र के प्रति सहज सहानुभूति, दानशीलता, समाज कल्याण के कार्यो मे रुचि, समसामयिक सामाजिक, राजनीतिक सदर्भो के प्रति जागरूकता इत्यादि गुणो के कारण उनकी सब ओर प्रशसा हुई। तत्कालीन सरकार ने भी उन्हे रायबहादुर आदि अनेक सम्मानो से विभूषित किया।

धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक कार्यो मे वे विशेष रुचि लेते थे। 'कलकत्ता समाचार' आपके द्वारा ही प्रारभ किया गया था। सखाराम गणेश देउस्कर द्वारा लिखित 'देश की बात 'पुस्तक का हि दी अनुवाद आपको समर्पित किया गया था। देवनारायण द्विवेदी ने इस कृति का अनुवाद किया था। पीछे सरकार ने इस पुस्तक पर प्रतिबन्ध लगा दिया था।

कलकत्ता मे सन १९१६ ई० मे उ होने अखिल भारतीय 'श्री वैष्णव सम्मेलन' का आयोजन कराया था, तीन दिन व्यापी सम्मेलन मे उस समय के श्री वैष्णव सप्रदाय के प्रसिद्ध

आचार्यों तथा विद्वानो ने भाग लिया था। सम्मेलन की कायवाही का पूरा विवरण 'कलकत्ता समाचार' मे प्रकाशित हुआ था। सम्मेलन मे चतुर्वेदी द्वारका प्रमाद शमा भी सम्मिलित हुए थे। चतुर्वेदी ने 'भाष्यकार श्री रामानुजाचाय' नामक सुन्दर ग्रथ लिखा था, जिसके प्रकाशन का उत्तरदायित्व रायबहादुर विश्वेश्वरलाल जी ने लिया था। उम कृति की भूमिका म चतुर्वेदी जी ने हलवासिया जी के विषय मे विस्तार से लिखा ह। उन्होने अपनी कृति के सबध मे लिखा ह, "यदि हम इसे छपवा कर बिकवाने के पक्षपाती होते तो ऐसे अनेक पुस्तक प्रकाशक है, हाथोहाथ इसका सर्वाधिकार क्रय करके मनमाने मूल्य पर इसे बेचते। पर यह हमको अभीष्ट न था। बहुत दिनो तक हम एक ऐसे उदारचेता श्री वष्णव सज्जन की खोज मे रहे, जो इस पुस्तक को अपने धन से प्रकाशित कर बिना मूल्य वितरण करे। अ त मे दयामय भगवान के अनुग्रह से भाष्यकार स्वामी ने भिवानी के रहने वाले तथा कलकत्ता प्रवासी रायबहादुर बाबू विश्वेश्वरलाल जी हलवासिया को इस शुभ काय को करने की प्रेरणा की। उक्त रायबहादुर साहब ने इस पुस्तक के प्रकाशन का सारा व्यय भार अपने ऊपर लिया है और बिना मूल्य वितरण करने का सकल्प किया है।" इसी परिचय मे आगे कहा गया ह, "आप कलकत्ते की प्राय सभी मारवाडी सस्थाओ के पोषक ह। आप ही के हाथ से 'कलकत्ता समाचार' का प्रथम अक निकाला गया था और कलकत्ते के हिन्दू क्लब को भी आपने ही खोला था। कलकत्ते के मारवाडी समाज की प्रधान सभा मारवाडी एशोसिएशन के आप ही प्रेसिडेट है। आप हावडे के आनरेरी मजिस्ट्रेट भी है। आप हाल ही मे कलकत्ते मे श्री भागीरथी जी के तटपर अच्छी लागत से एक सु दर श्राद्धघाट बनवा रहे ह। इसके बन जाने पर सवसाधारण को बहुत सुभीता हो जायगा।

"कहना न होगा कि रायबहादुर साहब भी श्री वैष्णव सम्प्रदाय मे पूरी निष्ठा रखते है। आप बडे ही शा त प्रकृत सम्प न मिलनसार और मधुभाषी है। आपका चरित्र बल उच्च और विचार गम्भीर है। व्यवसाय सम्बन्धी जटिल विषयो पर आपकी सम्मति बडे महत्त्व की समझी जाती ह।" (चतुर्वेदी जी ने यह भूमिका सवत १९७२ मे दारागज, प्रयाग मे लिखी थी।)

विश्वेश्वरलाल जी का अपने छोटे भाई मोतीलाल पर बडा स्नेह था। उनका पालन पोषण उ्होने ही किया था। मोतीलाल का ज म सन १८८६ ई० मे हुआ था। सन १९२५ ई० मे अस्वस्थ बडे भाई को देखने के लिए मोतीलाल जी भिवानी से कलकत्ता आए और स्वय बीमार पड गए। चिकित्सा की गई पर तु कोई लाभ नही हुआ, कलकत्ता मे ही उनका स्वगवास हो गया। भ्रातवियोग के आघात को वे सहन न कर सके। दोनो भाइयो मे से किसी को सतान प्राप्त नही हुई। विश्वेश्वरलालजी ने अपने ही परिवार के एक बालक श्री श्यामसु दर को गोद लिया और मोतीलाल जी के यहा श्री पुरुषोत्तमदास जी को गोद लिया गया।

विश्वेश्वरलाल जी ने स्वस्थ होते ही प्राय अपनी सपूण सपत्ति की वसीयत तैयार कराई। यह वसीयतनामा कलकत्ता मे उ होने लिखा था, भिवानी मे उनकी मृत्यु हुई। वही वह खोला गया। वसीयतनामे के कुछ अश उदधृत करने योग्य ह, इन अशो से उनके उज्ज्वल

जीवन चरित्र का परिचय मिलता ह, वे अपनी सारी सपत्ति का जनकल्याण के लिए न्यास (ट्रस्ट) बना गए ।

"मै विश्वेश्वरलाल हलुवासिया बेटा लाला जानकीदास हलुवासिया का पोता लाला जमुनादास जी हलुवासिया का, अग्रवाल, उमर ५५ (पचपन) साल अनुमान, रहनेवाला भिवानी जिला हिसार का हूँ । हाल मुकाम रहना नम्बर ४७ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट कलकत्ता है ।

'मेरे पिता लाला जानकीदास जी का बकुण्ठवास वैशाख वदी ३, सवत १९४४ मे हो गया था उस वक्त मेरे छोटे भाई मोतीलाल हलुवासिया की उम्र लगभग ६ महीने की थी ।

"मेरे पिता प्रपिता व वद्ध प्रपिता की सम्पत्ति मे सिफ १ दुकान बाजार मे एक हवेली और एक नोहरा था जिसमे मेरा दसवा हिस्सा यानि सब सम्पत्ति मे आधा हिस्सा पूज्यवर लाला सिवदयाल जी हलुवासिया का और आधे मे पिता जी एव चार भाई थे इसलिए सब सम्पत्ति का दसवा हिस्सा (१।१०) मेरा था, जिसकी कीमत अनुमान १५००) पद्रह सौ रुपये की होगी । नगद वगैरह कुछ भी न था, बल्कि १००००। दस हजार रुपया अ दाज देने थे इसलिए कोई सम्पत्ति मेरे पिता प्रपिता और वद्ध प्रपिता की न समझनी चाहिए ।

"मेरे पिता जी के स्वर्गवास होने पर मे कलकत्ते आया और बोरो की दलाली करनी शुरू की इससे जो रुपये मेरे पिता जी के कज थे मैने दे दिये और धीरे-धीरे यह सब सम्पत्ति अपने परिश्रम से पैदा की इसलिए मै तथा मेरा छोटा भाइ मातीलाल इस सम्पत्ति के मालिक है यानी आधा मेरा और आधा मेरे छोटे भाई मोतीलाल का ।

"परन्तु दुर्भाग्यवश मेरे छोटे भाई मोतीलाल का बैकुण्ठदास चैत वदी ३, स० १९८१ मे हो गया और उसी वक्त से यानी ४५ महीने से मेरी तवियत अच्छी नही रहती है इसलिए मेरे मरने के बाद कोई झगडा पैदा न हो इस वास्ते यह वसीयतनामा करता हूँ ।

"ऊपर लिखे सिवाय बाकी सब स्टेट (मालियत) नगद व मकानात बगैरह मैं धर्माथ करता हूँ उससे रोगियो के दवा अनाथालय स्कूल मदिर का खच इत्यादि इत्यादि शुभकम मे लगाये जावे । यह सब काम जायदाद की आमदनी व व्याज इत्यादि से की जावे और असल जायदाद वेची न जावे और असल रुपया भी न खच किया जावे सिफ आमदनी व्याज भाडे इत्यादि की हो उसी से खच किया जावे और मे यह भी चाहता हूँ कि जहा तक हो यह रुपया ज्यादा भिवानी मे और विद्या सम्बधी कार्यो मे खच किया जावे ओर इन सब धर्माथ कामो पर विश्वेश्वरलाल मोतीलाल हलुवासिया का नाम हो ।"

रायबहादुर विश्वेश्वरलाल मोतीलाल हलवासिया टस्ट ने पिछले पैतालीस वर्षो मे भारत के प्राय हर प्रान्त मे अनेक सस्थाओ की सहायता की है । सत्तर लाख रुपये से अधिक धन ट्रस्ट अभी तक दान कर चुका ह । विश्वभारती से ट्रस्ट का सपक अनेक वर्षो से रहा है। हलवासिया ट्रस्ट के, वरिष्ठ टस्टी श्री भागीरथ कानोडिया तथा स्व० मोतीलाल जी हलवासिया के सुपुत्र श्री पुरुषोत्तमदास जी हलवासिया का विश्वभारती से पुराना एव घनिष्ठ सबन्ध ह । विश्वभारती के केन्द्रीय विश्वविद्यालय मे परिवर्तित होने के पूव श्री कानोडिया जी वर्षों

आचार्यो तथा विद्वानो ने भाग लिया था । सम्मेलन की कायवाही का पूरा विवरण 'कलकत्ता समाचार' मे प्रकाशित हुआ था । सम्मेलन मे चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा भी सम्मिलित हुए थे । चतुर्वेदी ने 'भाष्यकार श्री रामानुजाचाय' नामक सुन्दर ग्रथ लिखा था, जिसके प्रकाशन का उत्तरदायित्व रायबहादुर विश्वेश्वरलाल जी ने लिया था । उम कृति की भूमिका म चतुर्वेदी जी ने हलवासिया जी के विषय मे विस्तार से लिखा है । उन्होने अपनी कृति के सबध मे लिखा है, "यदि हम इसे छपवा कर बिकवाने के पक्षपाती होते, तो ऐसे अनेक पुस्तक प्रकाशक है, हाथोहाथ इसका सर्वाधिकार क्रय करके मनमाने मूल्य पर इसे बेचते । पर यह हमको अभीष्ट न था । बहुत दिनो तक हम एक ऐसे उदारचेता श्री वष्णव सज्जन की खोज मे रहे, जो इस पुस्नक को अपने धन से प्रकाशित कर बिना मूल्य वितरण करे । अ त मे दयामय भगवान के अनुग्रह से भाष्यकार स्वामी ने भिवानी के रहने वाले तथा कलकत्ता प्रवासी रायबहादुर बाबू विश्वेश्वरलाल जी हलवासिया को इस शुभ काय को करने की प्रेरणा की । उक्त रायबहादुर साहब ने इस पुस्तक के प्रकाशन का सारा व्यय भार अपने ऊपर लिया ह ओर बिना मूल्य वितरण करने का सकल्प किया ह ।" इसी परिचय मे आगे कहा गया ह, "आप कलकत्ते की प्राय सभी मारवाडी सस्थाओ के पोषक ह । आप ही के हाथ से 'कलकत्ता समाचार' का प्रथम अक निकाला गया था और कलकत्ते के हिन्दू क्लब को भी आपने ही खोला था । कलकत्ते के मारवाडी समाज की प्रधान सभा मारवाडी एशोसिएशन के आप ही प्रेसिडेट है। आप हावडे के आनरेरी मजिस्ट्रेट भी ह । आप हाल ही मे कलकत्ते मे श्री भागीरथी जी के तटपर अच्छी लागत से एक सु दर श्राद्धघाट बनवा रहे ह । इसके बन जाने पर सवसाधारण को बहुत सुभीता हो जायगा ।

"कहना न होगा कि रायबहादुर साहब भी श्री वैष्णव सम्प्रदाय मे पूरी निष्ठा रखते ह । आप बडे ही शा त प्रकृत सम्प न मिलनसार और मधुभाषी है । आपका चरित्र बल उच्च और विचार गम्भीर है । व्यवसाय सम्बन्धी जटिल विषयो पर आपकी सम्मति बडे महत्त्व की समझी जाती ह ।" (चतुर्वेदी जी ने यह भूमिका सवत १९७२ मे दारागज, प्रयाग मे लिखी थी ।)

विश्वेश्वरलाल जी का अपने छोटे भाई मोतीलाल पर बडा स्नेह था। उनका पालन पोषण उन्होने ही किया था। मोतीलाल का ज म सन १८८६ ई० मे हुआ था। सन १९२५ ई० मे अस्वस्थ बडे भाई को देखने के लिए मोतीलाल जो भिवानी से कलकत्ता आए और स्वय बीमार पड गए । चिकित्सा की गई पर तु कोई लाभ नही हुआ, कलकत्ता मे ही उनका स्वर्गवास हो गया । भ्रातवियोग के आघात को वे सहन न कर सके। दोनो भाइयो मे से किसी को सतान प्राप्त नही हुई । विश्वेश्वरलालजी ने अपने ही परिवार के एक बालक श्री श्यामसु दर को गोद लिया और मोतीलाल जी के यहा श्री पुरुषोत्तमदास जो को गोद लिया गया ।

विश्वेश्वरलाल जी ने स्वस्थ होते ही प्राय अपनी सपूण सपत्ति की वसीयत तैयार कराई । यह वसीयतनामा कलकत्ता मे उ होने लिखा था, भिवानी मे उनकी मृत्यु हुई । वही वह खोला गया । वसीयतनामे के कुछ अश उदधृत करने योग्य हैं, इन अशो से उनके उज्ज्वल

जीवन चरित्र का परिचय मिलता ह, वे अपनी सारी सपत्ति का जनकल्याण के लिए न्यास (ट्रस्ट) बना गए।

"मै विश्वेश्वरलाल हलुवासिया बेटा लाला जानकीदास हलुवासिया का पोता लाला जमुनादास जी हलुवासिया का, अग्रवाल, उमर ५५ (पचपन) साल अनुमान रहनेवाला भिवानी जिला हिसार का हूँ। हाल मुकाम रहना नम्बर ४७ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट कलकत्ता है।

'मेरे पिता लाला जानकीदास जी का बकुण्ठवास वैशाख वदी ३, सवत १९४४ मे हो गया था उस वक्त मेरे छोटे भाई मोतीलाल हलुवासिया की उम्र लगभग ६ महीने की थी।

"मेरे पिता प्रपिता व वद्ध प्रपिता की सम्पत्ति मे सिफ १ दुकान बाजार मे एक हवेली और एक नोहरा था जिसमे मेरा दसवा हिस्सा यानि स्व सम्पत्ति मे आधा हिस्सा पूज्यवर लाला सिवदयाल जी हलुवासिया का और आधे मे पिता जी एव चार भाई थे इसलिए सब सम्पत्ति का दसवा हिस्सा (१।१०) मेरा था, जिसकी कीमत अनुमान १५००) पद्रह सौ रुपये की होगी। नगद वगैरह कुछ भी न था, बल्कि १००००, दस हजार रुपया अ दाज देने थे इसलिए कोई सम्पत्ति मेरे पिता प्रपिता और वद्ध प्रपिता की न समझनी चाहिए।

"मेरे पिता जी के स्वर्गवास होने पर मै कलकत्ते आया और बोरो की दलाली करनी शुरू की इससे जो रुपये मेरे पिता जी के कज थे मेने दे दिये और धीरे धीरे यह सब सम्पत्ति अपने परिश्रम से पैदा की इसलिए मे तथा मेरा छोटा भाइ मातीलाल इस सम्पत्ति के मालिक है यानी आधा मेरा और आधा मेरे छोटे भाई मोतीलाल का।

"परन्तु दुर्भाग्यवश मेरे छोटे भाई मोतीलाल का बैकुण्ठदास चैत वदी ३, स० १९८१ मे हो गया और उसी वक्त से यानी ४५ महीने से मेरी तवियत अच्छी नही रहती है इसलिए मेरे मरने के बाद कोई झगडा पैदा न हो इस वास्ते यह वसीयतनामा करता हूँ।

"ऊपर लिखे सिवाय बाकी सब स्टेट (मालियत) नगद व मकानात बगैरह मै धर्माथ करता हूँ उससे रोगियो के दवा अनाथालय स्कूल मदिर का खच इत्यादि इत्यादि शुभकम मे लगाये जावे। यह सब काम जायदाद की आमदनी व व्याज इत्यादि से की जावे और असल जायदाद वेची न जावे और असल रुपया भी न खच किया जावे सिफ आमदनी व्याज भाडे इत्यादि की हो उसी से खच किया जावे और मे यह भी चाहता हूँ कि जहा तक हो यह रुपया ज्यादा भिवानी मे और विद्या सम्ब धी कार्यो म खच किया जावे और इन सब धर्माथ कामो पर विश्वेश्वरलाल मोतीलाल हलुवासिया का नाम हो।"

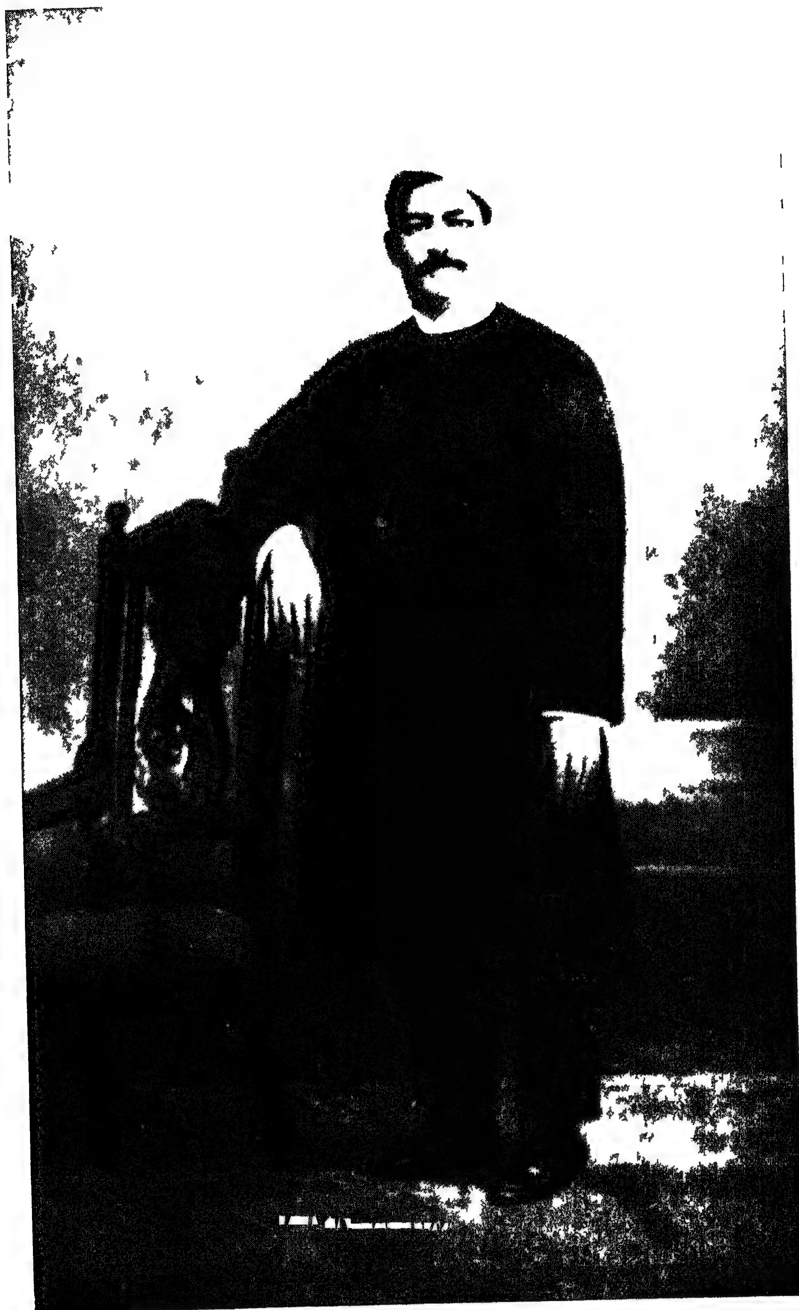
रायबहादुर विश्वेश्वरलाल मोतीलाल हलवासिया टस्ट ने पिछले पैतालीस वर्षो मे भारत के प्राय हर प्रा त मे अनेक सस्थाओ की सहायता की है। सत्तर लाख रुपये से अधिक धन ट्रस्ट अभी तक दान कर चुका ह। विश्वभारती से ट्रस्ट का सपक अनेक वर्षो से रहा है। हलवासिया ट्रस्ट के, वरिष्ठ टस्टी श्री भागीरथ कानोडिया तथा स्व० मोतीलाल जी हलवासिया के सुपुत्र श्री पुरुषोत्तमदास जी हलवासिया का विश्वभारती से पुराना एव घनिष्ठ सबन्ध ह। विश्वभारती के के द्रीय विश्वविद्यालय मे परिवर्तित होने के पूव श्री कानोडिया जी वर्षों

तक उसकी ससद के सदस्य रहे हैं। टस्ट को सुदढ बनाने मे उ होने महत्त्वपण काय किया है। विश्वभारती मे हि दी भवन की स्थापना ट्रस्ट की ही सहायता से सन १९३६ मे हुई। सन १९४५ से १९४८ ई० तक हिन्दी भवन का पूरा खच ट्रस्ट ने वहन किया। इधर हाल मे हि दी भवन के पुस्तकालय भवन का विस्तार, विश्वभारती पत्रिका का पुनप्रकाशन, हलवासिया शोध ग्रन्थ माला के प्रकाशन की योजना टस्ट द्वारा प्रदत्त आथिक सहायता से ही कार्या वित हो सकी है। विश्वभारती के कार्यो मे श्री कानोडिया जी तथा श्री पुरुपोत्तमदास जी हलवासिया सक्रिय रुचि लेते है। अत जब विश्वेश्वरलाल जी हलवासिया की जन्मशत वार्पिकी के अवसर पर स्मति ग्रथ निकालने का प्रस्ताव किया गया तो विश्वभारती के उपाचाय ने मुझे उसका सपादन भार लेने के लिए सहष अनुमति दी। उदारचरित सज्जनो के प्रति श्रद्धा निवेदन करना हमारी सस्कृति का महत्त्वपूण अग ह। मुझे प्रस नता ह कि इस काय द्वारा कीर्तिशेप विश्वेश्वरलाल जी हलवासिया के प्रति श्रद्धा निवेदन करने का मुझे अवसर मिला।

ग्रथ के लिए जितने लेख हम चाहते थे उतने प्राप्त न हो सके विद्वानो से लेख लिखवा लेना बहुत कठिन काय ह। जिन विद्वानो ने अपने लेख भेजे ह उनके प्रति म आभार प्रकट करता हूँ। हिन्दी भवन के भित्ति चित्रो क चित्र नयार करने मे कलाभवन के श्री डेविड तथा आवरण पष्ठ पर शीषक लिखने के लिए हिन्दी विभाग के रिसच फेलो श्री रणजीतकुमार साहा तथा नाना प्रकार से सहायता करने के लिए डा० देवनाथ चतुर्वेदी, डा० द्विजराम यादव एव प्रूफ सशोधन के लिए डा० (कुमारी) ऊर्मिला शर्मा का मे आभारी हू।

हि दी भवन,
शातिनिकेतन।

राम सिह तोमर



स्व० सेठ मोतीलाल हलवासिया
(१८८६–१९२५ ई०)

विषय-सूची

अर्थ- धर्म-सम्बन्ध खण्ड

कला और सस्कृति खण्ड

चित्र

रायबहादुर विश्वेश्वरलाल मोतीलाल हलवासिया हिन्दीभवन, विश्वभारती,
शान्तिनिकेतन के भित्तिचित्रो तथा हि दी भवनके उदघाटन समाराह
के छाया चित्र —भित्तिचित्रो के चित्रकार श्री विनोदबिहारी
मुकर्जी । अध्यापक, कलाभवन, शान्तिनिकेतन है।

चित्र सूची—

कविता की ओर

डॉ० रामकुमार वर्मा, एम ए, पी एच डी

कविता आत्मा की आदि प्रेरणा ह । आत्मा की गूढ और छिपी हुई सौदय राशि का भावना के आलोक से प्रकाशित हो उठना ही 'कविता ह । जिस समय आत्मा का व्यापक सौन्दय निखर उठता ह, उस समय कवि अपने मे सीमित रहते हुए भी असीम हो जाता ह। उस समय क्षण क्षण म 'मे और 'सब' मे विपयय होता ह। 'मे' चिर तन भावनाओ मे सब' का रूप धारण करता ह और 'सब' भावना के किसी विशेष दष्टि बि दु मे 'मै' मे आकर सकुचित हो जाता ह । तब व्यक्तिगत भावनाएँ विश्व की समस्त गति मे अबाधरूप से प्रवाहित होने लगती ह ओर समस्त सृष्टि का सगीत एक कण मे स्पन्दित होने लगता है । जिस दैवी क्षण मे कवि अपने को इस असीम प्रकृति मे विलीन कर देता ह, उस क्षण मे सृष्टि के समस्त रहस्य उसकी वाणी मे फूट पडते ह । वह अपनी भावनाओ के भीतर किसी प्रजापति को देखता ह, जो क्षण क्षण मे सृष्टि का निमाण और विनाश करता ह । रूप और ध्वनिया साकार और निराकार होती है और दश्य और अदश्य उसे अपने सगीत से ओत प्रोत कर देते है । समस्त जगत हृदय मे गतिशीलता भर कर तिरोहित हो जाता है, उसी गतिशीलता का नाम 'कविता' है ।

यह कविता की व्यारया ह, परिभाषा नही । परिभाषा के लिए हमे काव्य से श्रेष्ठतर सौ दय कोटि की कल्पना करनी पडेगी और उस कोटि के अ तगत काव्य के समकक्ष अ य रूपो से काव्य की विशेपता स्पष्ट करनी होगी । कठिनाई यह ह कि काव्य के ऊपर कोई ऐसी सौ दय कोटि ह ही नही । काव्य ही अपने व्यापक रूप मे अनेक सौन्दय कोटिया निर्धारित करता ह और जब काव्य अपने उदात्त रूप मे ब्रह्मान द के समकक्ष होता ह तब जिस प्रकार ब्रह्म की परिभाषा देना कठिन ह, उसी प्रकार काव्य की परिभाषा भी देना कठिन होता है। केनोपनिपद् के द्वितीय खण्ड मे ब्रह्म-ज्ञान की अनिवचनीयता का उल्लेख ह

नाह म ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च ।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ।
यस्यामत तस्य मत मत यस्य न वेद स ।
अविज्ञात विजानता विज्ञातमविजानताम ॥

(केनोपनिषद—द्वितीय खड, श्लोक २, ३)

(न तो मै यह मानता हूँ कि मै ब्रह्म को अच्छी तरह जान गया और न यही समझता हूँ कि मै उसे नही जानता, अत मै उसे जानता भी हूँ और नही भी जानता। जो उसे 'न तो नही जानता और न जानता ही हूँ' इस भाति जानता ह, वही जानता ह)

इसी भाति जिसको ब्रह्म ज्ञात नही ह, उसी को ज्ञात ह, और जिसको ज्ञात है, वह उसे अज्ञात ह, क्योकि वह जानने वालो को बिना जाना हुआ ह और न जानने वालो का जाना हुआ है। इस प्रकार कविता भी पूण रूप से जानी जा सकती ह, इसम सन्देह ह। इसी लिए कविता की व्यारया तो हो सकती ह, उसकी परिभाषा दना एक अनधिकार चेष्टा ह।

साहित्य के अन्य रूपो की अपेक्षा कविता की अभिव्यक्ति सभवत सवप्रथम हुई। यह साहित्य कानन की प्रथम कलिका ह, जिसकी सुरभि उत्तरोत्तर अधिक आह्लादमयी होती गइ। उसी सुरभि के आकषण मे साहित्य के अ य रूपो को मुकुलित हाने की भूमिका प्राप्त हुइ होगी। कविता के इतिहास मे प्रथम कविता महर्षि बाल्मीकि के कण्ठ से क्रोच वध के विषाद से नत्र की अश्रु धारा के साथ निकली कही जाती ह किन्तु कविता की सृष्टि उस समय आरभ हो गई होगी जब उल्लास या करुणा, आकषण और आत्म समपण की भावना ने हृदय मे ऐसी विह्वलता भर दी होगी, जिसे हृदय अपनी भाव सीमा मे सम्हाल न सका होगा और काव्य का अमत भाषा मे छलक पडा होगा।

महाकवि तुलसी ने कविता के आविर्भाव के सम्ब ध मे रामचरितमानस मे कुछ सु दर पक्तिया लिखी है—

हृदय सि धु, मति सीप समाना,
स्वाति सारदा कहहि सुजाना।
जो बरसइ बर बारि बिचारू,
होइ कवित मुक्तामनि चारू।

हृदय के सिन्धु मे मति सीप के समान ह, काव्य की प्रतिभा या सरस्वती स्वाति नक्षत्र के समान ह। इस अवसर पर यदि सु दर विचारो का जल बरस जाय तो भावना की सीपी मे कविता का मोती निर्मित हो जाय। सीप मे मोती का निमाण एक अवसर विशेष की बात ह। यदि सौभाग्य से ऐसा अवसर आ जाय, तभी 'कविता की सष्टि हो सकती ह। श्रेष्ठ कविता भी सयोग से ही बनती ह, और वह भी प्रतिभा के आलोक से सभव होता ह।

कविता जीवन का निर्बाध और अकृत्रिम सौ दय-बोध ह, उसके द्वारा मानव ऐसे अनवरत और अविरल आन द का अनुभव करता ह जो समय की गति स धूमिल नही होता। इसमे पूव चिन्तन की अपेक्षा नही ह। जिस प्रकार हास्य और रुदन की प्रक्रिया किसी नियम पर आधारित नही ह, हसी की कली प्रस्फुटित होने के पूव यह नही सोचती कि उसे किस प्रकार से प्रस्फुटित होना ह, जिस प्रकार रुदन के मोती किसी निश्चित सरया मे नही झरते, उसी प्रकार कविता प्रयास पूवक निर्मित नही होती। वह आन द की धारा मे पुष्प की भाँति लहरा की गोद मे विकसित होती ह।

प्राचीन आचार्यो म भरत, दण्डी, रुद्रट, वामन, आन दवद्धन, भोज, मम्मट, वाग्भट्ट, जयदेव, विश्वनाथ, पण्डितराज जगन्नाथ ने काव्य के रूप को परखने की चेष्टा विविध दष्टि कोणो से की ह। आचाय भरत ने रस को, दण्डी ने सक्षिप्त वाक्य को, रुद्रट ने शब्द और उसमे निहित अथ के युग्म को, वामन ने ललित पद रीति को, आन दवद्धन ने ध्वनिमयी अथ निष्पत्ति को, भोज ने निर्दोष अलकारमय अथ को, मम्मट ने शब्द और अथ की सयो-

जना को, वाग्भट्ट ने दोषरहित शब्द को, जयदेव ने रसमयी शब्द-योजना को विश्वनाथ ने रसात्मक वाक्य को और पण्डितराज जग नाथ ने रस से पूण अथ वणन को काव्य माना। काव्य की इस नाना दष्टिमयी विवेचना मे तीन तत्त्व निहित ज्ञात होते है —

१ रस की अनिवचनीय अलौकिक भाव भूमि ।
२ शब्द और अथ का ललित युग्म ।
३ चमत्कार उत्प न करने वाली व्यञ्जना ।

यह कहा जा सकता ह कि अनुभूति के स्तर पर शब्द और अथ का तादात्म्य उपस्थित होने पर ही रस को निष्पत्ति होती ह । जिस अनुपात मे यह तादात्म्य होगा उसी अनुपात मे रस जनित आन द की सष्टि होगी, कठिनाई केवल तादात्म्य उपस्थित करने मे ह । यह स्पष्ट ह कि अनुभूति जगत इतना विस्तत है कि उसकी अभिव्यक्ति कभी शब्द द्वारा हो सकेगी, इसमे स देह ह । मन की गति जितनी शीघ्रता स अथ के विराट विश्व मे प्रवेश करती ह, उतनी शीघ्रता से भाषा अपना स्थूल उपादान प्रस्तुत नही कर सकती । इस समस्या का अनु भव करते हुए मैने एक स्थान पर लिखा था

प्रेम की इस अग्नि से,
क्यो धूम सी उठती निराशा ?
क्यो हृदय की भावना को,
मिल सकी अब तक न भाषा !

अतजगत अपनी सम्पूण परिधि शब्दो द्वारा व्यक्त नही कर सकता। भावनाएँ अपनी गहराई मे अथाह है और शब्द किनारे पर बैठे हुए पथिक है जो केवल लहरे गिनना जानते ह । जिस साधक मे अपने शब्दो को अथ मे डुबाने की जितनी अधिक सहज क्षमता होगी उतनी ही गहरी रसानुभूति काव्य के माध्यम से हो सकेगी ।



हिन्दी के एकभाषीय कोश

श्री हरदेव बाहरी

हि दी मे कोशो का आरम्भ १३वी शताब्दी से माना जा सकता है जब कि प्राय अमर-कोश, मेदिनी कोश, आदि के आधार पर समानार्थी और अनेकार्थी कोश लिखे जाने लगे। हि दी कोशो के आदि काल मे इसी प्रकार के कोश उपलब्ध होते हैं। सही अथ मे इ हे हि दी भाषा के शब्द कोश, कहना उचित नही होगा, क्योकि इनमे न ता तत्कालीन साहित्यिक शब्द भडार सगहीत ह और न तो जन प्रचलित शब्दावलो। प्राय कोशकार कवि भी थे और उनका उद्देश्य अपने काय के लिए एक व्यावहारिक शब्दावली का सकलन करना था। उ हे सस्कृत की अधिक चि ता थी, हि दी की कम। हिन्दी शब्दो की सख्या 'प्रकाश नाममाला' और 'नाम प्रकाश' मे भरपूर ह। 'उमराव कोश' मे इनकी सख्या सबसे अधिक ह। आवश्यकतानुसार इनमे अरबी फारसी शब्द भी मिल जाते ह। डिंगल कोशो मे विशेष रूप से बहुत से स्थानीय शब्द हैं जो ऐतिहासिक दष्टि से महत्त्वपूण ह। इन शब्दावलियो की अपनी सीमा ह। इस तरह के ४० ४५ समानार्थी कोश, १५ २० अनेकार्थी कोश ४ ५ एकाक्षरी कोश और ६ ७ डिंगल के कोश प्राप्त हैं। सबसे छोटे कोश मे २८ और सबसे बडे मे २८०० शब्द हैं।

छापेखाने के अभाव मे तत्कालीन ज्ञान मौखिक परम्परा द्वारा आगे बढता था। सदभ ग्रथो की बात नही उठी थी। शब्द भडार को कठस्थ कर लेना होता था। इसलिए लगभग सब कोश पद्य बद्ध हैं। उदाहरणाथ, हरी विलास की 'नाममाला' मे चौपाइया है, मिया नूर की 'प्रकाशनाम माला' म दोहे, बद्रीदास की 'मान मजरी मे सोरठे, सखिजन की 'भारती नाम माला' मे दोहो के अतिरिक्त कवित्त और 'उमराव कोश' तथा 'नाम प्रकाश' मे अनेकानेक छद प्रयुक्त हुए हैं। प्राय कोशो मे केवल सज्ञापद हैं। केवल एक दो धातु कोश प्राप्त हैं। बडे कोशो म एकाध वग विशेषणो पर ह। कि तु काव्य म नाम (सज्ञा) की ही अधिक लीला होती थी। छद के बधनो के कारण अनेक शब्द विकृत रूप म आ गए हैं। शब्दा का क्रम हमारी लिपि माला के अनुसार नही ह। प्राय शब्दो को वर्गों या अधिकारा के अन्तगत रखा गया है। इन वर्गो के शीषक स्पष्ट ह, जसे देवतानाथ, समुद्रनाथ, स्त्रीवग, दरबारी नाम, स्वग-वग, पाताल वग, शैल वग इत्यादि।

अनेकार्थी कोश साधारण ह, कि तु कुछ एक मे ज्ञान कोशोपयुक्त सामग्री सगृहीत है। एकाक्षरी कोशो का हि दी की दष्टि से क्या महत्त्व ह, यह ठीक तरह मेरी समझ म नही आया। कुछ कोश ऐसे ह जिनकी विशिष्ट उपलब्धिया उल्लेखनीय ह। चदन राम ने अर्थों को आदि वग के अनुसार एक साथ रखा ह, जैसे 'सारग' के अथ हैं—

> पावक पकज पीक पट, धन धनु घन घट क्षीर
> कनक कठिन कुच कीर कटि, नव नग नव निसि नीर। इत्यादि

आचाय भिखारी दास ने 'नाम प्रकाश' मे अनेकार्थी शब्दो को 'अन्तिम' अक्षर के अनु

सार क्रमबद्ध किया। जैसे क मे समाप्त होनेवाले, 'च मे समाप्त होने वाले, अथवा 'श' आदि मे होने वाले शब्द। धातु कोशो मे भी, विशेपतया 'भाषा धातु माला' म क्रिया पदा को अतिम वण के अनुमार सचित किया गया ह, जैसे—

कह गह दुह रह गुह लहु मोह सोह अवगाह।
रोह मोह अवरोह ढह सह चह निबह सराह॥

इस तरह के अत्यानुप्राम पर आधारित शब्दकोश की तो आज भी आवश्यकता है। कवियो के लिए भी और भापा विज्ञानियो के लिए भी।

ऊपर के विवरण का अथ यह है कि हमारे प्राचीन कोशकार शब्दो को वर्णानुक्रम के अनुसार रखने की पद्धति जानते अवश्य थे, किन्तु इसकी उपादेयता समानार्थी और एकार्थी कोशो की तुलना मे क्या समझते थे। वणाक्रमानुसार कोश सपादन की कला का आरम्भ भारत मे यूरोपियन विद्वानो से हुआ। प्राय इन लोगो ने हिन्दुस्तानी अग्रेजी या अग्रेजी हि दुस्तानी कोश तैयार किए जिनम सब तरह के शब्द सगहीत थे—सज्ञापद, क्रियापद, विशेषण, क्रिया विशेपण आदि। इन्ही के अनुकरण मे भारतीया ने भी काश निर्माण के क्षेत्र मे काय किया। १९वी शती के अतिम और २०वी शती के प्रथम चरण मे लगभग २० हि दी शब्द कोश प्रकाशित हुए। प्राय यह कोश छात्रोपयोगी थे। शल्पिक दष्टि से किसी की कोई विशेष महत्ता नही ह। वणक्रमानुसार शब्दो का सयोजन, प्रत्येक शब्द का व्याकरण उसके अथ और यत्र-तत्र परिभापा अथवा व्यारया—यह सब कुछ है और सब कोशो मे एक सा ह। शब्द सरया किसी मे कम ह तो किसी मे अधिक। इनमे 'मगल कोश', 'कैसर कोश', श्रीधर भाषा कोश और 'हिन्दी शब्दाथ पारिजात' प्रसिद्ध रहे है।

हि दी शब्द सागर के प्रकाशन (१९१५–१९२७ ई०) से हिन्दी-कोश कला मे एक नये युग का आरम्भ माना जाता ह। इतना बडा आयोजन, इतने प्रसिद्ध साहित्यकारो और विद्वानो—श्यामसु दरदास बालकृष्ण भट्ट, रामच द्र शुक्ल, भगवान दीन, रामचन्द्र वर्मा, अमर सिंह और जगमोहन वर्मा के सक्रिय सपादकत्व मे (तब इस तरह के सपादक मडल नही होते थे कि तु पढे न लिखे नाम आलम खा), इतनी स्वच्छता और इतनी मौलिकता के साथ हिन्दी जगत मे आज तक सपन्न नही हुआ। उन दिनो इस कोश का सवत्र स्वागत हुआ। युग के विचार से यह कोश सबसे बडा, प्रामाणिक और उपयोगी माना जाता था। इसके २०–२१ वप बाद तब जितने कोश बने, सबका आधार यही था। बालकोश, सक्षिप्त कोश, छोटे मझोले और बृहत कोश सबमे 'एकोऽह बहुस्याम।' यह सचमुच एक सागर था, शब्दो, अर्थो, मुहावरो, लोकोक्तिया और उद्धरणो का। इस कोश के सचयन, सपादन, मुद्रण और प्रकाशन मे २० वष लगे और कुल मिलाकर एक लाख रुपया व्यय हुआ। अब इसका सशोधित और परिवर्द्धित सस्करण प्रकाश मे आने लगा ह। १५ १६ वष से काम चल रहा है और इसके दस खडो मे से ७ प्रकाशित हो चुके है। इसके सपादन मे १ लाख ६५ हजार रुपया व्यय हो चुका ह। मुद्रण के लिए अलग से सहायता मिली है। (इस पर भी प्रत्येक खड का मूल्य बहुत ही अधिक रखा गया है।) इसको प्रविधि की चर्चा थोडी देर मे की जायगी।

हि दी मे एक भाषीय कोशो की कमो नही ह। अधिकतर कोश विद्यार्थियो के लिए

तयार किए गए है, किन्तु किस स्तर के विद्यार्थियो के लिए—यह कोई भी सपादक नही बता सकता। अग्रेजी मे प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक, स्नातक एव स्नातकोत्तर कक्षाओ के विद्यार्थियो की शब्दावली पर खोज हो चुकी ह और उसी के अनुसार कोशो का सपादन होता ह। हिन्दी मे ऐसा कुछ भी नही ह। हिन्दी मे प्रचलित भाषा का कोई शब्द कोश नही है। स्कूलो, कालेजो मे राजस्थानी अवधी और ब्रज भाषा की कविताएँ पढाई जाती है इस लए बीसलदेव रासो से लेकर रामचरित मानस तक और पदमावत से लेकर कामायनी तक के शब्दो का समावेश होना ही चाहिए। ऐसा नही ह कि हिन्दी बोलियो के सब शब्द इनमे मिल ही जायँ। हिन्दी मे अभी तक कोशो से कोश बनते चले आ रहे ह, पुस्तको और पत्र पत्रिकाओ से नही। मेरे पास १०० शब्द प्रेमचद से और १५० शब्द प्रसाद से सगहीत पडे है जो हिन्दी के बडे से बडे कोश मे नही मिलते। 'हिन्दी शब्द सागर' (नवीन सस्करण) मे 'आत्म के अतगत आत्म कथा, आत्मघात, आत्मचिंतन, आत्मचरित आत्मज्ञानी, आत्मनिवेदन, आत्म विश्वास, आदि एक सौ के लगभग शब्द है किंतु आत्मग्लानि, आत्मदर्शी, आत्मनिग्रह, आत्म निणय, आत्मनिभर आत्मप्रवचन आत्मबलिदान, आत्मशक्ति, आत्मशिक्षा, आत्मशुद्धि, आत्म सरक्षण, आत्मस्तुति, आत्माभिव्यक्ति आदि बहुत सारे शब्द ह ही नही। सकडो शब्द प्रतिरूप हमारी भाषा मे प्रविष्ट हो रहे ह—अभी अभी घेराव, आयाराम गयाराम नक्सलवादी, दल बदलू, नसबदी, भाई भतीजावाद, प्रसोपा, ससोपा, सिंडीकेट और इसके मुकाबले मे इडीकेट आदि शब्द चले ह। ह कोई ऐसी सस्था जो इस सम्पत्ति को बचाकर रखती जा रही है !

कोश का सकलन कोई मामूली काम नही ह। अमेरिका की प्रसिद्ध वेब्सटर डिक्शनरी का चौथा सस्करण १९३४ मे प्रकाशित हुआ था। इसके लिए २५ सपादक, ९ सहायक सपादक और २०७ विशिष्ट सपादक लगाए गए थे। आक्सफोड डिक्शनरी ७० वष मे तयार हुई थी और इसकी समाप्ति तक सपादको की तीन पीढिया समाप्त हो गयी थी, चौथी ने उसकी अतिम जिल्द देखी। इन दोनो कोशो का सशोधन परिवद्धन होता ही रहता है। स्थायी सपादक पीढी दर पीढी काम करते ही जाते ह। प्रतिदिन नयी पुस्तके और पत्र पत्रिकाएँ चली आ रही ह और सकलन कर्त्ता उनको पढकर सकडो नए शब्दो और बीसियो नये अर्थो के कार्ड बनाते जाते ह। इस तरह वे अपने कोश को शब्द सम्पत्ति की दष्टि मे अद्यतन और आधुनिकतम बनाए रखने की चेष्टा करते रहते ह।

हिन्दी शब्द सागर (नवीन सस्करण) आधुनिकता की दष्टि से कितना पिछडा हुआ है इसका सही मूल्याकन इस बात से किया जा सकता ह कि इसमे सकडो हजारो ऐसे शब्द नही मिलते जो आज के हिन्दी जगत मे प्रचलित ह—अकपूची, अगघात, अत कालीन अत र्लोचन, अर्तविवेक, अतरविवाह अशभागिता, अकादमी, अकाल प्रौढ (बालक), अकुशलता, अकेलापन अखडता, अखबारबाला, अखाडबाजी, अगुप्त, अग्रता, अचलता, अज्ञात भाव, अज्ञानाधकार, अणुव्रत, अणुशक्ति, अणुशास्त्र, अतिप्राकृतिक, अतिव्याप्त, अत्यावश्यक, अधिक्रम अधिनद्ध, अधिनायकत्व, अधिभार, अधियाचित, अधिशास्त्री, अनतिम, अन्नवर्ती, अनिद्रा रोग, अनिश्चयात्मक, अनुक्रमाक, अनुचिंतन, अनुज्ञात्मक, अनुबध पत्र, अनुभवसापेक्ष्य, अनुभवाश्रित, अनुभवातीत, अनुमस्तिष्क अनुरक्षण, अनुशास्त्रि, अनौपचारिक, अपकर्षी, अपकेन्द्री, अप मिश्रण, अपराधजीवी, अपराधिता, अपसामान्य, अप्रचलन, अभिकथन, अभिकेन्द्री, अभिगृहीत,

अभियता, अभियाचना, अभिरक्षक अयान्त्रिक, अभिलेखागार, अजिशुष्णता, अथलिप्सा अर्द्धो मीलित, असहमति, अहकेंद्रित, अहमन्यता, आदोलनकारी, आधी पानी, आसू गैस, आकण्ठ आकाशमाग, आकृतिमूलक, आक्षरिक, आख्यापत्र, आख्यायिककार, आग्रहपूण, आग्रहपूवक आचारसहिता, आचारशास्त्र, आचार व्यवहार, आज्ञानवर्ती, आतककारी, आतिशबाजी, आदर सूचक, आदाना, आदिगुरू, आदियुग आदेशानुसार, आद्यक्षर, आधारवाक्य, आधारभूत, आधारशिला आधोजाव, आनददायक, आनदपुर, आनदमग्न, आपत्तिजनक, आपातिक, अप्र वास, आफसेट, आय कर, आरामतलबी, आरामपसद, आरोग्यलाभ, आरोग्यशास्त्र, आर्टिस्ट, आलोच्य, आवटन, आवक्ष (मूर्त्ति), आवधिक, आवेगपूण, आवशमय, आशान्वित, आशावाद, वान, आशावादी, आशुलिपि, आश्चयचकित, आहार नाल, आहारशास्त्र आदि आदि बहुत से शब्द जिनका इस निबध लेखक के लिए सग्रह करके दे देना लगभग असभव ही है। इस कोश , मेआधुनिकता' शब्द भी नही ह, 'प्राचीनता' ह 'आचायत्व' नही ह, 'नायकत्व' भी नही ह, 'दुष्टत्व' तो ह।

कोश की भूमिका के बाद एक सूचना दी गयी ह कि लगभग ३५० ग्रथो से (जिनकी सूची सकेतिका के अतगत दी गयी ह) शब्दा का सग्रह किया गया ह। इनम ९५% ग्रथ साहित्यिक ह और उनम लगभग ६०% खडी बोली के नही ह। साहित्येतर पुस्तको से शब्दो का सकलन नही किया गया है। आज हमारे ज्ञान विज्ञान का क्षेत्र बहुत बडा ह। हिंदी केवल ललित साहित्य की भाषा नही ह। कोश के सपादक (सपादक मडल के लोग नही) यदि भाषा विज्ञान, समाजशास्त्र, अथशास्त्र, इतिहास, दशन, मनोविज्ञान, भूगोल, भूगभशास्त्र, रसायन, चिकित्सा भौतिकी, काष्ठविद्या, आलेखन, वास्तुकला, सगीत, चित्रकला, जहाजरानी, वायुयान विद्या, यान्त्रिकी, प्राविधिक विज्ञान आदि पर एक एक पुस्तक भी देख लेते तो उनके शब्द भडार मे हिन्दी का कुछ प्रतिनिधित्व हो जाता। कम से कम एक दिशा का निर्देश तो अवश्य होता। जब हमारे बडे से बडे कोश की यह हालत ह तो और कोशा की यहा त्रुटिया दिखाने की आवश्यकता नही ह। 'आधुनिकता' के अभाव का एक और दष्टान्त 'डालर' के अथ मे देखिए—लिखा ह "अमेरिका का एक सिक्का—ये १०० सेट या टके का होता है, रुपयो मे इसका मूल्य विनिमय दर के आधार पर सदा बदलता रहता ह। कभी एक डालर ३ रुपए दा आने के बराबर था। सम्प्रति उसकी भारतीय रुपयो मे कीमत लगभग ४ ८७ न० पैसे।" वह खड जिसमे यह शब्द ह सन १९६८ ई० मे प्रकाशित हुआ है और १९६५ से डालर ७ ५० के बराबर है।

प्राय लोग शब्दो की शुद्ध वतनी जानने के लिए कोश देखते है। हम हिन्दी के इस बडे कोश के केवल चार पष्ठो से कुछ उदाहरण दे रहे ह—

प० १७८५—'तत्त्वमसि श्वेतकेतो' के स्थान पर छपा है तत्त्वमिस श्वेतकेती

प० १७७०—तत्व, पोधा, ह्रस्वाग छपे है।

प० १७७१—सतति के स्थान पर सवति और चार बार जीवन चरित मे 'त' (त हलत) छपा ह।

प० १७७४—मूर्च्छा के स्थान पर 'मूर्छा'

प्राय लोग शब्द के अथ जानने के लिए कोश देखा करते ह । रामच द्र वर्मा ने पहली बार प्रामाणिक हि दी कोश मे सगतियुक्त सयोजन ओर वैज्ञानिक विकास की ओर ध्यान दिया। किन्तु उन्होने सभी अर्थो का क्रम आवत्तियो के अनुसार नही रखा । अन्य कोशो मे तो काई बैज्ञानिकता नही पाइ जाती । सस्कृत के कोशा से अधा वुध शब्द और अथ उठा लेने का दुष्परिणाम हमे भोगना पड रहा ह । हि दी शब्द सागर मे 'गो' शब्द के आगे स्त्रीलिग मे १६ और पुल्लिग मे १८ अथ गिनाए गए ह—स्त्रीलिंग (१) गाय (२) रश्मि (३) वृपराशि (४) ऋषभ (५) औषधि (६) (७) सरस्वती (८) दष्टि (९) बिजली (१०) पथ्वी (११) दिशा (१२) माता (१३) गोमूर्त्ति (१४) बकरी, भैस (१५) भेड (१६) एकवीथी । पुल्लिग—(१) बल (२) नदी (३) घाडा (४) सूय (५) च द्रमा (६) बाग (७) गवइया (८) प्रशसक (९) आकाश (१०) स्वग (११) जल (१२) वज्र (१३) शब्द (१४) नौकाअक (१५) शरीर के रोग (१६) पशु (१७) हीरा (१८) गोमेद । हि दी का बडे मे बडा विद्वान भी मानेगा कि हि दी भाषा मे यह सब अथ नही चलते । क्या हम बिजली के लिए यह कह सकते ह कि गो जला दो या बकरी के लिए कह सकते ह कि 'गो जा रही ह', या माता के लिए कि 'यह मेरी प्यारी गो ह या घोडे के लिए कि 'टागे मे गो जुता ह' ? ३४ अर्थो म एक अथ भी तो हि दी मे नही चलता । गाय के लिए भी चाहे गऊ कह दे, पर उसे कोइ गो नही कहता । हा, समासो मे यह अथ मिल जाता ह जैसे गोदान, गोशाला, गोधूलि, गापाल, गोपुच्छ, गोमूत्र, गोमुख, गामेद गोरस आदि । और 'इन्द्रिय' अथ गोचर और गोपाल मे पाया जा सकता ह । बस । शेष ३२ अर्थो से हि दी के विद्यार्थी का कतई कोई सबध नही ह ।

'पप' की परिभाषा शब्दसागर मे यो दी ह—"वह नल जिसके द्वारा पानी ऊपर खीचा या चढाया जाता है अथवा एक ओर से दूसरी ओर भेजा जाता ह ।" पहली बात तो यह ह कि वह केवल नल नही ह दूसरी बात यह ह कि केवल पानी ही क्यो, तेल, गैस, हवा आदि भी सम्मिलित करने चाहिए थे ।

बहुत से पुराने शब्दो मे भी अथ का विकास होता रहता ह, कितु हमार बडे से बडे कोश ने भी इस बात की चिंता नही की । अ, आ से ही कुछ एक उदाहरण नीचे दिये जाते ह—

अतिरिक्त = फालतू
अधिक्रम = अधिकारियो का क्रमिक पद क्रम
अधिवक्ता = एडवोकेट
अनुचिंतन = मनन
अभिलेख = रिकाड
अभ्यार्थी = उम्मीदवार
आकाशवाणी = आल इण्डिया रेडियो
आरयापन = एलान
आरक्षी = पुलिस
आशसन = गुणकथन

ऊपर के सब शब्द तो इस कोश मे है, कि तु ये अथ नही है, दूसरे पुराने अथ अवश्य है ।

शब्दो की निरुक्ति हमारे कोशो का सबसे कमजोर पहलू है । उच्चारण और बलाघात दोनो की आवश्यकता का अनुभव किसी कोशकार को नही हुआ । व्याकरणिक निर्देशो के सम्ब ध मे भी थोडा और सोचने की गुजाइश ह । क्या स० पु० और अ० क्रिया मात्र देने से काम चल जाता ह ? हमे शायद यह भी दिखाना चाहिये कि यह सज्ञा भाववाचक है या समूहवाचक ह या जातिवाचक । इस सज्ञा के पुल्लिग अथवा स्त्रीलिग रूप क्या बनते है—भस भैसा मौसी मौसा, धोबी धोबिन, नौकर नौकरानी आदि क्योकि प्राय कोशो मे व्युत्पन्न स्त्रीलिग शब्दो को छोड दिया जाता ह । इसी प्रकार क्रिया की विस्तत जानकारी देने की आवश्यकता ह ।

ऊपर हमने अपनी अधिकाश चर्चा को 'हि दी शब्दसागर' तक सीमित रखा ह । कोश तो और भी ह और उनम रामशकर शुक्ल रसाल का 'भाषा शब्दकोश' (पष्ठ सख्या १९०८), कालिका प्रसाद आदि का 'बहृद हिन्दी कोश' (पष्ठ सख्या १८००), और रामचन्द्र वर्मा का 'मानक हि दी कोश (पष्ठ सख्या लगभग ३१००) प्रसिद्ध है । वैज्ञानिकता की दष्टि से वे ओर भी पिछडे हुए ह । हमने 'सागर' (अनुमानित पष्ठ सख्या ५५००) को इसीलिए चुना ह कि उसम ये सब नदिया समा गई ह । यह फिर कहना पड रहा ह कि हि दी मे कोशो से कोश बनते है—सस्कृत का शब्द कोश भर लिया गया ह, उदू का भी, और अब तो ब्रज भाषा, राजस्थानी और अवधी के कोश भी प्रकाशित हो गए है । इ हे भी भरा जा रहा है, और दावा किया जा रहा है कि हिन्दी की शब्द सपदा एक लाख, अब सवा लाख, अब डेढ लाख और दो लाख हो गई ह । अब सुनने मे आया है कि भारत सरकार वेब्स्टर के आधार पर एक हि दी कोश तैयार करने की योजना बना रही है । कि तु प्रश्न यह है कि क्या वेब्स्टर से हिन्दी का शब्द भण्डार पूरा हो जायगा ? अथवा, क्या वेब्स्टर हि दी शब्दो के अथ निश्चित करने अथवा उनका क्रम निधारित करने मे सहायक हो सकेगा ? वेब्स्टर मे दो विशेषताएँ उल्लेखनीय है—एक तो पदो की वज्ञानिक परिभाषा और दूसरी पर्याय और विलोम शब्दा का सयोजन तथा विभेदीकरण । कि तु यह कोश आधुनिक कोश-विधान की दृष्टि से आधुनिक नही कहा जा सकता । हमे रूसी, जमन, और फ्रेंच के प्रामाणिक कोशो के अतिरिक्त अग्रेजी के यूनिवसल, एडवान्स्ड लनस, और दूसरे कोशो की पद्धतियो को भी जानना-समझना होगा । आज पाश्चात्य देशा मे कोश कला अत्यन्त समुन्नत और प्रगतिशील ह । आज का कोश अपनी भाषा की पूरी सरचनात्मक, व्याकरणिक तथा व्यावहारिक जानकारी देने की चेष्टा करता है । खेद ह कि हिन्दी मे किसी कोशकार का सपक पश्चिम की आधुनिकतम प्रक्रिया से नही ह । हि दी म कोशा की कमी नही ह । हिन्दी को घोर आवश्यकता ह प्रशिक्षित, अध्यवसायी, एव जागरूक कोशकारो की ।

•

उपन्यास क्या है ?

गोपाल राय

किसी भी साहित्यिक विधा की परिभाषा देना अथवा उसका स्वरूप निर्धारण करना एक मुश्किल काम होना ह[1] वैसी साहित्य विधा को परिभाषित करना ओर भी कठिन है जो तेजी से विकास कर रही हो। उपन्यास अन्य काव्यविधाओ की तुलना मे आधुनिक ह और उसका विकास अभी रुका नही ह। इसलिए आज उसकी जो परिभाषा दी जाती ह वह कल पुरानी पड जाती ह। इस कठिनाई के बावजूद उपन्यास की परिभाषा करना और उसका स्वरूप निर्धारण करना अनिवाय हो जाता ह, क्योकि इसके बिना औपन्यासिक कृतियो का सही मूल्याकन करना सभव नही होता।

यद्यपि उपन्यास की परिभाषा करना कठिन ह, पर उसके उन तत्त्वा की तलाश की जा सकती ह जो हर अच्छे उपन्यास मे महत्तम समापवत्तक के रूप मे विद्यमान रहते ह। हो सकता ह कि कोई उपन्यास इन तत्त्वो का अतिक्रमण भी कर जाए पर सामान्य रूप से अन्य विधाओ से उपन्यास की अलग पहचान के लिए इन तत्त्वो का निर्धारण उपयोगी हो सकता है।

उपन्यास कथा का वशज

प्रथमत उपन्यास को हम कथा का वशज या विकास कह सकते ह। यह निर्विवाद और सावभौम तथ्य ह कि उपन्यास कथा से ही विकसित हुआ ह। कथा का मनुष्य से सबध आदिम और मौलिक ह। नशास्त्रवेत्ताओ के अनुसार पुरापाषाण युग का आदि मानव कथा सुनने सुनाने का आदी था। आदि मानव अपने अवकाश के क्षणो को किस्सा-कहानी कह सुनकर बिताता रहा होगा, यह अनुमान बिलकुल स्वाभाविक ह। आज भी बच्चे ओर अशिक्षित व्यक्ति किस्सा कहानियो से अपना मनोरजन करते ही है। यहा तनिक रुककर कथा की परिभाषा कर लेना आवश्यक है। **समयानुक्रम मे बँधी घटनाओ का वणन ही कथा हे।** अच्छी कथा की एक ही विशेषता है। वह यह कि उसमे उत्सुकता ओर कौतूहल उत्पन्न करने की क्षमता हो। जिस कथा मे यह क्षमता जितनी अधिक होगी उसे उतनी श्रेष्ठ कथा मानेगे। देवकीनन्दन खत्री की 'चन्द्रकान्ता' कथा का श्रेष्ठ उदाहरण ह।

बहुत दिनो तक कथा बालको और अशिक्षित व्यक्तियो के मनोरजन का साधन बनी रही। बाद मे इससे एक और काम लिया जाने लगा। वह उपदेश का भी माध्यम बनी। कथा के माध्यम से उपदेश देना सरल काय है और सस्कृत मे पचतत्र तथा हितोपदेश जैसी कथाएँ इसी उद्देश्य से रची गयी। दूसरी तरफ काव्यो मे भी कथा को ग्रहण किया गया।

१ फोर्स्टस ई० एम०, दि आस्पेक्टस आफ नावेल, पष्ठ

सस्कृत मे कथाओ के आधार पर गद्य काव्यो की भी रचनाएँ हुइ पर कथा को वास्तविक गौरव उप यास के उद्भव के बाद ही मिला। उसके पहले तक कथा कम बुद्धि वाले व्यक्तियो की ही चीज मानी जाती थी और काव्यग्रथो मे, यहा तक कि गद्यकाव्यो मे भी, कथा का स्थान बहुत गौण हुआ करता था। उप यास मे आकर पहली बार कथा ने अपना वास्तविक उत्तराधिकारी प्राप्त किया। जैसा स्पष्ट है, कथा के दो ही काय थे हल्के धरातल का मनोरजन और उपदेश। उपन्यास कथा का वशज होकर भी मनोरजन और उपदेश से ऊपर की वस्तु है। वह जीवन को उसकी व्यापकता, जटिलता और गहराई मे अभिव्यक्त करने वाला सर्वाधिक प्रतिनिधि काव्य रूप है। उपन्यास ने अपने पूवज, कथा, से अलग होने के लिए विद्रोह किया ह। उप यास से कथा का तत्त्व दिनोदिन कम होता गया है और इस दिशा मे निरतर प्रयोग भी हो रहे है। पर इसके बावजूद उपन्यास कथा को बिलकुल छोड देने मे समथ नही हुआ है। ई० एम० फोस्टस के अनुसार उप यास अपने पूवज के इस रोग से न तो मुक्त हो सका ह और न हो सकेगा। कथा उप यास की रीढ है, चाहे वह कितनी ही पतली क्यो न हो। उसके बिना उपन्यास की रचना सभव नही है। उसे कम किया जा सकता ह सूक्ष्म बनाया जा सकता है, समयानुक्रम मे हेर फेर, उलट पुलट की जा सकती है, लेकिन उससे सवथा मुक्ति नही पाई जा सकती। इस प्रकार कथा को उपन्यास के आधार या रीढ के रूप मे स्वीकार करना ही होगा। यह उप यास का सबसे दुबल पर अनिवाय अग है।

कथा के मौखिक और लिखित रूप

कथा कई रूपो मे उपलब्ध होती है। कथा का आदिम रूप मौखिक ह। आज भी मौखिक रूप मे कथा अशिक्षितो और बच्चो का मनोरजन करती है। मुद्रण के आविष्कार के पूव कथा अधिकतर मौखिक रूप मे ही प्रचलित थी। मौखिक कथा उप यास नही बन सकती। उप यास बनने के लिए उसको लिखित रूप ग्रहण करना अनिवाय है। उपन्यास श्रव्य नही हो सकता। ससार की सभी भाषाओ मे मुद्रण य त्र के प्रचलन तथा पाठक वग के निर्माण के बाद ही उप यास का उद्भव सभव हुआ ह। यह उप यास की विशिष्ट माग ह। कथा जब तक श्रव्य रूप मे रहतो ह वह उप यास बनने मे असमथ होती ह। इसका कारण यह ह कि उप यास केवल कथा नही ह। वह एक विशिष्ट कलाकार की जीवन दष्टि की उपज ह। उप यास जीवन को उसकी व्यापकता और जटिलता मे चित्रित करने का प्रयास करता है और यह लिखित रूप मे ही सम्भव ह। कथा सावजनिक होती ह इसलिए कोई भी उसका श्रावयिता बन सकता है। उप यास किसी विशिष्ट कलाकार की सृष्टि होता ह और उसका एक स्थित निश्चित रूप होता ह जो लिखित रूप मे ही सम्भव ह। उपन्यास का लिखित होना इसलिए भी अनिवाय है कि जीवन की जो जटिलता, सघष और व्यापकता उप यास मे अभिव्यक्ति पाती है, उसे सुनकर स्मरण नही रखा जा सकता। उप यासकार की विशेष दष्टि जीवन-मूल्यो की अभिव्यक्ति पर होती है, जबकि किस्सागो समयानुक्रम मे नियोजित वैसी घटनाओ पर बल देता ह जो श्रोताओ का कौतूहल बनाए रख सके। समयानुक्रम मे नियोजित घटनाओ को याद रखना सरल ह पर जीवन मूल्यो की अभिव्यक्ति जिन जटिल रूपो मे होती ह उन्हे एक बार सम्प न कर लेने के बाद पुन स्मरण शक्ति के बल पर ज्यो का त्यो उपस्थित नही

की दष्टि से उपन्यास श्रव्य नही हो सकता। यह पाठय होकर ही सम्भव हो सकता ह। इस प्रकार पाठक वग के साथ उप यास का घनिष्ठ सम्ब ध ह। हिन्दी क्षेत्र मे जब तक श्रोता मडली बनी रही तब तक कथाओ का बोल बाला रहा, पर जब शिक्षा और मुद्रण य त्र के प्रसार से श्रोता पाठक मे परिणत होने लगे तो कथाओ मे भी जैसे अनिवाय रूप मे औप यासिक तत्त्वो के दशन होने लगे।

पद्य कथा और गद्य कथा

उप यास के लिए कथा का केवल लिखित होना ही नही गद्य मे लिखित होना भी जरूरी ह। कथा पद्य मे भी होती ह, पर पद्य मे लिखित कथा उपन्यास रूप मे विकसित नही हो सकती। गद्य उपन्यास का अनिवाय माध्यम है। इसका कारण यह है कि उपन्यास का सम्ब ध यथाथ की अभिव्यक्ति से ह। पद्य गद्य की तुलना मे अधिक कृत्रिम होता ह। गद्य हमारी अभिव्यक्ति का सहज माध्यम ह। इसी कारण वह यथाथ के अधिक निकट मालूम पडता है। गद्य प्राय सामा य बातचीत का प्रभाव पदा करता है। इस कारण वह उप यास का माध्यम बन सकने मे समथ होता है।

उपन्यास की लम्बाई

इस प्रसग मे एक प्रश्न यह भी उठता ह कि कितनी लम्बी कथा को उप यास की सज्ञा दी जाए। कथा बडी भी हो सकती ह, छोटी भी। 'बडा' और 'छोटा' सापेक्ष पद है और इनकी कोई निश्चित सीमा तय नही की जा सकती। यही कारण ह कि उपन्यास के आकार का निर्धारण करने मे किसी को सफलता नही मिल सकी है और न भविष्य म मिलने की कोई सम्भावना ह। उप यास का आकार सौ सवा सौ पष्ठो से लेकर हजार डेढ हजार पष्ठो तक का हो सकता है। अत उप यास कला के पडितो ने केवल इतना कह कर स तोप कर लिया है कि उपन्यास का आकार "पर्याप्त लम्बा" होना चाहिए। सुविधा के लिए हम उप यास और कहानी के बीच उप यासिका (noveletto) को रखकर उप यास के आकार का थोडा बहुत निणय कर सकते है। हम मान ले सकते है कि कहानी का आकार **छोटा**, उप-यास का **पर्याप्त लम्बा** और उपन्यासिका का **दोनो के बीच का** होता है। कभी कभी कहानी खीचकर उप यासिका के क्षेत्र मे प्रवेश कर जाती है और कभी उप यास सिमटकर उपन्यासिका की सीमा मे चला आता है, पर प्राय इन्हे पहचानने मे, यद्यपि थोडे मनमानेपन के साथ, हम कोई भूल नही करते। अत आकार के सम्ब ध मे इसी निष्कष पर स तोप करना पडता है कि उपन्यास पर्याप्त लम्बा होता है।

कल्पनाप्रसूत किन्तु यथाथ ससार का निर्माण

उप यास के सम्बन्ध मे सबसे महत्त्वपूण बात यह ह कि उसमे एक काल्पनिक, पर यथाथ ससार का निर्माण होता है। उप यास मे चित्रित पात्र और उनके कायकलाप कल्पना-प्रसूत होते ह। इसी दष्टि से उप यास इतिहास, जीवनी और आत्मकथा से भिन्न होता है। इतिहास और जीवनी मे वर्णित पात्र और उनके कायकलाप तथ्य होते है, जबकि उप यासकार काल्पनिक व्यक्तियो के काल्पनिक कार्यो का वणन करता है। इतिहासकार जो कुछ भी लिखता है, उसके लिए उसे साक्ष्य प्रस्तुत करना पडता ह। उप यासकार के साथ ऐसी कोई सीमा नही

है। कभी-कभी उप यासो के काल्पनिक पात्र इतने वास्तविक प्रतीत होते है कि पाठक भ्रम मे पड जाता ह। कथरीन लीवर (Cathrıne Lever) ने इस प्रसग मे एक बडा ही मनोरजक उदाहरण प्रस्तुत किया है। क्रिस्टोफर मार्लो के 'किट्टी फ्वायल' नामक उप यास को पढते हुए एक पाठक को भ्रम हो गया कि वह वास्तविक घटना का वणन पढ रहा है। उसने फिलाडेलफिया के पत्र सम्पादक को लिखा कि वह जीवन भर ग्रिस्काम स्ट्रीट मे रहता आया ह, पर फ्वायल नामधारी किसी परिवार को वह नही जानता। कि तु, उप यास का विवेकशील पाठक जानता ह कि उपन्यास के पात्र वास्तविक ससार मे नही जीते। वे केवल पुस्तक के पष्ठो मे या लेखक और पाठक की कल्पना मे जीते हैं। अत इतिहास जीवनी, आत्मकथा, मनोवज्ञानिक रोगो के इतिहास तथा डायरी से उप यास की भि नता स्पष्ट ह। उप यास और तथ्य म कभी कभी इस कारण भ्रम उत्प न हो जाता ह कि आरम्भ से ही उप यासकार अपने पाठको को अपने द्वारा निर्मित ससार की यथाथता का अधिकाधिक बोध कराने के लिए इस प्रकार की शैली अपनाते रहे ह मानो वे किसा तथ्य का वणन कर रहे हो। पर विवेकशील पाठक बाहरी रूप से भ्रम मे नही पडता। वह जानता ह कि 'शेखर एक जीवनी' का शेखर और 'बाणभट्ट का आत्मकथा का बाणभट्ट काल्पनिक पात्र है, वास्तविक नही।

पर जैसा ऊपर कहा गया है उपन्यास का ससार कल्पना प्रसूत होने पर भी यथात होता है। कुछ लोग **यथाथ** और **कल्पना प्रसूत** मे कोई फक नही कर पाते। इसलिए उनकी दष्टि मे जो कुछ भी कल्पना प्रसूत ह वह अयथाथ होता ह। कि तु यह सीमित और सकुचित दष्टि का परिणाम ह। वास्तव मे जो कुछ भी विश्वसनीय और सम्भव होता है वह वास्तविक ससार मे अधिकृत होने पर भी यथाथ कहलाने का अधिकारी हे। उपन्यासकार के पात्र, उनकी परिस्थितिया और काय कलाप अवश्य ही काल्पनिक होते ह, पर उनमे कोई भी ऐसी बात नही होती जो सभावना से परे हो। पात्रो की परिस्थितिया, उनके आस पास के वातावरण एव उनके कायकलाप ही नही, उनके नाम, निवास स्थान तथा वेशभूषा तक ससार के अ य व्यक्तियो की तरह होते हैं। उपन्यास मे कुछ भी ऐसा नही होता जो विश्वसनीय न कहा जा सके। कोई कथा उप यास की सज्ञा तब तक नही पा सकती जबतक उसमे चित्रित जीवन विश्वस नीय और सभव न हो। इसी आधार पर हम रूमानी कथाओ और उपदेशाख्यानो को उपन्यास की सज्ञा नही देते। रूमानी कथाएँ अपने श्रोताओ को जिस ससार मे ले जाती है, वह शौय और उत्तेजक साहसाभियानो, वीर पुरुषो और समोहक स्त्रियो, दुजन जादूगरो और सज्जन महात्माओ और सबसे ऊपर एक आदर्शाकृत प्रेम का ससार होता है। इस ससार के पवत, नदिया, जमीन, मनुष्य तथा उसके नियम हमारे ससार से सवथा भिन्न होते हैं। वहा के पवतो मे तिलिस्म भरे रहते ह, जमीन सोने और चादी की होती ह, नदिया नालो से भरी होती ह, नायिकाएँ सोने से मढी होती है तथा पशु पक्षी मनुष्य की भाषा बोलते है। इन कथाओ के नायक नायिका केवल प्रेम की दुनिया मे विचरण करने वाले आलकारिक भाषा मे विरह निवेदन करने वाले तथा जीवन की दैनिक समस्याओ से मुक्त स्वच्छन्द प्राणी होते हैं। ये रोमास के दो काय करते थे—एक गुदगुदाहट दूसरा मनोरजन तथा एक विशेष प्रकार के जीवन दशन का सुस्वादु रूप मे सप्रेषण। अधिकाश प्राचीन रूमानी कथाएँ श्रोताओ की चेतना को हितकर रूप मे वद्धित नही करती। इन कथाओ का उददेश्य जीवन के अनुभव

का सार उपस्थित करना नही, वरन उत्तेजना के लिए उत्तेजक उत्पन्न करना होता था। वे वैसे व्यक्तियो की अतप्ति और उचाटपन पर जाती ह जि हे करने के लिए कोई काम नही होता या वे जो कुछ करते है उसमे उ हे अत्यल्प सतोष होता ह।

यथाथ सम्बन्धी इसी वशिष्टच के कारण उपन्यास उपदेशाख्यानो (मोरल फेबल्स) से भिन्न हो जाता ह। उपदेशाख्यान भी लिखित गद्यकथा ह जो कल्पना प्रसूत तो होती ही है पर जिसमे कोई ससार नही होता। उपदेशाख्यान मे उपदेश की प्रधानता होती ह। उसके पात्र कुछ विशेष गुणो को उदाहृत करते ह। उनका कोई अस्तित्व नही होता, केवल अथ' होता ह। उनके काय कलाप किसी विचार की पष्टि मात्र करते ह। उनम कोई नतिक दशन प्रधान होता ह और पात्र तथा कथानक लेखक के दष्टिकोण के सामने गौण होते है। उदाहरणाथ पचतत्र के पात्रो का अपना कोई अस्तित्व नही ह, यद्यपि के लेखक के उददेश्य की पूर्ति करने मे पर्याप्त सक्षम ह। उपदेशाख्यान का लेखक लिखना आरम्भ करने के पूव उसके केद्रीय विचार का निर्धारण कर चुका रहता ह। उपदेशाख्यान जीवन सम्ब धी किसी विचार या नतिक सत्य को उदाहृत या व्याख्यात करता ह। वह विचार या दष्टिकोण एक सूक्ति के रूप मे भी हो सकता ह या काफी स्पष्ट जीवन दष्टि के रूप मे। जसे अग्रेजी उपयास (गुलिवक्स टेवेल) म मुख्य बात ह व्याख्या ओर दष्टातीकरण। इस प्रकार उपदेशाख्यान का लक्ष्य किसी नतिक सत्य को उदाहृत करना होता ह जबकि उप यास एक ठोस ससार को हमारे सामने रखता ह। उपदेशाख्यान की सीमा यह होती है कि इसमे जीवन का अति सरलीकरण या मिथ्या दशन होता ह। इसमे 'जीवन' नही होता, केवल विचार या नतिक सत्य का उदाहरणीकरण होता ह, जबकि उप यास के पष्ठो मे जीवन उफ-नाता रहता है। उपयासकार जीवन के यथाथ अनुभव को पात्रो के माध्यम से पाठको तक पहुँचाने का प्रयास करता ह। उपन्यास लेखक नतिक सत्य के चित्रण मे नही, जीवन के चित्रण मे रुचि रखता ह। उसकी दष्टि इस बात पर रहती ह कि पुरुष या स्त्रिया क्या करती ह। वह निणय और मूल्याकन मे उतना समय नही लगाता, जितना मानव प्राणियो और उनके कार्यो का रुचि और उत्साह के साथ आलेखन करने मे।

इस प्रकार उपयास यथाथवादी गद्य कथा ह—उपदेशाख्यानो और रूमानी कथाओ से सवथा भिन। इस दष्टि के 'कादम्बरी' और 'दशकुमार चरित' जैसे गद्य काव्य,—'वताल पचीसी' 'सिंहासन बत्तीसी' 'चहार दर बेश और 'किस्सा तोता मना' जसी लोक प्रचलित कहानिया, 'रानी केतकी की कहानी ' जसे प्रेमाख्यान, तिलस्मी तथा जासूमी कथाएँ उपन्यास नही कहला सकती। यद्यपि इ हे भी सामा य रूप मे 'उपन्यास की सज्ञा मिल जाती ह, पर यहा 'उपन्यास' शब्द प्रयोग उहुत शिथिल रूप से होता ह उपयास एक कला रूप है और अपने यथाथवादी वशिष्टय के कारण वह कथा के इन रूपो से भि न हाता ह।

औपन्यासिक यथाथ

अब हम विवेचन के उस बिन्दु पर पहुच गए है, जहा उपन्यास मे चित्रित 'जीवन' अथवा यथाथ की व्याख्या अपेक्षित ह। हम कहते है कि उपयास जीवन का प्रतिनिधित्व करता ह, पर जब हम इसके अथ पर विचार करने लगते है तो हमे काफी उलझन का सामना करना पडता ह। 'जीवन' का आखिर मतलब क्या ह ? यदि हम किसी व्यक्ति के जीवन को देख

तो हमे उसमे पाच प्रमुख बातें दिखाई पडती है—ज म, मृत्यु, भोजन, शयन और प्रेम । ज म और मत्यु जीवन के दो छोर ह पर उप यास मे इनका चित्रण बहुत गोण रूप मे ही होता है । इसी प्रकार भोजन और शयन हमारे जीवन के महत्त्वपूण अग ह, पर उप यास मे इनकी स्थिति बहुत महत्त्वपूण नही होती । रहा प्रेम जिसका चित्रण उप यास मे बहुत व्यापक रूप मे होता ह । प्रेम शब्द का प्रयोग यहा व्यापक अर्थ मे किया जा रहा ह । सभी मानव सम्ब धो मे मूल मे यह प्रेम विद्यमान होता है । उपन्यास मानव सम्ब धो के चित्रण का प्रयास करता है । इस प्रकार स्थूल रूप से देखने पर उप यास वास्तविक जीवन का पूरा प्रतिनिधित्व करता नही दीखता । वह जीवन के पञ्चम अश का ही प्रतिनिधित्व करता है । फिर उप यास को जीवन का पूण प्रतिनिधि कसे माना जाए ? पर यह आपत्ति स्थूल रूप से देखने पर ही महत्त्वपूण मालूम पडती ह । जन्म और मत्यु जीवन के दो छोर होने पर भी हमारे लिए उतना महत्त्व नही रखते । हमे अपने जन्म की कोई स्मृति नही रहती और मृत्यु के बाद जीवन व्यर्थ हो जाता ह। यही कारण ह कि हम अपने जीवन मे ज म और मृत्यु की बहुत परवाह नही करते । शयन की स्थिति भी निष्क्रियता की स्थिति होती ह, और भोजन न हो तो भोजन की समस्या उप न्यास मे महत्त्वपूण स्थान प्राप्त करती ह । मनुष्य के सारे कायकलाप प्रेम से स्पन्दित होते ह और इसलिए उसके अन्तगत सार रूप मे सारा जीवन आ जाता ह । इस लिए यह कहना कि उप यास मानव जीवन का पूण प्रतिनिधित्व नही करता, स्थूल दष्टि का परिचायक है सूक्ष्म दष्टि से विचार करने पर उपन्यास ही वह काव्य रूप मालूम पडता है जो जीवन का सही प्रतिनिधित्व करता है ।

पर इससे भी महत्त्वपूण बात यह ह कि औप यासिक यथार्थ की पहचान इस बात से नही होती कि उप यास मे किस प्रकार के जीवन का चित्रण किया गया है, वरन उसकी पह चान इस रूप मे होती है कि जीवन किस रूप मे चित्रित किया गया है । उपन्यास का प्रमुख उददेश्य व्यक्तिगत अनुभव द्वारा उपलब्ध सत्य—जो सदा अनन्य और इसलिए नवीन होता ह—का चित्रण ह । इस सत्य को उपन्यासकार इस रूप मे प्रस्तुत करता ह कि वह काय कारण की श्रृखला मे बँधा हुआ हो । उप यास की घटनाएँ वास्तविक ससार की घटनाओ की तरह किसी खास व्यक्ति, किसी खास समय और किसी खास स्थान से सम्बदध होती ह । प्राचीन कथाओ मे इस खासियत' पर जोर नही दिया जाता था । उन कथाओ के पात्र सामा यत मानव प्रतिरूप हुआ करते है, जो साहित्यिक रूढियो से नियोजित पष्ठभूमि मे कायशील दिखायी पडते है । उदाहरण के लिए पुरानी प्रेम कहानियो के नायको की कोई अपनी व्यक्तिगत विशेषता नही होती । वे प्रतिरूप अथवा टाइप मात्र होते है । इसके विपरीत उपन्यासकार उप यासो के पात्रो का व्यक्तिकरण करता ह । वह उ हे विशिष्ट नाम ही नही देता वरन विशिष्ट व्यक्तित्व से भी सम्पन्न कर देता ह । उपन्यास ने पहली बार व्यक्तिवाचक नामो की सार्थकता स्थापित की । उप यासकार अपने पात्रो का नामकरण इस रूप मे करता है कि वे विशेष व्यक्ति जान पडे । इसके साथ साथ उप यासकार सरल, स्पष्ट और सटीक भाषा मे पात्रो के अग विन्यास तथा वेश-भूषा का ऐसा विश्वसनीय वणन करता ह, जिससे कि वह विशिष्ट व्यक्ति के रूप मे अपनी छाप हमारे मन पर छोड सके ।

मनुष्य के काय कलाप किसी विशेष समय और विशेष स्थान में हो सम्प न होने है ।

सच पूछे तो हम किसी कायरत मनुष्य को दिक और काल के आयाम से अलग करके पहचान नही सकते। उपन्यासकार पात्रो के काय कलापो के समय और स्थान का ब्योरेवार वणन करके पाठको के मन मे यह प्रतीति उत्पन्न करता ह कि उसकी कथा एक विशेप काल और स्थान मे घटित हो रही ह। उपन्यासो मे वष, माह, सप्ताह, दिन यहा तक कि समय तक का उल्लेख देखा जाता ह। अगरेजी के १८ वी शताब्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार रिचडसन ने एक घटना का वणन इस रूप मे किया ह— सात सितम्बर बहस्पतिवार को छ बजकर चालीस मिनट पर क्लैरिसा का देहान्त हुआ।" इस प्रकार की समय योजना से उपन्यास म वर्णित काय कलाप सहज ही विश्वसनीय बन जाते ह। दिक और काल मे अन्योन्याश्रय ह। उपन्यासकार समय की तरह स्थान के वशिष्टय पर भी बल देता ह। वह उस स्थान का, जहा कोई काय सम्पन्न होता ह ब्योरेवार वणन प्रस्तुत करता ह। उपन्यासो मे स्थानो, गावो और नगरो के नाम ही नही, उनके विवरण भी वास्तविक होत ह। उपन्यासकार घटनाओ के भूगाल के प्रति पूरा सावधान रहता ह। अगरेज उपन्यासकार फिल्डिङ्ग का टाम जान्स जिन मार्गो से होकर लदन जाता ह, उनके बिलकुल वास्तविक नाम और ब्योरे उपन्यास मे दिये गये ह। अमृत लाल नागर के उपन्यासो म लखनऊ की सडको, गलियो तथा अन्य जगहो के नाम और उनके ब्योरे बिलकुल वास्तविक रूप मे आये ह। प्राय सभी उपन्यासकार अपने कल्पनाप्रसूत ससार को वास्तविक बनाने के लिए इस पद्धति का सहारा लते हैं।

इस प्रकार किसी विशिष्ट स्थान और समय म व्यक्तियो के यथाथ अनुभव और काय कलाप का विश्वसनीय लेखा जोखा प्रस्तुत करना उपन्यास का लक्ष्य ह। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उपन्यासकार ऐसी गद्यशैली का सहारा लेता ह, जो पूण प्रामाणिकता का भ्रम उत्पन्न करने मे समथ होती ह। पुरानी कथाओ मे आलकारिक भाषा, जिसे पाश्चात्य दाशनिक लाक भाषा का दुरुपयोग कहते ह प्रयुक्त होती ह जबकि उपन्यासो मे इसका सावधानी के साथ त्याग किया जाता ह। प्राचीन कथाओ की गद्य शली का प्रमुख उददेश्य शब्दो के द्वारा किसी वस्तु को उसके यथाथ रूप मे प्रस्तुत करना नही, वरन बाह्य सौदय उत्पन्न करना हाता था जो अलकारो के रूप मे वणनो पर आरोपित कर दिया जाता था। उपन्यास की भापा बाह्य सौदय, आलकारिकता या सजावट से सवथा रहित पात्रो के काय कलापो को ठीक उसी रूप मे व्यक्त करने वाली होती ह जिस रूप मे वे घटित होते ह।

'नया' पन उपन्यास की पहली माग

उपन्यास का स्वरूप तब तक स्पष्ट नही किया जा सकता जब तक हम उसके अगरेजी पर्याय नोवेल' के व्युत्पत्तिपरक अथ को ध्यान मे न रखे। 'नोवेल' का शाब्दिक अथ ह 'नया' अत उपन्यास हाने के लिए रचनाकार द्वारा निर्मित ससार का नया' होना अनिवाय है। यदि उपन्यास का उदभव यथाथ के प्रत्यक्ष दशन से होता ह तो वह अनिवायत 'नया होगा ही। उपन्यासकार अपने आस पास की दुनिया को, अपने चार ओरो फैले यथाथ को, नवीन रूप मे ही देखता ह। उसका 'विजन' उसकी दष्टि बिलकुल मौलिक अथवा नवीन होती है। इसके विना कलात्मक उपन्यास या वास्तविक उपन्यास की रचना सम्भव नही है। वास्तविक उपन्यास किसी सूत्र या परिपाटी का अनुकरण मात्र नही होता। जासूसी कहानिया तथा

रूमानी कथाओ के अपने अपने सूत्र या रूढिया होती ह । इन कथाओ मे जिस ससार का विव रण होता ह वह ऊपर ऊपर से इतना भर विश्वसनीय होता ह कि हम उसे पढना ब द न करे, पर वह उतना विश्वमनीय नही होता कि हमारे मन मे उसके यथाथ होने का भ्रम उत्प न हो । इस प्रकार उप यास की नवीनता व्यक्तिगत अ तदष्टि की नवीनता और उप यासकार के व्यक्तित्व के अनोखेपन मे निहित ह । नावल के हि दी पर्याय 'उप यास' मे इस नवीनता को व्यजित करने वाला कोई अथ निहित नही ह । हिन्दी उप यास के आरम्भिक काल मे कुछ लेखको ने नोवेल के लिए 'नव यास' शब्द को चलाना चाहा था पर वह नही चल सका । कि तु उप यास शब्द से भले ही यह अथ व्यञ्जित न होता हो, पर उपन्यास की परिभाषा करते समय हम इस विशेषता को भूल नही सकते ।

इस विवेचन के आधार पर हम उप यास की एक सक्षिप्त और यथा सम्भव दोषरहित परिभाषा का निर्माण कर सकते है । हम कह सकते है कि उप यास पर्याप्त आकार वाली वह लिखित गद्य कथा ह जो पाठक को एक काल्पनिक, किन्तु यथाथ ससार मे ले जाती ह जो लेखक के व्यक्तिगत अनुभव और उसकी अ तदष्टि से युक्त होने के कारण नवीन होती ह । यह परिभाषा सम्भव ह, किसी उप यास विशेष के लिए पर्याप्त न हो पर इससे 'उपन्यास' को पहचानने में सुविधा होगी, यह बिना सकोच के कहा जा सकता है । उप यास के क्षेत्र मे प्रयोग होते रहे है और भविष्य मे भी होते रहेगे, अत उप यास की कोई भी परिभाषा पूण और निर्विवाद नही हो सकती । फिर भी उप यास को समझने के लिए कोई 'प्रस्थान बि दु' चाहिए और यह परिभाषा वह बना सकती है ।



समकालीन जीवन प्रक्रिया और अज्ञेय का कृतित्व

रामस्वरूप चतुर्वेदी

विवेचन का शुरू करते समय यह जरूरी होगा कि हम आधुनिक मानव परिवश की प्रकृति और रचना से उसके सम्बन्ध को समझे। यह मानना होगा कि मनुष्य सारे मूल्यो का स्रोत और उपादान है, और वह स्वय उनके विघटन का कारण भी ह। ईश्वरवादियो को भी यह उपपत्ति मानने मे कोई बाधा नही होनी चाहिये, क्योकि मनुष्य ईश्वर की आकृति मे ढला ह या कि उसने ही ईश्वर को अपनी आकृति मे ढाला ह। बहरहाल तत्त्वत सबद्ध दोनो स्थितियो मे कोई बडा भेद नही ह। पर सहस्रो वर्षो मे निर्मित और विकसित मानवीय मूल्य अब सवत विघटित होते जा रहे है, यह हमारी वतमान सभ्यता की चि ता का केन्द्रीय विषय ह। यो तो सक्रमण और मूल्यहीनता की स्थिति मानवीय इतिहास मे अनेक बार आयी ह—सक्रमण का रोना लगभग हर युग का साहित्यकार रोया ह—पर यह मानना होगा कि अब तक के सक्रमण अपनी प्रकृति मे सशोधन और सुधारपरक अधिक थे। इधर प्राय द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद मे तो मूल्य सबधी मौलिक आधार ही जैसे उखड गए ह।

द्वितीय महायुद्ध को इस प्रसग मे तिथि जसा मानने का कारण है। यह सवस्वीकृत है कि मूल्य विघटन की इस स्थिति को लाने मे विज्ञान और प्रविधि का सबसे अधिक हाथ है। एक बार यह मान लेने पर यह भी स्पष्ट हो जाता ह कि द्वितीय महायुद्ध के समय सबद्ध राष्ट्रो ने जैसे भीषण दबाव म जीवन यापन किया, उसी मे यह सभव था कि प्रतिद्वन्द्विता और आत्मरक्षा की भावना से प्रेरित हो कर के विज्ञान और प्रविधि का इतनी तेजी से विकास कर सके। अणुबम के विकास का जो इतिहास अब हमारे सामने है, उस से स्पष्ट ह कि यदि द्वितीय महायुद्ध न होता तो अणुबम और अणु विद्या का विकास कई दशको के बाद होता, शायद न भी होता, और यदि होता भी तो कुछ भिन्न रूप मे होता। इस तरह अणुशक्ति के आविष्कार से लेकर अतरिक्ष यात्रा का आयोजन तक युद्धकालीन मन स्थिति के दबाव मे अधिक हुआ है। युद्धकालीन जीवन की क्षिप्रता और गति शातिकालीन जीवन की तुलना मे कही अधिक होगी, और उस युद्ध काल के उखडे हुए मूल्य—परिवार, धम, परपरागत नैतिकता आदि के मौलिक सदर्भो मे—फिर नही जम सके। क्यो कि महायुद्ध तो समाप्त हो गया, पर उसके स्थान पर आसानी से न समाप्त होने वाला शनि युद्ध आरम्भ हो गया। अमरीका, रूस, इगलैण्ड, फ्रास और एशिया के अपेक्षाकृत विकसित देश भी अ दर अन्दर युद्ध के लिए अपने को तयारी की हालत मे रखते रहे ह। इस प्रकार युद्ध की मनोवृत्ति का दबाव कम नही हुआ है, बढा ही है। और इस मनोवृत्ति का प्रभाव क्षेत्र फैलता जाता है। फलत चाहे अनचाहे भारी उद्योग और प्रविधि की लपटे भी फैलती जाती है। सकटकालीन स्थिति अब हमारी सामान्य स्थिति हो गयी है।

प्रविधि के विकास का एक सीधा परिणाम यह हुआ ह कि गति बढी है, और ससार की सीमाएँ सकुचित हुई है। इससे मनुष्य एक दूसरे के अधिकाधिक सपक मे आया ह। और यह मनुष्य का तेजी से बढता हुआ सपक मूल्य हीनता की स्थिति का एक प्रधान कारण ह। एक सीमा के बाद मनुष्य ही मनुष्य के लिए सबसे बडा खतरा हो जाता है। अधिकाधिक बार सपक होते रहने से मनुष्य की अनुभूति शक्ति का क्षरण होता ह। लोहे को लोहा ही काट देता ह। और अनुभूति के क्षरण का अथ ह मानवीय सौहाद मे उत्तरोत्तर कमी तथा एक तरह की कठोरता का विकास, जिसका साक्ष्य हमारा समकालीन जीवन और साहित्य दोनो ही प्रस्तुत करते है। मनुष्य का मनुष्य से सपक बढते हुए रूप मे तनाव, द्व द्व या सघष की मन स्थिति को जन्म देता ह, जो कि बौद्धिक चेतना केन्द्रो के परस्पर सपक का स्वाभाविक परिणाम है, खासतौर से आधुनिक परिग्रही समाज मे। अब से कोई बीस वष पहले तक भारत का औसत मनुष्य अपने समूचे जीवनकाल मे सौ दो सौ व्यक्तियो से मिल पाता था। पर सचार (रेल, मोटर, जहाज) और अप्रत्यक्ष (डाक तार टेलीफोन, समाचार पत्र, रेडियो, सिनेमा आदि) साधनो की सहायता से अब उसके परिचय और भावनात्मक ससक्ति का क्षेत्र कई सौ प्रतिशत बढ गया है। उन्नत देशो मे तो इस परिचय ओर ससक्ति का विस्तार और भी तेजी से बढा ह। चेतना के द्रा का यह तीव्र गति से बढता हुआ सपक मानवीय अनुभूति पर बहुत बडा दबाव हो रहा ह, जिससे अनुभूति का क्षरण होता है, और स्नायविक रोगो की बढोतरी। कुल मिला कर 'अनुभूति' के क्षेत्र मे 'सनसनी' का प्रवेश तेजी से बढता जा रहा ह।

दूसरी ओर, बढती हुई गति ने सारे मानवीय सबधो और प्रतिमानो को अस्थिर कर दिया है। परिवार, धर्म, प्रेम और सामाजिक आचरण की अ य मर्यादाएँ अनिश्चित है। यह इसलिए भी है कि जहा मनुष्य मनुष्य से टकरा रहा ह वहा अनेक राष्ट्र और जातिया, उनकी जीवन पद्धतिया और सस्कृतिया परस्पर टकरा रही है। इन प्रभावो, सघातो को उनकी बढती हुई सख्या मे आत्मसात करना, समरस बनाना एक सीमा के बाद सभव नही लगता। फलत ससार के विभिन्न क्षेत्रा के बीच परस्पर के सपक मे जितनी समता विकसित होती है, उससे कही अधिक सघष और वैमनस्य बढता ह। ऐसी स्थिति मे अनुभूति का क्षरण मानव जीवन के आतरिक अर्थ को विकसित नही होने देता। उसका परिणाम ह अनर्थक, मूल्यहीन, अथहीन जीवन की स्थिति।

समकालीन साहित्य का नवीनतम अश (भूखी विद्रोही पीढी, अन्यथावद्ध और अनथकता के आदोलन, कथा साहित्य मे अनेक नामो के अतगत "सेक्स" का बढता हुआ यापन भाव आदि) जहा तक इन स्थितिया का अकन करता है, वह एक माने मे सही और प्रामाणिक है। उसका मूल विद्रोह परपरागत जीवन की अथहीनता को ले कर ह, जो समझ मे आता ह। इस सदभ मे किया गया अनेक सामाजिक स्थितिया का नितात उघरा चित्रण उपलक्षण मात्र है। पर उस समूचे बिखराव मे सार्थकता खोजना ही तो मनुष्य का लक्षण और दायित्व है। यह ठीक है कि जीवन मे परपरागत ढग से प्रतिष्ठित अथ आज बेमानी, कृत्रिम और उबकाई लाने वाला लग सकता है पर तब उचित होगा कि पुराने अथ को निरस्त करके हम नये अथ का सृजन करे, क्यो कि जीवन मे अथ को नकार कर तो हम मानवीय जीवन के वैशिष्टय को ही नकारते है, और मनुष्य को सामा य पशु के धरातल पर उतार देते है।

इस दृष्टि से समकालीन साहित्य के लिए सबसे बडी चुनौती अथहीन लगने वाले मानव जीवन मे नये अथ सदर्भो के निर्माण की ह। ये अथ सदभ सवथा नये हो, परपरागत मा यताओ से बिल्कुल अलग हो, इसमे एतराज नही हो सकता। पर जीवन के लिए—या कि समस्त सजन के लिए ही—अथ सदभ हो, यह मौलिक अनिवायता ह। सृजन का उद्देश्य ही अथ का निर्माण है, उससे छुटकारा नही। इस प्रकार अथहीनता मानवीय नियति नही है, वरन अथ का सृजन मानवीय नियति ह। जैविक धरातल का सजन तो प्राणि मात्र मे समान ह। इस जैविक सष्टि के अ नगत सवेदनात्मक अथ का सृजन और सचरण मानवीय जीवन की विशिष्टता, इसलिए चरम मूल्य और दायित्व ह। साहित्य इस साथकता की खोज का प्रमुख माध्यम रहा है, और अब भी ह, क्याकि धम, दशन अथवा विज्ञान की तुलना मे उसकी प्रकृति और उसकी भाषा अधिक सपक्त, अधिक मा वीय और इसीलिए अधिक सजनात्मक ह। साहित्य इस स्तर पर अथ से साक्षात्कार का माध्यम नही, वरन अथ से साक्षात्कार की प्रक्रिया ह। अपने सश्लिष्ट रचना सगठन के माध्यम से, अपने मासिक अर्थो की टकराहट और उससे उत्पन्न ववविध्य और विस्तार से जीवन मे साथकता की अनुभूति निष्पन्न कराते चलना ही साहित्य का मुरय दायित्व और उपलब्धि ह। अपने इस दायित्व को छोडकर साहित्य साहित्य नही रह जाता, भले वह सामाजिक या राजनतिक आदोलन हो जाये याकि दिलचस्प किस्सा गोई बन जाये या सप्रेक्षण की शक्ति घोषित रूप मे विरहित रूपाकार मात्र रह जाये। भूखी पीढी, नयी कहानी या अकविता के लिए ये बहुत बडे खतरे ह जि हे ठीक ठीक समझने की कोशिश अभी प्राय नही हुई ह।

आधुनिक सभ्यता का गठन अधिकाधिक यत्र को के द्र मे रखकर हो रहा ह। यत्र मे आवत्ति और प्रसार की क्षमता ह, सप्रेषण की नही। इसलिए यत्र की सहायता से अधिकाधिक मनुष्य एक दूसरे के सपक मे तो आ रहे है, पर उनमे सप्रेषण और सप्रेपण से उत्पन्न आपसी समझदारी का अभाव होता जा रहा है। यत्र से गति बढी ह, पर प्राय अनुभावन शक्ति की कीमत पर। इस प्रसग मे तक किया जा सकता ह कि मानवता के इतिहास मे अभी तक गति तो उत्तरोत्तर वढती ही रही है और उसके साथ क्रमश समायोजन भी किया जाता रहा है। और तब फिर कोई कारण नही कि यह समायोजन भविष्य मे भी सभव न हो।

इस तक मे निश्चय ही शक्ति है। वस्तुत यह समूची स्थिति ही आधुनिक साहित्य की भाव भूमि है, जिसे बिना समझे हम हिंदी के आधुनिक कृतित्व का साथक आस्वादन और सही मूल्याकन नही कर सकते। इस सदभ मे जो मुरय विचारणीय बात ह, वह यह कि मनुष्य की गति और उसकी अनुभावन क्षमता के बीच, इतनी शताब्दियो के समायोजन के बाद, अब उल्टे अनुपात की प्रक्रिया आरम्भ हो गयी है। गति ज्या ज्यो बढती जाती ह—और वह उत्तरोत्तर तेजी से बढती ही जाती ह—त्यो त्यो मनुष्य की अनुभावन क्षमता क्षीणतर होती जाती ह, क्योकि उसकी स्मरण शक्ति की ही तरह अनुभावन शक्ति की भी अ तत एक सीमा ह। पर दूसरी ओर मनुष्य बराबर एक दूसरे के सपक मे अधिकाधिक आते जायँगे, फलत उनकी अनुभूति पर दबाव बढता जायेगा, जिससे कि एक सीमा के बाद वह भोथरी होने लगेगी। इस दष्टि से वन्य सभ्यता से कृषि सभ्यता और फिर औद्योगिक जीवन के आरम्भ तक मानवीय विकास की गति जो रही, वह औद्योगिक सभ्यता के अपने विकास को देखते हुए

कुछ भी नही है। अब तो गति का होना ही गति के बढने का कारण हो गया ह। परपरित शब्दावली का सहारा लेते हुए कहा जा सकता ह कि भौतिक विकास ज्यामितिक गति से बढ रहा ह और अनुभावन क्षमता बमुश्किल अकगणितीय गति से बढ पा रही ह। अत इन दोनो प्रकार की गतियो के बीच किसी प्रकार समायोजन की सभावना नही दिखाई पडती। इस वैषम्य को देखते हुए, हमारी वतमान प्रविधि प्रधान सस्कृति की समस्या ह—यत्र मे मानवीय सस्पश लाना और यह देखना कि मशीन के सस्पश से मनुष्य भी यत्र न हो जाये, व्यक्तित्व और अनुभूति से विहीन न हो जाये। इस खतरे की ओर पश्चिम के अल्डस हक्सले जैसे वैज्ञानिक लेखको ने तीव्र सकेत किया है। आधुनिक भारत के सवश्रेष्ठ मनीषी गाधी अपने समूचे जीवन मे, और साहित्यकार जयशकर प्रसाद ने अपनी उत्कृष्ट रचना 'कामायनी' मे मानवीय सभ्यता के इस वतमान खतरे की ओर बडी क्षमता के साथ ध्यान आकृष्ट किया ह।

भारत उद्योगीकरण के क्षेत्र मे पिछडा हुआ ह, और इस स्थिति की वजह से हमे इस बात की छूट और सुविधा ह कि हम उन गलतियो से बच सकते है, जो यूरोप ने अपने विकास के दौरान की है। धार्मिक सस्कृति का कभी हमने विकास किया था, और जब वैज्ञानिक सस्कृति के परिष्कार का दायित्व हमारे ऊपर ह। यह हमारे वश मे है, और करणीय ह। पर इसके लिए हमे इतिहास के दबाव को समझना होगा, और उसके प्रति सही प्रतिक्रिया करनी होगी। हमे इस रूप मे विकास करना ह जिससे मनुष्य की अनुभूति और उसके व्यक्तित्व का क्षरण न हो। उसके लिए खतरे कई तरह के है। पहला खतरा यन्त्र या प्रविधि सभ्यता का है, जिसकी चर्चा हमने अभी की ह और जिसका एक मूत्त डरावना रूप अल्डस हक्सले की प्रसिद्ध कथा कृति 'दि ब्रेव यू वल्ड' मे अकित हुआ ह। एक दूसरा खतरा राजनैतिक स्तर पर सव सत्तावादी पद्धति का है, जिसका चित्रण अपेक्षाकृत अधिक मनोरजक ढग से जॉज आरवैल ने 'एनीमल फाम' मे किया ह। इस व्यग कथा मे एक ऐसे समाज का अकन ह, जिसमे सब लोग बराबर है, पर सबकी तुलना मे कुछ लोग अधिक बराबर ह। 'अधिक बरा बरी' का यह मुहावरा अपने मे जितना अथवान ह, उतना ही तीखा भी। इन्ही से सम्बद्ध कुछ खतरे और ह, जैसे महानगरीय जीवन के, या कि प्रविधि सभ्यता मे अन्तर्निहित गति के और सबसे बडी बात यह ह कि मनुष्य को मनुष्य के खतरे से बचाना ह। इस सबका उपाय एक ही ह—मनुष्य, प्रकृति और यन्त्र के बीच उचित अनुपात विकसित करना। मनुष्य का मनुष्य, प्रकृति और यन्त्र से सही अनुपात मे सम्बन्ध हो, यही काम्य ह। मनुष्य न तो यन्त्र से क्षरित हो और न मनुष्य से ही। नये समाज और ससार की यही केन्द्रीय समस्या है। इसे सुलझाने मे साहित्य का गुणात्मक योग होना चाहिये।

आधुनिक साहित्य म व्यक्तित्व और उसकी सजनात्मकता की सबसे गहरी और साथक चिन्तना अज्ञेय के कृतित्व मे मिलती ह। समकालीन जीवन के जिन खतरो की ओर अभी उल्लेख किया गया है, उनसे उबरने के लिए मनुष्य के सर्जनात्मक व्यक्तित्व को सुरक्षित रखते हुए विकसित करना ही, पुरानी शब्दावली म, आधुनिक जीवन का सबसे बडा पुरुषाथ ह। सजनात्मक व्यक्तित्व मूलत स्वाधीन होगा, और स्वाधीन होकर ही दायित्व का अनुभव किया जा सकता है। इसीलिए महायुद्ध मे फासिस्टो के विरुद्ध न्याय के पक्ष का समथन करने मे दायित्व स्वीकार के लिए गाधीजी ने भारतीय स्वाधीनता को पहली शत माना था। अज्ञेय ने

अपने कृतित्व मे बुनियादी तौर पर मानव व्यक्तित्व को इस स्वाधीनता, सजनात्मकता और दायित्व को सूदम और प्रभावी रूप मे अकित किया ह। उनके काव्य, कथा साहित्य, यात्रा वृत्त समीक्षा मे यही मौलिक दष्टि सवत्र परिव्याप्त ह। यन्त्र मे आवत्ति ओर प्रसार की क्षमता ह पर इसीलिए सजन की शक्ति नही ह। मजन व्यक्तित्व के वैशिष्टय मे ही सभव है—

यह अनुभव अद्वितीय, जो केवल मैने जिया,
सब तुम्हे दिया।

'अनुभव अद्वितीय' सम्भव हो पाता ह, क्योकि अज्ञेय के अनुसार "ईश्वर ने मानव के रूप मे अपनी प्रतिमा का निर्माण किया ह। कुशल शिल्पी होने के नाते उसने प्रत्येक प्रतिमा भिन्न और अद्वितोय बनायी, भिन्न होने क कारण प्रतिमाएँ परस्पर प्रेम न कर सकी।" और प्रेम तथा वेदना मे हा दविक सृष्टि तथा कलात्मक सजन की प्रक्रिया गतिशील होती ह। अनेय की पक्तिया है—

एक क्षण भर और
लम्बे सजना के क्षण कभी भी हो नही सकते।
बूँद स्वाती की भले हो
बेधती ह मम सीपी का उसी निमल त्वरा से
वज्र जिसमे फोडता चटटान को।
भले ही फिर व्यथा के तप मे
बरस पर बरस बीते
एक मुक्ता रूप को पकते।

इस तरह अनुभव की अद्वितीयता, व्यक्तित्व (कोरा व्यक्तित्व नही) का वैशिष्टय और सजनात्मक क्षमता—मानवीय अस्तित्व और उसकी साथकता के ये मूल उपादान हैं। मृत्यु के आधुनिक अस्तित्ववादी आतक और तज्जन्य अनथकता से सजनशील होकर ही उबरा जा सकता ह।

अज्ञेय के कृतित्व में यह आधारभूत अपने विचित्र पक्षो सन्दर्भों मे अकित हुई हैं। और विडम्बना यह ह कि मृत्यु के अस्तित्ववादी आतक के समक्ष भारतीय जीवन प्रियता की मूल वस्तु को प्रतिपादित करने के बावजूद अज्ञेय का समकालीन समीक्षा में "अस्तित्ववादी" घोषित किया जाता ह। यह सही ह कि अस्तित्ववाद से अज्ञेय ने कुछ बौद्धिक उत्तेजना पायी हो, पर अपने समचे उत्तरकालीन कृतित्व मे लेखक का यत्न यही रहा ह कि भारतीय परि स्थितियो मे अस्तित्ववाद से कोई बडी और अधिक सगत दष्टि विकसित की जाये, 'आगन के पार द्वार' सकलन की कविताएँ, 'अपने अपने अजनबी' शीषक उप यास तथा 'एक बूँद सहसा उछली' शीपक यात्रावृत्त—१९६०–६१ मे प्रकाशित इन तीनो कृतियो मे माध्यमगत भिन्नता के बावजूद जीवन प्रियता की मूल वस्तु अभिव्यक्त हुई ह। और तीनो ही रचनाओ मे आस्था-आस्तिकता का एक सवथा नया स्तर आया है। यहा ईश्वर का भी साक्षात्कार सजन के रूप मे होता है। 'अपने अपने अजनवी' मे सेल्फा की मृत्यु होने पर योके सोचती है—"ईश्वर भी शायद स्वेच्छाचारी नही है—उसे भी सृष्टि करनी ही ह क्योकि उन्माद से बचने के लिए सृजन आदि

काय है—"यह महत्त्वपूण उपपत्ति समूची रचना के केद्र मे ह। अज्ञेय के इस चिन्तन मे जीवन प्रियता के भारतीय आधार को ईसाई आस्था—विशेषत इटली के 'पियर क्व वीर' मठ की प्रेरणा—और जापान की जेन पद्धति ने भी किसी सीमा तक समद्ध किया ह। और बाह्य प्रभावो को रचनात्मक भाव से आत्मसात करने के लिए तो लेखक बराबर प्रस्तुत रहा है। "अरी ओ करुणा प्रभामय" की भूमिका मे उसने कहा ह—"प्रस्तुत सग्रह मे अनुवादो को छाडकर अय अनेक कविताआ मे भी पूव के (और पश्चिम के भी क्यो नही ?) प्रभाव मिलेंगे, लेखक सभी का स्वीकारी ह बद घर मे प्रकाश पूव या पश्चिम या किसी भी निश्चित दिशा से आता है—पर खुले आकाश मे वह सभी ओर से समाया रहता ह, इसी मे उसका आकाशत्व ह।"

ऐसे समृद्ध व्यक्तित्व से अज्ञेय ने पश्चिमी मृत्यु के आतक को भारतीय जीवन प्रियता और आस्था के सहारे अतिक्रमित करना चाहा ह। इससे उनके कृतित्व का महत्त्वाकाक्षी रूप ही प्रमाणित होता ह, जिसने भारतीय रचना परम्परा को निश्चित रूप से समृद्ध किया ह। सृजन के इस रहस्य की आत्मदान के रूप मे व्याख्या रचनाकार ने 'आगन के पर द्वार' मे सकलित लम्बी कविता 'असाध्य की वीणा मे की ह, जो अपनी गठन मे निराला की 'राम की शक्ति पूजा' से तुलनीय ह। दोनो ही कविताओ मे शक्ति और सृजन को अतर और बाह्य की टकराहट मे देखने का यत्न किया गया ह। "शक्ति पूजा" के अत मे ह—

"होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन।
कह महाशक्ति राम के वदन मे हुई लीन।"

और "असाध्य वीणा" को साधने वाला केशकम्बली अत मे कहता ह—

"श्रेय नही कुछ मेरा
मै तो डूब गया था स्वय शून्य मे—
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब कुछ सौप दिया था
सुना आपने जो वह मेरा नही,
न वीणा का था
वह तो सब कुछ की तथता थी—"

"अपनी" और "सब कुछ की तत्रता" का यह अद्वैत निराला और अज्ञेय को गहरे सवेदनात्मक स्तर पर जोडता है। आत्मदान के माध्यम से "शक्तिपूजा के राम शक्ति-साधन करते है, और आत्मदान के ही माध्यम से ही "असाध्य वीणा" का कलावत वीणा को साधता है। यही शक्ति और सृजन के रहस्य का साक्षात्कार है।

अज्ञेय ने मानवीय व्यक्तित्व की व्याख्या मे भाषा को अनिवाय तत्त्व माना है। भाषा उनके लिए माध्यम नही, अनुभव ही है। सजनात्मकता की समस्या से सतत जूझने वाले रचनाकार के लिए यह उचित ह कि वह भाषिक सजन की क्षमता को गहरे ढग से समझे। अज्ञेय की अधिकाश प्रसिद्ध कविताओ मे भाषा और अनुभव के अद्वैत को व्यवस्थित करने का यत्न हुआ है। "कलगी बाजरे की", "शब्द और सत्य", "जितना तुम्हारा सच ह" आदि कविताओ

की मूल वस्तु सजन और भाषा का अ तर सम्ब ध ही ह। अज्ञेय ने एक जगह लिखा भी ह, "मै उन व्यक्तियो मे से हूँ—और ऐसे व्यक्तियो की सख्या शायद दिन प्रतिदिन घटती जा रही ह—जो भाषा का सम्मान करते है ओर अच्छी भाषा को अपने आप मे एक सिद्धि मानते है" (आत्मनेपद पृ० २४०)। यहा "अच्छी भाषा" का अथ अलकृत या चमकदार भापा नही ह, वरन "अच्छी भाषा' की अच्छाई यही ह कि वह भाषा और अनुभव के अद्वैत को स्थापित करे। अज्ञेय की काव्यभाषा उनकी इसी मान्यता का समथन करती ह। भापा को अनेक भगिमाओ को निखारते निखारते उ होने भापा का सबसे प्रभावी रूप "मौन" के स्तर पर अनुभव किया ह। इस 'मौन" से शथिल्य नही, तनाव व्यजित होता ह, ऐसा तनाव जो कलाकृति का आधार ह—

तू काव्य
सदा वेष्टित यथाथ
चिर तनित,
भारहीन, गुरु
अव्यय।
तू छलता ह
पर हर छल मे
तू और विशद अभ्रात,
अनूठा होता जाता ह।

यहा काव्य द्वारा छला जाना सम्भव हो पाता ह, क्योकि वह 'चिर तनित' ह और रचना का यह तनाव आर्थिक द्वद्व की विकासमान अथ प्रक्रिया से बनता है। इसीलिए कवि के अनुसार मौन भी अभिव्यजना ह

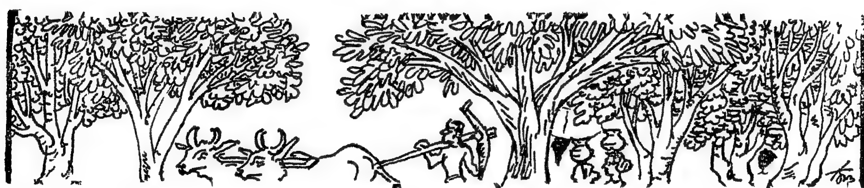
जितना तुम्हारा सच ह
उतना ही कहो।

अज्ञेय के स दभ मे यह "मौन" मित कथन ह, कहने और कहने के बीच अनकहना है तथा और गहरे स्तर पर आत्मदान का भाव ह जहा बोलना मानो आक्रमण ह, मौन ही अपने को दे देना ह। समकालीन समीक्षा की यह एक और विडम्बना ह कि आत्मदान के लिए प्रतिश्रुत कवि अज्ञेय को अभी तक "व्यक्तिवादी" कहा जाता रहा ह। समीक्षा के इस रूप मे "व्यक्ति" और "व्यक्तित्व" के बीच भी विवेक नही किया गया। पर अज्ञेय के कृतित्व का वैशिष्टय व्यक्तित्व और भाषा के गहरे आयामो को अभिव्यक्ति देने मे रहा है, कविता और कथा साहित्य दोनो मे ही।

इस प्रसग मे अज्ञेय और नयी कविता के पारस्परिक सम्बन्ध को समझना जरूरी है। यह स्मरणीय है कि वतमान अथ मे "नयी कविता" नामकरण अज्ञेय का किया हुआ है (आकाशवाणी से प्रसारित एक फीचर मे—"नये पत्ते"–१९५३ मे प्रकाशित)। और नये लेखको की विशिष्ट गोष्ठी "परिमल" से भी अज्ञेय का निकट सम्ब ध रहा ह। सच तो यह है कि अज्ञेय और "परिमल" के निकट सम्बन्धो मे कभी कभी तनाव भी आया ह। यह जरूर है कि लेखक के मन मे इस तनाव का अनुभव व्यक्तिगत अथवा व्यावहारिक स्तर पर न होकर

रचनात्मक स्तर पर ही अधिक लगता है। इस प्रसग मे नये कवि को सम्बोधित एक कविता 'नये कवि के प्रति'' उल्लेखनीय ह, जो पहले 'कल्पना' म छपी और फिर बाद मे 'अरीओ करुणा प्रभामय' मे सकलित हुई। वस्तु के धरातल पर इम कविता मे नये कवि के प्रति व्यग विद्रूप और आक्रोश की अभिव्यक्ति हुई ह। इसे, और इस प्रकार की दो एक अन्य कविताओ को लेकर नये लेखको मे एक विक्षोभ और उत्तेजना का वातावरण फला, पर अज्ञेय इस विवाद मे नही पडे, और वह असुखद प्रसग समाप्त हो गया।

नयी कविता के सक्रमण और विकास को अज्ञेय ने सम्भव बनाया, और उसे सहयोग दिया। पर बाद मे उसकी चुनौती भी उन्होने महसूस की, और उनकी सजनात्मक क्षमता को प्रेरणा और उत्तेजना मिली ह। अज्ञेय की उत्तर कालीन रचनाओ मे सस्कृत और अग्रेजी से प्रेरित भाषा के आभिजात्य से जो विमुखता ह, उसके पीछे किसी हद तक रघुबीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और लक्ष्मीका त वर्मा जस नये कवियो का नैतिक समथन समझा जा सकता ह। नयी कविता की चुनौती से अज्ञेय को बल मिला, यह उनके व्यक्तित्व की प्रखर गतिशीलता और गहरी सजनात्मकता का ही प्रमाण ह।



'ज्ञानरतन' एक विस्मृत निर्गुण प्रेमाख्यान

भगवती प्रसाद सिंह

भारतीय प्रमाख्यानो पर इधर जो शोध काय हि दी मे हुए ह उनमे कही भी 'ज्ञान रतन' नामक किसी ग्रन्थ का उल्लेख नही मिलता। प्राचीन हस्तलेखो के विविध सस्थाआ द्वारा प्रकाशित खोज विवरणो मे भी इसकी चर्चा नही ह। इस ग्र थ की एक हस्तलिखित प्रति मुझे बलरामपुर के प्रसिद्ध साहित्य सेवी स्वर्गीय श्री सरकार बरश सेवक के सग्रह मे प्राप्त हुई थी और अब वह इन पक्तियो के लेखक के पास सुरक्षित ह।

'ज्ञानरतन' के रचयिता साहेब नवलदास सतनामी सम्प्रदाय की कोटवा गद्दी के सस्थापक जगजीवनदास के शिष्य थे। ग्र थारभ मे अपना परिचय दते हुए वे स्वय लिखत हैं—

सतगुरु साचे राम, सत दिनकर तम भ्रम हरन
हृदय करिय विश्राम, जगजीवन जग तारना।
तुम्ह स त ह सिरताज, गुन निरगुन सब कह कृपा।
बडे गरीब नेवाज, दास नेवल विनती करैं॥[1]
वे जगजीवन प्रभु सबही के। दीनदयाल भावते जी के॥
वन्ह सन सरत जवत कर कामा। वन्ह मोहि दीन्ह अमर सतनामा॥[2]

नवलदास ने अपने दस गुरु भ्राताओ की चर्चा की ह, जिनमे जगजीवन साहब के दो पुत्रो—गिरिवरदास ओर अगमदास के साथ ही आठ शिष्यो—दूलनदास, जलालीसाहब, देवीदास, गोसाइदास, खेमदास, सिवदास, अहलाददास और भवानीदास का उल्लेख हैं। इनकी अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति की चर्चा करते हुए नवलदास ने इ हे सम्प्रदाय का प्रमुख स्तम्भ और असख्य पथभ्रात शरणागतो का उद्धारक बताया ह।[3]

१ ज्ञानरतन पत्र २

२ वही, पत्र ४

३ जगजीवन कर जस जग बाजा। जि ह अस अगम इन्दु उपराजा॥
गिरिवर सुवन अगम जि ह जाए। जगमग जात इन्द्र जनु आए॥
नाम जलाली साहेब साचे। जि ह्नको सरन जाय सो बाचे॥
अवर सात दीपक वन्ह करे। छवि जगमगत गगन जनु तारे॥
दीपक प्रथम जगत जगमगाए। जगमग दूलन दास कहाए॥
दूसर देविदास उजियारे। जि ह बहु भन्ह कहँ पार उतारे॥
तीसर दीप गोसाइ दासा। जस जगमग जस रतन प्रकासा॥
दीपक चौथ जगमगाई नारा। षेमदास अति अगम अपारा।
पचम दीपक जग सिवदासा। जिन्ह चलि की ह पछिम दिसि बासा॥
दीपक जन अहलाद अपारा। जगत विदित जस मानिक बारा॥
सप्तम दीपक अगम सुहेला। दास भवानी थल बहरेला॥
—वही, पत्र २, ३, ४

सत नवलदास इस प्रकार अपने गुरु तथा गुरु भ्राताओ का उल्लेख करते हुए भी सतपरपरानुसार अपने भौतिक जीवन विषयक तथ्यो के सम्बन्ध मे मौन रहे है। किन्तु सत नामीसाहित्य से यह पता लगता ह कि जग जीवन साहब के पथ प्रचारक शिष्यो द्वारा स्थापित १४ गद्दियो मे से ये एक गद्दी के प्रवतक थे। इससे उक्त सम्प्रदाय के विशिष्ट सतो मे इनकी गणना की जाती है। बोधे दास कृत 'भक्तिविनोद' मे ये उमापुर नामक गाव के निवासी कहे गये है।[1] यह बाराबकी जिले मे स्थित ह। आरभिक जीवन मे इन्होने गोमती तटस्थ रेछ नाम के किसी गाव मे रह कर अजपाजप की साधना की कितु किसी कारण वश स्थानीय लोगो की प्रतिकूलता से खिन्न होकर ये सुलतान जिले के धनेसा नाम के गाव मे एक बाग मे जाकर रहने लगे।[२] कालातर मे उसे भी छोड कर ये अपनी जमभूमि उमापुर को चले आये फिर जीवन का शेष अश वही बिताया।

नवल दास का जम ब्राह्मण कुल मे हुआ था[3] और ये आजीवन गहस्थ रहे। इनकी मात्र सतान एक पुत्री थी जिसको अम्बर दास नाम के एक भरद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण से व्याह कर ये निश्चित हो गये थे। इसी रक्त सम्बध के कारण आज तक उमापुर मे स्थापित गद्दी के अधिकारी इनकी पुत्री के वशज ही होते ह।

ये जिस प्रकार उच्चकोटि के साधक थे उसी भाति काव्य ममज्ञ और शास्त्रतत्त्ववेत्ता भी। सतनामी सप्रदाय के सत ईश्वरदास ने इनकी प्रशास्ति में लिखा है—

> सम्रथ नवल प्रवीण सकल विधा के रासी।
> पडित कविता बडे नाम के दिढ अभ्यासी॥[४]

अब तक इनकी लिखी आठ रचनाये प्रकाश मे आई है—सुख सागर, ज्ञान सरोवर, भागवत दसमस्कध भाषा शब्दसागर, कहरानामा, रामगीता, स्तुति बजरगजी, और ज्ञानरतन इनमे से सुखसागर का रचना काल स० १८१८ ह और ज्ञानरतन का स० १८३८। अत यही इनका कविताकाल निश्चित किया जा सकता ह। इनका देहावसान उमापुर मे ही स० १८५० में हुआ।

'ज्ञानरतन' की मूल प्रति का पता नही चलता। प्रस्तुत प्रति हरिहरपुर ग्राम (सभ

१ दास नेवल उमापुर केरे

भक्तिविनोद, त्रयोदश अध्याय

२ करि अजपा जपु काल बितावा।
रेछ गोमती निकट सुठावा॥
कछु उपहास जानि टरि आवा।
जह धन ऐस धनेसा गावा।
तासु दखिन बट विमल सुहावन।
पीपर बाग तडाग सो पावन॥

सुखसागर, पृ० २

३ ग्राम उमापुर विप्र कुल जम प्रानि तहवा धरेउ। भक्तमाल (ईश्वर दास) प० २८

४ वही पृ० २८

'ज्ञानरतन' · एक विस्मृत निर्गुण प्रेमाख्यान

भगवती प्रसाद सिंह

भारतीय प्रेमाख्यानो पर इधर जो शोध काय हि दी मे हुए ह, उनमे कही भी 'ज्ञान रतन' नामक किसी ग्र थ का उल्लेख नही मिलता। प्राचीन हस्तलेखो के विविध सस्थाओ द्वारा प्रकाशित खोज विवरणो मे भी इसकी चर्चा नही ह। इस ग्र थ की एक हस्तलिखित प्रति मुझे बलरामपुर के प्रसिद्ध साहित्य सेवी स्वर्गीय श्री सरकार बरश सेवक के सग्रह मे प्राप्त हुई थी और अब वह इन पक्तियो के लेखक के पास सुरक्षित ह।

'ज्ञानरतन' के रचयिता साहेब नवलदास सतनामी सम्प्रदाय की कोटवा गद्दी के सस्थापक जगजीवनदास के शिष्य थे। ग्रन्थारभ मे अपना परिचय देते हुए वे स्वय लिखत हैं—

सतगुरु साचे राम, सत दिनकर तम भ्रम हरन
हृदय करिय विश्राम, जगजीवन जग तारना।
तुम्ह स त ह सिरताज, गुन निरगुन सब कह कृपा।
बडे गरीब नेवाज, दास नेवल विनती करै।।[१]
वे जगजीवन प्रभु सबही के। दीनदयाल भावते जी के।।
वन्ह सन सरत जवत कर कामा। व ह मोहि दीन्ह अमर सतनामा।।[२]

नवलदास ने अपने दस गुरु भ्राताओ की चर्चा की ह, जिनमे जगजीवन साहब के दो पुत्रो—गिरिवरदास ओर अगमदास के साथ ही आठ शिष्यो—दूलनदास, जलालीसाहब देवीदास, गोसाइदास, खेमदास, सिवदास, अहलाददास और भवानीदास का उल्लेख है। इनकी अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति की चर्चा करते हुए नवलदास ने इ हे सम्प्रदाय का प्रमुख स्तम्भ और असख्य पथभ्रात शरणागतो का उद्धारक बताया ह।[३]

१ ज्ञानरतन पत्र २

२ वही, पत्र ४

३ जगजीवन कर जस जग बाजा। जि ह अस अगम इन्दु उपराजा।।
गिरिवर सुवन अगम जि ह जाए। जगमग जात इन्द्र जनु जाए।।
नाम जलाली साहेब साचे। जि हकी सरन जाय सो बाचे।।
अवर सात दीपक वन्ह करे। छवि जगमगत गगन जनु तारे।।
दीपक प्रथम जगत जगमगाए। जगमग दूलन दास कहाए।।
दूसर देविदास उजियारे। जि ह बहु भन्ह कहँ पार उतारे।।
तीसर दीप गोसाइ दासा। जस जगमग जस रतन प्रकासा।।
दीपक चौथ जगमगाई नारा। षेमदास अति अगम अपारा।
पचम दीपक जग सिवदासा। जिन्ह चलि की ह पछिम दिसि बासा।।
दीपक जन अहलाद अपारा। जगत विदित जस मानिक बारा।।
सप्तम दीपक अगम सुहेला। दास भवानी थल बहरेला।।
—वही, पत्र २, ३, ४

सत नवलदास इस प्रकार अपने गुरु तथा गुरु भ्राताओ का उल्लेख करते हुए भी सतपरपरानुसार अपने भौतिक जीवन विषयक तथ्यो के सम्बन्ध मे मौन रहे है। कि तु सत नामीसाहित्य से यह पता लगता ह कि जग जीवन साहब के पथ प्रचारक शिष्यो द्वारा स्थापित १४ गद्दियो मे से ये एक गद्दी के प्रवतक थे। इससे उक्त सम्प्रदाय के विशिष्ट सतो मे इनकी गणना की जाती ह। बोधे दास कृत 'भक्तिविनोद' मे ये उमापुर नामक गाव के निवासी कहे गये है।[1] यह बाराबकी जिले मे स्थित है। आरभिक जीवन मे इन्होने गोमती तटस्थ रेछ नाम के किसी गाव मे रह कर अजपाजप की साधना की कि तु किसी कारण वश स्थानीय लोगो की प्रतिकूलता से खि न होकर ये सुलतान जिले के धनेसा नाम के गाव मे एक बाग मे जाकर रहने लगे।[2] काला तर मे उसे भी छोड कर ये अपनी ज मभूमि उमापुर को चले आये फिर जीवन का शेष अश वही बिताया।

नवल दास का ज म ब्राह्मण कुल मे हुआ था[3] और ये आजीवन गहस्थ रहे। इनकी मात्र सतान एक पुत्री थी जिसको अम्बर दास नाम के एक भरद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण से व्याह कर ये निश्चि त हो गये थे। इसी रक्त सम्ब ध के कारण आज तक उमापुर मे स्थापित गद्दी के अधिकारी इनकी पुत्री के वशज ही होते ह।

ये जिस प्रकार उच्चकोटि के साधक थे उसी भाति काव्य ममज्ञ और शास्त्रतत्त्ववेत्ता भी। सतनामी सप्रदाय के सत ईश्वरदास ने इनकी प्रशास्ति में लिखा है—

सम्रथ नवल प्रवीण सकल विधा के रासी।
पडित कविता बडे नाम के दिढ अभ्यासी॥[4]

अब तक इनकी लिखी आठ रचनाये प्रकाश मे आई है—सुख सागर, ज्ञान सरोवर, भागवत दसमस्कध भाषा शब्दसागर, कहरानामा, रामगीता, स्तुति बजरगजी, और ज्ञानरतन इनमे से सुखसागर का रचना काल स० १८१८ ह और ज्ञानरतन का स० १८३८। अत यही इनका कविताकाल निश्चित किया जा सकता ह। इनका देहावसान उमापुर मे ही स० १८५० मे हुआ।

'ज्ञानरतन' की मूल प्रति का पता नही चलता। प्रस्तुत प्रति हरिहरपुर ग्राम (सभ

१ दास नेवल उमापुर केरे

भक्तिविनोद, त्रयोदश अध्याय

२ करि अजपा जपु काल बितावा।
रेछ गोमती निकट सुठावा॥
कछु उपहास जानि टरि आवा।
जह धन ऐस धनेसा गावा।
तासु दखिन बट विमल सुहावन।
पीपर बाग तडाग सो पावन॥

सुखसागर, पृ० २

३ ग्राम उमापुर विप्र कुल ज म प्रानि तहवा धरेउ। भक्तमाल (ईश्वर दास) पृ० २८

४ वही पृ० २८

वत बहरायच जिले मे स्थित) के निवासी हनुमान कायस्थ के द्वारा की गई उसकी प्रतिलिपि है। यह प्रतिलिपि ग्रथ की रचना के ९३ वष पश्चात लिखी गई थी। अत मे दी गई पुष्पिका से यह ज्ञान होता ह कि प्रतिलिपिकार भी 'सत्यनाम' मे निष्ठा रखने वाला सतनामी सप्रदाय का अनुयायी था—

"।। इति श्री माधौ रतन ज्ञान साहेब नवलदास कृतौ समाप्त सुभमस्तु ।।
जादस पुस्तक दष्टवा तादस लिखित मया।
जदि सुद्ध असुद्ध वा मम दोषो न दीयताम ।।
माघमासे कृष्णमक्षे सप्तभ्या गुरुवासरे स १९३१ लिखित ।।
दासानुदास हनुमान कायस्थ बसत हरिहर पुर ।।
सत सुमति कवि नप द्विज सबसे अरज हमारि।
आपन किंकर जानि के, बाचन बरन सुधारि ।।
।। श्री सत्यनामाय रामाय नम । राम राम राम राम राम राम राम राम राम राम ।।'

'रतन ज्ञान' निगुण पथी प्रेमाख्यान है। इसकी रचना का उददेश्य यायदेशिक पद्धति पर साधको को ध्यानयोग द्वारा परमज्योति के दशन की योग्यता प्राप्त कराना है। इसी प्रणाली मे अतस्थ सतनाम अथवा 'रतन' की प्राप्ति हो सकती ह—सतनामियो का एसा विश्वास ह। अत प्रत्यक्ष रूप से अनुरक्तिमूलक दिखायी पडते हुए भी तात्त्विक दष्टि से यह विरक्ति परक रचना है और इस प्रकार रचयिता के मत से केवल सतो के लिये ही उपादेय है। लौकिक बुद्धि बाले इसके आध्यात्मिक महत्त्व को न समझ सकने के कारण कथा की यथाथता पर विश्वास नही करेंगे, अत वे इसके लाभ से वचित रहेगे। नवलदास ने इतना लिखते हुए भी यथासभव कथा को रोचक बनाने का प्रयत्न किया ह जिससे भक्ति के साथ पाठको के हृदय मे लोक जीवन के प्रति अनुराग उत्पन्न हो—

रतनज्ञान तम कलुष नसावन। सुनत श्रवन मन रुचि उपजावन।
भगत लगनि जगतहिं रुचि बाढै। सतमत समुझि रतन मथि काढै ।।
करियत सुरति गगन चढि जाही। रमित रहत सत चरनन्ह माही ।।
जगमग झिलमिल किरिन उजेरी। जोत अमित अति सत प्रभु केरी ।।
ध्यान अगम दरसन जेहि भावे। सो यह रतन ज्ञान मन लावै ।।
यह सत-मत सतन्ह हित भाषा। जग सब सुनत प्रतीति न रापा ।। पत्र—९

साधनात्मक दष्टिकोण की प्रधानता के कारण प्रबन्ध के बीच मे स्थान स्थान पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से साप्रदायिक सिद्धातो का प्रतिपादन तथा रहस्यात्मक सकेतो की विस्तत योजना नवलदास ने की ह। जहा तक दाशनिक तत्त्वो का सम्ब ध ह, अद्वैतवाद और तसब्बुफ के साथ ही हठयोग पर भी कवि की अगाध निष्ठा प्रतीत होती है। इस दृष्टि से यह प्राचीन प्रेमाख्यान परम्परा के ही आदश पर निर्मित हुआ ह। भेद केवल इतना ह कि जगजीवन साहब के परवर्ती कतिपय निगु ण मार्गी साधको की मा यतानुसार इसमे सगुण एव साकार ब्रह्म तथा उसके उपासको के प्रति भी श्रद्धा व्यक्त की गई है और इस प्रकार अवतारवाद को अन्य प्रेमाख्यानो की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया गया ह। मगलाचरण में गणेशस्तुति दशावतार-वणन, शकर द्वारा पावती को सतनाम उपदेश, विभीषण, हनुमान, काकभुशुन्डि, अजु न,

उद्धव, भरद्वाज, सुदामा, सवरी, कूबरी, लोमश, रामानन्द कबीर, पीपा, रदास, सेन, मीरा तुलसी, आदि भक्तो की वन्दना कवि की सगुण रूपमे निष्ठा व्यक्त करती है। परवर्ती निगुण भक्ति काव्य मे यह सगुणपरक प्रवत्ति अविच्छिन्न रुप से प्रवाहित होती रही है। इसका मुख्य कारण तुलसी और सूर द्वारा जनमानस मे प्रतिष्ठित राम और कृष्ण के प्रति अविच्छिन्न श्रद्धा थी जिससे उत्तरमध्यकाल मे समग्र भक्ति क्षेत्र आप्लावित हो गया था।

रतन ज्ञान की कथा

रतनज्ञान मध्यकालीन प्रेमगाथाओ के सर्वाधिक प्रिय विषय माधवानल कामकन्दला के वत्त पर आधारित है। सक्षेप मे कथा इस प्रकार ह —

काशी नगर मे माधवानल नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह जितना रूपवान था उतना ही गुणवान भी। आध्यात्मिक एव लौकिक शास्त्रो मे उसकी अदभुत गति थी। वीणा बजाने की अलौकिक कला से वह श्रोताओ को आत्म विभोर कर देता था। नित्य वीणा बजाता वह काशी काट मे जाकर दिव्य ज्योति के दशन करता था। उसके पहुँचते ही कोट के द्वार स्वय खुल जाते थे। उसके इन दिव्य गुणो को देखकर शिवगण ईर्ष्या करने लगे। उनके उत्पात से माधव का ज्ञान ध्यान छूट गया। इस विपम स्थिति मे उसने सतगुरु का स्मरण किया। तत्काल आकाशवाणी हुई 'सात कोस ऊँचे पर पुष्पावती नगर है वहा चले जाओ।' सतगुरु की कृपा से माधव की ज्ञानदष्टि निमल हो गई। हाथ मे पुस्तक, माथे पर तिलक, शिर पर मुकुट धारण कर उसने पुष्पावती नगर के लिये प्रस्थान किया।

पुष्पावती नगर राजा गोपीचन्द की राजधानी थी। उनका धौराहर सतखडा था। उसमे दस द्वार थे। राजा का आवास सातवे खड मे था। दसवा द्वार सदैव बद रहता था। सारा राजप्रासाद मणि दीपो से ज्योतित रहता था। माधव का प्रवेश नवे द्वार तक हो सका। प्रयत्न करने पर भी दसवा द्वार पार करके दिव्य ज्योति का दशन करने की स्वीकृति उसे नही मिली। उसने अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये घोर तप किया। खानपान त्याग कर सात दिनो तक निरतर ध्यान करने के कारण तपश्चर्या के प्रभाव से माधव का अन्त करण पवित्र हो गया और तब दशम द्वार खुल गया। ज्योति के दशन करते ही वह मूर्च्छित हो गया। सचेत होने पर गोपीचन्द ने उसे अपने कोट मे ही स्थान दे दिया। माधव कभी कभी कोट से उतर कर पुष्पावती नगर मे आया करता था। उसकी वीणा सुनकर मनुष्यो की कौन कहे पशु पक्षी तक मुग्ध हो जाते थे। स्त्रियो पर तो उसने मोहिनी सी डाल दी। वे नाना प्रकार के श्रृगार कर हाव भाव दिखाती हुई उसे आकृष्ट करने का प्रयत्न करने लगी। माधव इस प्रलोभन से अपने को विरत न रख सका। गोपीचन्द के दरबार मे भी उसकी उपस्थिति कम होने लगी और वह अधिकाश समय पुष्पावती की कामिनियो के मध्य व्यतीत करने लगा। इधर स्त्रिया भी माधव के प्रेम मे इस प्रकार तन्मय हो गई कि अपने गहकाय से उदासीन होने लगी जब पतियो ने उन्हे ताडना दी तब भी उनकी मानसिक स्थिति मे कोई परिवतन न आया। एक दिन एक स्त्री ने माधव के प्रेम मे आत्म विस्मत हो पति के भोजन को थाल मे न डालकर पथ्वी पर गिरा दिया। इस घटना को सामाजिक भ्रष्टाचार का द्योतक मानकर प्रमुख नागरिको ने माधव के आचरण के विरुद्ध गोपीचन्द से फरियाद की। गोपीचन्द सगठित जनमत

की अवहेलना न कर सके। उन्हे विवश होकर माधव को तत्काल नगर छोड देने की आज्ञा देनी पडी। राजा ने माधव को पुष्पावती से सात कोस पर स्थित कामावती नगर को जाने की सलाह दी। इस आपत्तिकाल मे माधव ने सतगुरु का ध्यान किया, जिसमे उसकी विषय लिप्सा जाती रही और उसने कामावती को प्रस्थान किया।

कामावती का राजा कामसेन था। उसके दरबार मे कामकदला नाम की वेश्या थी। उस राजनतकी का सौन्दय और नत्यकला का ज्ञान लोक विश्रुत था। माधव जिस समय राज द्वार पर पहुचा महल के भीतर उसका नत्य ही रहा था। प्रतिहार ने उमे राजाज्ञा के बिना भीतर जाने से रोक दिया। माधव द्वार पर ही बठ गया। थोडी देर प्रतीक्षा करने के बाद उसने प्रतिहार से कहा—'जाकर महाराज से कहो कि द्वार पर एक ब्राह्मण आया ह। वह आप की सारी सभा को मूख कह रहा ह क्योकि बीस समाजियो मे से एक मदगी के दाहिने हाथ मे चार ही अँगुलिया ह। इससे ताल भग हो रहा ह। राजा और दरबारी सगीत कला मे कोरे ह। वे इसे जान ही नही सकते। इन शब्दो को सुन कर कामसेन ने समाजियो की परीक्षा की। माधव का अनुमान सच निकला। उसने माधव को तत्काल भीतर बुला लिया और उसके सगीत ज्ञान पर मुग्ध होकर दो करोड टका दक्षिणा दी। इसके अतिरिक्त उसे बहुत से बहुमूल्य वस्त्रालकार भी भेट किये। राजा के अनुरोध से माधवानल न वीणा बजाई। उसके मधुर आलाप से राग मूर्तिमान होते प्रतीत हुए। कामकदला उसी ताल पर नृत्य करने लगी। इसी समय एक भ्रमर उडता हुआ आया और कामकदला के कुच पर बैठ गया। कोमलागी राजनतकी उसके दशन से व्याकुल हो गई कि तु तालभग होने के भय से उस पीडा को सहती रही। जब वेदना असहनीय हो गयी तो उसने शरीर मे पवन तत्त्व को केन्द्रित कर उसे स्तनद्वार से तीव्र वेग के साथ प्रवाहित किया जिससे भौरा उड गया। इस सारी क्रिया को उपस्थित सभासदो मे केवल माधवानल देख रहा था। वह कामकदला की अदभुत नत्यकला पर रीझ गया और कामसेन के द्वारा प्राप्त समस्त द्रव्य, वस्तु एव आभूषण सरे दरबार उसे पुरस्कार मे दे दिये। कामसेन को माधवानल के चरित्र पर सदेह हो गया। माधवानल ने इस बात को लेकर उनसे वाद विवाद किया। राजा ने इस पर क्रुद्ध होकर तत्काल माधवानल को देश से निकल जाने का आदेश दिया।

राजाज्ञा को शिरोधाय करके माधवानल ने कामावती छोडकर देशान्तर के लिये प्रस्थान किया। सध्या हो गयी थी अत उसने नगर के बाहर एक पेड के नीचे डेरा डाला। वहा बैठा मन ही मन अपनी कम गति की वक्रता पर खेद प्रकट कर ही रहा था कि पहर रात बीतने पर सहसा अकेली कामकदला आयी। वह उसकी उपस्थिति से पुलकित हो उठा। उसके आगमन से वह निजन अधकार युक्त स्थान दिव्य आभा से आलोकित हो उठा। कामकदला बहुत अनुनय विनय के पश्चात माधवानल का अपने घर ले गई। रात्रि पयन्त दोनो मे प्रेम वार्ता होती रही। प्रात होने पर माधवानल ने चलने की बात कही। कामकदला ने साथ जाने की इच्छा प्रकट की। माधव उसे पुन दशन का आश्वासन देकर चला गया। कामकदला प्रियतम से वियुक्त होते ही भीषण विरह ज्वाला से जलने लगी। माता-पिता और सखियो के अनेक प्रकार से समझाने पर भी उसकी विरह व्यथा कम न हुई। विक्षिप्त सी होकर जिधर माधवानल गया था उसी ओर वह भी चल पडी। चलते चलते जगल के भीतर उसे एक कोट दिखाई दिया उसके

ऊँचे शिखर पर चढकर उसने बहुत दूर तक देखा कि तु माधव का कही पता न लगा। निराश होकर वह नीचे उतर आई और प्राणत्याग करने के विचार से गढ के भीतर ही स्थित जलाशय मे कूद पडी। तालाब के भीतर जाने पर उसे ऐसा अनुभव हुआ जसे वह दिव्यलोक मे आ गई हो। जलाशय मे डूबे अभी कुछ ही क्षण हुए होगे कि उसकी सखियो के साथ माता पिता खोजते हुए आ गये और तालाब से निकालने पर पुत्री को जीवित देखकर बडे हर्षित हुए। घर आने पर कामकदला ने कही भी आना जाना बन्द कर दिया। यह माधवानल के वियोग म तिल तिल करके शरीर को सुखाती हुई अन्तिम घडी की प्रतीक्षा करने लगी।

उधर माधवानल भी प्रियतमा स वियुक्त होकर सुध बुध खो बठा। कामकदला के वियोग मे वह योगी बन गया और विक्षिप्त की भाति उसे ढू ढते हुए वन पवतो म विचरने लगा। एक दिन जब वह कामकदला की स्मति मे आसू बहाते हुए थककर सो गया तो उसे स्वप्न मे ऐसा आभास हुआ जसे कोई निकट ही हसता हुआ कह रहा हो कि अभी तुम्हारी साधना कच्ची ह, इसीलिये अभीप्सित नही मिल सका ह। उसकी प्राप्ति प्राणो की बाजी लगाने वाले को ही होती ह। यह शब्द सुनत ही माधव की आखे खुल गई। उसने प्रतिज्ञा की कि प्रियतमा को प्राप्त करने के लिये अपने प्राण विसर्जित कर दूँगा। इसी बीच वहा बैताल आ गया उसने माधव को सलाह दी कि अपनी काय सिद्धि के लिये उज्जन नरेश विक्रमादित्य से मिलो।

विक्रमादित्य दानशीलता एव परोपकार के लिये विख्यात थे। उन्होने एक बाजार लगवाया था उसमे जो वस्तुएँ बिकने से बच जाती थी वे सभी राजकोष से खरीद ली जाती थी। एक दिन कोइ कारीगर काठ का एक विचित्र घोडा बनाकर लाया। उसकी विशेषता यह थी कि वह सवार की इच्छानुसार चलता था कि तु लौटाने पर उसके खण्ड खण्ड हो जाते थे। एक दिन उस घोडे पर राजा सर करने निकले। बडे वेग से चलते हुए वह घोडा बहुत दूर निकल गया। राजा ने उसे लौटाना चाहा कि वह खण्ड खण्ड होकर गिर पडा। वहा एक विशाल बन था। उस समय सध्या हो रही थी। राजा निराश होकर कही ठहरने का स्थान खोजने लगा। एक स्थान पर घनी छाया वाले वक्ष के नीचे उसने देखा कि एक पलग बिछा हुआ ह। उसके निकट दो सरोवर है। रात्रि मे जगली पशुओ के भय से राजा उसी वृक्ष पर चढ गया। उसने देखा कि उस पर बदरी बैठी हुई ह। वह विक्रम को देखते ही रोने लगी। उसी समय वहा एक योगी आया और उसी पलग पर बैठ गया। उसने बदरी को बुलाया। जब बदरी नीचे आ गयी तब उसने उसे एक तालाब मे नहलाया। स्नान करते ही उस बदरी ने अति रूपवती युवती का रूप प्राप्त कर लिया। रात्रि भर योगी ने उसके साथ भोग विलास किया। प्रात होते ही उसे निकटस्थ दूसरे तालाब मे नहला कर पुन बदरी बना दिया और उसी वृक्ष पर बैठा कर कही चला गया। विक्रम रात भर यह चरित्र देखता रहा। उसे बदरी की दयनीय दशा पर बडी चि ता हुई। पूछने पर बदरी ने राजा को अपना रहस्यमय वत्तात रो रो कर सुनाया। उसने कहा कि मै सुखमगला नाम की राजकुमारी हूँ। यह योगी मेरे पिता का गुरु था और महल मे बराबर आया करता था। मेरे सौ दय पर मुग्ध होकर इसने जादू के बल से मेरा हरण किया और मुझे लेकर आकाश मे उड गया। मेरा ब्याह उज्जैन नरेश के साथ निश्चित हो चुका था कि तु कम के फेर से आज बदरी के रूप मे इस निजन बन मे

यातना पूण पशु जीवन व्यतीत कर रही हू। इतना कह कर वह फूट फूट कर रोने लगी। राजा ने उसे सा त्वना देते हुए कहा "मै उज्जन का राजा विक्रमादित्य हूँ। आज तुम्हे इसके पजे से मुक्त करके अपने साथ ले चलूँगा। राजा ने उस तत्काल पहले सरावर म स्नान कराया जिससे वह अत्य त सु दरी रमणी वन गई। फिर उसे साथ लेकर अपने नगर की आर प्रस्थान किया। रास्ते मे एक नगर पडा जहा अपनी मृत पत्नी के वियोग मे एक ब्राह्मण चिता मे आग लगाकर भस्म होने जा रहा था। राजा को उसकी दशा दखकर दया आयी उसने उसे ढाढस बँधाते हुए अपने साथ की राजकुमारी ब्याह दी। वताल के द्वारा विक्रमादित्य की यह यशोगाथा सुनकर माधवानल ने उज्जन को प्रस्थान किया।

उज्जैन पहुच कर माधवानल ने विक्रमादित्य से भेट करने का वहुत प्रयत्न किया पर तु सफल न हो सका। निराश होकर उसने नगर के उत्तर मे डेरा डाला और प्रिया के विरह मे प्राणोत्सग करने को सोचा। वताल ने पुन उपस्थित होकर उसे सात्वना दी और विक्रम के दशनाथ शिवमदिर के निकट ठहरने को कहा। माधवानल शिवमदिर मे गया। उस मदिर मे विक्रमादित्य नित्य ही देवाराधन क निमित्त आया करते थे। मदिर मे जाकर माधव ने मतगुरु की विधिवत पूजा की। राजा जब दशनाथ आया तब उसके साथ इतनी भीड थी कि माधव उससे मिलकर कुछ कह ही न सका। अत म निराश होकर उसने एक पत्र लिख कर मदिर के किवाडो मे लटका दिया। दूसरे दिन प्रात जब विक्रमादित्य शिवमदिर मे आये तब उ हे वह पत्र प्रास हुआ। पूजा के पश्चात पत्र पढते ही वे उदिवग्न हो उठ। नगर मे शोर हो गया कि राजा पर किसी ने जादू कर दिया ह। उपचार के लिये वद्य और तान्त्रिक बुलाये गये कि तु उनका श्रम व्यथ गया। थोडी देर बाद राजा ने स्वय आखे खोली और मत्रियो से कहा कि उज्जैन म कोई महाविरही आ गया ह उसी की विरह ज्वाला मुझे भस्म कर रही ह। मेरी व्याधि का एकमात्र उपचार उसका पुण्य दशन ह। मत्रियो ने उसी समय उस विरही को खोजने के लिए दूती और दूत दौडाये। अत मे शिवमदिर के पास एक यागी मिला जो कामकदला की रट लगा रहा था। उसकी दशा देखकर सहज ही अनुमान लग गया कि यही वह योगी ह जिसकी विरह ज्वाला से राजा व्यथित हो गया ह। मत्रियो द्वारा भेजी गई स्त्रिया उसका हाथ पकडकर विक्रम के पास ले गइ। राजा ने जब माधव को देखा तो उसे योगी भेष मे राजकुमार होने भ्रम हुआ। शास्त्र चर्चा मे माधव की निपुणता से राजा वहुत प्रभावित हुआ और उससे उसका अभीष्ट बताने को कहा। तब माधव ने कामकदला को शीघ्र प्रास कराने को कहा। विक्रम ने उसकी प्राथना स्वीकार करते हुए कहा 'हमारे रनिवास मे मे बहुत सी सु दरिया हैं, उनमे से जिसे चाहो चुन लो कामकदला की प्रासि के लिये कामसेन से युद्ध करना पडेगा जिसमे हजारो सैनिक मरेंगे।' राजा की आज्ञा पर महल की सु दरियो ने माधव का विविध हावभात्र दिखाकर आकृष्ट रचना चाहा पर माधव उनकी ओर रचमात्र भी भी आकृष्ट नही हुआ। इससे वे सभी रुष्ट होकर चली गइ।

इधर कामकदला माधव से वियुक्त होते ही भीषण विरह ज्वर से पीडित हो मृत्यु शैया पर पड गई। उसने उस समय अपने प्राण केवल माधव के पुनदशन की आशा मे नही त्यागे। इधर माधव के हृदय मे कामकदला के प्रति अगाध प्रेम देखकर विक्रमादित्य ने उससे पूछा 'यदि तुम कहो तो मै जाकर यह पता लगाऊँ कि क्या कामकदला भी तुम्हे उतना ही

प्रेम करती ह जितना तुम उसे चाहते हो ? यह जान लेने के पश्चात उसकी प्राप्ति का प्रयत्न करूँगा।

विक्रम ने वैद्य का वेष धारण कर कामकदला की परीक्षा के लिये प्रस्थान किया। घूमते घूमते वह कामसेन की नगरी मे जा पहुँचा। कामकदला ने वद्य जानकर पुत्री की प्राण रक्षा के लिये विक्रम से प्राथना की। उसके घर आने पर कामकदला के व्याधिग्रस्त होने के कारण को जान कर राजा ने कहा कि जिसके प्रेम म तुम्हारी पुत्री प्राण दे रही ह, वह तो कब का मर गया। यह सुनते ही कामकदला के प्राण पखेरु उड गये। उसके माता पिता बिक्षिप्त होकर आतनाद करने लगे। यह सुनकर विक्रम ने उनसे कहा, 'तीन दिन तक अपनी पुत्री के शव की रक्षा करो। मेरे घर पर सजीवनी बूटी है। उसे मै भूल आया हू। चौथे दिन लाकर कामकदला को जीवित कर दूँगा।' नारी वध के पाप से व्यथित राजा विक्रम उज्जन लौट आये। इधर माधवानल बडी ही उत्सुकता से राजा की प्रतीक्षा कर रहा था। जब उसे कामकदला की मत्यु का समाचार मिला तो तत्क्षण ही उसने भी प्राण त्याग दिये। नारी और ब्राह्मण की हत्या से दुखी राजा विक्रम चिता बनाकर प्राण त्याग करने को उद्यत हुए। सारे देश मे यह समाचार बिजली की भाति फैल गया। ऐसा धर्मात्मा राजा का इस प्रकार दुखद अत होते देख स्वग मे खलबली मच गयी। देवताओ ने राजा का प्राण बचाने को बेताल को भेजा। बेताल ने उज्जैन आकर राजा को यह आश्वासन दिया कि मै अमत लाकर माधव और कामकदला को जीवित कर दूँगा। पाताल जाकर वह गेडुला भर अमत ले आया। राजा ने उसे माधवानल के मुँह पर छिडका। वह तत्काल सचेत हो गया और कामकदला का नाम रटने लगा। राजा ने उसे यह कहकर धीरज बधाया कि वह इसी अमृत से कामकदला को जीवित कर देगा। वह जीवित होते ही 'माधव' 'माधव' की रट लगाने लगी। राजा ने उसे यह कहकर ढाढस बँधाया कि यदि कामसेन सीधे नही मानेगा तो युद्ध करके तुम्हे अपने साथ माधव के पास ले चलूँगा। उज्जन आकर राजा ने सेना सगठित की और कामसेन पर चढाई की। उसने कामसेन की राजधानी से चार कोस की दूरी पर डेरा डाल कर उनके पास बिना युद्ध किये कामकदला को दे देने का प्रस्ताव भेजा किंतु कामसेन के मत्रियो ने अपनी मर्यादा रक्षा के लिए किसी भी शत पर बिना युद्ध किए कामकदला को देने का प्रस्ताव स्वीकार नही किया। इस पर युद्ध का डका बज गया। कामसेन और विक्रमादित्य अपनी सेनाये लेकर भिड गये। घमसान युद्ध हुआ जिसमे कामसेन पराजित हुआ। विक्रम ने माधव एव कदला को मिलाकर उनकी विरह व्यथा दूर की। फिर उनके लिए एक भव्य रग महल का निमाण कराया। माधव राजा को वेद पुराण की कथा सुनाते और योग शिक्षा देते हुए दिन व्यतीत करने लगा।

अन्तकथाएँ

'ज्ञानरतन' मे मूलकथा माधवानल कामकदला की ही है किंतु प्रमुख अंतकथाएँ तीन है जो दो वर्गो मे बाटी जा सकती है—प्रथम प्रकार की अंतकथाये कथात्मक विकास मे तीव्रता लाने के लिए है, जैसे काठ के घोडे और योगी के वश मे बदरी रूप मे परिवर्तित राज कुमारी की अंतर्कथा। दूसरे प्रकार की अन्तकथाये उपदेशात्मक है। माधव और कामकदला

के मिलन के साथ साथ अधिकारिक कथा समाप्त हो जाती है किन्तु विक्रम के अनुरोध पर माधव विभिन्न कथाए सुनाता ह, जिनमे प्रमुख ह —१ राजकुमार कमलनयन की कथा, २ जडभरत चरित और ३ प्रीतम कुँवर की कथा। इन कथाओ के मा यम से नवलदास ने सतनामी सप्रदाय के सिद्धा तो के निरूपण का सफल प्रयास किया ह। इन अतकथाओ से 'ज्ञानरतन' का कलेवर डयोढा हो गया ह। एक स्थान पर नवल दास ने 'बेतालपचीसी' का उल्लेख किया ह और प्रीतम कुअर की कथा को वतालपचीसी का दूसरा चरित कहा है। इस प्रकार अपने वतमान रूप मे ज्ञानरतन पूण ह कि तु लगता ह कि अपने समय मे उपलब्ध 'बेतालपचीसी' की विभिन्न कथाओ मे से कुछ प्रमुख को साप्रदायिक उपदेश का आधार बनाने का उददेश्य नवलदास का अवश्य रहा होगा। ज्ञानरतन मे दी गयी उक्त तीना अ तकथाये इस प्रकार ह —

(१) कुमुदावती और कमल नयन की कथा —

काशी मे बानराय नाम के एक राजा थे। उनकी रानी का नाम कुसुमावती था। उनके सुग्थ नाम का एक पुत्र और कुमुदावती नाम की एक अत्य त सु दरी कन्या थी। जब वह ब्याहने योग्य हुई तो पिता, माता, भाई और मत्री उसके लिए वर ढूँढने लिये प्रयत्नशील हुये। चारा ने एक दूसरे से विना परामश किये, अपनी अपनी रुचि के अनुसार चार पथक स्थानो पर उसका विवाह ठीक करके तिलक चढा दिया और विवाह की तिथि निश्चित कर दी। सयोगवश चारो द्वारा निश्चित तिथि एक ही निकली। फलत एक ही दिन काशिराज की पुत्री को व्याहने के लिये चार पथक पथक स्थानो से चार बाराते आ गयी। जनवास मे पहुचने पर जब उन चारो को पता चला कि क या एक ही ह तब उन लोगो ने निणय किया कि हम लाग परस्पर युद्ध करेगे जो सवविजयी होगा वही कुमुदावती से ब्याह कर सकेगा। इस भयकर परिस्थिति को टालने के लिये कुमुदावती ने अपनी ओर से एक ब्राह्मण को भेजकर उन चारो वरोको आपस मे लडने से यह कहकर रोक दिया कि मैं स्वयम इसका कल प्रात निणय करू गो। प्रात काल उसने एक चिता बनवाई। चारो वर वहा बुलवाये गये। उनमे से एक राजकुमार जिसका नाम कमलनयन था, आगे आया और उसने कुमुदावती के साथ गाठ जोड कर चिता मे भस्म हो जाने की इच्छा व्यक्त की। पिता ने चिता मे अग्नि प्रज्वलित की और वे दोनो सबके देखते देखते भस्मसात हो गये। शेष तीनो मे से एक वियोगी हो गया। दूसरा उसी स्थान पर भस्म एकत्र करके योग साधना करने लगा। तीसरा बाजा बजाते हुए बारात लेकर घर लौट गया। जो वर वियोगी हो गया वह वैरागी वेश धारण कर कुमुदावती को ढू ढते ढढते झारखण्ड गया किंतु वहा उसके प्राप्त न होने पर कामरूप जा पहुँचा। उसकी भेट लोनाचमारिन से हुई जो त त्र म त्र, टोना, पुरश्चरण आदि बिविध विद्याओ मे अत्य त दक्ष थी। सारा कामाख्या प्रदेश उससे आतकित रहता था। उसने अष्टाग योग साधना से शिव को भी अपने वश मे कर रखा था। चार मुद्राये, १८ विद्या, भैरव त त्र, उडीस त त्र, कौतुक चिन्ता मणि, बीसा म त्र, रसायनादि उसे सिद्ध थे। राजकुमार को लोनाचमारिन ने अपने घर पर रख सुन्दर वस्त्राभूषणो से अलकृत कर अपना चेला बना लिया। वह अपने हाथ से भोजन बनाकर उसे खिलाती थी। एक दिन बहुत जाडा पडा। घर मे लकडी न थी, लोना अगेठी मे एक जि दा बालक को डालकर तापने लगी। राजकुमार इस भीषण दश्य को देखकर भयभीत

हो गया। उसने लोना से कहा 'तुमने बालक को जिन्दा जलाकर बडा पाप किया ह। अब मुझसे प्रीति न करो। लोना बोली 'मै उसे मन्त्र के बल से भस्म से पुन जिन्दा निकाल कर तुम्हे दिखा दूँगी।' यह कहते हुए उसने सचमुच ही बालक को राख से जीवित निकालकर सामने खडा कर दिया। राजकुमार ने यह विद्या जानने के उद्देश्य से लोना की बडी सेवा की। लोना ने प्रसन्न होकर एक दिन मन्त्र बता दिया। इसके कुछ दिन बाद राजकुमार उसके यहा से भाग खडा हुआ। कामरूप से वह सीधे काशी आया और कुमुदावती के चितास्थल पर गया। उसने वहा पहुँच कर देखा कि उसका प्रतिद्वन्द्वी वर उसी स्थान पर भस्म लगाये हुए पूववत तपश्चर्यारत ह। इसने उसे अलग बैठाकर चिता मे से एक मुट्ठी राख उठाकर मन्त्र पढा। मन्त्र पढते ही उससे राजकुमारी कुमुदावती और कमल नयन निकल आये। इस आश्चय जनक घटना का समाचार पाकर नगर के लोगा की वहा भीड लग गयी। कुमुदावती के माता पिता को जब यह सवाद मिला तो वे भी चिता भूमि पर आये। उनके साथ कुमुदावती घर पर आ गई। तीनो वरो मे उसको व्याहने के लिए फिर झगडा होने लगा। समाचार पाकर चौथा वर भी बारात लेकर आ धमका। न्याय के लिए आसपास के लोगो की पचायत बुलाई गई। पचो ने निणय किया कि घर लौटने वाले वर के साथ कुमुदावती ब्याह दी जाय। इसे शेष तीनो वरो ने अस्वीकार कर दिया। तब कुमुदावती ने स्वय निणय किया। वह बोली 'जब हम दोनो चिता मे भस्म होने के बाद सत्यलोक मे पहुँचे तो वहा साहेब ने हम दोनो को प्रणय सूत्र मे बाध दिया था। अत अब कमलनयन ही मेरा पति होगा। माधवानल ने यह प्रेम कथा महाराज विक्रमादित्य को सुनाई।

(२) जडभरत चरित्र —

माधवानल ने जडभरत का चरित सुनाते सुए महाराज विक्रमादित्य से कहा, मै जिन भरत को कथा सुना रहा हूँ, वे अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र भरत और जिनके नाम पर इस देश का भारतवष पडा, उन भरत से भिन्न एक तीसरे भरत ह। ये भी बडे धर्मात्मा और शास्त्रो मे आस्था रखनेवाले महापुरुष थे। राज्य करते हुए भी उनकी वत्ति उपराम रहती थी। एक दिन तीव्र विराग जागत होने पर इन्होने राजपाट त्याग कर तपोव्रत धारण कर लिया। बनमे जाकर सतनाम का जप करते हुए कालयापन करने लगे। एक दिन इनके आश्रम के पास ही सिंह ने एक हिरन युग्म पर आक्रमण कर दिया, हिरन तो छलाग मारकर भाग गया किन्तु गर्भिणी होने के कारण हिरनी भाग न सकी वह भयातुर हो भागने का प्रयत्न ही कर रही थी कि उसके उदर से दो बच्चे पथ्वी पर गिर पडे। भरत ने उनमे से एक मृग शिशु उठा लिया और बडे प्रेम से उसका पालन-पोषण करने लगे। उसके स्नेह मे वे इतने तन्मय हो गये कि भजन का स्मरण जाता रहा। दिन भर उसे चराते खिलाते और रात मे उसे अपने पास रख-कर दुलार करते। जब वह मृगशावक हृष्ट पुष्ट हो गया तो वन मे अपने सजातियो के साथ जाकर चरने लगा। वह फिर लौटा ही नही। भरत उसके वियोग मे व्याकुल हो गये—'मग मृग' पुकारते वे पागल जैसे जगल मे घूमने लगे। अन्न पानी छोड दिया। आसपास के लोगो ने उनकी यह स्थिति देखकर बहुत समझाया बुझाया किन्तु उनका विरह दुख बढता ही गया। इसी दुख मे उनका शरीर छूट गया। उनकी आत्मा जमलोक को गई। वहा मुनियो ने उनसे

प्रश्न किया 'तुमने राजकाज ईश्वर के भजन के लिए छोडा था कि तु वन मे जाकर उसे भूलकर मग का भजन करने लगे। तुम्हे धिक्कार है। 'इतना कहकर उन लोगो ने निश्चय किया कि इनको मृग का ही शरीर दिया जाय। इनके फलस्वरूप भरत का दूसरा जन्म मग रूप मे कलिंजर देश मे हुआ। उसने अपनी जीवन की अवधि पूरी होने पर नमदा नदी मे प्रवेश करके प्राण त्याग किया। इसके बाद उनका ज म अयो या के निकटवर्ती प्रदेश मे एक ब्राह्मण के घर मे हुआ। अबकी बार उ हे अपने पूव जन्म की स्मृति आ गई। अत बाल्यवस्था से ही भजन मे लीन रहने लगे। पाच वष की आयु तक बोले ही नही इसलिए कुटुम्बियो ने उ हे गू गा मान लिया। उनकी अतदशा का किसी को पता ही न चला। बारह वष तक वे भीतर ही भीतर सतनाम रटते रहे। जहा बैठते थे सिर झुकाये दिन भर बैठे रह जाते। उठाने से भी नही उठते थे। सध्या समय घर के लोग हाथ पकडकर घर लाते और अपने हाथ से भोजन खिलाते थे। फिर जहा बैठा देते वही रात बैठे बठे बिता देते। इस प्रकार बीस वष बीत गये। भरत को यह पता न लगा कि कब दिन हुआ और कब रात बीत गयी। घर के लोग किसान थे। वे प्रात खेत पर जाते समय उ हे साथ ले जाकर मेड पर बठा देते थे और सध्या होने पर खेतो बारी समाप्त करके उ हे साथ घर ले आते थे। एक दिन सयोगवश वे लोग गू गे को खेत से घर लाना भूल गये। वह बेचारा सिर झुकाये खेत मे बैठा रह गया। आधीरात मे उधर से आठ चोर निकले। उ होने कभी देवी को मेंढे की बलि देने की मनौती की थी। पगले को खेत मे बठे देखकर बोले 'इसके देखते देखते खेत को सूअर चरे जा रहे ह। यह गूँगे की तरह बैठा ह उन्हे भगाता नही। अत पशुवत ही ह। इसी की बलि क्यो न दे दी जाय। सुनते है मनुष्य बलि से देवी बहुत प्रस न होती ह।' इतना कहकर वे उस ब्राह्मण को लेकर देवी मण्डप पर गये। बलि के निमित्त उसको मण्डप मे ले जाते ही शब्द हुआ 'तुम लोग कहा से विष्णु भक्त इस को पकड लाये। इसके बलि देने से हमारा धम नष्ट हो जायगा। यह सवथा अवध्य ह।' इतने से ही सतुष्ट न रह कर देवी ने बलि के लिए उद्यत चोर के हाथ से तलवार छीन लिया और उसी से उन आठो के सिर काट डाले। फिर आकाशवाणी हुई 'हे ब्राह्मण! तुम मेरे अत्य त प्रिय हो। अपने घर जाओ। यदा कदा दशन करते रहना।' कि तु वह ब्राह्मण वहा से हटा नही। उसी मण्डप मे बठकर सतपुरुष का ध्यान करने लगा।

इधर प्रात होने पर ब्राह्मण के घर बालक की खोज होने लगी। चारो ओर शोर हो गया कि पगला बालक रात भर खेत मे ही पडा रह गया। उसकी माता रोती हुई दौडी, पिता भी ढँढने निकले। सब खेत के पास आये कि तु वहा उसका पता न था। सारे गाव मे कुहराम मच गया—माता और पिता घने वन मे उसे ढूढने निकले—माता छाती पीट पीट कर कहने लगी। 'मेरे बच्चे को सिंह खा गया। सब लोग निराश हो कर पछताते हुए घर लौट आये। फिर गाव वाले ढूँढने निकले। उनमे से एक व्यक्ति देवी के मडप पर पहुँचा वहा उसने गूँगे को आसन लगा कर बैठे देखा। वह उसका हाथ पकडकर कर ले आया। माता उसे पा कर गदगद हो गयी। उसने अपने हाथो से उसे भोजन कराया। घर वाले प्रात फिर थसका हाथ पकड कर, खेत पर ले गये। वह वहा बैठा हुआ त्रिकुटी ज्योति दशन करता हुआ मग्न हो गया।

इसी समय उधर से राजा रहूगण इन्द्रलोक को जाते हुए आ निकले। वे सुखपाल पर

बैठे थे, जिसे कहार कधे पर रखे चल रहे थे। राजा भगवत स्मरण मे मग्न थे। पालकी ढोने वाले कहारो मे एक अत्यन्त निबल था—जिससे उसके अन्य साथियो पर अधिक बोझ पड जाता था। उसी समय उन्ह यह गूँगा ब्राह्मण सामने बैठा दिखायी दिया। उन कहारो ने उसे खीच कर पालकी ढोने मे लगा लिया। निबल कहार के स्थान पर इस अदला बदली मे पालकी का बास हिलने लगा। राजा रहूगण का ध्यान टूट गया। उ होने दुबल कहार से पूछा 'तुम्हारा शरीर इतना क्षीण क्यो ह ? कहार बोलने को ही था कि नवागन ब्राह्मण बोल उठा, जिनके वश मे हो कर मन अहर्निश दोडता फिरता ह वे पाच, पचीस तीन और दस—तो कभी दुबल नही होते—शरीर के क्षीण होने से क्या हुआ ?' यह गूढ वाणी सुन कर राजा ने पालकी रोक दी और उस ब्राह्मण निकट जा कर हाथ जोड कर चरण वदन करते हुए बोला 'महर्षि आप कौन ह ? आपके दर्शन से मेरा जीवन कृताथ हो गया।' ब्राह्मण ने अपना नाम जड भरत बताया। राजा ने कहा 'भगवन ! मे अध्यात्मतत्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिये इन्द्र के पास जा रहा था। 'जडभरत ने उत्तर दिया' निगुण, सगुण तथा स य पुरुष ज्ञान के गूढ तत्त्व, सतमत, वेदमत योगमत, आदि जिस विषय मे चाहो पूछ सकते हो।' राजा ने चरण स्पश करते हुए जडभरत से भक्तितत्व की व्यारया करने की प्राथना की। जडभरत बोले 'मनुष्य का परम पुरुपाथ आत्मज्ञान प्राप्त करने मे ह, इसकी अभिव्यक्ति सत्सगति और अ तमुखी साधना से होनी ह। त्रिकुटी तीथ मे स्नान किये बिना सारी साधना व्यथ ह।' इस प्रकार जडभरत ने ज्ञानतत्व की सम्यक् व्यारया कर रहूगण को सतनाम का उपदेश दिया और ग्यान ध्यान की सभी विधियो मे उन्हे निष्णात कर दिया। राजा ने उसी समय से जडभरत को गुरु मान लिया। इस घटना के पश्चात तत्ववेत्ता गुरु के रूप मे जडभरत लोकविश्रुत हो गये।

(३) प्रीतम कुँवर की कथा—

पश्चिम दिशा मे सेहुडा नाम का एक नगर था। वहा क्षत्रियो का राज्य था। राजा का नाम साधु कुँवर था। वह बडा ही धर्मात्मा था। मधु मालती उसकी रानी थी। समय पा कर उनके एक पुत्र उत्प न हुआ। जन्म लग्न विचारने के लिये पडित बुलाये गये। उन सब ने कहा 'और सब तो ठीक ह कि तु बारह वष तक ही यह ससार मे रहेगा।' इस समाचार से राजभवन मे मगल के अवसर पर चारो ओर शोक सा छा गया। पुरजनो और मत्रियो ने चि तामग्न राजा को समझाते हुए कहा 'ब्रह्मा की रेखा को कौन मेट सकता ह। कुँवर चिर जीवी होगे।' धीरे धीरे चि ता दूर हुई और नगर मे चारो ओर राजकुमार के ज म के उप लक्ष्य मे उत्सव होने लगे। इस प्रकार पाच वष वीत गये। नवजात शिशु का नाम प्रीतम कुँवर रखा गया। राजा ने गुरू को बुला कर कुमार का विद्यारभ-सस्कार कराया। कुछ ही दिनो मे कुशाग्र बुद्धि कुमार सभी विद्याओ मे पारगत हो गया। किशोरावस्था प्राप्त होने पर उसके विवाह की बाते चलने लगी। एक दिन देखुवार आये। वे प्रीतम कुँवर को देख कर मुग्ध हो गये। उन लोगो ने राजा से इसकी चर्चा चलाई। राजा न कहा 'जब तक बारह वष पार करने के बाद दो तीन साल और नही बीत जाते तब तक मै इसका विवाह नही करूँगा। कारण कि इसकी जन्म पत्री मे बारह वप का ही जीवन लिखा ह।' कुमार को इसका पता लगा तो उसने छिप कर अपनी ज मपत्री से आसन्न मत्यु की तिथि तथा समय एक कागज पर उतार लिया। उसने सोचा सारा ससार नश्वर ह, जीवन क्षणभगुर ह। इससे शीघ्र ही शरीर के

सम्बन्धियो से नाता तोड लेना चाहिये, आखिर एक दिन ती ये छूटेगे ही। यह विचार कर वह आधी रात को एक तीव्रगामी घोडे पर चढ कर विश्वस्त सेवको के साथ, सेहुँडा से निकल पडा। बीस कोस पार करने पर सवेरा हुआ। प्रात रानो ने कुँवर को जब घर म न देखा तो चारा ओर ढूँढने के लिये धावन दौडाए गये—किन्तु सभी ओर भेजे गये अ वेषक खाली हाथ लौट आये। माता मधुमालती पुत्र वियोग मे विलाप कर के आसू बहाते बहाते मूर्च्छित हो गई।

प्रीनम कुँवर ने काशी का रास्ता पकडा। रास्ते मे जो उसे देखता मत्रमुग्ध हो जाता। चलते चलते वह सेवको सहित काशी के पास पहुँच गया धूप अधिक होने के कारण वह एक वाटिका मे विश्राम करने लगा। उसी समय वहा किसी राजा की एक बारात आइ। वह चँद उर को जा रही थी। वे लोग भी घनी छाया देख कर उसी बाग मे उतर पडे। उस बारात मे और साज सामान तो राजसी थे कि तु वर कुरूप तथा कुबडा था। इससे बराती स्वय भय भीत थे कि लडकी वाले इसे देख कर न मालूम बारात वालो की क्या दशा करेगे। उस बारात के पाच सात सरदार प्रीतम कुवर के पास आये और इनका परिचय प्राप्त किया। प्रीतम कुँवर ने और सभी बातो के साथ यह भी बता दिया कि मेरा अल्पायु योग ह। मै १२ वप तक ही जीवित रहूँगा, इसलिये भक्ति प्राप्त करने की इच्छा से काशी जा रहा हूँ। इसके पश्चात प्रीतम कुँवर ने सरदारा से उनका परिचय पूछा। सरदार बोले 'चँदउर के राजा चद्रसेन ने अपनी पुत्री का विवाह करने के लिये हमारे यहा लगन भेजा था, हम लोगो ने एक दूसरा सु दर वर दिखा कर उसे स्वीकार कर लिया। कि तु अब इस कुबरे वर को ले कर ब्याहने ब्याहने जा रहे ह। हमारी प्रतिष्ठा और जीवन तुम्हारे हाथ मे ह। हम जो दूल्हे का साज सामान लाये है, उसे तुम पहन लो। केवल एक रात हमारे लिये कष्ट सह लो। विवाह कर लेने के बाद प्रात काशी चले काना।' प्रीतम कुवर इस पर राजी न हुआ। तब उन लोगो ने बलपूवक उसे दूल्हा बना कर गाजे बाजे के साथ बरात ले कर कूच कर दिया। चदउर मे बारात पहुँ चते ही दूल्हे के सौ दय का चारो ओर बखान हाने लगा। द्वार चार बडे धूम धाम से सम्प न हुआ। फिर ब्याह की बेला आई। कुमारी चित्ररेखा बेदी पर लायी गई। प्रीतम कुँवर का उसके साथ विधिवत विवाह हुआ। फिर ज्योनार हुई। दूल्हा उसके बाद ज्याही जनवासे को चलने लगा—सखियो ने उसका हाथ पकड लिया —रानी भी आ गई और बोली 'हमारे कुल की यह रीति ह कि विवाह के बाद वर को सोवनार दी जाती ह' इसके पश्चात युवतिया प्रीतम कुँवर को चित्ररेखा के पास पहुँचा कर लौट गई। चित्ररेखा प्रियतम का लोकोत्तर सौ दय देख कर आसक्त हो गई, किन्तु जब वह सेज पर पहुची तो वहाँ नगी तलवार रखी देख कर ठिठक गई। उसने पति से पूछा 'मैने आपको अपना सवस्व अर्पित कर दिया फिर बीच मे यह तलवार क्यो रखी है। यह हमारे पूण मिलन मे बाधक हो रही ह। प्रीतम कुँवर बोला में तुम्हारा वर नही हू। तुम्हारा वास्तविक वर एक कुबरा व्यक्ति है। मै तो एक राही था यो ही पकड लिया गया। फिर यह नाटक करना पडा। 'चित्ररेखा ने उत्तर दिया—कुबरा भार मे पडे। हमारे लिये तो ब्रह्मा ने तुम्हे बनाया ह। जिऊँ या मरूँ तुम्हे छोड कर दूसरे का मुँह न देखूँगी।" यह कह कर उसने रोते हुए पति का चरण वदन किया और उसकी मत्यु तिथि लिख कर विदा किया। प्रीतम कुवर जनवासे मे आया। अपने सेवको को लेकर वही से उसने काशी को प्रस्थान किया।

इसके अन तर बारात मे से सात सरदार राजा च द्र सेन के द्वार पर गये और बिदाई की प्राथना की। राजा ने महल मे आकर रानी से बिदाई की तैयारी करने को कहा। तब तक कुमारी चित्ररेखा ने सारा वत्तान्त अपनी माता को बता दिया था। उसने वही बात राजा से कह दी। इस रहस्य को गुप्त रखकर ही सब लोगो ने विचार किया कि बरातियों से कहा जाय कि बिदाई के लिए दूल्हा महल मे भेजे। वह दुलहिनि को डोली पर बठाएगा तभी बिदाई होगी। हमारे यहा यही प्रथा है। सरदार बोले वर तो बारात के साथ ही चला गया। च द्रसेन इससे समझ गया कि उसके साथ अवश्य छल किया गया ह। उसने बरातियो के साथ दूल्हे को पकडने के लिए सवार दौडाये। सवारो ने कुबरे के सहित बारातियो को कुछ ही दूर पर घेर लिया। महल मे जब यह समाचार पहूचा कि कुबरा वर पकड लिया गया तो स्त्रियो मे कोई कहने लगी कि अगुओ ने धोखा किया, कोई पण्डितो को गाली देने लगी। बराती तो किसी प्रकार भाग निकले कि तु कुबरा भाग न सका। वह पकड लिया गया।

उधर प्रीतम कुँवर शकरपुरी काशी पहुँच गया। उसने विश्बेश्वर का दशन किया, भैरवजी की पूजा की और पावती मठ मे जाकर वदना की। पावती जी प्रसन्न हा गई। उनकी प्रेरणा से प्रीतम कुँवर ने व्यास जो का दशन करके अत्य त दीनतापूवक स्तुति की। व्यास जी ने 'चिरजीव' होने का आशीवाद दिया। यह सुनकर प्रीतम कु वर ने अपने अल्पायु योग की बात बताई। व्यासजी बोले 'मुझे यह ज्ञान न था, अब ब्रह्मा तुम्हारी अभिलाषा पूरी करे।' इतना कहकर व्यासजी प्रीतम कु वर को ब्रह्माजी क पास मानसरोवर ले गये। वहा उन्हाने स्वय तथा बालक द्वारा ब्रह्माजी की चरण बदना के अन तर सारी व्यवस्था कह सुनाई ब्रह्मा उस समय सतपुरुष का ध्यान कर रहे थे। वे बोले 'मैने इस बालक को जीवन दान दिया—अब यह शीघ्र चदउर जाये अपनी पत्नी को आत्मदाह करने से बचाये। व्यासजी तत्काल उस बालक को लेकर काशी आ गये और उसे तेज घोडे पर चढा कर उसे उसी समय चदउर भेज दिया।

यहा चदउर मे पति की मृत्युतिथि को चित्ररेखा ने चिता बनाकर जल जाने का उपक्रम किया। माता पिता ने उसे बहुत समझाया कि तु प्रियतम से दिव्य लोक मे मिलने की इच्छा एव असह्य विरह के कारण अपने शरीर को भस्म कर डालना ही उसने श्रेयस्कर समझा। दढ निश्चय जान कर सखियो ने उसे पूर्ण रूप से अलकृत किया। उधर प्रीतम कुँवर जब चदउर से बीस कोस की दूरी पर अत्य त थक गया तब गरूड ने उसकी सहायता की। उ होंने अपने ऊपर उसे बैठाया और एक ही दड मे चदउर लाकर उतार दिया। जब चिता मे आग लगाने का समय हो गया तब वह सहसा चिता के पास गया। सारे नगर के लोग उसे आया देखकर आश्चय चकित हो गये। राजा और रानी ने उसे पहचाना—चित्ररेखा ने भी ची ह लिया। तब चिता पर चढती हुई पुत्री का हाथ पकड कर माता-पिता ने नीचे उतारा। इस अलौकिक घटना से सारे नगर मे प्रस नता की लहर दौड गयी। राजा ने बहुत सा दानपुण्य करके अपना भाग्य सराहा। प्रीतम कुँवर और चित्ररेखा के दिन भोग विलास मे आनन्द पूवक बीतते लगे।

इधर कुबरे को सवार रास्ते से ही पकड कर चदउर ले आये। नगर मे आने पर लोगा ने उसे खूब पीटा। फिर भगा दिया। कि तु वह नगर छोडकर कही गया नही। वही

कर रहने लगा । नगर की निकटवर्ती गोमती नदी के एक घाट पर उसकी बैठक रहती । वहा स्त्रिया नहाने जाया करती थी । उसने सोचा कदाचित इधर कभी चित्ररखा आये उसका दशन कर लूगा । एक दिन वह उसी घाट पर बठा अपने दुभाग्य पर पश्चात्ताप रहा था कि लडकियो का एक झुण्ड स्नान के लिए आया । उनके साथ राजकुमारी रेखा भी थी । कुबरा उसी घाट पर बठा था । चित्ररेखा के प्रकाशपूण मुख मडल को ते ही वह मूर्छित हो गया होश आने पर उसने मन ही मन सोचा । मुझे ही यह सुदरी न होने वाली थी किन्तु बरातियो ने हमारे साथ धोखा किया । जब सब कुमारिया न करके घर जाने लगी तब कुबरे ने दोड कर राजकुमारी का चरण वदन किया । नयो ने उससे पछा 'तुम घाट पर क्यो रहते हो । तुम तो चोर मालम पडते हो, अब घाट को छोड कर शाघ्र ही किसी अन्य स्थान मे चले जाओ । स्त्रियो के नहाने के घाट पर षो की क्या आवश्यकता ?' कि तु वह कुबरा टस से मस न हुआ—टकटकी लगाकर राज ारी के मुख को देखता ही रहा । युवतियो ने सोचा इसकी नीयत ठीक नही ह । अत सभी जूतियो से उसे खूब पीटा । उसे इसम आन द आने लगा । बार बार जूतिया उठा कर उ हे रने को प्रोत्साहित करता रहा । युवतियो के राजकुमारी के साथ चली जाने पर वह सिर कर घटो रोता रहा कि तु कुछ देर के बाद मन को सात्वना देता हुआ वह बोला जब पश्चिम दिशा मे तुर्को के पास जाऊगा और उ हे चदउर पर चढा लाऊगा । इस सारे शवासियो को इस दुव्यवहार का मजा चखाऊँगा ।' यह निश्चय करके वह पश्चिम की ओर ा । तुर्का के पास जाकर उसने सारा वत्तात कहा । तुर्को ने चदउर पर चढाई का डका ा दिया । इसकी खबर चदउर क राजा चद्रसेन को लगी । उसने बालबच्चो को प्रीतम वर और चित्ररेखा सहित उत्तर दिशिवर्त्ती गह्वर पहाड मे सुरक्षाथ भेज दिया । इधर दउर की रक्षा के लिए आस पास के हि दू राजा अपनी अपनी सेनाए लेकर एकत्र हो गये । न्दू तथा तुक सेना म बारह दिन तक घमासान युद्ध होता रहा । अ त मे तुर्का की विजय । हजारो हिन्दू खेत रहे । कुबरे ने अन्त मे अपना बदला ले ही लिया ।

माख्यानक काव्य परपरा और ज्ञानरतन

प्रेमारयानक काव्य परपरा मे ज्ञानरतन बहुत बाद की रचना ह । हि दी म प्राप्त हुत से भारतीय और सूफी शली के प्रेमारयानक इसके पूव लिखे जा चुके थे । उनमे से कुछ हत्वपूण प्रेमाख्यानो का स्पष्ट प्रभाव भी ज्ञानरतन पर पडा ह । प्रेमारयानो की यह सामा य वशेषता है कि उनमे परवर्ती प्रेमकथाओ की चर्चा कथानक रूढि के रूप म प्राय हुई है, जसमे नलदमयती, सुलोचना, रानी पिंगला, मधुमालती, कुमुदावती, रत्नसेन पद्मावती, सप ावती, हस जवाहिर, उषा अनिरुद्ध, मैनावती और जडभरत के आख्यान प्रमुख हैं । इनमे ने कुछ प्रसिद्ध और कुछ अज्ञात हैं । कुमुदावती, जडभरत, और प्रीतम कुँवर की कथाओ का प्रयोग तो स्वय नवलदास ने किया ह और जिस प्रकार वे सकेत देते हैं उससे प्रतीत होता है कि इनसे पूर्व भी इन कथाओ की परम्परा अवश्य रही ह । प्रीतम कुँवर की कथा थोडे परिवतन के साथ जायसी की 'चित्ररखा' मे मिल जाती है । नवलदास ने कुछ ऐसे भी प्रेमाख्यानो की चर्चा की ह जिनके विवरण पूणत प्राप्त नही ।

परपरागत प्रभाव की दष्टि से नवलदास पर सर्वाधिक प्रभाव जायसी का है। काम कद ा की कथा कहते हुए उ होने यत्र तत्र ठीक वैसे ही वणन किये ह जसे जायसी ने। बीच बीच मे वे पदमावत की कथा के उद्धरण भी देते गये ह। यह सभवत उहे साम्प्रदायिक साधना की परपरा म पद्मावत' की महत्त्वपूण स्थिति के कारण करना पडा होगा। विचारणीय ह कि सूफी शाखा मे जिस प्रकार प्रेमाख्यानो की रचना प्रकिया चल रही थी उसी प्रकार निगुण धारा मे भी लोक प्रसिद्ध आख्यानो के आधार पर निगुण साधना के प्रचार प्रसार का काय चल रहा था। नवलदास पर जायसी के प्रभाव को हम तत्कालीन स्थिति मे 'पद्मावत' की सम्पूणता ही मान सकते है क्योकि नवलदास सम्भवत प्रथम कवि है जि हाने ज्ञानरतन' मे प्राचीन भारतीय पौराणिक आख्यानो की विस्तार से चर्चा की ह। उनके सामने सेवरी, कूबरी, हरिश्च द्र, ध्रुव चरित रामकथा, सतीमोह गोपीप्रेम सती सुलोचना, उषा अनिरूद्ध, भानु प्रताप, बलि, द्रोपदी कीचक वध आदि कथाये उपलब्ध थी—

धय भक्ति सेवरी अस पावा। जेहि बल प्रभु कह जूठ षवावा।
धन्य कूबरी भगतिनि साची। सुमिरन समन जाल तजि राची।
ऊँचे पर हरिचद नरेसू। मगन भये तजि अवध सुदेसू।
ऊँचे पर ध्रुव ध्यान लगावा। ऊँच प्रताप अमै पद पावा।
साथ ही भरम नारि कर सगा। सीताराम जानु यक अगा।
जो सकर त्रिय सगति की हा। जरि बरि बिछुरि सतिहुँ दुष दी हा।

तात्पय यह कि नवल दास भारतीय और सूफी दोनो ही परपराओ से परिचित थे और उ होये दोना का यथावसर ज्ञानरतन के स्वरूप निर्माण मे उपयोग किया है।

सत्यनाम साधना

'ज्ञानरतन' निगुण प्रेमाख्यान ह। माधवानल कामकदला की लोकप्रसिद्ध कथा के माध्यम से नवलदास ने सतनामी पथ की साधना पद्धति का निरूपण किया ह। प्रारभिक स्थिति मे सत साहित्य अपनी पूववर्ती साधना पद्धतियो से बहुत प्रभावित था। काला तर मे 'नाथ' और सिद्ध' साधनाओ की जटिलता इससे दूर होने लगी थी। यहा तक कि 'हरिदासी', 'सतनामी 'चरणदासी' आदि सप्रदायो मे बहुत अशो तक निगुण सगुण का सम वय सा होने लगा था। सूर और तुलसी की लोकव्यापी सम वय साधना का इसमे महत्त्वपूण योगदान रहा है। यही कारण है कि नवलदास के समय तक आते आते निगुण साधना मे हठयोग सम्बन्धी कुछ शब्द मात्र शेष बचे थे। 'ज्ञानरतन मे साधनामाग की कठिनाई और आराध्य को पाने की विकलता तो ह कि तु इडा, पिंगला, सुषुम्ना, ब्रह्मरध्र सहस्रारचक्र, अनहदनाद आदि के वणन बहुत कम है। 'ज्ञानरतन, मे गुरु को सर्वोपरि स्थान दिया गया ह। ग्रथ के प्रारम्भ मे मे ही गणेश वदना के पश्चात नवलदास ने गुरु वदना की ह। गुरू समस्त साधनाओ मे सफलता दिलाने वाला, मोहान्धकार को विच्छिन्न करने वाला और द्विधा चित्तवत्ति को एकाग्र कराने वाला ह। ससार मे 'अनहद नाद सभी घटो मे निरतर होता रहता है कि तु चित्त की चचलता के कारण सामान्य लोग उसे सुन नही पाते। इस साधना की कुजी गुरु के ही पास है। उनके बिना कोई परम ज्योति का दशन नही करा सकता—

अनहद शब्द सुनत सब कोई। दुचित जक्त समुझत नहिं कोई।
वह घरिआल शब्द जग बाजा। प्रगट रहत नित नौ दरवाजा॥

दस्सम द्वारा गुप्त गति रहता। पहुँचत भक्त जगत नहि चहता।
अटपट द्वार अगम सुठिबाका। बरनत सत श्रुति साकर नाका।
करि पट असित कपाट देषावा। दुचित जक्त केहु मरम न पावा।
वह कुजी सतगुरु सन पाव। गुरु बिन कवन उघारि देषावै।
सतगुरु बल चलि भक्त उघारहिं। दरसन करि तन मन धन वारहिं।

इस साधनामाग मे मोहग्रस्त जीव को पहले यह दिव्य आवास अत्यत समीप प्रतीत होता ह कि तु चलने पर उसकी अगम्य कठिनाई सामने आती ह। अत कोई बिरला ही सत गुरु' तक पहुँच पाता ह—

मूरिष जीवनिमेरु पर, निरषत नियर देषाइ।
चढत सो अटपट पथ अगम, बिरले पहुँचहिं जाइ॥

—दो० १९, पत्र ९

नवल दास ने इस विकट साधनामाग का वणन करते हुए बताया ह कि इसकी कठि नाइयो को जो सहन करते चलता ह, उसे कुछ प्रकाश मिलता चलता ह किन्तु वह माग इतना अटपटा ह कि बिना पथप्रदशक गुरू के पग पग पर भ्रात हो जाने का भय ह। उनकी यह दढ धारणा ह कि निगुण के प्रकाश का आभास उसे ही हो सकता ह जो प्राणो की चिंता किये बिना साधना माग मे आगे बढे। अततोगत्वा परम ज्योति के दशन मात्र से युगो का सचित पाप धुल जाता है ओर काम क्रोध का अस्तित्व मिट जाता ह—

अति उजियार जगामग होई। सिर द चढ सो पहुचै कोई।
तब चढि देष दरस गोसाई। निरगुन झलक कहा कहँ ताई।
रवि मनि उद रहत असमाना। सिर सगम सत जलहिं नहाना।

जम मरन तिहकर मिट, बसि निरगुन के पास।
दास नेवल सो भक्त भा, करि मन बच क्रम आस॥

—दो० २३, पत्र १२

यह अगम्य साधना नई नही ह। नवलदास कहते है कि शकर, ब्रह्मा, नारद, गणपति गिरिजा, सनकसनदन आदि ने इसी पथ का अनुसरण करके परम सिद्धि प्राप्त की थी।

बहै मदिल हर हठि मन लावा। वह मदिल नित विधि मन भावा।

× × ×

वह घर अगम अपार ह, बहुरि बहुत औसान
दास नेवल सतगुरु कह, जेहि जस निश्चै ज्ञान

—दो० २०, पत्र— ॥

युगों से भक्ता ने इसी परम तत्त्व प्राप्ति के लिए साधना की ह। इस निगुण तत्त्व की झलक कण कण से मिल रही ह किन्तु अज्ञान के कारण बिरले लोगो को ही गुरु कृपा से उसका दशन होता ह—

सुनि लोक है घट घट, वह धुनि घट घट बाजु।
अति उजियार जगामग, निरगुन झलक बिराजु ।।

—दो० २२, पत्र ११

परम तत्त्व ज्ञान का यह अमत फल जिस वृक्ष पर लगा ह, वह बडे विकट रखवालो द्वारा रक्षित ह। उनसे लडकर पहुँचना बडा कठिन है। जो साधक गुरू का निर्देश प्राप्त करके जीवन की आशा त्याग कर इस दुरूह पथ पर अग्रसर हागा वही अमत तत्त्व का आस्वादन कर सकेगा—

तेहि महँ एक तरिवर अस राजे। जरपताल नभ डार विराजे ।।
फूल जुगल निसि बासर फूले। येक चाद यक रवि सम तूले ।।
तेहि फल केरि हात रख बारी। पाच सुभट निसुदिन बलभारी ।।
और पचीस नारि बन्ह केरि। चौकी देत पेड वहि घेरि ।।

× × ×

तरू पर चढै बेलार सो, बढै विरह की आगि।
मउत बिना जा मरि जियै, तौ चाषै फल जागि ।।

—दो० २४, पत्र १२

ज्ञान और ध्यान के बिना यह शरीर अधकार भय ह। यदि ध्यान किया जाय तो आत्मप्रकाश प्राप्त हो सकता ह। जब निगुण को पाने की विकलता हृदय मे उत्पन्न हो जाती है तब गुरू के शब्द सुनाई पडने लगते है। माधवानल भी जब काशी से ऊब गया तब सत गुरू की वाणी उसे सुनाई दी। साधना मे लक्ष्य एक होना चाहिये चाहे उसकी प्राप्ति के लिए प्राण त्याग ही क्यो न करना पडे—

रवि तनुजा अस नाभ डहर को। तेहि चढि पावै मरम सहर को।
वाम डहरि कर सुरसरि नामा। सो माधोनल याहिन तामा।
जब दिन वह पिंगला पथ पावा। पुहुपावती नगर नियरावा ।।

× × ×

कुन्ड येक अमत भरा, महा सुरग छवि रूप।
जो वहि नगर पहूँच, देषै दरस अनूप ।।

— दो० २९ पत्र १३

कही कही नवलदास ने परम्परागत, साधनो मे रूढ शब्दो का भी प्रयोग किया ह यद्यपि ऐसे वणन सम्भवत साधना माग की दुरूहता के बीच साधक की निष्ठा को अविचल रखने के लिये किये गये ह—

सेल्ही सुरति नयन करि प्याला। पियत प्रेम रस मन मतवाला।
पिअर बदन जस भरि दोउ नैना। गावत शब्द प्रेम के बेना।
विधिकर जन्त्र बजाव विरागी। कसि तन मनहिं अगम धुनि लागी।
वरू यह विरह करै जरि छारा। तजउँ न जुग जुग अब यह द्वारा ।।

—पत्र—१६

नवलदास ने सिद्धिगोटिका आदि की साधना को हेय कहा ह । उनके मत मे वास्तविक सिद्धिगोटिका तो 'सत्यमति ह अ य गोटिकाये कच्ची ह—

सतमत सिद्ध गोटिका साचा । गुटिका अवरि गनब सब काचा ।
पारा ते सिरजत बन, तौ साल भरे महँ होई ।
सिद्ध गोटिका वही ह, जो पावै नर कोई ॥ दो० ४३

एक स्थान पर उ होने स्पष्ट रूप से कहा ह कि सिद्धिगोटिका प्राप्त योगी निगुण ब्रह्म में प्रवेश ही नही पा सकते । वे निगुणाकाश के बाहर ही चक्कर लगाते रहते हैं—

सो मुख मेलि उडत बहुतेरे । नही पहुँचहि निगु न नभ नेरे ।
उपर उडहिं जहँ लगु मन चाही । भीतर अगुन गगन महँ नाही ।

विभिन्न तान्त्रिक साधनाये किस प्रकार प्रच्छ न कायिक वत्तियो की पोषक मात्र थी इसे नवलदास जानते थे । कि तु ये साधनाये तो ऊपर उडने की थी । अ तर्ज्ञान उनसे कोसो दूर है । उसे गुरू की कृपा प्राप्त करके मन, वचन और कम की एकाग्रता से प्राणो की चिंता किये बिना अपने साध्य की साधना मे लगे रहकर ही प्राप्त किया जा सकता है । उस साधना की प्रक्रिया और कठिनाई पर ससारी लोगो का विश्वास ही नही हो सकता—

यह सत मत सत ह हित भाषा । जग सब सुनत प्रतीति न रापा ।

निगु ण म दिर का भी वणन नवलदास ने किया ह । वह सासारिक महला जैसा नही ह । वहा तो बिना दीपक के ही उजाला रहता ह । सूय च द्र किरण तारो और नक्षत्रो के बिना ही वह सतत ज्योतिर्मान रहता ह—

बिना दीपक उजियार अपारा । रहित नषत जगमग सब तारा ।
बिन ससि च द्र उदै असमानू । बिन रवि दरसन जन मत भानू ।
बिन मसिआल उजेर मसाला । निरखहु उधरत कु जी ताला ।

× × ×

अगिनि पवन जल पषि भरि, उपर न पावहिं पार ।
अनहद बानी घट येक, सुनत जक्त झकार ॥—दो० ७०

शरीर की चिंता त्याग कर जो सुरति साधना मे समाधिस्थ हो प्रियतम के नाम की रट लगाने लगता ह उसी का दसम द्वार खुलता ह । यह स्थिति तब आती ह जब निगु ण की प्राप्ति की विकलता मे रोम रोम से खून पसीना बन कर प्रस्रवित होने लगता ह—

तजितन सुधि बुधि सुरति समानी । मुप रट उचरत पिय पिय बानी ।
दसम द्वार गुप्त जहँ नाकी । डहर अगम अति अट पट बाँकी ।
सोत सोत ढरि रकत पसेऊ । तब समुझै यहि मत कर भेऊ ।

उस अगम्य घर तक पहुँचने के लिये सत्सग ही सवश्रेष्ठ साधन ह । पच ज्ञानें द्रियो और पच तत्त्वो की पच्चीस प्रकृतियो को वश मे कर सके, काम, क्रोध लोभ आदि का सयमन कर सके, दसो इ द्रियो को जो निष्क्रिय कर सके, आत्मा को साधना माग से विचलित करने वाले अज्ञान रूपी चोरो को ज्ञान के प्रकाश से दूर खदेड सके, जो प्राणो का मोह त्याग सके, इन गुणो से समन्वित अहर्निश साधना मे लीन मूकवत् वाक्सयमी, गुरुप्रदत्त बीजमन्त्र की गोप-

नीयता का सरक्षक—वीर और स्थितप्रज्ञ साधक ही सतगुरु की कृपा प्राप्ति का अधिकारी हो सकता है—

निसुदिन छिन भरि निमिषि न छूटे। तब मब सिद्धि सम सरिगढ टूटे।
मूक सरिस मुष वचन न बोले। अगम अमर मत कबहुँ न बोले।
अब तन मन धुनि रग्नि पिरीती। दिन निसि नहिं समुझत कित बीती।

ज्ञानरतन मे निगुणसाधना किसी क्रमिक रूप मे विकसित होती हुई स्थिति के अनुरूप चित्रित न होकर स्थानिक ह। इसमे वर्णित घटनाओ के प्रसग भी इस प्रकार ह कि उनके आधार पर किसी साधनात्मक रूपक की कल्पना स्वाभाविक न होगी। नवलदास ने आत्मत्याग, चि तन, सत्सग सदाचार गुरु उपदेश, सतनाम जप और प्राप्ति की विकलता को ही स्थान स्थान पर व्यक्त किया ह। जहा कही, सुरति, सेल्ही, उ मन और सुषमन आदि की बाते उ होने की है वे उस स्थान विशेष पर कथन की मार्मिकता, घटना की तीव्रता, और वेदना की गभीरता व्यक्त करने के लिये ही आयी है। सभव ह, निगु ण काव्यधारा मे प्रयुक्त इनका पर परागत साप्रदायिक स्वरूप ही इसका कारण रहा हो।

पूववर्ती प्रभाव

'ज्ञानरतन' भारतीय जनजीवन मे विकास पाते गये विभिन्न साधना मार्गो, धार्मिक आदोलनो एव साहित्यिक उपलब्धियो का आकर है। साहित्य के इतिहास की दष्टि से ज्ञानरतन का रचना काल रीतिकाल का उत्तराद्ध ह। इस दष्टि मे नवलदास के समक्ष भक्तिकाल और रीतिकाल का सम्पूण साहित्य रहा होगा किन्तु उनकी इस रचना मे अनुभव और सत्सग का का प्रभाव सर्वाधिक ह। 'रामचरित मानस' और 'पदमावत' को छोडकर किसी अन्य ग्रथ का प्रभाव ज्ञानरतन पर नही दिखाई देता। निगु ण सत कवि होते हुए भी नवलदास पर 'मानस' की स्पष्ट छाप है। इ होने वदना ग्र थ रचना तिथि और यत्र यत्र घटनाओ मे वणन मे 'मानस' की छाया का निश्चय ही ग्रहण किया ह। ज्ञानरतन और रामचरित मानस की रचना तिथियो के वणन मे कितनी समता है—

सवत अठारह से अरतीसा। कहियत नाइ भगत पद सीसा॥
माघ मास सुभ पूरन मासी। कृपा समुझि हरि चरित प्रकासी॥
रतन ज्ञान तम कलुष नसावन। सुनत श्रवन मन रूचि उपजावन॥

मानस रूपक प्रसग और ज्ञानरतन का साधनामाग प्रसग एक दूसरे के अत्यत समीप ह—

राम रूप सरि मति समुहानी। धारा विमल त्रिविध त्रिमुहानी॥

समस्याये शाश्वत ह। समाधिस्य चित्त मे उनके प्रति युगो का अ तर होने पर भी समान भावनाएँ प्रतिफलित हो ही जाती है—

अनहित सब जग हित कोउ नाही। करि विचार देरयौ मन माही॥
सुत पितु नारि सकल परिवारा। यह काहुहि कोई देइ न पारा॥ पत्र—१९

ज म लेना और जीवित रहना स्वप्नवत् है यह कोई ज्ञानी अपने ज्ञान नेत्रो से ही जान सकता है—

जीवन जन्म सपन कर लेषा। ज्ञान नयन्ह करि ज्ञानिन्ह देषा ॥
आवत जात स्वास जग माही। नहिं आवै तो अचरज नाही ॥ पत्र—३५

नवलदास मानते ह कि शकर ने पावती से जिस गोपनीय नामभक्ति तत्त्व का उदघाटन किया था, उसी सतनाम को जालधर, गोरख, भरथरी आदि ने भी जपा—

वह नाम सकर मन राषा। पारवती सन गुरुहिं भाषा ॥
विधि सुत सहित वह सतनामा। सुमिरन करत सरत सब कामा ॥ पत्र—४

प्रीतम कुँवर को देखकर ग्राम्य महिलाये उससे छाया मे बैठकर विश्राम करने को कहती ह। नवलदास के इस प्रसग का 'वनपथ मे राम' प्रसग से बहुत कुछ साम्य है—

सीतलि छाव नेवारउ धामा। एक पहर अब करहु अरामा ॥
जनक जननि कह कि ह सिष दी हा। नयन ओट ज्य ह तुम्ह अस कीन्हा ॥
कुलिस कठिन उर जननि तुम्हारी। तुम्ह कह तजि करि घर रखवारी ॥
जीवनि मनि तुम चलेउ विहाई। वह घर बार भार परै जाई ॥ पत्र–१ १ ३

प्रेमारयानक परपरा का सवश्रेष्ठ ग्रन्थ जायसी का पद्मावत भी नवलदास के सामने एक आदश रहा होगा। नवलदास ने ज्ञानरतन की कथा योजना, निगुण निरूपण, साधनामाग की कठिनाइयो का वणन, विरह की लोकव्यापी व्यजना और विरहातिशयोक्ति बहुत कुछ पद्मा वत के आदश पर किया ह। जैसा कहा जा चुका ह जिस प्रकार जायसी आदि सूफी कवियो ने प्रसिद्ध आख्यानो का आश्रय लेकर प्रेममार्गी सूफी शाखा के काव्यो की रचना की उसी प्रकार निगु ण सत कवियो ने भी निगु ण साधना के प्रचार प्रसार के लिए लोकारयानो का उपयोग किया। ऐसा करते समय पद्मावत उनका मुरय उपजीव्य ग्र थ रहा हो यह निता त स्वाभाविक है। ज्ञानरतन की घटनाये भी पद्मावत से मिलती जुलती है। प्रिय की प्राप्ति के लिए प्राण त्याग की कामना जायसी की भाति नवलदास ने भी आवश्यक मानी ह—

अब तेहि पथ चढौ मैं, चढि वह दरसन लेऊँ।
की नयना सीतल करौ, की वोहि पथ जिउ देउँ ॥ दो० २८

नागमती और कामकदला के विरह मे कितना साम्य ह—

केहि पावो मै परम सदेशी। जेहि कर बचन सुनै परदेशी।
कोई अस भँवर काक पिक होई। विरह विथा तहँ बरनत कोई।

यहा ध्यान देने की बात ह कि जायसी का प्रभाव ग्रहण करते हुए भी नवलदास सवत्र अपनी मौलिकता, सूझ बूझ, और वास्तविकता को बनाये रखते है। वियोग की तीव्रता दिखाने के लिये एकाध स्थलो पर नवलदास ने भी सेल्ही, सुरति आदि के वणन किये ह किन्तु विरह की नाप जोख और अतिशयोक्ति से वचकर—

वह दुष देषत सघन बन, भीजे तरिवर पात।
धरनि अकास पसीजेउ, कठिन विरह दुष बात ॥ दो० ६३

आकाश को काला कर देने और पशु पक्षियो तक को दुखित कर देने वाले जायसी और नवलदास के विरह वणनो मे बहुत कुछ साम्य है—

बिरह अगिनि तिय तन मन तापी । बिरह बज्रागि अकाशह व्यापी ।।
परचि अकास भयो जरि कारे । तपत भानु नभ चलत न हारे ।।
कुल पसु पषि मृग ह दुष पावा । विरह लहरि अस केहि न सतावा ।।

सौन्दय वणन के परपरागत उपमाना के प्रयोग मे भी पद्मावत और ज्ञानरतन के वणन साम्य रखते है—

अस वह जुवति रूप जहि पूरा । विहसत लाल होत जरि कूरा ।।
ससि मुख तनु जनु दामिनी जोती । बोलत बोल रतन मनि मोती ।।

ज्ञानरतन मे स्थान स्थान पर नवलदास ने 'पद्मावत' की ओर स्पष्ट सकेत भी किये ह जिससे प्रतीत होता है कि पद्मावत की सपूण कथा उनके सामने आदश रूप मे उपस्थित थी—

१ को सिव अस जिह जरत बचावा । रतनि सेन पद्मावति पावा ।
२ गोरा बादिल जस जग जोधा । पद्मावति कर कीह प्रबोधा ।
३ विरह लहरि तप काहि न जागी । रतन सेन चितउर गढ त्यागी ।

साधनात्मक प्रतीक के रूप मे 'पद्मावत' और ज्ञानरतन' के नगर वणन लगभग समान है—

सुरति न पहुँचत निरषत कोई । अगिनि सुवन थकि लौटा रोई ।।
सात षड धवरहर अपारा । शुभ सिवराजु बाजु घरियारा ।।
अनहद सब्द सुनत सब कोई । दुचित जक्त समुझत नहिं कोई ।।
वह घरिआल सब्द जग बाजा । प्रगट रहत नित नौ दरवाजा ।
दस्सम द्वार गुप्त गति रहता । पहुँचत भक्त जगत नहि चहता ।। पत्र—९

जो उस सत्य की प्राप्ति कर लेता ह उसको यहा के सासारिक कष्टो को सहने की क्या आवश्यकता—

ज्ये ह पावा तेहि बहुत अरामा । सो किमि आइ सह यह धामा । पत्र—१२
जे वहि छाह पाइ फल खावा । ते यहि जग फिरि काहेक आवा । पत्र—२६

कामकदला का साथ चलने के लिये आग्रह नागमती के आग्रह से साम्य रखता ह—

जह काया तह छाया, जहा सुमन तह बास ।
जह जह प्रीतम पगु धरै तह तह नारि नेवास ।। पत्र–३५

परपरागत प्रेमाख्यानो का परिचय देते समय भी नवलदास जायसी का अनुकरण करते ह—

साथ कुँवर साधा तप जोगू । मधु मालति कर विरह वियोगू ।
कुमुदावति सर जरिवर साधा । राजकुँवर रोवत मलि हाथा ।

× × ×

रतनसेन चितउर गढ त्यागी । विरह लहरि तन काहि न जागी ।

× × ×

सपनावति कह गयउ पतारा । अति अटपट द्विज राज सवारा ।

'ज्ञान रतन' पर 'नाथपथ का भी पर्याप्त प्रभाव ह यद्यपि नवलदास ने निगुण साधना की नाथपथी' रहस्यात्मकता को बहुत कुछ सहज एव स्वभाविक बना दिया ह फिर भी निगुण पथ मे प्रचलित नाथयोग का परपरागत शब्दावली का परित्याग वे नही कर सके ह । सिद्ध गोटिका आदि के निर्माण तथा पारद के घोटने की प्रक्रिया का पता नवलदास को था, यह दूसरी बात ह कि वे उसे महत्त्व नही देते थे—

पारा ते सिरजत बन तौ वष भरे महँ होइ ।
सिद्धिगाटिका वहौ ह, जो पाव नर कोइ ॥ — दो० ४२

सत साहित्य मे गहस्थ जीवन साधना मे बाधक नही माना गया ह । कबीर, नानक आदि सता के विवाहित होने और गृहस्थी जोडने से यह सिद्ध होता है कि सत कवि प्रकृत लोक जीवन के प्रति असहिष्णु नही थे । उनका मुख्य विरोध लोक मे व्याप्त आडम्बर से था । नारी भी यदि साधना माग मे बाधक ह तभी माया ह । कि तु नाथ योग म स्त्री सवथा त्याज्य मानी गई ह । माधवानल ने कामकदला का त्याग इसी आदश के लिये किया था—

परदेसी नप नवल विहगू । जोगी भँवर न राषहि सगू ।

नाथ योगी की दूसरी विशेषता ह उसका निरतर विचरण । इसी स उसके आचरण की निमलता सुरक्षित रहती ह—

जोगी भवर जगत महँ जेते । जग रस पर थिर कबहुँ न ते ते ॥
केहि के दरद केर बै चहतू । यहि जग मह जल निरमल बहतू ॥ — ६३

माधवानल को सतनाम की शिक्षा देने मे भी नाथ पथ का प्रभाव स्पष्ट ह—

माधौनल सतगुरु सुधि आने । तत्र अगम अनि कहत सोहाने ।
अमर मत्र यह सुख सतनामा । यह तुव कम्ब सकल सिधि रामा ।

× × ×

यह जपि सिधि विधि सभु हित, गोरस जुत नौ नाथ ।
चौरासी सिद्धन जपा, बठि सकल यक साथ ॥ — पत्र ।

नाथयोगी रहस्य साधना माग का पथिक होता ह इसलिये अपनी अनुभूतियो को गुप्त रखना उसका अनिवाय कतव्य हो जाता ह—

मूक सरिस मुष बचन न बोल । अगम अमर मत कबहुँ न खालै ॥

कामरूप की लोना चमारिन की विविध तत्र मत्र म अद्भुत गति के वणनो मे नाथपथ का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता ह—

सिव अष्टाग जोग पढि साधा । वह जह चहत रहत नहिं बाधा ॥
मुद्रा चारि सिद्ध वहि माही । सिष्य अवरि अष्टादस ताही ।
भैरो तत्र उडीस समेता । अवर तत्र गुन जह लगु जेता ॥
—दो० १८० के आगे ।

तात्पय यह कि नवलदास ने तुलसी और जायसी, के आदश पर 'ज्ञानरतन' की रचना की है । नाथपथी सिद्धो के चमत्कारो और उनकी साधना प्रणाली से भी वे परिचित थे । सबसे बडी बात यह ह कि नवलदास ने हिदू जीवन दशन और जीवन पद्धति की भी मार्मिक

अभिव्यक्ति की है। देवी देवताओ की वदना, ऋषियो के माहात्म्य एव अवतारो की चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि नवलदास पर हि दू धम का सर्वाधिक प्रभाव था। कथा के बीच बीच मे रामचरित की घटनाओ से वे अपना कथा को पुष्ट करते है और माधव के अध्ययन के प्रसग मे चारो वेदो की चर्चा करत है। इस प्रकार नवलदास ने अपने समय म प्रचलित आचार विचारो साहित्यिक उपलब्धियो, लोकाख्यानो परपराओ आदि को यथोचित महत्त्व देते हुए दढ सास्कृतिक आधार भूमि पर ज्ञानरतन की रचना की ह। इस ग्रथ मे कवि ने निगुण सगुण, साकार निराकार आदि तत्त्वो का विशद निरूपण करते हुए समकालीन लोक जीवन के साथ ही साप्रदायिक विश्वासो की भी यथाथ अभिव्यक्ति बडे ही कौशल से की ह। अ य सूफी तथा निगुण मार्गी रचनाओ मे इस तत्त्व का प्राय अभाव ह। इस दष्टि से भारतीय सस्कृति की समन्वयवादी परपरा मे यह ग्र थ विशिष्ट स्थान का अधिकारी ह।

प्रेमतत्त्व वर्णन

ज्ञानरतन प्रेमगाथा ह। नवलदास के मत मे प्रेम साधना की सबसे बडी विशेषता ह अन यता—

प्रीति असिल कर अचल प्रभाऊ। अवर जगत निरखत नहि काऊ।
तन मन रटन पिरीतम नामा। तेहि पर अवर मत्र केहि कामा।

—ज्ञानरतन, पत्र ६०

जिस साधक के हृदय मे यह तत्त्व आ गया वह निभय हो जाता ह, सशयहीनता प्रेमी का नित्य लक्षण ह—

बीज प्रेम कर जेहि घट जामा। तेहिकस भरम सीत औ घामा॥
सीस दी ह प्रिय दरसन आसा। तेहि कस सिंह सेर कर त्रासा॥

—वही, पत्र ४२

जेहि के हृदै पिरीतम होई। तेहि जग मरम न पूछै कोई।

प्रेमाकाश के निगुण ज्ञानसूय का दशन साधक अन त बाधाओ को पार करके आत्म बलि देकर ही प्राप्त कर सकता है। वहा पहुच कर जीव अन त काल तक अखड अमत का पान करता हुआ सभी बन्धनो से मुक्त हो जाता ह—

प्रेम गगन जहँ निरगुन भानू। महि ते वह ऊँचा अरु भानू।
पहुँचै जो सिर दै चढै, पकरि सजीवनि सूरि।
जुग जुग सो अमृत पियै, ज म ज म दुख दूरि॥ वही, पत्र १०

यह गूढ प्रेम साधना साधक के अपने वश की बात नही। मागदशक सतगुरु के बिना इस बीहड पथ पर दो कदम भी आगे नही चला जा सकता। साधना के गुह्य द्वार की कुञ्जी उसी के हाथ मे रहती ह—

वह कुजी सतगुर सन पावे। व ह विन कवन उधारि देषावै॥
सतगुर बल चलि भक्ति उधारहि। दरसन कीरतन मन धन बारहि॥
मूरि सजीवनि मेरु पर, निरखत निभर देखाई।
चढते सो अटपट पथ अगम, बिरले पहुँचहि जाई॥ वही, पत्र १०

महात्मा नवलदास ने साधना के इस दुगम पथ का साधका की सुविधा के लिए सत नामी सप्रदाय के सिद्धा तानुसार विशद विवरण प्रस्तुत किया ह—

वाम उहर अधियार बराव। दहिने रवि नदिनि मह धाव।
चलत कछुक तह मिलत उजेरा। कुड सुरग सुदर मनि घेरा।
अमत अरुन भरा तेहि माही। दरसन करत अगर चलि जाही।
धरम राज दरसन वहि बाटा। चढत मिलत सरि सुपमन घाटा।
उतर दछिन दिसि कनक सुमेरु। बिन गुरु चढत परत तेहि फेरू।
कनक सु तरिवर कमल सुमन घन। कनक पत्र फलफूल कनक बन।
वह वन उतरि हेवचल पारा। दरसन कनक मदिल उजियारा।
बह मदिल हर हठि मन लावा। बह मदिल हठि विघि मन भावा।
सनक सनदन सनत कुमारा। कहे मदिल निसि देवस अवारा।
सुर मुनि वर नर असुर जो कोई। वहि पर बसत भगत सत होई।
वह घर अगम अपार ह बहुरि बहुत औसान।
दास नेवल सतगुर कह, जेहि जस निश्चै ग्यान। वही, पत्र १० ११

नवलदास ने मुख्य कथा के नायक माधवानल तथा अतकथाओ के नायक जडभरत, कमलनयन और प्रीतम कुँवर को इस साधनापथ का तत्त्वज्ञ पथिक माना ह, और इसी रूप मे उनका चित्रण किया ह। उन्होने इन सभी को अपनी साम्प्रदायिक मान्यतानुसार 'सतनाम' का अनन्य प्रेमी बताया ह। 'निगुण प्रेमाख्यान होने के कारण इसके अतगत शून्य लोक, अनाहत नाद, कुडलिनी जागरण आदि तत्त्वो को स्थान स्थान पर व्याख्या की गयी ह। कवि ने इस 'सतमत' को ही जीव के उद्धार का सर्वोत्कृष्ट पथ बताया ह।

यह निरगुन सतमत सुमत, अगम अथाह अनत।
महरम को भरि समुद रस, व ह कर कबहु न अत॥ वही, पत्र ८४

नवलदास वीतराग सत थे। फिर भी प्रेम अथवा शृगार के सयोग तथा वियोग दोनो पक्षो के जैसे बिम्ब रतनज्ञान मे चित्रित ह वे कवि की अदभुत काव्य प्रतिभा के परिचायक ह।

माधवानल कामकदला के आख्यान को आधार बना कर लिखी गयी रचनाओ मे गण पति, कुशल लाभ, आनदघन, आलम, बोधा आदि कवियो ने सयोग शृगार का बडा ही हृदयाकषक स्वरूप प्रस्तुत किया ह। साहब नवलदास की सत प्रकृति को 'काम' और उसके उददीपक तत्त्वो का विवरण उतना रुचिकर नही प्रतोत हुआ। ऐसे प्रसगो मे भी उनका साध नात्मक दष्टिकोण ही प्रधान दिखाई देता है—

माधौ कह तिन्ह कर गहि ली हा। अपने महल तुरित सुभ की हा॥
सुदर महल कनक बहु भाती। मानिक दीपक बरई दिन राती॥
देखि महल नैना ठगे, औ अछरी कर रूप।
जहँ निरखत तह जोति छवि, आवा दरस अनूप।
पलग रगति वहि महल सोहावा। तेहि पर सुमन सुगध बिछावा।
तेहि पर अरुन बिछावन सोहे। माधोनल निरखत मन मोहे।

माधौ कहँ बिसराम करावा। तब अछरी सेवन मन लावा।
कोक सार चरचा मन आना। सकल कला माधौ कर जाना॥
असित पाख नीचे कहँ आवै। सेत पाख ऊँचे कहँ धावै।
सब तिथि गति तिय अग मिलावा। मदनबास महि जुलि चिल्लावा।

कहना न होगा ऐसे शृगार पूण विषम स्थलों पर कवि का निर्लिप्त भाव मर्यादा रक्षा मे सहायक हुआ ह। लौकिक दृष्टि से इसे भले ही कवि की असफलता की सज्ञा दी जाय किन्तु कवि का, साधनात्मक दष्टि से इससे आगे कुछ कहना सगत न होता। नवलदास के मत मे सयोग अथवा मिलन का क्षण रात्रि की भाति काला होता ह, उस पर पर्दा पडा रहना ही अच्छा होता है।

सयोग वणन के नखशिख सम्बन्धी प्रसगो मे प्रयुक्त उपमान प्राय परम्पराभुक्त बहुश्रुत और बहुप्रयुक्त है फिर भी कथन की सहजता और अवसरोचित मार्मिकता के कारण उनमे अजब अनूठापन आ गया है। काव्य और साधनात्मक निगुणवाद का अपूव सामञ्जस्य रात्री के धुँधलके मे माधवानल को दश्यमान कामकदला के इस चित्र मे देखा जा सकता है

माधोनल मन करत विचारा। कि ह मानिक दीपक यह बारा।
भा उजियार अगम अस देखा। जिमि जन अगुन ध्यान करि लेखा।
अस विघटत मारुत पछियावा। सपूरन ससि निकसि देखावा।

नवलदास की सबसे बडी विशेषता इस बात मे है कि उन्होने उत्तर मध्यकाल के उस सामतीय वातावरण मे जबकि परकीया का महत्त्व सर्वोपरि था, स्वकीया परक दापत्य भाव की व्यापक प्रतिष्ठा की, वह भी एक वेश्या के साथ। नवलदास सत होते हुए भी सामाजिक सम्बन्धो के प्रति बडे निष्ठावान है। स्थान स्थान पर सती, सावित्री और सीता के आदश पातिव्रत की चर्चा उन्होने की है। माधव के साथ जाने का हठ कामकदला का ही नही सपूण प्रेमिका वग का अपने प्रिय के सान्निध्य मे रहने का हठ है। नवलदास ने अपनी अनुभूति की व्यापकता से कामसेन के बन्धन मे बँधी, प्रिय के मिलन के लिए आतुर कामकदला के भाव मग्न अतस्तल मे बैठकर उसकी वेदना का चित्रण किया है

जीवन जन्म सपन करिलेषा। ज्ञान नयन्ह करि ज्ञानिन्ह देषा॥
आवत जान स्वास जग माहि। नहिं आवै तौ अचरज नाही॥
को अस जगत जबर जेन्हजीते। तुम किन करत बिछोह पिरीते॥
बिछुरत भषम चढाइ कै, तन मन तुम्ह कह देऊँ।
जोगिनी ह्वै जग छाडि कै, ढूँढि मित्र कहँ लेऊँ॥

कन्दला के वियोग से दुखी नवल्दास अपनी सामान्य मन स्थिति मे आते है तब वे उपदेश देते है —

परदेशी नप नवल विहँगू। जोगी भवर न राषहिं सगू॥
जोगी भँवर करे जेहि भावा। तिन्ह की प्रीति कवन सुष पावा॥

निष्ठुर प्रियतम जाने को प्रस्तुत है। न जाने कब लौटेगा। यदि योगी ह तो उसे शिष्य की आवश्यकता पडेगी ही, फिर क्यो नही मुझे ही शिष्य बना लेता? यदि कुछ भी करने को तैयार

नही है तो अपने ही हाथो प्राण ले ले क्योकि नारी तो युगो से पुरुष की छाया ह। जहा काया वहा छाया —

की मोहि लाइ लेव पिय साथा। की तौ मारि चलब सय हाथा ॥
सेवा करौ पषारौ पाया। जुग जुग नारि पुरुष कै छाया ॥
का गोरष सम फिरहु अकेला। सग लाइ मो कहँ करु चेला ॥
जहँ काया तहँ छाया, जहा सुमन तहँ बास।
जहँ जहँ प्रीतम पगु धरै, तह तहँ नारि नेवास ॥ —दो० ५७

प्रेम की यह एकनिष्ठा माधव मे भी ह। उज्जैन की सु दरिया उसे रचमात्र भी आकृष्ट नही कर पाती। वे दुखित होकर लौट जाती ह —

माधौनलहिं रिझाइ भल, वह अति निठुर न रीझ।
फिरी सकल मन मइल करि, आपु आपु कहँ पीझि ॥

'ज्ञानरतन' मे वात्सल्य चित्रण भी बडा ही मार्मिक ह। कामक दला की मत्यु पर उसके माता पिता बिलखने लगते है।

आजु प्रीति तुम्ह सकल निबाही। तन इत राषि गइहु जहा चाही।
आजु नेह कर भयउ निबेरा। आजु अवनि तजि गगन बसेरा ॥
आजु बनिज भइ पूरी तुम्हारी। आजु सकल जग चलिहु बिसारी ॥

प्रीतमकुवर को अकेले निराश्रित घूमते देखकर ग्रामीण नारिया जो कुछ कहती है, उसमे मातत्व की उत्कृष्ट छाप ह। इतने रूपवान पुत्र को छोडकर जो मा घर की रक्षा करे वह वज्रहृदया नही तो और क्या ह? जब जीवन मणि ही दूर हो जा रहा है तब घर भाड मे जाय —

सीतलि छाह नेवारउ धामा। एक पहर अब करहु अरामा ॥
जनक जननि कहँ कि ह सिख दीन्हा। नयन ओट जिन्ह तुम अस की हा ॥
कुलिस कठिन उर जननि तुम्हारी। तुम्ह कह तजि करि घर रखवारी ॥
जीवन धन तुम चलेहु पराई। वह घरबार भार परै जाई ॥

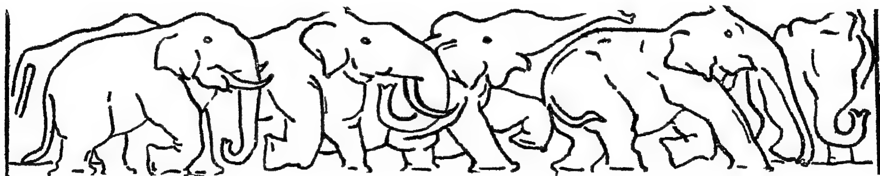
भावुकता और स्वाभाविकता के साथ साथ नवलदास मे काव्योचित मार्मिकता भी है। कामक दला के सौ दय वणन मे उन्होने अपनी कविजनोचित सरसता का परिचय दिया ह —

सुभ लिलाट पर पूरन मासी। उदित विदित जग जोति प्रगासी ॥
निरषि नयन मग सकल सिहाने। जल बन षजन मीन लुकाने ॥
सुक मुष सरिस नाक सुभ लोनी। अपनेह कर गढि सारस जोनी ॥
जानहु तडित सुतनु धरि आई। बेदी बेसरि वनक बनाई ॥

सच तो यह ह कि सभी सौन्दय युक्त प्राणियो मे परमेश्वर की दिव्य आभा को देखने वाले नवलदास ने प्रेम, वियोग और श्रृगार के विविध पक्षो की मनोहारी कल्पनाये की है। जहा उनकी दष्टि कवि की ह वहा मार्मिक अभिव्यक्ति हुई ह, कि तु जब उन्हे अपनी साधना, ससार की अवास्तविकता और ज्ञान की चरम सत्यता की स्मृति आती है उन्हे यह सारा ससार ही परदेसी लगने लगता है —

हम जौ कहा बुझाय भल, आगेह विमल विचार।
यह परदेसी जक्त सब, को केहि लावैं पार॥

ससार के प्रति विरक्ति का भाव रखते हुए भी नवलदास कामक दला के वियोग से व्यथित हैं, योगी के वश मे राजकुमारी की परवशता को समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील ह, पुत्री के मरण पर माता पिता के रुदन से साश्रु हैं। ससार की बुराइयो को देखकर 'बाउर' की तरह चुप हैं और सारे वैषयिक प्रलोभनो को निर्लिप्त भाव से झेल जाने वाले ह। उनकी यह विशेषता उन्हे प्रेमाख्यान परपरा के कवियो मे महत्त्व पूण स्थान प्रदान करती ह। उनके उप मान किसी परम्परा की नकल नही अपितु लोक जीवन के सूक्ष्म अध्ययन के परिणाम हैं उनका सौदय चित्रण नारी और पुरुष मे परमेश्वर की दिव्य आभा का आभास कराता चलता ह। उनके वियोग वणनो मे लोक-जीवन की सहज सकरुण वेदना है। साहित्यिक उत्कष मे 'ज्ञानरतन' किसी भी सूफी तथा उत्तरमध्यकालीन भारतीय प्रेमाख्यान के समकक्ष रखा जा सकता है। यह हो सकता ह कि ज्ञानरतन मे सागोपाग नखशिख वणन न मिले, नायिकाभेद खोजने वालो को निराश होना पडे, आलकारिक वणनो की छटा देखनेवालो को सतोष न हो, किंतु ज्ञानरतन मे वह बहुत कुछ ह जिसके कारण वह प्रेमाख्यानक साहित्य मे महत्त्वपूण स्थान पाने का अधिकारी है। सत कवि ने जिस प्रकार आत्मज्ञापन और प्रचार से अपने को दूर रखा उसी प्रकार उनका यह ग्रथ भी काव्यरसिको की आखो से ओझल, अज्ञात एवम अनिर्दिष्ट पडा रहा।



संतकवि देवीदास और उनके वाणीकार शिष्य

राधिका प्रसाद त्रिपाठी

सत देवीदास जगजीवन साहब के उन चार प्रमुख शिष्यो मे से थे जिन्हे सत्तनामी सम्प्रदायान्तगत चार पावा या स्तम्भ के रूप मे जाना जाता ह।[१] कदाचित् देवीदास जी जगजीवन साहब के शिष्यो मे वरिष्ठता की दष्टि से द्वितीय थे।[२] इनका जन्म भाद्रपद कृष्ण ८ मगलवार विक्रम स० १७३५ को बाराबकी जिला तगत लक्ष्मणगढ नामक ग्राम मे हुआ था। कालान्तर मे यह लक्ष्मणगढ को छोड कर पुरवा नामक ग्राम में रहने लगे थे।[३] इनके पिता भवानी सिंह साधारण जमीदार थे। यह भारद्वाज गोत्रीय अमेठिया (गौड) वश के क्षत्रिय थे। साम्प्रदायिक साहित्य एक स्वर से इ हे गौडवशीय या अमेठिया वश का बताता ह।[४] देवीदास जी शरीर से बडे ही सुन्दर थे। बोधेदास ने 'नील स्वरूप वारि छवि कामा' कह कर इनकी सु दरता का वणन किया ह।[५] ईश्वरदास कृत 'भक्तमाल' से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती ह।[६]

१ (क) प्रभु जगजीवन वश जथा मति कहा सुहाई।
अब पावा कहि चारि नाम तिनके समुझाई॥
प्रभु दूलन प्रभु देवि सेव्य सेवक के साचे।
बहुरि गोसाइदास श्याम प्रभु सुमिरण साचे॥
ये चारो जन जक्त के खभ आपु सब सो भन्यो।
पइह मुक्ति विसेख ते जेहि सनेह इनते ब यो॥ —भक्तमाल, प० १६

(ख) अ त साक्ष्य से भी इनका जगजीवन साहब का शिष्य होना प्रमाणित होता है—
—देवीदास के प्रभु जगजीवन। —शब्द लीला, लीला १ छद

२ दूसर देविदास उजियारे जिन्ह बहुतन्ह कहँ पार उतारे।—रतन ज्ञान, प० स० ३

३ (क) लछिमनगढ ते कूच करि पुरवा मे आसन ठयो। —भक्तमाल

(ख) देविदास प्रभु गौड कहाये।
तजि लछिमन गढ पुरव आये॥ —कोटवा माहात्म्य, प० १३

४ (क) बहुरि अमेठिया वश मे जन्म कम उत्तिमलयो। —भक्तमाल, प० २०

(ख) गौरवश छत्री पुनि । वही, प० २०

(ग) गौरवश छत्री केर जाना। —भक्ति विनोद, दशम अध्याय

(घ) देविदास प्रभु गौड कहाये। —कोटवा माहात्म्य, पृ० १३

५ भक्ति विनोद, दशम अध्याय

६ भक्तमाल, प० २०

कहा जाता ह कि देवीदास जी बाल्यकाल मे ही माता और पिता दोनो की स्नेह छाया के वचित हो गये थे तथा माता पिता का देहात हो जाने के बाद इनकी वत्ति परमपिता की ओर उन्मुख हो गयी थी। परिणाम स्वरूप मात्र १८ वष की अवस्था मे इन्होने जगजीवन साहब से दीक्षा ले ली थी।[1] यह बात पुष्ट प्रमाणो पर आवत नही जान पडती। बोधेदास[2] और ईश्वरदास[3] के अनुसार जब देवीदासजी दीक्षा ले कर कठोर साधना मे रत हुए थे तब इनके माता-पिता को बडी चिंता हुई थी। ऐसी स्थिति म वाल्यावस्था मे ही इनके माता पिता के निधन की बात असत्य सिद्ध हो जाती है। कहना न होगा इस सम्बन्ध मे बोधेदास और ईश्वरदास के कथन को अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक माना जायगा। जो भी हो, इतना तो निश्चित ह कि देवीदास की चित्तवत्ति बाल्यकाल मे ही ईश्वरोन्मुख हो गयी थी।

जब यह जगजीवन साहब की शरण मे पहली बार सरदहा गये तब अत्यत भावाकुल हो कर उनके चरणो मे लोटने लगे थे। अन्त मे जगजीवन साहब ने प्रभावित हो कर इन्हे स्वय उठाया और नाम की दीक्षा दे दी। इस प्रसग का बणन ईश्वरदास ने बडे मार्मिक ढग से किया ह—

सबहि पसारि अग हाथ पाव कीन्हेउ तग
बहुरि बटोरि धूरि माथे पै चढावही
मानो रक पायो धन वेगि होइ मुदित मन
लाग्यो लेन ताको हिये भाव को बढावही
रज को प्रभाव जौन जानै कोऊ ऐसो नीच
माया के नसे मे लखि कर्म को न पावही
तिनको सकल वादि नेम धम क्रिया आदि
नेक ना सुफल भक्तमाल सो बतावही ॥
बोल्यो तब साइ जगजीवन कृपालु चित।
उठौ उठौ उठौ न लगावो नेक ढील है ॥

× × ×

वेगि सो पकरि कर कह्यो आप उठौ अब
छोडि बकवादि सब कीजै यादि नाम की ॥
प्रानन पियारे मेरे रह्यो मे तलास तेरे
कीन्हेउ भल आयउ नेरे बात भै अराम की ॥

१ उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृ० ६१५
२ तात मात भ्रात जन व्याकुल सकलगात रावत उफात दुख अमित जनायो है
—भक्तमाल पृ० २२
३ पुरजन कहै का भयो विधाता, करुना करहिं पिता अरु माता।
—भक्ति विनोद, दशम अध्याय

लीजे पुनि मत्र कान कानन लगाइ ध्यान
राखौ सो प्रमान गहौ पथ निज धाम की ॥[1]

दीक्षोपरा त यह सरदहा निकट स्थित सैलखपुर नामक ग्राम म अपने किसी सम्बन्धी के यहा रहते हुये जगजीवन साहब का सत्सग लाभ करने लगे।[2] इसके अन तर देवीदास जी सैलखपुर से पुरवा लौट कर कठोर नाम साधना मे लीन हो गये। साधना काल मे इनकी असामा य दशा देखकर इनके परिवार के लोग अत्यत व्याकुल हो उठे थे।[3] इन्होने कुछ समय तक अभरन तट पर एक वक्ष की छाया मे बठ कर जगजीवन साहब की वाणी का प्रचार भी किया।[4] कहते ह इसी स्थान पर गुरुदेव की वाणी का अध्ययन और चिंतन करते हुए इ हे ज्ञान की प्राप्ति हुई।[5] ज्ञान प्राप्ति के पश्चात इ होने लक्ष्मणगढ जा कर कुछ समय भजन सत्सग मे व्यतीत किया और फिर पुरवा मे आ कर रहने लगे।[6] यह गृहस्थ जीवन व्यतीत करने वाले महात्मा थे। इनकी वश परम्परा आज भी चल रही ह।

१ भक्तमाल, प० २०

२ (क) दह ते सो भयो विदा मन ते न भयोजुदा, आयो पुर सलप समुझि स्थली नात की।
गुरद्वार निकट विचारि तहा डटि रह्यो करै सतसग जाते सुद्ध होत पातकी ॥
—वही, प० २१

(ख) लै उपदेस विदा तब भयऊ देविदास सैलषपुर गयऊ। —भक्ति विनोद, दशम अध्याय

३ (क) निजपुर त्यागी की हेउ प्रथम निवास जहा आनि तहँ लायो दिढ नाम ही की जाप ह
गुरु जो लखायो मत्र ताहि ल जगायो इमि, खायो न पीयो सो जल विख ज्यो बरायो ह
रयन दिन रहैं परे अतर सो ध्यान धरे डोलत न बोलत सो काहू के बोलायो ह
गडी दष्टि दष्टि माहि खोलत सो नेक नाहिं पुरजन कह इ हैं अल्प कोऊ आयो है
तात मात भ्रात जन व्याकुल सकलगात, रोवत उफात दु ख अमित जनायो है
—भक्तमाल, पृ० २२

(ख) निजपुर छाँडि लीन्ह जहँ वासा तहा क आये देवीदासा।
देविदास गुरु मत्र जगावा निसुवासर कछु पिया न खावा ॥
नहिं डोलहि नहिं काहु ते बोलहिं गाडे दष्टि नेत्र नहिं खोलहि।
पुरजन कह का भयो बिधाता करुना करहिं पिता अरु माता ॥
—भक्ति विनोद, दशम अध्याय

४ अभरन तट एक सु दर निहारि तरु ताके तर बठि की हेउ ग्रथ को प्रचार ह।
—भक्तमाल, पृ० २२

५ पढै पुनि गुन सुन समुझै विचारै ताहि जो जो कछु कर पुनि ताके अनुसार ह ॥
अस केहू विरलेक ग्रथ को मनन कीन जैसे कछु देविदास ताको मत बूझ्यो है ॥
बूझ तहिं होत भो प्रकाश रविज्ञान यह जानत ब्रह्माड खेल अ तरहिं सूझ्यो ह।
—वही, प० २२

६ साहब सा सावले के और हू चरित्र सुनौ लछिमनगढ पुनि की हेउ आनिवास ह।
कीन्हेउ कछु काल तहँ भजन विहार जुत बहुरि सो चालि किह्यो पुरवा प्रकाश ह।
—वही, प० २२

देवीदास अपने समय के बडे ही यशस्वी सत थे। जगजीवन साहब के एक दूसरे शिष्य नवलदास ने इ हे 'सत सिरताज' की सज्ञा दी ह।[१] 'भक्ति सुमिरनी प्रकाश' के लेखक ने इन्हे 'भक्ति दीप' नाम से अभिहित करते हुए श्रद्धा सवलित भावो की व्यजना की ह—

भक्तिदीप देवी भयेउ जग उदित हृदै परकास करन।
भजन भाउ निसुदिन अडो ब्रडौ प्रेम सुष धाम।
वचन प्रीति अमृत द्रवै गुन गाइ मनोहर नाम।
करि सेवकाई भक्त जक्त मे नीति सिषाएउ।
जगजीवन गुर परताप ते नाम के बीज बोवाएउ।
रामनाम दढ किएउ सत प्रगट जग दुष हरन।
भक्ति दीप देवी भयेउ जग उदित हृदै परकास करन।[२]

सत्तनामी सम्प्रदाय के अन्तगत भी इ हे सम्पूण समाज को तारने वाले के रूप मे देखा जाता ह—

जगजीवन धारा सरिस, दूलनदास जहाज।
देविदास केवट भयो, तारचो सकल समाज ॥[३]

कहा जाता है कि इन्होने १३५ वष की आयु भोगकर स० १८७० मे परमगति पायी।[४] ईश्वरदास के अनुसार भी इनका १३५ वष तक जीवित रहना प्रमाणित होता है।[५] डा० ग्रियसन ने भी इ हे १७९० ई० अर्थात् स० १८४७ के आसपास उपस्थित बताया है जिसके अनुसार थह ११२ वष के हो चुके थे।[६]

देवीदास जी न केवल उच्चकोटि के साधक के रूप मे विरयात थे वरन एक सशक्त वाणीकार के रूप मे भी आज तक स्मरण किये जाते हैं। हि दी साहित्य के प्रारम्भिक इतिहास ग्रथो मे जगजीवन साहब और नवलदास के बाद यदि किसी का नामोल्लेख हुआ ह तो वह देवीदास जी ही हैं। डा० ग्रियसन ने इनका उल्लेख शात रस के कवि के रूप मे किया ह।[७] अबतक देवीदास जी कृत १२ ग्रथ और कुछ स्फुट पद प्राप्त हो चुके ह। ग्रथो की नामावली इस प्रकार है—

१ सुख सागर, पृ० ७

२ भक्ति सुमिरनी प्रकाश, पृ० ३०

३ नवज्योति से उद्धत

४ उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृ० ६१५

५ एक सै औ दस वष बीतिगो करार जब देह भै सिथिल तब कह्यो आप बोलि ह
अब हम जब निज देश को शरीर त्यागि तौलो जेठ बधू मम भारयो निज खोलि है
अबै न पचीस वष आप सो गवन करौ मेरे कहे दीनब धु कौनिउ दिसि डोलि ह
की हेउ सो कबूल तन रहेउ पुनि जौ लै चहेउ बहुरि उडाई धूरि जक्त खेलि होलि ह
—भक्तमाल, पृ० २४

६ हि दी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृ० २३९

७ वही, पृ० २३९

१ सुखसनाथ	७ भरतध्यान
२ भ्रमविनास	८ गुरुचरन
३ विनोदमगल	९ भ्रमरगीत
४ भक्तिमगल	१० ज्ञान सेवा
५ भक्त लीला	११ नारदज्ञान
६ शब्द लीला	१२ वैराग्य ज्ञान

इन ग्रथो मे से अभी तक केवल 'शब्द लीला का प्रकाशन 'श्री सत्यनाम मुमुक्षु आश्रम बछरावा से सन १९६५ मे हुआ ह। इस कृति को सम्प्रदाया तगत 'ब्रह्मवाणी के नाम से भी जाना जाता ह। अडतालीस पाठो मे विभक्त इस ग्रथ मे सत लक्षण, ज्ञान साधना, भक्ति साधना, सतगुरु, गवी देश, नाम सुमिरन, ससार की नश्वरता, राम की भक्त वत्सलता तथा भक्ति के महत्त्व का विशद निरूपण किया गया ह। उदाहरणाथ देवीदास के कुछ छद नीचे दिये जाते हैं—

सब घट रमिता रमिता मधुर मारुत की नाई।
पैदा और निपैद किह्यो तुमहिनि एक साई।
तेज अग्नि परमान हौ सीतल जलहि सरूप।
जेहि जस जानि परै सो तैसे वनि तुम त्रिभुवन भूप।[1]
उनके कया न काम धाम धन उनके नाही।
गैबी पुरुष अलेप लेप काहू मा नाही।
पदुम पत्र हम देखिये बुद न जल ठहराई।
अस सब मा सबही ते न्यारा समुझि तकहु तुम जाई।[2]
तरै मात औ पिता तरै बाधव सुतनारी।
तरै बहुत परिवार तरै प्रीतम हितकारी।
जिन सुमिरा तिनही लहा जक्त ज म को लाह।
सकट परै भक्त के सगी अपनावत गहि बाह।[3]
तप करि देह जराय पाप यह वृथा कमायो।
गुरु बिन ज्ञान के हीन अत कछु जानि न पायो।
नख सिख जटा रखाइ क अग विभूति लगाय।
यहु दहूँ कवन मुक्ति मत सुनि क राम दिहिन बिसराय।[4]
छोटे छोटे पेडन का सुदर कियारी कर
पनरे से पौदा तिन्हे पानी से पालिबा
नीचै गिर गये ति हे टेक द ऊँची करो
ऊँचै चढि गये तिन्ह जरूर काँट डारिबो

१ शब्द लीला, पृ० ७।
२ वही, पृ० १०।
३ वही, पृ० २७।
४ वही, पृ० ९४।

फूलै फूलै फूल सब बीन एक ठौर करो
घनै घनै सब एक तरफ से उजारिबो
राजन को मालिन को नीति कहै देवीदास
चारि घरी राति रहै इतना विचारिबो ।[1]

गिरिवरदास

सत गिरिवर दासजी जलालीदास के पुत्र थे ।[2] कहना न होगा, जलाली दाम सत्त नामी सम्प्रदाय के प्रवतक सत जगजीवन साहब के पुत्र थे ।[3] तात्पय यह कि गिरिवरदास, जगजीवन साहव के पौत्र थे । सम्प्रदाया तगत इन्हे जगजीवन साहब के अवतार की प्रतिष्ठा प्राप्त ह ।[4] यह बडे सहज स्वभाव के महात्मा थे । इ हे अपनी कुल परम्परा का तनिक भी अभिमान नही था । बाल्यकाल से ही इनके अलौकिक व्यक्तित्व का लोगो पर व्यापक प्रभाव पडने लगा था । इनका विवाह तो हुआ था कि तु इ होने वैवाहिक जीवन के प्रति कोई रुचि नही दिखाई ।[5]

सत जलालीदास की मृत्यु के उपरा त गिरिवरदासजी कोटवा की गद्दी पर समासीन हुए । जिस समय यह कोटवा धाम (बाराबकी) के पीठाचाय हुए सत्तनामी पथ के सतो मे त्याग वत्ति का अभाव होने लगा था, लोग सत की रहनी को विस्मत करने लगे थे । ऐसे समय मे गिरिवर दासजी ने अपनी सूझबूझ का परिचय दिया । इ होने अपनी सगठन शक्ति के द्वारा पथ के भीतर नव चेतना का सचार किया । बोधेदास के अनुसार जब ससार एव भक्त गण रूपी लक्ष्मण अत्य त व्याकुल और बेहाल हो उठे थे तब गिरिवर दास रूपी हनुमानजी ने अपने उपदेश की सजीवनी से सबको नवजीवन दिया था ।[6]

१ राम ऋषिदास के व्यक्तिगत नोट बुक से ।

२ साइ गिरिवर गुरु अग्नि कै प्रगट भयौ ।

—भक्तमाल, प० ११

३ जगजीवन सुत भयो जलाली ।

—भक्तिविनोद

४ साई जगजीवन शरीरनिजत्याग समे कह्यौ हम अबही पलटि जग जाइ है ।
प्रगट भै बानी जौन जीवन कल्याण हेत ताहि सो करब पुनि खोजि एक ठई ह ।
बहुरि अमेठिया जो देविदास शिष्य मेरा ति ह सो करब गुरु गव सो विहाई है ।
सोई गिरिवर गुरु आनि के प्रगट भयो

—भक्तमाल, प० ११

५ भयो जो विवाह नेक कीन्हेउ ना प्रसग अग
कुटी करि रह्यो आप बाहिर उछाहि के ।

—वही, पृ० ११

६ जक्त भक्त लक्षमन भये व्याकुल बहुत बेहाल ।
सहित सजीवनि गिरवर ल्याये कपि तेहि काल ॥

—भक्त विनोद चौदहवा अध्याय

गिरिवरदास जी बडे तेजस्वी ओर साधनामय जीवन व्यतीत करने वाले महात्मा थे। इनकी महिमा का वणन करते हुए बोधेदास ने लिखा भी है—

गिरिवर गिरि मदर जस भारी, ज्ञान सिंधु मथि सुधा निकारी।
सो अमत सजीविन भाई, जेहि ते अजर अमर पद पाई ॥[१]

इनके ज म एव मरण की निश्चिन तिथि प्रस्तुत लेखक को नही ज्ञात हो सकी ह फिर भी इतना स्पष्ट है कि यह विक्रम की उ नीसवी शती के उत्तराद्ध मे अवश्य ही वतमान थे क्योकि इनके गुरु देवीदासजी का जीवन काल १७३५ से १८७० के म ्य पडता है।

इन्होने जगजीवन साहब की वाणी का सग्रह करने के साथ ही स्वय भी कुछ स्फुट वाणी की रचना की ह। नमूने के लिए कुछ छ द नीचे दिये जाते है—

आरति ज सतगुरू बजरङ्गी, कृपा सिंधु समरथ सतसङ्गी।
विरद पाल सति लगन सुधारन सतिनामी जन चूक निवारन।
पायक राम भक्त भयहारी, असरन सरन प्रणत सुखकारी।
वेद पुराण विदित सत करनी सुमिरत पाप ताप त्रयहरनी।
इष्ट देव स तन सिरताजा, महाबीर राखिय जन लाजा।
गिरवर पर अब कीजै दाया, दे वर दरस अभय कपिराया।[२]
पूजा विषय ममान है, जग जीवन मत जान।
गिरवर लिखा सो कीन्हेउ ओर न हिरदय आन ॥
पियत भाग औ गाजा भगत अमल नहि खाहि।
गिरवर जगजीवन कहा खाहिं सो नरकहिं जाहिं ॥
असबारी पर ना चढेउ बाहन अह निषिद्ध।
गिरिवर सो त्यागन किहेउ किहेउ रिष्य मुनि सिद्ध ॥[३]

अनूपदास

अनूपदास जी सतदेवीदास के पुत्र थे।[४] सत वत्ति इन्हे रिक्थ रूप मे प्राप्त हुई थी। इ होने बाह्य प्रभावो से सवथा ऊपर उठकर नाम साधना की थी।[५] कहते ह साधना मे अत्यधिक लीन रहने के कारण इन्हे दस दस दिन तक भोजन करने की सुधि नही रहती

१ भक्ति विनोद, प द्रहवा अघ्याय

२ आरती सग्रह आरती सख्या १२

३ नव ज्योति से

४ पुनि प्रभु देवी सुवन, भयो समस्त अनूपा।

—भक्तमाल (ईश्वरदास) प० ३८

५ गहेउ नाम निर्वान लग्यो अग सीत न धूपा।
नहिं कछु भूख पियास नही दुख सुख कछु लागे'

—वही, पृ० ३८

थी ।[१] यह भ्रमर वत्ति से जीवन यापन करने वाले महात्मा थे ।[२] इ होने भी स्फुट वाणी की रचना की ह । हि दी साहित्य के इतिहासकारो मे से शिवसिंह सेगर ने अपनी पुस्तक मे इनका उल्लेख किया ह । इनकी काव्य शैली के नमूने के रूप मे दो छद नीचे दिये जाते है—

गुरु लखावै नामको नाम लखावै रूप ।
रूप लखावै आपको कहिगे दास अनूप ॥ [३]

पासनि सो बाधि कै अगाधि जल बोरि राखे ।
तरि तरवारि सो मारि मारि हारे है ।
गिरि ते गिराय दिये डरपे न नेक तब ।
मतवारे भूधर से हाथी तरे डारे है ।
फेरे सिर आरा लै अगिनि माझ डारै पुनि ।
पूँछ मीडि तन सो लगाये नाग कारै ह ।
पूछते बतायो खम्भ तहँई दिखायो रूप ।
प्रकट अनूपदास वानि ही से प्यारे है ।[४]

रामसेवक दास

सत रामसेवक दास के पिता का नाम उदयराम था ।[५] उदयराम जी जगजीवन साहब के शिष्य और बाराबकी जिलातगत हरिश्चन्द पुर नामक ग्राम के निवासी थे ।[६] राम सेवक दास जी देवीदास के प्रिय शिष्य थे ।[७] यह ब्राह्म मूहूत मे उठकर अपने पिता उदयराम की समाधि के पास बैठकर बडी शुचिता के साथ साधना किया करने थे ।[८] कहते है कि इन

१ दस दस रोज तक भोजन की सुधि नाही,
सुधि जो करावै केऊ ताते उछरत है ।
—वही, प० ३९

२ करेउ न ठौर एक भ्रमर की वत्ति लीहेउ
आज यई कालिह् वई रहेउ न सो छाम है । —वही, प० ३९

३ राम ऋषिदास के व्यक्तिगत नोट बुक से

४ शिव सिंह सरोज, प० १०-११ से उद्धृत

५ उदयराम प्रभु तनय राम सेवक सुभ खानी ।
प्रगटे महा उदार भजन मूरति पहचानी ॥ —भक्तमाल (ईश्वर दास) प० ७६

६ उदैसम साहेब गुरु प्यारा, हरिश्चन्द पुरी मा ध्यान सभारा ।
अइसे दास भरा अनुरागी, प्रभु जगजीवन के पद लागी ॥ —अघनाशन से

७ सकल सुकृत भाजन विमल प्रभु देवी प्रगटेव भनौ ।
सोइ समस्त कृपाल होइ, ईश्वर निज करि जग जनौ । —भक्तमाल पृ० ७६

८ उदयराम साहब को सुदरि समाधि मद्धि,
बैठे मारि आसन कै कामना रदन ते ।
प्रान औ अपान वायु सोधि सो करत सम,
सूरति लगावै खीच गुरु के पदन ते । —वही, प० ७६

की सेवामे एक दासी रहती थी जिसके नाते इनके चरित्र के विषय मे लोकापवाद फैलने लगा था। एक दिन जब इन्होने सबके भ्रम का निवारण करने के लिए सबके सामन दासी को नगा हो जाने का आदेश दिया। गुरु का आदेश मानकर जब दासी ने वस्त्र उतारा तब लोगो ने उसे पुरुप रूप मे देखा और अपनी गलती स्वीकार करते हुये स्वामी जी से क्षमा याचना की।[1]

रामसेवक दास जी सत्तनामी सम्प्रदाय के वाणीकार सतो मे श्रेष्ठ स्थान के अधिकारी ह। इन्होने 'गुरु व दना' और 'अरवरावती नामक दो ग्रथो की रचना की। इनके द्वारा विर चित कुछ शब्द भी प्राप्त होते ह। ईश्वर दास ने इनके कवि रूप की प्रशसा करते हुए लिखा ह—

अनुभौ भाखेउ गिरा सिरा बहु विधि ते चोखी।
होत भक्त मन मगन सुनत पुनि गुनत अनोखी॥

ईश्वरदास की रचना का नमूना नीचे दिया जाता है—

साधो समझि ले मन माहिं।
नाम सम कछु और सतपथ सत भाखत नाहिं।
तीथ व्रत और जग्य जप तप जोग साधि रहाहिं।
नाम विन भे सव मिथ्या भरमि भटका खाहिं।
खचि प्राणायाम रहते भाड की गति आहिं।
नही मुक्ती होहि याते भजन बिनु पछिताहि।
नाम अविचल अकत अनुभव प्रीति जेहि मन माहिं।
'राम सेवक ध य वे नर सुमिरि सत मिलि जाहिं।

इसी प्रकार देवीदास जी के शिष्यो के अतिरिक्त इनकी शिष्य परम्परा मे वाणी की रचना करने वाले और भी वहुत से सत हो चुके है। सत गुरुदत्तदास और सत जवाहिरदास जैसे वाणीकार न केवल सतनामी सम्प्रदाय वरन समस्त निगु ण सत काव्य परम्परा के श्रृगार है। मध्यकालीन निगु ण भक्ति साहित्य का अध्ययन इनकी कृतियो से अनुशीलन के अभाव मे अधूरा रहेगा।



१ वही, प०७६

इलियट का "निर्वैयक्तिकता-सिद्धांत" और "साधारणीकरण"

प्रेमनाथ टडन

टी० एस इलियट (सन १८८८ १९६५) का नाम २०वी शताब्दी के प्रमुख अगरेजी कवि आलोचको मे परिगणित किया जाता है। अग्रेजी साहित्य म इलियट के सद्धातिक चितन का विशेष स्थान ह। इलियट ने क्रमबद्ध रूप मे सैद्धान्तिक आलोचना सबधी किसी स्वतत्र ग्रथ का प्रणयन नही किया। आलोचक के रूप मे उनकी प्रसिद्धि के प्रमुख आधार उनके वे विचार-विबेचन है जो उनके अनेक फुटकर निबधो और उनके द्वारा की गयी शेक्सपियर, दान्ते, ए ड्रयू मार्वेल आदि की कृतियो की व्यावहारिक आलोचनाओ मे उपलब्ध होते ह।

इलियट के काव्य सबधी विवेचना से एक बात बिल्कुल स्पष्ट है कि उ होने विशुद्ध आत्माभिव्यक्तिपरक तथा भावनावेगपूण काव्य का प्रबल विरोध किया है। उनके आक्र मण का प्रमुख लक्ष्य रोमानी भाव चेतना का काव्य था क्योकि वह मूलत व्यक्तिवादी काव्य है। इलियट की धारणा थी कि काव्य मे कवि के निजी भावो की अभिव्यक्ति काव्य को सकीणता की द्योतक है। इसके अतिरिक्त अनियत्रित भावावेग से युक्त काव्य किसी शाश्वत मूल्य की प्रतिष्ठा नही कर सकता, रोमानी का य की अतिशय कल्पना प्रवणता एव प्रबल भावावेगमयता उसे अस्पष्ट एव अमर्यादित बना देती ह। इसके परिणामस्वरूप मानसिक सघटना, जो काव्य का मूल तत्त्व ह, भग हो जाती ह। उनकी स्थापना ह कि काव्य मे 'अनेकता मे एकता' के स्वर और मर्यादित तथा व्यवस्थित भावो की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। इसलिए उ होने काव्य म सघटन, सम्यक नियोजना, उपयुक्त शिल्प विधान आदि पर विशेष बल दिया। काव्य की आत्मनिष्ठता एव वैयक्तिकता की घोर भत्सना करते हुए उन्होने एतद्विषयक चि तन क्रम मे सवप्रथम व्यक्तित्व से पलायन (एस्केप फ्राम पसनेलिटी) के सिद्धा त का प्रतिपादन किया जिसे व्यापक स्तर पर 'निर्वैयक्तिकता सिद्धा त का सिद्धा त' अथवा 'अव्यक्तिवाद कहा जा सकता है। प्रस्तुत सिद्धा त का क्रोचे के चरम आदशवादी सिद्धा त 'अभिव्यजनावाद से सीधा विरोध ह। काव्य से रचनात्मक स्तर पर सम्बद्ध होने के कारण ,इलियट ने निर्वैयक्तिकता सिद्धान्त का प्रतिपादन मूलत और मुरयत कवि की रचना प्रक्रिया के सदभ मे किया गया है। पर तु काव्यास्वादक पक्ष मे भी प्रस्तुत सिद्धान्त को उसी अनिवायता के साथ लागू किया जा सकता ह जिस अनिवाय अपेक्षा के साथ इलियट इसे कवि पर लागू करत ह। इलियट ने एक स्थान पर स्वय इसका सकेत किया ह 'काव्य के अस्वादन का एक ऐसा विशुद्ध अनु चिंतन ह जिस पर से वैयक्तिक सवेगो को सभी प्रकार की हलचले अपसत हो जाती है। इस प्रकार वस्तु जैसी ह, उसी रूप मे हम उसे देखने का प्रयत्न करते है।[1]

१ सेक्रेड वुड, प० १४ १५।

निर्वैयक्तिकता सिद्धात का दूसरा पक्ष स्वय काव्य के स्तर पर व्यवस्था (आडर) से सम्बद्ध है। यह प्रस्तुत सिद्धान्त के प्रथम पक्ष का सहज प्रतिफलन ह। वैयक्तिकता के परिहार एव निर्वैयक्तिकता की सिद्धि के फलस्वरूप भावावेग नियत्रित होता ह। इस प्रकार काव्य सबधी समान विवेचना की केन्द्रत्रयी—कवि, काव्य और आस्वादक—मे से प्रत्येक के धरातल पर इलियट ने वयक्तिकता का निषेध कर काव्य को मर्यादित, सतुलित, व्यवस्थित करने एव उसे वस्तुगत रूप प्रदान करने की चेष्टा की। काव्य कृति के सम्ब ध मे, इलियट ने एक अ य सिद्धा त का भी प्रतिपादन किया ह, जिसे 'आब्जेक्टिव कोरिलेटिव' अथवा 'वस्तुगत सह सबधा' का सिद्धा त कहते ह। यह सिद्धान्त काव्य की आत्मनिष्ठता का आत्यतिक निषेध कर काव्य की निपट वस्तुरूपता का प्रतिपादन तो नही करता, पर काव्य की वस्तुनिष्ठ प्रकृति को अपेक्षाकृत महत्ता अवश्य प्रदान करता ह।

निर्वैयक्तिकता सिद्धा त के प्रतिपादन का सूत्र इलियट ने परम्परा और काव्य के तारतम्य की अपनी व्यक्तिगत अवधारणा के आधार पर प्राप्त किया ह। वे, एक माने मे, इतिहास ओर परम्परा को काव्य का आधार मानते ह, और इ ही को उ होने अपने काव्य विषयक समस्त चि तन विवेचन का प्रस्थान बिन्दु स्वीकार किया ह। अपने प्रसिद्ध निबध 'परम्परा और वैयक्तिक प्रतिभा' मे उन्होने काव्य और परम्परा के अनिवाय अपेक्षित सबध निर्भ्रा त शब्दावली मे महत्त्व प्रतिपादन किया ह। काव्य और पारस्परिक सबध के गहरे और सूक्ष्म विश्लेषण का, एव उसके फलस्वरूप काव्य मे अव्यक्तिवाद की प्रतिष्ठा को, इलियट के समग्र चि तन को एक महत उपलब्धि के रूप मे ग्रहण किया जा सकता ह।

इलियट के अनुसार परम्परा का तात्पय 'सस्कृति' से ह। परम्परा और इतिहास से उनका आशय किसी विशिष्ट जाति एव समाज के समग्र सास्कृतिक उत्तराधिकार से ह। सस्कृति समाज के जीवन का एक ढग विशेष ह वह एक ऐसा ढग है जो रक्त सबध से जुडे हुए पूर समाज की उपलब्धियो एव रीति-रिवाजो को अभि यक्त करता चलता ह। यह ढग ही काव्य मे वैयक्तिक विभिन्नताओ का परिहार कर अनेकता मे एकता की स्थापना करता ह, कलाकारो को जाने अनजाने एक सामा य उत्तराधिकार और सामा य लक्ष्य के सूत्र मे बाध देता ह।[1] इलियट की दृष्टि मे समस्त साहित्य अखण्ड रूप है, किसी विशिष्ट काल अथवा व्यक्ति के साहित्य का अपना कोई पथक अस्तित्व नही होता, साहित्य मात्र मे परम्परा की अखड एव निर्बाध अभिव्यक्ति होती चलती ह। इलियट परम्परा की बहुत व्यापक अथ मे ग्रहण करते ह। परम्परा मे वतमान और अतीत दोनो का समावेश ह, वह अतीत बोध भी ह और वतमान बोध भी वह शाश्वत भी ह और परिवतनशील भी, उसकी सतत गत्यात्मक धारा अपने अखण्ड, अविच्छिन्न प्रवाह मे समग्र जातीय अथवा सामाजिक जीवन क अत्युत्कृष्ट अशो को समाहित करती हुई प्रवाहित होती ह। जो अपेक्षाकृत साधारण और अनुत्कृष्ट अश होते है, वे परम्परा के अखण्ड प्रवाह मे स्वयमेव विलीन होकर नष्ट हो जाते ह। श्रेष्ठ काव्य की रचना के लिए कवि को समाज की, देश की, इस अखण्ड चेतना का ज्ञान होना चाहिए, यह ज्ञान उसके लिए अनिवाय ह, उसको प्राप्त किये बिना वह उत्कृष्ट काव्य की रचना कर ही

१ सेलेक्टेड एसेज, पृ० २४।

नही सकता। प्रत्येक युग मे समय की शाश्वत गति और मानव इतिहास की सतत गत्यात्म कता के साथ ही उस युग की विभिन्न परिस्थितियो मे भी परिवतन होता है, काव्य प्रकारा न्तर से जीवन की ही अभिव्यक्ति है, इसलिए यह निता त स्वाभाविक ह कि उसके स्वरूप और उसके आकलन के मानदण्डो म भी परिवतन हो। परन्तु परम्परा के सम्यक ज्ञान के अभाव मे यह परिवतन किसी भी पक्ष मे सम्यक रूप मे प्रतिफलित नही किया जा सकता। इलियट की दष्टि मे परम्परा कोई जड, स्थिर वस्तु नही ह, उसमे नवीनता का सहज समावेश ह और नवीनता एव परिवतन इलियट के अनुसार सदा ही श्रेय है। पर इम परम्परा का ज्ञान प्राप्त करने की दिशा क्या होनी चाहिए ?—इलियट के अनुसार इसकी दिशा यही ह कि वनमान और अतीत दोनो का सस्कृति विशेष के सदभ मे ज्ञान प्राप्त किया जाय, वतमान को अतात के सदभ मे और अतीत को वतमान के सदभ मे देखा समझा जाय। यह ज्ञान स्वत उपलब्ध नही हो जाता, उसे सायास अर्जित करना होता ह।

प्रश्न है कि काव्य मे परिवतन को प्रतिफलित करने, नवीनता का समाविष्ट करने, की समुचित दिशा क्या हो सकती ह ?—समुचित दिशा यही हो सकती ह कि परिवर्तित युगीन परिस्थितियो के परिप्रेक्ष्य मे काव्य मे नवीनता का समावेश जातीय जीवन एव उसकी परम्परा के अनुसार ही हो, किसी दूसरी जाति की सस्कृति के अनुसार अथवा उसके अनुसरण पर नही। इलियट के अनुसार इसका तात्पय यह ह कि भारतीय का य मे नवीनता का समावेश भारतीय परपरा और सस्कृति के अनुरूप ही होना चाहिए, किसी दूसरे देश की परम्परा के अनुरूप अथवा उसके आधार पर नही, क्योकि ऐसा करने से वह काव्य युग-जीवन मे खप नही सकता। भारत के आधुनिक साहित्यकार जो पाश्चात्य काव्य परम्परा के अनुकरण, बल्कि अधानुकरण, को फैशन मानते है, इलियट की दष्टि मे हेय ठहराये जा सकते है। इसके अति रिक्त कवि कलाकार का यह भी दायित्व ह कि वह अपनी वैयक्तिक अनुभूतिया को व्यापक सामाजिक अनूभूतियो एव भावो—परम्परा—मे विलीन कर देता ह। परम्परा बोध उसकी वयक्तिक अनुभूतियो से अधिक मूल्यवान ह, इलियट इसी को 'मूल्यवान के प्रति आत्म समपण' कहते है। कवि का यह दायित्व ह कि वह अतीत बोध को अर्जित कर उसे परिवर्तित एव परिविकसित करता रहे और इस क्रम मे अपने व्यक्तित्व को उसके प्रति पूणतया सर्मपित कर दे। जब कवि परम्परागत सास्कृतिक अनुभूतियो को अभिव्यक्त करता है तब उसके व्यक्तिगत भाव सावभौम मे रूपान्तरित होकर व्यक्त होते है। कविता व्यक्तिगत भावो का प्रकाशन न होकर उनसे पलायन है, इलियट के अनुसार इस उक्ति का यही तात्पय है। यही काव्य मे निर्वैयक्तिकता की सिद्धि है। कवि तो एक माध्यम मात्र रहता है, काव्य मे उसके निजी भावो प्रभावो की अभिव्यक्ति नही होती, अपितु जातीय जीवन के प्रभावो की अभिव्यक्ति होती है। इसके विपरीत यदि कोई कवि अपनी रचना मे अपने निजी दुख दद की गाथा लिखता है, तो वह काव्य के महान् उद्देश्य से च्युत हो जाता ह।

कवि अपनी रचनाओ में निर्वैयक्तिकता की सिद्धि किस प्रकार करता है, अथवा उसका काव्य निर्वैयक्तिक कैसे हो सकता है इसके स्वष्टीकरण के लिए इलियट ने कवि और उसके काव्य के पारम्परिक सम्बन्ध का निरूपण करते हुए एक दष्टान्त प्रस्तुत किया है दोनो गैस आक्सीजन और सल्फर डाइ-आक्साइड जब प्लैटिनम के तार की मौजूदगी मे मिलायी जाती ह

तो उनसे सल्फ्यूरिक एसिड बनता ह। यह सयोग तभी होता है जब प्लेटिनम का तार भी मौजूद हो तथापि नय बने एसिड मे प्लेटिनम के तार का लेशमात्र भी नही होता और प्लेटिनम पर भी कोइ प्रभाव नही प्रतीत होता—उसमे न कोई परिवतन आता है, और न उसका कोई अश घोल मे जाता ह। कवि का मन इस प्लेटिनम के टुकडे की भाति होता ह। व्यक्ति के अनुभव को वह अशत अथवा पूणत प्रभावित कर सकता ह परन्तु कलाकार जितना सिद्ध-हस्त हागा उतने ही उसमे भोक्ता और स्रष्टा मन परस्पर पथक रहगे और उतना ही सुष्ठु रीति से मन अपनी उपादानरूप वासनाओ को आत्मसात और रूपा तरित करगा।[१]

इस उद्धरण से ऐसा प्रतीत होता ह कि प्लेटो की भाति इलियट भी कवि को एक यात्रिक माध्यम मात्र स्वीकार करते ह। यहा उ हाने बताया ह कि कवि मानस म भाव ओर भावनाए कविव्यक्तित्व से सवथा असपक्त रहते हुए उसी प्रकार विशिष्ट एव अप्रत्याशित रूपो मे सघटित होती रहती ह जिस प्रकार प्लेटिनम के टुकडे की उपस्थिति मे उक्त दोना गसे सघटित होकर एसिड वनाती ह और प्लेटिनम का टुकडा सवथा अप्रभावित एव निष्क्रिय रहता ह। इलियट ने इस सम्बध मे अन्यत्र कहा ह "कवि का मन वास्तव मे एक ऐसा ग्रहण यत्र ह जो उन सभी अगणित अनुभूतियो, वाक्याशा तथा विम्बो को ग्रहण करता ह और उ हे जमा करता है जो वहा पर तव तक पडे रहते ह जब तक नव मिश्रित वस्तु को रूप प्रदान करने के लिए सभी तत्त्व एक साथ उपस्थित नही हो जाते।'[२]

प्रस्तुत उद्धरण मे इलियट ने कवि मन के लिए ग्रहण यत्र शब्द का प्रयोग किया ह जिससे यह अनुमान होता ह कि वे एक स्व चालित यत्र और काव्य कृति को कवि की अचेतावस्था की उपज स्वीकार करते ह। एक अ य स्थान पर उ होने बलपूवक कथन किया है कि कला का जीवन सवथा स्वतत्र है काव्य कृति का आकलन कवि व्यक्तित्व से सवथा अस-पक्त रूप मे किया जाना चाहिए, और यह, कि उत्कृष्ट आलोचना कविता की होती है, कवि की नही। इलियट के ये सारे कथन इस अनुमान का पुष्ट करते है कि इलियट काव्य मे कवि व्यक्तित्व की सत्ता का आत्यन्तिक निषेध स्वीकार करते हैं। उद्धरण मे सजन-प्रक्रिया के सबध मे प्लेटिनम के तार का रूपक उपस्थित करते हुए उन्होने यह भी बताया है कि एसिड के निर्माण की प्रक्रिया मे प्लेटिनम का तार "निष्क्रिय" रहता ह। इससे यह निष्कष निकाला जा सकता ह कि काव्य सजन की प्रक्रिया मे कवि "निष्क्रिय' रहता है और सजन प्रक्रिया कवि के चेतनमन की प्रक्रिया न होकर एक जड, यात्रिक प्रक्रिया ह। पर प्रश्न यह ह कि क्या कलाकार के व्यक्तित्व से सवथा अस्पष्ट किसी कलाकृति की कल्पना की जा सकती ह? क्या कोई ऐसी कलाकृति हो सकती ह जो कलाकार की अनुभूति के योग के बिना ही निर्मित हो गयी हो? क्या सृजन प्रक्रिया वस्तुत कोई जड, यात्रिक प्रक्रिया है?—क्या वह कलाकार के सतत चेतन मन की प्रक्रिया नही है?—स्पष्ट ह कि इन प्रश्नो का उत्तर सकारात्मक नही हो सकता। तब क्या इलियट काव्य मे कवि व्यक्तित्व के सहज, अनिवाय

---

१ सेलेक्टेड एसेज, पृ० १२४ २५।

२ ट्रेडीशन एड दि इडिविजुअल टलैट,।

योग के तथ्य को हृदयगम नही कर पाए, या उनका तत्सबधी समस्त विवेचन भ्रामक ह ?—इलियट के विषय मे कोई ऐसी धारणा बनाना कदाचित भूल होगी। इस सम्बन्ध मे यह अवश्य कहा जा सकता ह कि इलियट ने अपने एतद्विषयक विवेचन को बहुत स्पष्ट शब्दावली मे प्रस्तुत नही किया या नही कर पाये जिसके फलस्वरूप भ्रम की स्थिनि कही कही उत्पन्न हो गयी ह। सन १९४० मे दिये गये यीटस विषयक अपने एक भाषण मे उ होने स्वीकार किया ह "यीटस के प्रारम्भिक कविता सग्रहो की सभी कविताओ मे मुझे इधर उधर केवल कुछ ऐसी पक्तिया मिल जाती है जिनमे अपूव व्यक्तित्व का भान होता ह, जो हमे कवि के मानस और अनुभूतियो के विषय मे और अधिक जानने की जिज्ञासा और उत्तेजना मे बाध देता ह। यीटस के निजी भावात्मक अनुभव की उत्कटता हमे कदाचित ही मिलती ह। उसकी कुछ उत्तरकालीन कृतियो मे हमे यह तत्त्व मिलता ह।"

इलियट के स्फुट समीक्षात्मक निब धो के सकलन "सेक्रेड वुड" जिसमे उनका प्रसिद्ध निबध 'ट्रेडीशन एन्ड दि इडिविजुअल टैलेट' सकलित है और जिसमे उन्होने काव्य मे निर्वैयक्तिकता की सिद्धि को अनिवाय माना है—का प्रकाशन सा १९२८ मे हुआ था। पर १९४० मे उ होने यीटस के विषय मे उक्त कथन किया है। इसमे यह विशेष रूप से द्रष्टव्य ह—कि इलियट इटस की प्रारभिक कविताओ मे उसका अपूव व्यक्तित्व न मिलने, उसके भावात्मक अनुभवो की उत्कटता न मिलने, के कारण चिन्तित ह। इलियट जो अभी तक काव्य को 'व्यक्तित्व से पलायन' मानते आये है, यीटस के सम्बध मे अब यह आपत्ति कर रहे है कि उसकी कविताओ मे उसका व्यक्तित्व मुखरित नही होता, इसलिये वे उत्कृष्ट नही है। उक्त कथनो मे निहित विरोधाभास को इलियट ने स्वय लक्षित किया, और उसका स्पष्टीकरण करते हुए उन्होने कहा है 'मैने" अपने प्रारम्भिक लेखो मे कला की निर्वैयक्तिकता को स्वीकार किया है, और जब (यह) प्रतीत होता ह कि यीटस की उत्तरकालीन कविताओ का, उसके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होने के कारण श्रेष्ठ बताने से मै अपने उस मत का विरोध कर रहा हू तो यह हो सकता ह कि मैं अपनी बात (उस समय) ठीक से न कह सका या न व्यक्त कर सका, या उस विचार को मैने अप्रौढ रूप से ग्रहण किया। किंतु अब मै सोचता हू कि इस विषय मे तथ्य इस प्रकार ह—निर्वैयक्तिकता के दो रूप होते है। एक वह निर्वैयक्तिकता ह जो केवल कुशल शिल्पी के लिए प्राकृतिक होती है। दूसरी वह है जो प्रौढ कलाकार के द्वारा अधिकाधिक उपलब्ध की जाती है यह दूसरे प्रकार की निर्वैयक्तिकता उस प्रौढ कवि की होती ह जो अपने उत्कट और व्यक्तिगत अनुभवो के माध्यम से, सामान्य सत्य को व्यक्त करने मे समथ होता है। वह अपने अनुभव की सम्पूण विशिष्टता को, उसके द्वारा सामा य प्रतोक प्रस्तुन करने लिए, बनाए रखता है।"

इलियट के उक्त परवर्ती मत से उनके पूववर्ती मत का विरोधाभास और पुष्ट होता है। पर ऊपर कहा जा चुका है, और जैसा इलियट ने स्वयम् भी स्वीकार किया ह, यह केवल विरोधाभास है वास्तविक विरोध नहीं 'और इस प्रतीयमान विरोध का करण विषय का सम्यक और स्पष्ट शब्दावली मे व्यक्त न किया जाना है। इलियट का विचार अप्रौढ या उनकी चिंतन अपरिपक्व नही है, उन्होने काव्य की सृजन प्रक्रिया को सही रूप मे हृदयगम किया है इसमे सदेह नही, बस वे उसे स्पष्ट ढग से कह नही पाये। कालातर मे उन्होने उसे स्पष्ट शब्दावली मे व्यक्त किया है।

संस्कृत काव्यशास्त्र मे भी साधारणीकरण के अ तगत "निवयक्तिकता' की चर्चा की गयी है। वास्तव मे व्यक्ति रूप कवि के दो रूप है — १–भावना या व्यक्ति रूप कवि, और २–सजक कवि। पहला पक्ष कवि का सामान्य मानवीय व्यक्तित्व ह। जिस प्रकार सामान्य व्यक्ति अपने दैनदिन जीवन मे नाना प्रकार के भावा का अनुभव करत ह उसी प्रकार कवि भी करता ह। परन्तु सामान्य व्यक्ति से कवि एक बात म विशिष्ट ह कि वह सासारिक अनुभवा को भावित कर काय रूप म व्यक्त भी कर सकता ह। भावो के भावन और अभिव्यक्तिकरण के क्रम मे उसका स्रष्टा मन सक्रिय होता ह जिसे कवि का सजक व्यक्तित्व (पोइटिक अथवा क्रियेटिव पसनेलिटी) भी कहते है। यह सजक व्यक्तित्व कवि के सामा य मानवीय अर्थात लौकिक व्यक्तित्व से सवथा पथक ओर विशिष्ट प्रकार का होता ह। इलियट जहा कहते है कि कवि काव्य मे अपने व्यक्तित्व की अभिव्यवित नही करता अथवा 'काव्य व्यक्तित्व से पलायन' ह वहा उनका तात्पय कवि के उसी सामा य, लौकिक व्यक्तित्व से ह, भोक्ता व्यक्ति रूप कवि से ह उसके सजक व्यक्तित्व से नही। कवि के सजक व्यक्तित्व के योगदान के अभाव मे काय की कल्पना ही असगत ह। इलियट ने भी इस तथय को भली भाति हृदयगम किया ह। वे काव्य सजन मे कवि की महत्ता स्वीकार न करते हो, अथवा उसकी अनिवाय अपेक्षा न मानते हो, ऐसी बात नही ह—यह प्लेटिनम वाले रूपक से सिद्ध ह। जिस प्रकार प्लेटिनम की उपस्थिति मे ही दोनो गसे मिलकर एसिड बना पाती ह, भले ही प्लेटिनम अप्रभावित रहता हो, उसी प्रकार कवि के सजक व्यक्तित्व की मौजूदगी मे अथवा उसके माध्यम से भाव एव भावनाए काव्य रूप मे व्यक्त हो पाती ह, भले ही कवि व्यक्तित्व अप्रभावित रहता हो। यह अप्रभावित रहने वाला और अघुलनशील व्यक्तित्व कवि का सामान्य मानवीय व्यक्तित्व होना ह, क्याकि काव्य मे कवि के वयक्तिक भावो, उसके निजी अनुभवो की अभिव्यक्ति नही होती अपितु उसके कलात्मक अनुभव (पाइटिक या क्रियेटिव एक्सपीरियस) की अभिव्यक्ति होती ह जो कवि के सजक व्यक्तित्व के माध्यम से होती ह। निजी भाव, व्यक्तिगत अनुभव लौकिक, ससगयुक्त एव सुख दु खात्मक होते है, और यही कारण है कि वे आस्वाद्य नही हो सकते। काव्य का अनुभव अन्य सभी प्रकार के लौकिक अनुभवो से विलक्षण है, इलियट इसे स्वीकार करते ह [१] "दि एन्ड आफ दि एज्वायमेन्ट आफ पाइटा इज ए प्योर क टेम्प्लेशन फ्राम ह्विच आल दि ऐक्सिडे टस आफ पसनल इमोशन आर रिमूव्ड"[1] और [२] "दि इफेक्ट आफ ए वक आफ आट अपान दि पसन हू एज्वायज इट इज एन एक्सपीरियस डिफरेट इन काइड फ्राम एनी एक्सपीरियस नाट आफ आट"[2]। काव्यान द विलक्षण इसीलिए है कि काव्य कवि के उस विशिष्ट सजनात्मक व्यक्तित्व का प्रतिफलन है जो व्यक्तिगत ससर्गो से मुक्त होता है, और व्यक्तिगत ससग मुक्त सहृदय द्वारा ही आस्वाद्य होता ह। भावन एव सृजन के क्षणो मे कवि अपने सामा य, ससारी व्यक्तित्व से ऊपर उठ जाता ह, वैयक्तिक राग-द्वेषो से मुक्त हो जाता है, जिसका सहज परिणाम यह होता ह कि कवि का किसी विशिष्ट स्थिति, किसी विशिष्ट घटना अथवा भाव का अनुभव भावन के क्रम मे देश कालादि की सीमाओ से मुक्त होता हुआ कलात्मक अनुभव म रूपान्तरित होकर आस्वाद्य बन जाता ह। यह सब कवि की सजनात्मक कल्पना अथवा प्रतिभा के सहारे होता ह। इलियट के

१—व २—सेक्रेड वुड।

अनुसार काव्य मे निर्वैयक्तिकता की सिद्धि की प्रक्रिया और उसका स्वरूप यही हो सकता ह। उन्होने लिखा भी है कि जो कलाकार जितना अधिक पूण एव परिपक्व होगा उसमे भोक्ता व्यक्ति एव स्रष्टा मन का पाथक्य उतना ही अधिक स्पष्ट और पूण होगा।[१] अर्थात प्रौढ कवि अपने काव्य को अधिक से अधिक निर्वैयक्तिक बताने के लिए प्रयत्नशील रहता ह। यह निव यक्तिकता केवल कवि के निजी भावो का अपसरण नही है, अपितु निजी मात्र भाव का अप सरण ह, वैयक्तिकता मात्र का अपसरण है। इलियट ने इस तथय को अपने अनेक कथनो मे स्वीकार किया है —

[क] "महान कला निर्वैयक्तिक होती ह, इस अथ मे कि व्यक्तिगत सवेद ओर व्यक्तिगत अनु भव विस्तत होकर एक प्रकार के निर्वैयक्तिक मे पूणता प्राप्त करते हैं, इस अथ मे नही कि व्यक्तिगत अनुभव तथा मनोविकार से वे विच्छिन्न हो जात है।"[२]

[ख] "काव्य के आस्वाद का लक्ष्य एक ऐसा विशुद्ध अनुचिन्तन है जिस पर से वैयक्तिक सवेगो की सभी प्रकार की हलचले अपसत हो जाती है।"[3]

[ग] "The program of an artist is a conditional self sacrifice, a con ditional extinction of personlity "[४]

[घ] " Retaining all the particularity of his experience, to make of it a generat symbol "[५]

इलियट काव्य मे कवि व्यक्तित्व के निरन्तर विलय की बात करते है परम्परा के प्रति कवि के पूर्ण आत्म समपण को श्रेय मानते है। 'साधारणीकरण' के अन्तगत भी इस सबध मे विस्तत चर्चा की गयी ह। सस्कृत काव्यशास्त्र मे भी काव्य मे कवि के व्यक्तिगत मनोविकार की अभिव्यक्ति को स्वीकार नही किया गया ह। ध्वन्यालोक लोचन मे 'शोक श्लोकत्वमागत ' की व्याख्या के सदभ मे अभिनवगुप्त ने कहा है 'न तु मुने शोक इति मन्तव्यम' अर्थात श्लोक रूप मे परिणत होने वाला यह शोक मुनि का व्यक्तिगत मनोविकार नही था। पर क्रौच वध की इस विशिष्ट घटना को देख कर कवि ने जिस भाव का अनुभव किया क्या वह उसका निजी भाव नही कहा जायगा ?—इसका स्पष्ट उत्तर ह कि वह उसका निजी अनुभव तो था, पर निजी भाव या मनोविकार नही। निजी अनुभव भी इस दृष्टि से कि कवि ने उस सारी घटना का एक विशिष्ट रूप, एक विशिष्ट परिवेश मे और एक विशिष्ट प्रकार से अनुभव किया और वह विशिष्ट अनुभव कवि की भावयित्री प्रतिभा के योग से कलात्मक अनुभव मे रूपान्तरित हो गया। यह कलात्मक अनुभव के अन्तगत अनुभूत होने वाला भाव (शोक) न कवि का व्यक्तिगत मनोविकार था न क्रौची का और न किसी और का ही। वह भाव वस्तुत काव्योपम भाव

१ सैक्रेड वुड।
१ ला सर्पेण्ट की भूमिका।
३ सैक्रेड वुड।
४ सक्रेड बुड।
५ समीक्षालोक, भगीरथ दीक्षित, प० ५७२ पर उदधृत।

था जो कवि के मानस मे उत्पन्न हुआ था। और कवि प्रतिभा के योगदान से सावभौम बन गया था। "सावभौम" का अथ 'प्रत्येक का' नही ह, अपितु 'किसी का न होते हुए सबका' ह यह 'पसनल इम्पसनल अनुभव' या 'भाव' ह, उसकी सत्ता वस्तुरूप ह। हुआ यह कि वध की घटना देखते समय कवि मानस म सस्कार रूप मे सुप्त स्थायी भाव शोक जागृत हुआ। स्थायी भाव प्रकृत्या सावभौम होने के कारण साधारणीकरण की सभावना से युक्त होता ह। डा० निमला जन ने स्थायी के सावभौम स्वरूप के विषय मे लिखा ह " अन्य भावो के साथ स्थायी का वही सम्ब ध ह जो विशेषो के साथ सामा य का होता ह। जिस प्रकार काव्यगत चरित्रो एव बिम्बो मे अनेक छोटे छोटे ब्यौरो के बीच एक सामा य तत्त्व अ तर्निहित रहता ह उसी प्रकार काव्यगत भावो मे भी अनेक सचारियो के बीच एक स्थायी की सत्ता स्वीकार की जा सकती ह। इस प्रकार स्थायी भाव प्रकृत्या 'सामा य ही होते ह। सामा य होने के कारण ही स्थायी भावो के साधारणीकरण की समस्त सभावना उनकी प्रकृति मे ही विद्यमान ह।"[१]

इस प्रकार, साधारणीकरण सिद्धा त के अ तगत काव्य मे काव्योपम, सावभौम स्थायी की अभि यक्ति का स्वीकार प्रकारा तर से कवि का अपने निजी व्यक्तित्व निजी भाव, का सावभौम के प्रति समपण तथा काव्य मे निवयक्तिकता की सिद्धि ही ह। स्मरणीय ह कि इलियट ने अपने समस्त काव्य चि तन मे स्थायी भाव जसे किसी तत्त्व का उल्लेख नही किया है पाश्चात्य काव्य चिंतन मे स्थायी की धारणा ही अनुपलब्ध है। पर इलियट जिसे 'परम्परा' अथवा 'सामूहिक भाव अथवा चेतना' का अभिधान दे रहे है वह दूसरी शब्दावली मे स्थायी भाव ही ह। मथ्यू आर्नाल्ड ने एक स्थान पर अवश्य कहा है —" ' Those elementary feelings which subsist permanently in the race " जिसमे स्थायी भाव का सकेत प्राप्त किया जा सकता ह और इलियट, जिन पर आर्नाल्ड का पर्याप्त प्रभाव ह, ने भी कहा ह —"Not to find new emotions but to use the ordinary ones"। इस कथन मे भी स्थायी का सकेत मिलता ह। वसे, इलियट की 'परम्परा' मे सामूहिक भाव का और 'सामूहिक भाव' मे स्थायी का समावेश ह, और सामूहिक भाव व्यक्तिगत ससग युक्त नही होत। जहा इलियट कहते ह कि काव्य व्यक्तित्व से पलायन ह वहा वे कवि के लौकिक, बिल्कुल निजी व्यक्तित्व का परिहार तो स्वीकार करते ही है[२], उनका आशय व्यक्तित्व मात्र के परिहार से ह, यह पहले बताया गया ह। इसका सहज परिणाम यह है कि काव्य वर्णित भाव काव्योपम हो जाता ह, वह न मेरा रह जाता है न तेरा, न कवि का और न किसी और का, उसकी सत्ता वस्तुनिष्ठ हो जाती ह और इसलिए वह सवजन ग्राह्य बन जाता है। इस प्रकार 'महान कला निर्वैयक्तिक होती ह,—इलियट की प्रस्तुत उपपत्ति का आशय स्पष्ट ह। पर, जैसा कहा जा चुका ह, इलियट काव्य मे कवि व्यक्ति मात्र का निषेध नही करते, क्योकि ऐसा करने पर रचनागत वैशिष्टय के औचित्य को सिद्ध करना प्राय अस

१ रस सिद्धा त और सौ दयशास्त्र, प० २०६ २०७।

२ एक ओर वास्तविक जीवन सदव विषय सामग्री ह और दूसरी ओर वास्तविक जीवन से अपसरण कलाकृति के सृजन के लिए आवश्यक शर्त ह।"

—सेलेक्टेड एसेज, पृ० १११।

भव हो जायगा। इसलिए उन्होने स्वय लिखा ह ' Retaining all the particularity of his experience, to make of it a general symbol।" अतएव इलियट के विवेचन मे कवि के सजनात्मक व्यक्तित्व के योगदान का निषेध नही है। काव्यास्वाद के विषय मे एम० हिरियाना ने लिखा ह " it is a personal empersonal experience।"[1] लौकिक व्यक्तित्व और निजी भावो का अपसरण हो जाने पर काय वयक्तिकता और अतिशय भावुकता से मुक्त हो कर सतुलित और व्यवस्थित हो जाता ह जिसकी सिद्धि इलियट को अभिप्रेत ह। सजन के धरातल पर यदि कवि आत्मसमपण के द्वारा निर्वैयक्तिकता की सिद्धि करता हुआ काव्य का वस्तुनिष्ठ एव सवजनग्राह्य रूप प्रदान करता ह तो आस्वाद के धरातल पर सामाजिक भावावेश, यहा तक कि व्यक्तिगत रागद्वेष मात्र, से मुक्त हो कर काव्य के आस्वादन मे प्रवत्त होता ह।

इलियट के निवयक्तिकता सिद्धा त अथवा वस्तुनिष्ठता के सिद्धा त का एक अ य पक्ष ह जिसका सम्ब ध भाव यजना के माध्यम से है। इलियट की मान्यता ह कि कवि अपने मानसगत काव्योपम भाव को सीधे पाठक तक सप्रेषित नही कर सकता उसकी सम्यक अभि व्यक्ति के लिए मूत्त माध्यम की आवश्यकता ह। अपने एक प्रसिद्ध निब ध 'हमलेट एण्ड हिज प्राब्लम्स मे हमलेट के सदभ मे उक्त माध्यम के स्वरूप की चर्चा करते हुए इलियट ने लिखा ह—'कला के रूप मे सवेगो की अभिव्यक्ति का एकमात्र ढग वस्तुगत सहसब धो की खोज ह, दूसरे शब्दो मे वस्तुओ की एक राशि, एक स्थिति, घटनाओ की एक श्रृखला जो उस सवेग विशेष के लिए 'फामूला' है जिसमे ऐन्द्रिय अनुभव मे परिणत होने वाले बाह्य तथ्यो के प्रस्तुत होने पर वह सवेग तत्काल उदबुद्ध हो जाता ह।[2] इलियट की यह शब्दावली काफी स्पष्ट ह। काव्योपम भावो को कवि कुछ ऐसी स्थितियो, वस्तुओ, घटनाओ आदि के माध्यम से प्रस्तुत करता ह कि उनसे सपक स्थापित होते ही पाठक के मानस मे भी तत्काल वह सवेग उदबुद्ध हो जाता ह जिसकी अभि यक्ति के निमित्त से वस्तुए आदि 'फामूला बनी है। इस प्रकार यह सामग्री (वस्तुगत सह सबधी वस्तुए, स्थितिया, घटनाएँ) कवि की अमूत अनुभूति, काव्योपम भाव, का मूत्त रूप है जिनसे कवि एव ग्राहक के बीच सबध सूत्र स्थापित होता है।

साधारणीकरण सिद्धा त के अन्तगत भी कवि के अ तगत काव्योपम भाव के सम्मूर्त्तन का विशद विवेचन ह। इलियट के वस्तुगत सह सबधियो क समकक्ष सस्कत काव्यशास्त्र के विभावानुभावादि प्रस्तुत किये जा सकते ह। कवि भावो को उ ही वस्तुरूप विभावानुभावो के माध्यम से अभि यक्त करता है, जिन से साक्षात्कार होते ही पाठक के हृदय म वही भाव उदबुद्ध हो उठते ह। एक प्रकार से वे वस्तुगत सहसबधी, विभावानुभाव, भाव के कारण ह। पर सस्कत काव्यशास्त्र मे इसका निर्भ्रा त विवेचन ह कि ये विभवानुभाव लौकिक कारण नही है। और न उनके साक्षात्कार स सहृदय हृदय मे उद्बुद्ध होने वाला भाव लौकिक भाव ही है। लौकिक कारण एव भाव से इनके पाथक्य एव वलक्षण्य के बोध के लिए ही उन्हे

---

१ आट एक्सपीरिएस—एम० हिरियाना।

२ सेलेक्टेड एसेज, पृ० १२४ २५।

विभाव, स्थायीमाव आदि सज्ञाए दी गयी ह। ध्व यालोक लोचन मे अभिनवगुप्त ने यह चर्चा उठायी ह कि विभावानुभावो से भाव किस प्रकार उदबुद्ध अथवा अभिव्यक्त होते हैं और इसका स्पष्टीकरण करते हुए उ होने बताया ह कि वे घट दीप न्याय से प्रकाशित अथवा अभि व्यक्त होते ह विभाव और स्थायीभाव मे कोई तार्किक अथवा आनुमानिक सम्बन्ध नही हैं। इलियट ने भावव्यजना की प्रक्रिया पर सभवत कोई प्रकाश नही डाला। पर यह उन्होन अवश्य कहा ह कि कवि अपने भावो को पाठक तक सीधे सप्रेषित नही कर सकता सप्रेषण के लिए मूत माध्यम की आवश्यकता ह। भारतीय काव्यशास्त्र के एक आधुनिक अध्येता श्रीकृष्ण रायन ने अपने एक निब ध 'रस और वस्तुगत सह सम्बन्धी' मे इस विषय पर प्रश्न उठाया ह कि भाव और ऐद्रिय सहसम्ब धियो के बीच जो सम्ब ध भाव होता ह उसकी निश्चित प्रकृति क्या है और फिर वह प्रक्रिया क्या ह जिससे भाव का उदय होता ह ?' और अभिनव गुप्त के आधार पर इस प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री रायन ने कहा ह कि 'काव्य के अ तगत ऐद्रिय सह सम्ब धी कहलाने वाली वस्तुए भाव को उसी प्रकार व्यजित करती ह जिस प्रकार ध्वनि के सहारे शब्द अथ को व्यजित करते है।'[१] श्री रायन ने आधुनिक शब्दावली मे काव्य गत वस्तु को भाव का 'व्यजक सहधर्मी' कहा ह।[२]

इलियट के कुछ समीक्षको के अनुसार इस प्रकार की विचारधारा का प्रतिपादन इलि यट से पूव अन्य कई आलोचक कर चुके थे। उदाहरण के लिए प्रोफेसर मेरियो प्राज ने इस सिद्धा त का स्रोत एजरा पाउण्ड के प्रस्तुत कथन मे स्वीकार किया ह कविता एक प्रकार का प्रातिभ गणित है, जो हमे समीकरण प्रदान करता ह—अमूत्त आकारो त्रिकोणो, वत्तो आदि के समीकरण नही, बल्कि मानव सवेगो के समीकरण।[३] कुछ विद्वानो ने इलियट के उक्त मत का मूल फ्रासीसी प्रतीकवादियो के काव्य विषयक बिवेचनो मे खोजने की चेष्टा की है। प्रतीकवादियो की मा यता ह कि कविता भावो को प्रत्यक्ष रूप मे अभिव्यक्त नही कर सकती, भाव केवल उदबुद्ध किये जा सकते है। वस्तुस्थिति चाहे जो हो, इलियट के 'वस्तुगत सहसबधी' के सिद्धा त की अनेक दष्टियो से आलोचना की गयी ह। एक तो यह कहा गया ह कि इलियट ने प्रस्तुत सिद्धान्त का प्रतिपादन यद्यपि काव्य की वैयक्तिकता एव भावावेगमयता के प्रति विरोध भाव व्यक्त करते हुए किया था और उसे वस्तुनिष्ठ रूप प्रदान करना चाहा था तथापि उक्त सिद्धा त प्रत्यक्ष रूप मे भावाभिव्यक्ति पर ही बल देता है, क्योकि वस्तुगत सह सबधी अ तत भाव को ही अभिव्यक्त करते है। अतएव, कुल मिलाकर यह सिद्धा त भाव को ही काव्य का आधारभूत तत्व स्वीकार करता ह।[४]

इलियट और उनके प्रस्तुत सिद्धा त पर यह आक्षेप लगाया जाना कदाचित सगत नही

---

१ ब्रिटिश जनल आफ एस्थटिक्स, जुलाई '६५, पष्ठ ३५० ५१।

२ रस सिद्धान्त और सौदय शास्त्र, निमला जैन।

३ दि स्पिरिट आफ रोमा स, प० ५।

४ "In this Eliat accepts inspite of his avowed classicision that' the artist is primarily concerned with tenstion"

—क्रियेशन एण्ड डिस्कवरी, इलीसियो बाइबस, प० २४८।

है, क्योकि उन्होने काव्य की सत्ता अथवा भावाभिव्यक्ति मात्र का निषेध नही किया है उन्होने एक ओर तो काव्य मे वैयक्तिक भावो की अभिव्यक्ति का निषेध किया है और दूसरी ओर रोमानी काव्य जैसी अतिशय भावावेगमयता का। प्रस्तुत सिद्धान्त के प्रतिपादन से वे बहुत कुछ अपने उद्देश्य की सिद्धि मे सफल हुए ह क्योकि वस्तुगत सह सबधियो के माध्यम से अभिव्यक्त काव्योपमभाव भी वस्तुनिष्ठ स्वरूप प्राप्त कर लेता ह, इस अथ मे कि वह किसी एक का न रहता हुआ भी सवजन सवेद्य बन जाता है।

कुछ अ य विचारको ने हैमलेट एण्ड हिज़ प्राब्लम्स मे इलियट के उक्त वक्तव्य मे प्रयुक्त 'सवेग' शब्द पर आपत्ति की ह, और इलियट पर आक्षेप करते हुए कहा ह कि जिस भाषा मे इलियट ने उपयुक्त सदभ मे भावव्यजना की वस्तुनिष्ठता का निरूपण किया ह, वह अभिव्यजनावादी भावात्मकता का आभास देती ह, साथ ही वह इतनी तकशिथिल है कि उसमे वस्तुनिष्ठता की अभीष्ट प्रतिष्ठा नही हो पाती।'[1] इस सदभ मे विलियम विमसट ने इलियट के उक्त कथन के स्थान पर उनके एक अ य कथन को वस्तुगत सह सबधी के सिद्धान्त का अपेक्षाकृत अधिक सतोपजनक रूप माना ह। इलियट का वह कथन इस प्रकार ह "वे अपने सर्वात्तम रूप मे मन की स्थितियो और अनुभूतियो के लिए शाब्दिक पर्याय खोजने के प्रयास मे सलग्न थे।'[2] विमसट के अनुसार प्रस्तुत कथन मे "सवेग" के स्थान पर 'मन की स्थितियो और अनुभूति' पद का प्रयोग अधिक परिष्कृत एव सतोषप्रद है। श्रीकृष्ण रायन ने इल्यिट के प्रस्तुत कथन पर एक अन्य दष्टि से आक्षेप किया ह, यद्यपि यह आक्षेप अप्रत्यक्ष ह। उन्होने प्रश्न उठाया है कि वह वास्तविक प्रक्रिया क्या ह जिसके द्वारा लौकिक पदाथ आस्वाद्य पदार्थो मे परिणत हो जाते है ?—और इसका उत्तर देते हुए -उन्होने कहा है कि सस्कृत और पाश्चात्य काव्यशास्त्र मे इसका उत्तर एक सा ही है—'साधारणीकरण'। परन्तु इलियट की अपनी स्वय की रचनाओ मे उनके निजी बिम्ब किस प्रकार एक सामान्य अथवत्ता से युक्त वस्तुगत सह सबन्धी हो जाते है—इलियट के समीक्षक इसके स्पष्टीकरण मे असमथ रहे है।[3] श्री रायन के प्रस्तुत वक्तव्य को इलियट के उक्त सिद्धा त पर अप्रत्यक्ष आरोप माना जा सकता है। उन्होने आगे कहा है कि सस्कृत काव्यशास्त्र मे साधारणीकरण सिद्धान्त की व्याख्या के अ तगत सामग्री के साधारणीकरण का विधान नही ह, अपितु उसे एक ऐसी प्रक्रिया के रूप मे निरूपित किया गया है जो वस्तुत सहृदय हृदय मे घटित होती है। अभिनव के अनुसार साधारणीकरण शैली, आलकारिक अभिव्यक्ति और लय के द्वारा, तथा सगीत, गान और नृत्य के द्वारा सभव होता है, ये सब कवि की सामग्री को प्रभावित नही करते अपितु ग्राहक के मन को प्रभावित करते हुए उसे लौकिक जगत से ऊपर उठाकर सौन्दय लोक मे समासीन कर देते ह, जहा लौकिक, निजी और विशिष्ट का कोई स्थान नही रहता। इसमे कोई सदेह नही कि साधारणीकरण की प्रक्रिया का जितना सूक्ष्म, विशद और

१ रस सिद्धान्त और सौदयशास्त्र, निमला जैन, प० ३२९।

२ "The metaphysical, were, at best, engaged in the task of trying to find the verbal equivalent for states of mind and feeling"

सेलेक्टेड एसेज प० २४८

सागोपाग विवेचन सस्कृत काव्यशास्त्र मे हुआ ह, उतना अ यत्र कही भी नही हुआ, और इलियट ने तो कोई सुव्यवस्थित आलोचना ग्रथ लिखा भी नही ह, इसीलिए उनके फुटकर आलोचनात्मक निब धो मे साधारणीकरण अथवा 'यूनिवसलाइजेशन का उतना सूक्ष्म और विशद विवचन ढँढना कदाचित सगत न होगा, और इतना निश्चित ही ह कि इलियट ने इस सम्ब ध मे उस मूलभूत तथ्य का सकेत किया ही ह उसकी ओर श्री रायन ने ध्यान आकृष्ट किया ह। और उनका निवयक्तिकता सिद्धा त कवि और ग्राहक दोनो पक्षो पर समान रूप से लागू किया जा सकता ह, यह ऊपर बताया जा चुका ह।

यहा तक तो इलियट के सिद्धा त विवचन मे किसी प्रकार की कठिनाई नही होती। पर इसके आगे, जहा व परस्पर विरोधी कथन कहत ह वहा से कठिनाई की शुरुआत होती ह। इलियट का सजन प्रक्रिया विषयक विवचन समग्र सजन पकिया को दो स्पष्ट भागो मे बाट देता ह। एक तो यह कि कवि पहले अपने मन मे किसी विशिष्ट भाव या अनुभूति की अभि व्यक्ति का निश्चय करता ह, और दूसरा यह कि इस निश्चय के अन तर वह उसकी सम्यक अभिव्यक्ति के लिए समुचित 'आब्जेक्टिव को रिलेटिव्स ढँढता ह। इस सम्ब ध म इलियट का कथन ह 'कवि का मन वास्तव मे एक ऐसा ग्रहण यत्र ह जा उन सभी अगणित अनु भूतिया, वाक्याशा तथा बिम्बो को ग्रहण करता ह और जमा करता ह जो वहा पर तब तक पडे रहते ह जब तक "नवमिश्रित" वस्तु को रूप प्रदान करने के लिए सभी तत्त्व एक साथ उपस्थित नही हो जाते।'[१] इलियट के सुप्रसिद्ध समीक्षक इलीसियो वाइवस ने इलियट के मत पर आपत्ति करते हुए कहा ह "

"Feelings stored up in the poet's mind, which is in fact a storage receptacle, words for which feelings want in order to attach themselves at the time of composition, the pre established harmony that must be asumed to exist between the waithing feeling and its verbal garment, the very assumption that a feeling can exist by itself in the mind and wait without symbolic expression of any kind—all this is very dubious"[२]

इलीसियो वाइवस की यह आपत्ति बहुत ही उचित ह। इलियट के निम्नलिखित कथनो के साथ उनके उक्त कथन को रखकर विचारने पर यह आपत्ति और भी प्रखर हो उठती ह —

१ The poet's mind is in fact a receptacle for seizing and storing up numberless feelings, phrases, images, which remain there until all the particles which can unite to form a view compound are present togather "

२ क्रिएशन एड डिस्कवरी, प० १७६।

[क] 'कवि तब तक यह नही जानता कि उसे क्या कहना ह जब तक कि उसने कह नही लिया है ।"[1]

[ख] " we do not know until the shell dreaks what kind of egg is laying under it ।[2]

यहा इलियट यह भी कहना चाहते है कि जब तक कविता कागज पर शब्दमूत्त नही हो जाती तब तक उसके स्वरूप, उसके वण्य के विषय मे प्रामाणिक रूप से कुछ कहना कठिन ह । इलियट के उक्त दोनो कथन परस्पर विरोधी प्रतीत होते ह और उनमे सगति बैठाना कठिन ह । यदि कविता के शब्दमूर्त्त होने के पूव इलियट के कवि को वण्य की प्रकृति का कोई भान ही नही रहता तो वह वस्तुगत सह सबधियो की योजना किस आधार पर करता है ? काव्य के स्तर पर इलियट ने 'व्यवस्था' अथवा 'order' की आवश्यकता बताई है, पर ऐसी स्थिति मे भावो की शब्दगत व्यवस्था का प्रश्न ही कैसे उठ सकता है ? 'व्यवस्था' की सभावना तो तभी ह जब कि भावो का, अनुभूतियो का, ठीक स्वरूप ज्ञात हो ।' 'मेटाफिजिकल कवियो' पर विचार करते समय इलियट ने उनके 'वबल इक्वीवेलट' ढूँढने और 'अत्यधिक व्यस्तता' के साथ ढूँढने का उल्लेख किया ह । अर्थात इलियट के अनुसार ऐसा नही है कि कवि मानस मे भावोदय के साथ ही उसके वस्तुगत सहसबधी का उदय हो जाता हो कवि को उसे या उन्हे व्यस्ततापूवक ढूढना पडता है । पर भाव की प्रकृति, उसके स्वरूप के स्पष्ट अवबोध के अभाव मे वह किसके लिए, किस आधार पर और किस प्रकार वस्तुगत सह सबधी ढूँढता ह ? और शब्दमूर्त्त होने के पूव भाव बिना किसी प्रतीक के आश्रय के किस रूप मे कवि-मानस मे एकत्र रहते है ? इसके अतिरिक्त, इलियट ने कही यह भी स्पष्ट नही किया कि कविता भावो को उदबुद्ध करती है या अभिव्यक्त करती है ? यदि वह भावो को अभिव्यक्त करती ह तो प्रश्न है कि जड वस्तुगत सह सबधी इसमे किस प्रकार समथ हो पाते है ?— चेतन भाव को वे कैसे अभिव्यक्त कर सकते है ? और यदि कविता भावो को उदबुद्ध करती है तो यह इलियट के स्वय के 'निर्वैयक्तिकता सिद्धात के विपरीत है, क्योकि वह तो काव्य मे प्रत्येक प्रकार के व्यक्तिगत भाव के निषेध को स्वीकार करता है । वैसे, इसका समाधान कदाचित यह कह कर किया जा सकता है कि इलियट अ य किसी उपयुक्त 'शब्दावली के अभाव में 'रस रूप भाव को ही भाव कह रहे है, भावोदबुद्धि से उनका तात्पय लौकिक, विशिष्ट भावो से नही है, क्योकि काव्य के आस्वादन को वे विशिष्ट' स्वीकार करते है । परन्तु अ य शकाओ का समाधान इलियट के काव्य विषयक विवेचन से नही हो पाता ।

भारतीय साधारणीकरण सिद्धात मे इस प्रकार की कोई सदिग्ध स्थिति नही ह । वहा सहृदय के चित्त मे वस्तु और भाव के उदय का प्राय एक साथ ही होना स्वीकार किया गया ह, और यह साधारणीकरण सिद्धान्त के अ तगत वस्तुतत्व और आत्मतत्व के अभेद, उनके सह अस्तित्व के प्रतिपादन, का स्पष्ट प्रमाण है । वाल्मीकि के श्लोक के प्रसग मे रचना प्रक्रिया की चर्चा से यह स्पष्ट अनुमान किया जा सकता ह कि कवि मानस मे भी वस्तु और भाव का

१ दि थ्री वायसेज आफ पाइटी ।

२ मेलेक्टेज एसेज,

उदय प्राय एक साथ ही होता है। रस को 'झटिति प्रत्यय' कहा गया है। आस्वादन प्रक्रिया के विवेचन मे यह बताया गया ह कि मुख्याथ से व्यग्याथ का बोध असलक्ष्यक्रमरीति से तुरन्त घटित होता है। वाच्य वाचक रचना प्रपच से चारु काव्य के पारायण से सहृदय के व्यक्तिगत रागद्वेष तिरोहित होने लगते ह, जिसके फलस्वरूप उसके हृदय मे उदबुद्ध स्थायी रस रूप मे आस्वाद्य होता ह। इलियट काव्यास्वाद मे सहृदय को द्रवित करने की क्षमता स्वीकार करते है। अपने एक प्रसिद्ध निबध 'दि म्यूजिक आफ पाइट्री' मे उ होने लिखा ह 'If we are moved by a poem, it has meant something, perhaps something important, to us, if we are not moved, then it is, as poetry, meaningless," सस्कृत काव्यशास्त्र भी रसास्वाद मे सहृदय को द्रवित करने की सामथ्य मानता ह यह रसास्वाद का एक विशेष गुण ह। कुल मिला कर यह कहा जा सकता है इलियट का काव्य विवेचन अनेक रूपो मे भारतीय साधारणीकरण सिद्धा त के अत्य त निकट ह और इलियट काव्यास्वाद की समस्या को अपने ढग से हल करने मे बहुत दूर तक सफल भी है तथापि साधारणीकरण सिद्धान्त जैसी सर्वांग सम्पूणता, सगति एव क्रमबद्धता उनके विवेचन मे नही मिलती।



अपभ्रंश वैयाकरणो तथा प्राचीन हिंदी कवियो के भाषा विषयक उल्लेख

रार्मासह तोमर

प्राकृतापभ्र श के वैयाकरणो ने कही कही भाषा के सबध मे ऐसे उल्लेख किये ह जिनकी व्यारया अपेक्षित थी, किन्तु की नही गयी। प्राकृतो के विवेचन मे यह कही किसी वैयाकरण ने नही कहा कि कौन सी प्राकृत प्रधान ह, फिर भी नामोल्लेख किए बिना ही आधारभूत एक प्राकृत का रूप वैयाकरणो के मन मे था। हेमचद्र ने इस आधारभूत स्तरीय प्राकृत को कोई नाम नही दिया है उसे केवल प्राकृत ही कहा ह। शौरसेनी की विशेषताओ का सत्ताईस सूत्रो मे उल्लेख करके कह दिया है 'शेष प्राकृतवत' अर्थात अ य विशेषताये प्राकृत के समान ही है। मागधी के विवेचन के पश्चात कहा ह 'शेष शौरसेनीवत' अर्थात मागधी के सबध मे जो कुछ कहा है उसके अतिरिक्त अ य विशेषताये शौरसेनी के समान रहेगी। शौरसेनी का विवेचन मात्र सत्ताईस सूत्रो मे करके कहा है कि 'शेष प्राकृतवत'। प्रकारा तर से अथ हुआ कि मागधी का भी मूल आधार वह सामा य प्राकृत है जिसको हेमचद्र ने कोई नाम नही दिया है। पैशाची, चूलिका पैशाची तथा अपभ्रश के विवेचन के अत मे भी इसी प्रकार के उल्लेख मिलते है 'शेप 'शौरसेनीवत', 'शेष प्राग्वत शौरसेनीवत।' इन उल्लेखो से शौरसेनी का महत्त्व अवश्य प्रकट होता है किन्तु यह स्पष्ट नही होता कि 'प्राकृत' नाम से जिस भाषा का विवेचन हुआ है उसका क्षेत्र कहा था, तथा उसका नाम क्या था। सभव ह वह साहित्यिक प्राकृत हो, शब्दो का विवेचन करते हुए कही कही कहा है कि महाराष्ट्र, विदभ आदि प्रदेशो मे व्यवहृत शब्दो से उदाहरण देखना चाहिये। प्राकृत के उपलब्ध साहित्य के आधार पर इसका विवेचन किया जा सकता है। विद्वानो ने तथा कुछ वैयाकरणो ने इसे 'माहाराष्ट्र' कहा है। जो हो इस प्रश्न पर वैयाकरण एक मत नही ह, शौरसेनी, मागधी के क्षेत्र प्राय निश्चित है किन्तु महाराष्ट्री का क्षेत्र क्या था इस पर कोई निश्चित प्रकाश अभी तक नही पडा ह। प्राकृत के सभी वैयाकरण प्राकृतो के अनेक भेदो का बिना सीमा निर्धारित किए उल्लेख करते है। भरत दण्डी जसे काव्य समीक्षको के प्राकृत विषयक उल्लेखो का भी वैयाकरणो पर बहुत प्रभाव पडा होगा।

दण्डी ने माहाराष्ट्री प्राकृत के साहित्य की भूरिभूरि प्रशसा की है, फलस्वरूप माहाराष्ट्री प्राकृत को प्रधान माना जाने लगा, फिर भी आश्चय है हेमचद्र जैसे वैयाकरण ने उसका उल्लेख नही किया। इसका अथ ह वे दण्डी के मत को नही मानते थे। काव्यरचना या श्रेष्ठ काव्यकृतियो के प्रसग मे दण्डी के मत का महत्त्व है, भाषाविज्ञान की दृष्टि से उ होने जो कुछ कहा है वह विशेष महत्त्व का नही है। नाटय समीक्षको ने नाटको मे विभि न पात्रो द्वारा प्रयुक्त होने वाली भाषा के सबध मे जिन नियमो का उल्लेख किया है वे भी रूढि या परपरा का अनुसरण करते हुए प्रतीत होते है। प्राकृतो मे से मागधी कौन बोलेगा यह निश्चय कर

लेना निश्चय ही किमी भाषा के स्वरूप को बताने मे सहायक नही हो मकता, नाट्य शास्त्रियो के उल्लेख केवल इतनी सहायता करते है कि प्राकृतो के विभि न नामो की सूची हमे प्राप्त हो जाती ह। भोज आदि काव्य समीक्षको ने भी प्राकृतो और अपभ्रश के जो उल्लेख किये ह उनमे से कुछ इस लिए महत्त्वपूण ह कि प्रत्येक भेद को स्पष्ट करने के लिए कुछ पद्य उदाहरण रूप मे उदधत किये गए ह। प्राकृतो के भाषा विभापादि भेदा का भी उल्लेख हुआ ह किन्तु उससे स्थिति स्पष्ट नही होती। प्राकृत के सब ध मे हेमच द्र ने जो विवेचन किया ह वही वास्तव मे स्पष्ट ह। अन्य भेदो उपभेदा का कोई विवेचन न होने से उनका उल्लेख मात्र हमारी कोई सहायता नही करता। वररुचि और हेमचद्र के पीछे के वैयाकरणो ने जो ऐसे उल्लेख किए है वे दूसरो के मता के सग्रहमात्र ह।

प्राकृत के उदभव के सबन्ध मे कोइ भी तकसगत प्रमाणपुष्ट तथ्य हमारे सामने नही ह। हेमचद्र ने इस प्रश्न पर विचार किया ह और जब वे कहते है कि प्राकृत की प्रकृति सस्कृत ह, उसी से जो उत्प न हुई ह या आई है वह प्राकृत ह। अपने इस कथन को स्पष्ट करते हुए उ होने आगे कहा ह—प्राकृत मे प्रकृति, प्रत्यय, लिङ्ग, कारक समास सज्ञा आदि सस्कृत के समान ही जानना चाहिए। इस कथन मे कही भी अस्पष्टता नही ह। इससे यह तात्पय नही निकलता कि सस्कृत से प्राकृत बनी ह, प्राकृत के व्याकरण का ढाचा सस्कृत के ही समान ह, उसके व्याकरण के ही आधार पर प्राकृत के व्याकरण की रचना हुई है—अनेक बाते एक समान ह—यही उनके कथन का तात्पय है। प्राकृत और सस्कृत एक दूसरे की पूरक शाखाये ह। वदिक सस्कृत तथा साहित्यिक सस्कृत का ज्ञान प्राकृत के अच्छे ज्ञान के बिना अधूरा ही रहेगा, यही बात प्राकृत ज्ञान के विषय मे कही जा सकती ह।

वररुचि और हेमचद्र के पश्चात प्राकृतापभ्रश के वैयाकरणो के समय मे प्राकृते मात्र साहित्यिक भाषा के रूप मे शेष रह गई थी। अत चौदहवी शती के बाद के या उसके आस पास के जिन वयाकरणो ने प्राकृत या अपभ्रशो के भेदो का उल्लेख किया ह वह उनके सम्मुख विद्यमान व्याकरण या का य समीक्षा के ग्रथो के आधार पर हुआ ह। हेमचन्द्र (बारहवी शती ई०) के पश्चात त्रिविक्रम (तेरहवी शती ई०) सिंहराज (चौदहवी शती ई०), लक्ष्मी धर (सोलहवी शती ई०), माकण्डेय (सोलहवी शती ई०), अप्पय दीक्षित (सोलहवी शती ई०) प्रमुख प्राकृत वैयाकरण है। त्रिविक्रम का आधार हेमच द्र का व्याकरण है। उन्होंने प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका पशाची और अपभ्रश छ भाषाओ का विवेचन किया ह। प्राकृत या अपभ्रश के नवीन भेदो का उल्लेख या विवेचन नही किया ह। सोलहवी शती मे माकण्डेय ने अनेक भेदो का उल्लेख किया ह—महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, अर्धमागधी के अतिरिक्त आवन्ती प्राकृत का भी अत्यन्त सक्षेप मे परिचय दिया ह। महाराष्ट्री और शौरसेनी के सकर से आव ती वनती ह और उसका क्षेत्र अवन्ती प्रदेश है। अ य ग्रथो मे अवन्ती जनपद का उल्लेख मिलता है उसी के आधार पर अव ती प्राकृत का माकण्डेय ने उल्लेख किया होगा। अवन्ती की जिन विशेषताओ का उल्लेख किया ह उनके आधार पर किसी भाषा का ढाचा तैयार नही किया जा सकता। जो हो अव ती का भोज ने उल्लेख किया ह और उ होने कही से अव ती के उदाहरण के रूप मे एक पद्य भी उद्धत किया है। आवन्ती को उत्तम प्राकृत माना है। माकण्डेय ने प्राकृत के व्यापक भेद, सस्कृतसम और देशी का भी उल्लेख किया

ह जो भोज की कृति मे भी मिलता है। विभाषाओ मे शाकारी चाण्डाली, शाबरी, औड्री, आभीरी टक्की का उल्लेख किया है। लक्षणो का विस्तार से विवेचन नही किया, अत इनके स्वरूप के विपय मे कोई निश्चित धारणा नही बनती। अपभ्रश के नागर, ब्राच और उपनागर भेदो का विवेचन करके अत मे पैशाची, शौरसेन पैशाचिकी और पाचाल पैशाची का सक्षेप मे विवेचन किया ह। इतने उपभेदो की आधारभूत सामग्री माकण्डेय के सामने नही थी, किसी परम्परा के आधार पर यह विभाजित किया गया ह।

माकण्डेय के कई शतियो पहले से ही हिन्दी तथा अ य आधुनिक भारतीय आयभाषाओ म काव्य रचना होने लग गई थी, अपभ्रश मे आधुनिक भापा की कुछ विशेषताए अधिक स्पष्ट रूप मे दिखने लगी थी। अपभ्रश मे रचना करनेवाले कवि अपनी रचनाओ को कभी अवहस, कभी अवहटठ कभी देसिल वयना कहते थे। उनके समसामयिक भापा कवियो को अपनी भाषा की जानकारी थी, कि तु प्राकृत और अपभ्रश के सम्बन्ध मे कदाचित उनका ज्ञान बहुत स्पष्ट नही था। प्राकृत और अपभ्रश के वैयाकरणो ने छ भाषाओ का विवेचन किया था। षडभाषा चद्रिका जसी रचनाओ से प्रकट होता ह कि छ भाषा विषयक धारणा प्रतिष्ठित हो चुकी थी। इसका एक प्रमाण हम पथ्वीराज रासो मे मिलता ह —च द वरदाई अपनी षडभाषा निपुणता का परिचय देने के लिए जयचद के दरबारी कवियो के मुख से कहलाता है।

अभोरुह माणद जोय लरिसौ डाडिम्म लो बीयलो।
लोयण्णे चलु चालु चालुयारा बिंबाउ कीयग्गहे।
केसीरी के साय बैनिय रसो चक्की भिगी नागवी।
इदो मध्य सु विद्यमान विहतो एरस्य भाषा छउने॥

सस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, अपभ्रश की ध्वनि विषयक एकाध विशेषताएँ उपयुक्त पद्य मे मिलती है। कही भी चदवरदाई ने भाषाओ का नामोल्लेख नही किया। पथ्वीराजरासो मे अनेक विदेशी शब्दो का प्रयोग हुआ ह किन्तु इस पद्य मे अरबी फारमी का कोई शब्द नही प्रयुक्त हुआ। इससे यह तात्पय निकलता है कि षड्भाषाओ मे वह सस्कृतादि को ही अतभुक्त करते थे।

आगे भिखारीदास ने षडभाषाओ का स्मरण किया ह, 'पारसी' को भी उन्होने उनमे गिनाया है जो स्वाभाविक ही है। उनके समय फारसी चलती थी, एक प्रबुद्ध कवि को उसे स्थान देना ही चाहिए था। जो हो ऐसा प्रतीत होता ह कि भाषा कवियो को अपनी प्राचीन भाषा परम्परा का ज्ञान अस्पष्ट रूप मे ही था।

इसके विपरीत वैयाकरणा को भी देश के विभि न क्षेत्रो मे प्रयुक्त प्राकृतापभ्रशो का पूरा ज्ञान नही था। उदाहरण के लिए माकण्डेय ने अनेक प्रकार की प्राकृतो और अपभ्रशो के नाम गिनाये ह कि तु काश्मीरी का उन्हे पता नही था, भोज ने शृगार प्रकाश मे काश्मीरी का उल्लेख करते हुए उदाहरण के रूप मे एक पद्य भी उद्धत किया ह। यह ध्यान देने योग्य

ह कि काश्मीरी अपभ्रश मे अभिनवगुप्त के समय से पूव से रचना होती चली आ रही थी। परात्रिंशिका की टीका मे अभिनव गुप्त ने अनेक अपभ्र श पद्य उदधृत किये है जो मात्रिक छदा मे ह। महानय प्रकाश जसी रचनाएँ पूरी अपभ्र श मे ह। काश्मीरी प्राकृतापभ्रश से सम सामयिक प्रबुद्ध समीक्षक परिचित अवश्य थे किन्तु वयाकरणो ने उस पर विचार नही किया उनका यह अज्ञान या उपक्षा आश्चय की वस्तु ह।



धर्म-दर्शन खण्ड

•

षट्कोण-यंत्र

(The Hexagon of Basic Symmetry)

श्रीमत् स्वामी प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती

ऐसा प्रतीत होता है कि किसी बीज बिन्दु (Point Matrix) ने अपने को किसी निर्दिष्ट 'तल या स्तर (Plane) मे दोनो ओर प्रसारित किया—(homoplaner projection in opposite senses or directions)। फलस्वरूप किसी तल पर एक द्विपाक्षिक (bipolar) द्वन्द्व (Contradiction or opposition) सम्भावित हुआ। यह Homoplaner antithesis है, जैसे धन उत्पादन के क्षेत्र मे एक ही स्तर पर उपाय व पद्धति मे एव एक ही श्रेणी में (जैसे श्रमिक श्रेणी मे) विरोध रहता है, ऐसा ही समतलो या समान स्तरो मे विरोध अन्य क्षेत्रो मे भी रहता है। साधन के क्षेत्र मे भी जैसे समान अधिकार वाले (प्राय एक ही प्रकार की प्रकृति, रुचि, सस्कार व सामथ्य वाले) साधक समुदाय मे विविध साधन पद्धति, प्रक्रिया व यन्त्र तन्त्र का विसम्वादी सम्बन्ध रहता है।

यदि स्तर या तल एक न होकर भिन्न भिन्न होते तो यह लेख कुछ अन्य होता, जैसे कि यहा नरश्रेणी मे श्रमिक व मालिक श्रेणिया है, मानस क्षेत्र में व्यक्तमानस (Surface mind) एव अवमानस (Subconscious) है, तथा आदर्श व वास्तव का भेद है—इत्यादि।

उपयुक्त दो क्षेत्रो मे विरोध एव उसका क्षेत्र अभी भी किसी निरूपणीय स्थिति (Spcific concrete) मे नही आया है। अब तक यह विश्लेषण (analysis) सामान्य एव 'अवास्तव' (Generic and abstract) ही है। निरूपित वास्तवरूपता मे आने के लिये उसे त्रिभुज आकृति लेनी होती है। क्योकि त्रिभुज, वृत्त, वृत्ताभास, वर्तुल इत्यादि के बिना किसी क्षेत्र मे (Functional field) विशेषरूपता (specification) नही आती। फलस्वरूप द्विपाक्षिक स्थल पर त्रिपाक्षिक द्वन्द्व—polarity oppsition रहता है।

हमारी साधारण कारबारी चेतना या अनुभव को यदि कहूँ—चित + अचित, भूमि या तल और उसके किसी विशिष्ट अवस्थान को मानूँ उसी तल पर अकित एक सरल रेखा, तो उस सरल रेखा के ऊपर नीचे के दो लम्ब क्या कहते है ? ऊपर का लम्ब कहता है—यह देखो मै उत्तरोत्तर चेतना की अभिव्यक्ति की ओर जा रहा हूँ। यदि मेरी पूर्णता की सीमा कोई हो तो वह होगी परम चित या चैतन्य। नीचे वाला लम्ब उतरता उतरता कहता है—देखो मै अचित् या जड मूलसत्ता की ओर जा रहा हूँ। अचित के मूल मे ही अनुभूत विश्व के सब कुछ का पता लगा रहा हूँ।

दोनो पक्षो की दो तरह की बात सुन कर और किसी ने कहा—तुम दोनो ही काष्ठा (चरम स्थिति) की ओर जा रहे दिखते हो, पर यह चलना क्या है यह तो किसी ने कहा नही। यह सुनकर किसी ने कहा उसे केवल 'गति' कह कर

ही छोड दो। और कोई बोला— केवल गति से काम नही चलता, उसके पीछे शक्ति (Pow er या Elan) न मानने से गति को कौन नियन्त्रित नाना रूप दे रहा ह उस शक्ति को उप निषद की भाषा मे कोई कहेगा प्राण (अवश्य ही यह प्राण vital factor मात्र नही ह, और इस का मूल उपादान amino acid नही ह)। अब इस गति की विधायक नियामक प्राण शक्ति को मानते ही जो द्व द्व द्विपाक्षिक था, वह त्रिपाक्षिक अर्थात त्रिभुजाकृति हो गया। क्योकि कोई चलिष्णु (गतिशील) बिन्दु ज्यो ही स्वय को त्रिभुजाकार मे दिखाता ह, तभी उसको कुछ गति विधायक नियामक सूत्र के अनुगत होना होता ह, जैसे वत्त (परारोला' इत्यादि) की सरल रेखा का भी एक निजस्व सूत्र equation ह। अवश्य ही वह एकमात्रिक हें। यदि तल ठीक ही रखो तब भी त्रिभुज कहता ह—मेरे केवल तीन बाहू ही नही है, उनके कौणिक (कोण सम्बन्धी) सम्बन्ध का भी मान (माप) दिखाओ।

इस कारण त्रिभुज के साथ वत्त का सादश्य ह। अवश्य ही वत्त से हमारे दो मान होगे—व्यासाध (T) समकोणिक (radian) मान (π) नही।

इसी कारण 'यन्त्र' के त्रिभुज व वत्त मे इतनी मत्री ह। त्रिभुज कहता ह—मेरे भीतर व बाहर वत्त नही आकोगे? समकौणिक मान को बङ्किम सुषम मान मे न ले तो सष्टि मे कही भी (केवल कमल विकास मे ही नही) इतना अपरूप बाका सुन्दर सुनिविष्ट रूप नही मिलता। इस अत्यावश्यक कम के लिये ही तो अधमात्रा स्थित है। (The measure principles that accelerates any process function either Bindu wise ar Nada wise)

अस्तु। अब हमने जो कारबारी चिदचित तल रेखा लेकर (fd) शुरू किया था, उस पर ऊपर व नीचे यदि दो विप्रतीप त्रिभुज आक दे तो वे क्या समझायेगे? ऊपर के त्रिभुज के शीषबिन्दु मे जो चिदवस्तु है वह केवल 'कुछ अनिर्वाच्य' (alogical) ही नही है। वह ह, सत्ता + शक्ति + छन्द + आकृति (pattern) इस चतुष्टय की पूणता की भूमि। अथवा एक शब्द मे कहे तो ऐश्वय (जिसमे ज्ञान, इच्छा व कति सर्वोत्तम व स्वतन्त्र है) ह। उस मे से हम सबकी व्यावहारिक चेतना की भूमि पर एक क्रम से अवतरण जैसे हुआ है, वैसे ही उसमे 'उत्तरण' का भी एक क्रम निरूपित है या हो रहा ह। शीष को यदि कहूँ सत्यम तो त्रिभुज के दो विपरीत चिह्नित बाहू द्वय होगे ऋतम या ऋतस्य पन्था। एक पराक ह, दूसरा प्रत्यक् (coming out and returning unto)। जिस भूमि या नेमि मे हम सब सचराचर वतमान है, उसमे इन दोनो चढने उतरने (ascent descent) की धाराओ को समझना व उपलब्ध करना कठिन ह। क्योकि हमारे तल (स्तर) मे वैगुण्य वैरूप्य वैषम्य-जनक हेतुओ की ग्रन्थिया अल्पाधिक है ही। उनको काटने के साधन है— विज्ञान व प्रज्ञान।

नीचे के विप्रतीप त्रिभुज का शीषबिन्दु ह—अचिदवस्तु। वह भी स्वरूप मे एक $\times$ है। प्रज्ञान दष्टि से यह $\times$ ब्रह्म ही ह, अवश्य ही निपुटित (enfolded, unfolded नही) है। विज्ञान ने उमे जड (matter) रूप से पहचानना चाहा ह। किन्तु अन्त तक पूरा परिचय अभी मिला नही ह। अनेक समीक्षा परीक्षा अन्वीक्षाओ मे से एक पूण परिचय की चेष्टा चल रही है और चलेगी। साख्य की भाषा मे उसको 'प्रकृति' कह सकते है, किन्तु यह प्रकृति Physics का matter नही ह। जो भी हो, नीचे के शीषबिन्दु से भी दो धाराएँ (त्रिभुज के

दो बाहू) निकली है। उनमे से एक को 'विवतन' की धारा कहेंगे—एक ही वस्तु के बहु-रूप, विचित्र रूप बनाने की धारा। दूसरी ह, उदवतन की धारा। इसमे जड के उदवतन से प्राण और प्राण के उदवतन से चेतना उपलब्ध होती है। इसम फूल के जड को केवल उसी रूप मे नही, अन्य ही अभावनीय भाव से 'प्राण बनते देखता हूँ। प्राण भी फिर अभावनीय भाव से ही बनता है चेतना बुद्धि आदि। यह 'अभावनीय भावन क्या ह इसे समझना ही वास्तव मे समझना ह। जैसे D N A सयोग से amino acid यदि प्राण की मल सामग्री बनता है तो वह मूल परमाणुओ से कैसे बनता है ? और बन कर भी फिर प्राण के मौलिक धम (Pro creation) आदि की सष्टि कसे करता ह ? मस्तिष्क से चेतना के उदवत्तन मे भी यही समस्या है। बल्कि यहा समस्या और अधिक गहरी है।

ऊपर हमने एक विप्रतीप के दष्टान्त की कुछ परीक्षा की। श्रेय एव प्रेय रूप प्रयोजन, धम एव अथ काम रूप उपाय, रस एव रसाभास रूप फल इत्यादि नाना भावो से इस विप्रतीपता (opposition) का प्रदशन हो सकता है। थोडे से स्थलो पर विरोध (opposition) दिखाया गया। प्रकृति प्रत्यय एव ज्ञान व व्यवहार सभी जगह यह द्वन्द्व वतमान है। प्रकृति मे जिनकी अव्यक्षता ह वे इस षटकोण द्वारा ही सम वय करते है। मानव व्यवहार मे भी वही करना होगा। देखिये कि षटकोण के ऊपर के तीन कोण और नीचे के तीन कोण एक सामान्य मौलिक स्थिति या समन्वय से आये है—मध्य मे वत्त ह त्रिभुज है और के द्र बिन्दु या पद्म ह। मध्य का यह परिमण्डल समन्वय की अभिविधि (formula) का निर्देश कर रहा ह। जैसे कि अथ + काम व नि श्रेयस (the supreme good) इन दोनो के विरोध का समन्वय करने के लिये धम (religion नही) को प्रशासक बनाओ (मध्य मे त्रिभुज)। फलस्वरूप केवल अथ व काम की समद्धि इत्यादि नही, कितु सर्वाङ्गीण अभ्युदय की प्राप्ति होगी।

पहले कहा गया ऊपर व नीचे के दो त्रिभुजो का वैपरीत्य (inversion) दो प्रकार की मौलिक सस्था की भावना के बीच के विरोध को दिखा रहा ह। एक को यदि thesis कहे तो दूसरे को antithesis कहना होगा। सामान्यतया (as generally appriciated) यदि एक Hegelianism हो तो दूसरा Materialism, Marxism होगा।

एक पक्ष मे जानी जा सकने वाली (ज्ञेय) ही वस्तु का अस्तित्व ह या ज्ञात होना ही वस्तु का अस्तित्व ह। दूसरे पक्ष में, वस्तु के अस्तित्व से ही उसका ज्ञान उत्पन्न होता ह, अर्थात वस्तु ही मौलिक (noumenal fundamental) ह, ज्ञान उस पर आधारित (phenomenal, derivative) धम है। मूलवस्तु (जो प्राण चैतन्यहीन है) से ही कुछ-कुछ Critical परिणाम निकलते रहते ह, उसी से प्राण व चैतन्य का उद्भव होता है। मूल मे इन दोनो का प्राकभाव ह, जैसे कि जैवधातु प्रोटोप्लाज्म मे यदि जड सामग्रिया ठीक ठीक अनुपात व समथ परिमाण मे (requisite efficiency value) विद्यमान हो तो प्राणिक धम का उदभव होगा। प्राणिक धम जड उपादानो मे नही देखे जाते, सुतरा यह एक प्रकार का असामान्य विवतन (cataclysmic transformation) है। मस्तिष्क के क्षेत्र मे चैतन्य का उद्भव इसी प्रकार का है।

अवश्य ही, विरोधीपक्ष ऐसा उदभव मानना स्वीकार नही करेगा। उसके मत से तो (१) प्राण व चेतना मौलिक पदाथ ह, जिनके आत्मसङ्कोच आदि (self limiting and self conditioning) के फलस्वरूप बाह्यवस्तु (matter) का उदभव हुआ ह। नही तो (२) मूल से दो पक्ष (चेतन एव जड) स्वतन्त्र रहते हुए भी विश्व के विवतन पारस्परिक सम्पक (Correlationality) मे आये है अथवा (३) मूलवस्तु (Fundamental Being) मे चेतना, प्राण व जड परस्पर सयुक्त (in mental implication or involution) रह कर भी पहले जड, फिर प्राण व चैतन्य रूप मे अभिव्यक्त हुई ह। अर्थात प्राण-चेतना का उदभव नही अभिव्यक्ति (उत्तरोत्तर emergence) हुई ह—विश्व के इतिहास मे। सक्षेप मे ऊपर के दोना त्रिभुजो मे तात्त्विक विरोध ऐसा ही कहा जाता ह।

मेरे अपने सिद्धान्त—(जो कि औपनिषद ब्रह्मवाद से मुख्य अश मे अभिन्न कहा जा सकता ह, तब भी जो अद्वत, द्वैत आदि किसी साम्प्रदायिक सिद्धान्त के साथ हूबहू (परी तरह) मिलता नही)—के अनुसार इस प्रतिलेख म जो भूमि या तलरेखा ह वह Alogical Absolute (AA) ह, जिसके ठीक अपने सम्पक मे समग्र रूप से किसी प्रकार का बौद्धविमश (logical appriciation by forms and categories) नही किया जा सकता। अथ च, उसी मे (by an immanent functioning) बौद्धविमश 'उदित' होकर नाना प्रकार की सदश या विसदश बौद्धविवृति (logical thesis, idiology इत्यादि) गढ रहा है। A A स्वय इन सबके सम्बन्ध मे निरपेक्ष (neutral) है, अर्थात स्वरूपत एव समग्रत A A को वस्तु या विचार (Thing or Thought) विषय व विषयी (object or subject) काय कारण कुछ भी नही कह सकते। कहना ही हो तो केवल एक मूल Matrix या Fact कहा जा सकता ह। क्योकि इस एकवाद (Vide our 'Approaches to Truth') मे सभी कुछ सन्दिग्ध या आपेक्षिक हो सकता ह। विश्लेषण मे एव समाहार मे जितनी सी प्राप्ति होती ह वह 'immanent operation' या intrinsic stress के फलस्वरूप उत्पन्न है, ये सब Fact section, Fact review, Fact-judgment इत्यादि ह। इनमे से कोई भी A A नही ह। सुतरा ऊपर प्रदर्शित विरुद्ध' दोनो त्रिभुज भी logical construction के फलस्वरूप प्राप्त दो प्रकार के ideological framework, इनका द्वन्द्व (opposition) भी बुद्धि से या मनन से उत्पन्न होता ह।

अब बुद्धि (understanding) के मूल Matrix से जिस किसी द्वन्द्व (contradiction, opposition) की सृष्टि होती ह, वह उसी मे निश्चिन्त (satisfied) नही रहता। द्वन्द्व को निर्द्वन्द्व करने के प्रयास मे ही मनन (विज्ञान व दशन) को साथक साधना ह। उसको synthesis या reconciliation का सूत्र मिलाना होता है, यही उसका dialectical progresion है। पूण समन्वय किसमे ह व कहा मिलेगा ? जपसूत्रम मे परिणयी, अन्वयी, समन्वयी, महासमन्वयी एव परम-समन्वयी—ऐसे पञ्च पाद विक्रम का सविस्तार वणन किया गया है। (श्री यन्त्र आदि मे केन्द्रबीज से आरम्भ करके त्रिभुज, षटकोणी, वृत्त, चतुष्कोणादि के द्वारा महासमन्वय पयन्त दिखाया जाता है, 'परम' दिखाना सम्भव नही)—गणित विज्ञानादि सभी क्षेत्रो मे उपयुक्त पाचो पादो का प्रयोग हमने दिखाया ह।

अवश्य बोद्धविमश केवलमात्र हम आप जैसे अस्मदादि (ego centric) व्यक्तियो के अधिकार मे नही, वह तो विभिन्न केन्द्रो, स्तरो व सम्ब धो मे थोडा बहुत विभिन्न एव विरुद्ध भी होता ह। उन सबके 'परिणय 'अन्वय' एव 'समन्वय' का प्रयास चल सकता ह। किन्तु A A या Fact को समग्र एव पूण (अर्थात ब्रह्म) रूप से लेने पर उसमे या उसके अधि कार मे एक महद बुद्धि' (great or Archetypal Reason) एव तदभिमानी एक महान आत्मा (Archetypal self) न ले तो, आणव या वैराज या किसी भी विश्व के अत्यद भुत रचनाकौशल या परिपाटी की उदभावना, सयोजना एव विधारणा—इन सबका कोई सुसङ्गत बौद्धविमश (total integral logical appreciation) सम्भावित नही होता। हमारा बौद्ध विमश सापेक्ष सम वय की ओर अग्रसर हो रहा है एव होगा। कि तु महासम वय एव परसम वय तब भी दूर ही रहेगे। इस कारण हमारे बुद्धि विमश को उसी सर्वाध्यक्ष के पूण अकुण्ठ बुद्धि बोध के साथ योग मे (in congruent relation) लाना होगा। उसी Archetypal Reason एव उसके स्वनिरूपण (own ratiocination and conclu sive proving) को हम पाना हागा—'महा एव परम' इन दोनो अत्यावश्यक समन्वय पर्वो को पाने के लिये। इनकी प्राप्ति का पथ ह—योगलब्ध प्रज्ञान, इसमे विज्ञान को विदा नही प्रत्युत उसका समादान एव समाहार है।

विज्ञान व विज्ञानभित्तिक दशन की दष्टि से अभी भी मानव मनन ने महासम वयी तक भी पहुँचाया नही ह। इस कारण इस दष्टि के केवल ऊपरी स्तर (surface field) मे ही नही गभीर व गम्भीरतर क्षेत्र मे (अर्थात higher and deeper dimension मे) प्रसार की अपेक्षा ह। तभी विज्ञान बनेगा प्रज्ञान। एक स्थूल दष्टा त ले। किसी एक प्रमाता (knower) ने किसी एक प्रमेय के निरूपण में एक प्रकार के प्रमाण (करण, means + ways) का अवलम्बन करके एक त्रिभुज (प्रमाता + प्रमाण + प्रमेय) पाया। अन्य किसी प्रमाता ने दूसरा त्रिभुज पाया। मान लो कि दोनो मे विरोध है। उस विरोध का समाधान करने मे दानो त्रिभुजो को अ तरङ्ग रूप से (intemetely, as far as possible in congruance) मिलाना होगा। ऐसे ही प्रयास के फलस्वरूप बनता है हमारा षटकोण चित्र।

दोनो त्रिभुज परस्पर का (१) सम्पूण परिहार (total exclusion), (२) सम्पूण समाहार (total inclusion or coincidence) करते है, (३) परस्पर का सुषम अवच्छेद (harmonically interlace) करते है। यह ततीय ही समस्त विरोधो का सुसमञ्जस समाहार है।

अथनीति आदि स्थलो मे भी democracy तथा socialism इत्यादि का विरोध उक्त षटकोण त्रिभुज द्वारा ही सम वय मे लाना होगा। यहा उस विस्तार मे नही पडेगे।

तात्पय यह कि इस षट्कोण (Hexagon) को ही जीवन व साधन, व्यष्टि एव समष्टि—सभी व्यवहारो में अध्यक्ष बनाना होगा। प्रकृति (nature) मे भी यही षटकोण–rules all evolving creative pattern especialy in the formation for crystals अपने 'यन्त्रम्' (ग्र थ) मे से इस प्रसङ्ग मे इतना सा अश उदधत करता

है—"For instance the infinitely varied but beautifully patterned hexagons of icicles on your window panes in a frosty night have all the wild look that a night in chaos may be imagined to fear, but how and whence do the beautiful hexagons emerge? Can it be from blind chance? Take other example in Nature outside and inside"

(षटकोण के सम्बन्ध मे लेखक का सम्पूर्ण 'यन्त्रम' ग्रन्थ देखना चाहिये।)

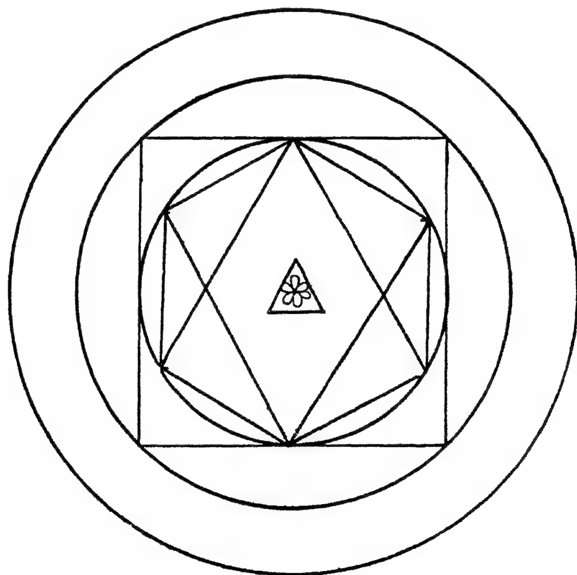
अब देखो n π − 4 इस सूत्र के अनुसार षडभुज (Hexagon) की समकोणिक सख्या है ८। इसीलिये षडभुज के परिमण्डल (operative sphere or field) मे पहले (primarily) अष्टदल कमल रहेगा। सचराचर मे यह मूलत व्यक्त (manifest) नही है, अत रहस्य भाषा मे इसे गुप्त अष्टदल कहा जाता है। 'यन्त्रम' के परिच्छद पृष्ठ पर जो ॐकार की अष्टदल आकृति दी हुई है एव उसका व्याख्यान भी वहा किया है उसे इस प्रसङ्ग मे देखना चाहिये।

परिमण्डल व्यक्त एव अव्यक्त, प्रकट व गुप्त दो प्रकार का है। षट्कोणी के चारो तरफ जो वृत्ताकार परिमण्डल है वह व्यक्त है, और षटकोणी की नाभि का वृत्त परिमण्डल अव्यक्त है। यह नाभि एव हृल्लेखा का 'अपना' मण्डल है। यहा प्रणव के स्वाधिकार मे गुप्त अष्टदल विद्यमान है। निसर्ग के ऋजुपर्व ('यन्त्रम' द्रष्टव्य) मे ॐकार का शुद्ध (Pure) स्वाधिकार है। सुतरा इस पर्व मे ॐकार अभिव्यक्त (Whatever is manifesting) को ही उसके समकोणो की सख्या के अनुसार मर्यादा (शक्तिमान व आकृति) देता है। इस कारण षटकोणी मे शक्तिमान है २³(=८) एव शक्ति की आकृति है अष्टदल। पहले द्विधाकरण, फिर उसी का त्रिवर्तकरण ही "२³" है। जैसे कि हमारे साधारण व्यवहार में सभी कुछ धन व ऋण मुखो से द्विधा होकर देश काल सम्बन्ध के त्रिवर्ग मे गुणित हो रहा है। धन या ऋणमुख से किसी मात्रा (measure) को जो ऐसे या अन्य किसी भी प्रकार ऋध्यमान करती है वही अर्धमात्रा है। ॐकार "ऐ" "श्री" "ह्री" इत्यादि रूप क्यो धारण करता है इसे भी अर्धमात्रा द्वारा ही समझना होगा।

कोणशीर्ष पर तल लम्ब आकने से पद्म का ढाचा (Parabolic) बना। यह गुप्त अष्टदल (the hidden eight petalled lotus) है, क्योकि इसकी नाभि (core) मे जो बीज (core matrix) है वह सूक्ष्म अव्यक्त रूप मे ही पहले अपना विन्यास करता है (Atom, जीवकोश इत्यादि सबमे)। स्थूल मे (in picturable field) वही इक्यावन अक्षरो की वर्णमाला हो सकती है। (वर्णमाला के विषय मे लेखक का जपसूत्रम विशेष रूप से द्रष्टव्य है)। सूक्ष्म अष्टदल से स्थूल वर्णमाला का विलास होने मे जो सेतु या axis of projection है वह विशेष रूप से मध्यमा है (What keeps the norm or mean characteristic measure)। यह माध्यम (mean measure) न पाने तक कोई भी सूक्ष्म आकृति गोचरता मे नही आती, हमारे व्यावहारिक स्तर पर दृश्य नही बनती। यन्त्र के वृत्त, चतुष्कोण आदि को भी इसी व्यावहारिक दृश्यता (plane projection) द्वारा समझना होगा। वृत्त के बिना गति चक्रावृत्ति (cyclic pattern) मे नही आती। इस कारण मूल

समकोण को वत्त (Circular π) का आकार लेना होता है, जो अमेय (incommensurable) है। चतुष्कोण मे देश काल (x, y z t) सामान्य आधार पाते हैं, अन्य व्यञ्जना भी है। जैसे n dimensional analysis मे किन्ही चार dimensions का चयन selection), और जसे इन्द्रियग्राह्य (sensible) को यदि three dimensional कहे तो अतीन्द्रिय (super sensible) को कहेंगे 4th dimension—इसे अस्वीकार नही किया जा सकता, विज्ञान व गणित के व्यवहार मे भी नही। सख्या की ओर से कुछ काल्पनिक मान (imaginary quantity i j) न मानने पर जागतिक कोई भी समीकरण सूत्र नही बन सकता। उदाहरण के लिये हाईजनवग का समीकरण ही ले सकते है।

भीतर अष्टदल षटकोण यन्त्र एव नाभि मे स्थित बीज—ये सूक्ष्म + कारण स्पन्दो (causal stress) की पश्यन्ती व परा भूमि ह। अन्त मे, नाभि या हृल्लेखा (core pattern) मे कौन सा बीज रहेगा एव परिपाश्व मे क्या-क्या—यह इन सब बीजो की मौलिक परीक्षा व उसके मौलिक विनियोग, व विचार पूवक समझना होगा। जपसूत्रम मे बैमी गम्भीर व व्यापक दष्टि से इसे समझने की चेष्टा की गई है। सेतु सामान्यत अधमात्रा (link up principle) ह। ("यन्त्रम" द्रष्टव्य)।



ऊपर चित्राकन मे जो यन्त्राकृति (basic power evolution and power control diagram) प्रदर्शित है, उसके मध्यस्थल मे (inmost) जो त्रिभुज (tri poeer disposition)—हैं, उस त्रिभुज के केन्द्र में (जहा तीनो लम्ब कटते है) बिन्दु (विश्व का मूलबीज—the Ground Matrix) ह, जो एक साथ शून्य (nil, or null point as actual or patent) एव पूण (full or consumated level of the possible or potential है इसीलिये वह "O" एव पद्म दोनो प्रकार से दिखाया जाता ह।

२ उक्त बिन्दु का आदिम (primary) त्रिमात्रिक self formulation है त्रिभुज, जैसे ॐकार मे अ, उ, म । जो किसी अभिव्यक्त के process + End या Result + Root या source इत्यादि ह । (यन्त्रम तथा Metaphysics of physics द्रष्टव्य) ।

३ त्रिभुज स्वय को द्व द्व (opposition) म लेकर अ तमुख (inverted) हुआ । (मूल प्रस्ताव मे इसकी सक्षेप मे विवति ह) ।

४ उक्त विरोध समन्वित होकर षटकोणी त्रिभुज बना (य त्रम तथा मूल प्रस्ताव द्रष्टव्य) ।

५ उक्त षटकोणी के छ शीषबि दु मिल कर (जुड जाने पर) एक सुषम षडभुज (Hexagon) बना । यही सव सम वय मे (Synthesis, congruence इत्यादि का नियामक सूक्ष्म (inner functioning) य त्र है । It rules all harmonic postu res and processes in creation (य त्रम, जपसूत्रम व मूल प्रस्ताव देखे)

६ मूल के द्रबिन्दु (Core Matrix) का आश्रय लिये हुए जो त्रिभुज है और उसको घेरे हुए जो वत्त ह वह निर्देश करता है इस Core Matrix के अपने Causal dynamic field या sphere (causal stress pattern) को । और षड्भुज को घेरे हुए वृत्त निर्देश करता ह सूक्ष्म (subtle) अथवा अव्यक्त, अगोचर (unmani fested) व्यूहरूपता की नेमि या परिधि को ।

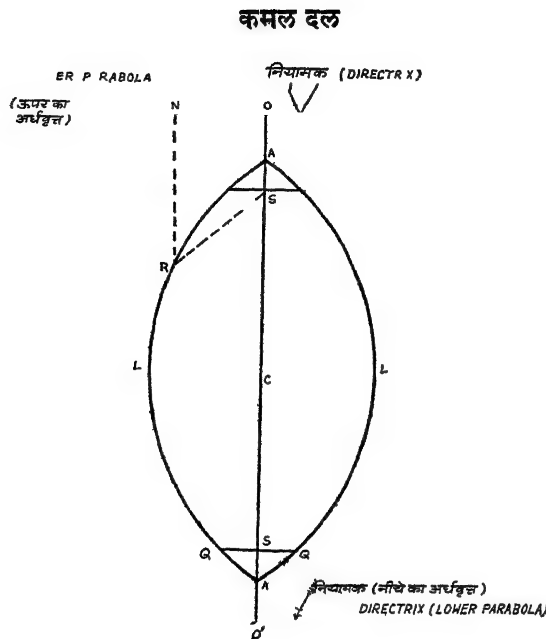
७ अ तरतम (inmost) वत्त को यदि Root Matrixs Realm या नाभि (sphere) तो दूसरे वृत्त को कहेंगे पहले का basic formulating sphere or Norm sphere (वस्तु = real का मूल ऋतलेख = Norm या छा दसी तनु) । नाभि या causal Matrix की स्वगत (intrinsic) अर नेमि विस्तार रूपता तक व गणित की परिभाषा मे (logico mathematical oppriciation) किसी प्रकार सीमित, सकुचित होकर (with limitation or specification) आने पर भी अभी भी वास्तव या कल्पित गोचर रूपता मे (picturable form) मे नही आयी ह, जैसे कि Matageometry, Quantum Physics एव Wave Mechanics के वे भाग है जो साधारण चतुर्मात्रिक विश्लेषण (XYZT) म आबद्ध नही रखे जाते ।

८ भीतर से दूसरे वत्त को घेर कर जो चतुभु ज है वह विशेषत यही चतुर्मात्रिक विश्लेषण ह, सुतरा गोचररूपता (picturability) का निर्देश देता ह ।

९ उसे भी घेरे जो वत्त है वह है सीमा रेखा = boundary line between what is logico mathematically understandable and formulatable, and what is actually and concretely observable

१० भीतर के पहले वत्त को यदि कहे Noumenal मण्डल (ऋतञ्च सत्यञ्च) तो द्वितीय को कहेंगे medium मण्डल, और उसके बाहर वाला होगा हमारा साधारण convensional or reactive behaviour मण्डल ।

कमल दल



साधारण अक्ष—Common Axis = AA ,, SA = AO = S′A = A′O′ = $\frac{1}{2}$ SP = $\frac{1}{2}$ S′Q,

नाभिलम्ब—Latus Rectum = PP′ = QQ′,

नाभि—Focus = S & S′, SR = RN,

साधारण द्विकोटि—Common Double Ordinate
= LL′, [CL = CL′, CA = CA]

कमल दल (Lotus Petal) **का यन्त्ररहस्य**

मान लो 'यह' या 'अय' ('this') रूप से वास्तव (actual) की भूमि है। यही जपसूत्रम की सज्ञा के अनुसार 'भू' लक्षण मे आती है। उसे एक सरल रेखा मे लिया। मान लो और भी एक भूमि है जहा इस 'यह' भूमि पर actual रूप से गहीत वस्तु या घटना (= सत्ता + शक्ति + सम्ब न्ध + आकृति) पूरे व यथाथ रूप से है व रह सकती ह। यह 'यह' के सम्ब ध मे 'वह' ('that' or 'what') की भूमि है। इसे कहते हैं 'स्व'। अब इन दोनो भूमियो को दो सरल रेखाये मान लिया। स्व रेखा को कहो 'upper' और भू रेखा को 'lower', इन दोनो के बीच जो व्यवधान है वह है अन्तरिक्ष जिसके माध्यम से 'वह', 'यह बनता ह और 'यह', 'वह'। सुतरा यह माध्यम चल (dynamic) है एव उसमे एक स्वगत शक्ति सस्था का रूप (intrinsic power picture) है। उक्त आकृति की अनेक प्रकार से कल्पना की जा सकती है। उनमे से जो सर्वाधिक यथाथ एव शुद्ध है सत्य से सयुक्त व ऋतानुग ह उसी आकृति को दिखाने के लिये यह कमलदल है। क्यो ? ऊपर अङ्कित चित्र मे ऊपर एव नीचे दो सरल रेखा (Directrix) है। दोनो के बीच, उन्हे

दण्ड रूप से जोडती हुई एक और सरल रेखा ह । उसमे एक स्थिर बिन्दु ह S, सयोजक व ऋत निरूपक रेखा ह अक्ष (Axis) जपसूत्रम की परिभाषा मे यही अक्ष ह 'दक्ष' ।

अब नीचे का कोई बिन्दु यदि निश्चय करे कि वह नीचे की इस रेखा (actual) एव अक्ष के स्थिर बि दु (S) (इन दोनो) मे समदूरत्व रखत हुए अपना गतिपथ (ऋत प था) निरूपित करेगा तो हमे ऊपर की ओर प्रसारित एक पैराबोला मिला । यदि ऊपर का भी कोई बि दु ऐसा ही सङ्कल्प करके चले तो नीचे की ओर प्रसारित एक और पैराबोला मिला । एक आरोही (ascending) है दूसरा अवरोही (descending) साधन की दष्टि से पहला कृति ह दूसरा कृपा । दोनो Parabola सुषम रूप से (symmetically) परस्पर का 'छेद' (भेद) करते हैं । यही दोनो का सम वय छेद ह, जैसा कि दोनो त्रिभुजो के समय था । यह छेद (परस्पर मिल जाना या प्रवेश) दोनो बि दुओ की सयोजक सरल रेखाओ (P S P) का सम वय करता ह । अक्ष के सम्पक मे यही विशेष रूप से दक्ष है, क्योकि यही Parabola का सूत्र (अभिविधि) दिखाता ह । इसीलिये कमल के रूप (form) के सम्ब ध मे यह निरूपक (Norm) ह । इसका शासन ह ऋत छ द । यही श्री' बीज है । लक्ष्मी या कमला का बीज ह । अक्ष (Axis) "ऐ"—ऋत छ द मे अभ्युदय या अभ्या रोह का बीज ह । S या Focus विशेष रूप से "ह्री" बीज है । इसका आश्रय लेकर ही ऋतान्वय (unfolding या enfolding) घटित होता है । और स्व एव भू इन दोनो की सीमा या काष्ठा जिसके द्वारा निरूपित होती ह अन्तरिक्ष के माध्यम से वही "क्री" या क्ली बीज ह ।

कमलदल को Parabola pattern मे विश्लेषण करके दिखाया गया । Parabola मे SA AO अनुपात एक (unity) हुआ रहता है । अनुपात को यदि कहूँ e, और इसके धन या ऋण किसी भी प्रकार के परिवतन (change) को उसका index (ı) कहूँ तो वह ı शू य, इसीमे $e^{\circ} = 1$ । कि ही दो मूलनियामको (S एव Directix) के सम्पक से कोई बिन्दु यदि अपना गतिलेख (locus) $e^{\circ} = 1$ इस सूत्र मे पाना चाहे तो उसका पथ Parabola आकृति का होगा । यह पथ साधारण आधार मे ससीम नही । अवश्य ही उसको किसी ससीम आधार मे (जैसे भूमितल से किसी projectile के क्षेत्र मे) ससीम अवच्छेद (finite section) मे दिखाया जा सकता ह । मैने पद्म दल मे दो Parabolas को परस्पर सुषम अवच्छेद मे दिखलाया उनकी व्यञ्जना भी सक्षेप मे दिखाई ।

अब प्रश्न यह है कि दो परस्पर अवच्छिन्न (interlaced) सममात्रिक Parabola न दिखा कर उसी अथ को एक वत्ताभास (ellipse) आकृति अथवा interlaced hyperbola इत्यादि रूप मे नही दिखाया जा सकता ? वत्ताभास मे भी तो दो दिशाओ मे दो directix, दो axis, दो विभिन्न केद्रबि दु—यह सभी कुछ ह । ठीक ह । किन्तु वह समग्र $e^{\circ} = 1$ न होकर यदि कोई भग्नाश हो, तो उसके द्वारा चलिष्णु बि दु का गतिवत्म ठीक अखण्ड मान मे नही रहेगा । भग्नाश के 'लव' व 'हर' के अनुपात मे विषमता होगी । जैसे सूय के चारो ओर किसी ग्रहविशेष का गतिपथ वृत्ताभास है जहा centripetal एव centrifugal force दोनो का अनुपात वत्मनियामक है । इसमें परिवतन होता है व हो सकता ह (जैसे किसी बाहर की ज्योति के आकषण से) । आणविक मण्डल मे भी यह सम्भावित है ।

इसीलिये atomic disruption घटित होता है। जीवकोश के विवर्तन मे, मानस व्यापार मे भी ऐसी सम्भावना विशेष रूप से प्रकट है। इन सब 'विषम विपर्यय' के (सुषम ऋतान्वय रूप से व्याख्यात) परिहार के लिये दो पैराबोला ही लेने पडते है—अभिव्यक्ति की शुद्ध, सुषम रूपता दिखाने के लिये। व्याज (वैरूप्य) एव विघ्न (वैगुण्य) से रहित हुए बिना गति शुद्ध छन्दस ($e^{\circ} = 1$) आकार नही पाती। सृष्टि की स्थूलतात्विक अभिव्यक्ति मे सभी कुछ मे eccentrins (e^{1}) होने की झोक (प्रवणता) है। उसको काटने हटाने का उपाय है—$1 = 0$ (evanascent) कर लेना। कमलदल उसी का सवाद देता है। इसीलिये पद्म विशेष रूप से—harmonic evolution towards a consummated end—का प्रतीक है।

हमारे विश्वानुभव की मूल सामग्री है A A (Alogical Absolute) उस को किसी पारिभाषिक, व्यावहारिक अवच्छेद मे समग्र रूप से एव स्वभाव मे (as a whole and as it is in itself) नही लिया जायेगा, सुतरा उसको, जड, प्राण, मन व्यावहारिक चेतना—इन सबमे से किसी को भी 'पूर्णतत्त्वत' नही कहा जायेगा। तब भी उसको इस जगत के उद्भव व परिणति के प्रसङ्ग मे, घनता परिसीमा (maximum potency या implication) एव वितान परिसीमा (maximum potency या amplification) इन दोनो रूपो मे जानने व देखने के प्रयास मे विज्ञान उत्पन्न होता है। इन दोनो परिसीमाओ (बिन्दु एव नाद) के अभिमुख ध्रुव (सतत) अभियान के लिये विज्ञान जिन मौलिक सूत्र-छन्दो का आविष्कार कर रहा है वे ही उसके मन्त्र है, जिन मौलिक ऋत लेखो (true power-functioning diagram या device) का आविष्कार कर रहा है वे ही उसके यन्त्र है, और जिन मौलिक प्रक्रियाओ द्वारा इन दोनो मे साहित्य समन्वय (co ordination) साध रहा है वे ही उसके तन्त्र है। इन तीनो मे से यन्त्र power disposition design है अत उसकी आलोचना (understanding, appreciation) के लिये पहले ही (provisionally) एक दशिक (ज्यामितिक) पटभूमि तैयार कर लेनी होती है, क्योकि यन्त्र के स्थल पर सख्या सूत्र रूप से नियामक होने पर भी परिमाण व परिमेयता की मुख्यता (preponderance of dimensionabilty) है। अवश्य ही dimension आणव, माध्यम (medium) एव वैराज तीन पर्वो मे लेना होगा। आणव की परिसीमा है बिन्दु, वैराज की नाद और माध्यम की कला। इन तीनो मे पारस्परिक स्थिति परिणति कराती है अर्धमात्रा—The principle of dynamic acceleration, by continued diffe rentiation and integration, with respect to two ultimate limits

[A measure commensurable or not that accelerates in sense, ratio direction i e both in form and norm evolving primarily harmonic functions —Mataphysics of Physics p 18]

(जपसूत्रम मे अर्धमात्राष्टकम द्रष्टव्य।)

मान लीजिये किसी कागज पर एक यन्त्र आकना है। क्योकि यन्त्र है—basic power disposition scheme, एव पूर्वोक्त अर्धमात्रा है इसका अकक (tracer)—

इसलिये कागज पर एक 2—dimensional रेखाचित्र (graph) ही दिखाना सम्भव होगा।

यन्त्र के धम (आकृति प्रकृति) मे ऐसा काई सङ्कोचन (reducing or restricting factors) नही ह इस कारण रेखा चित्र द्वारा उसकी निजस्व (अपनी) आकृति प्रकृति को ठीक ठीक व्यक्त नही किया जा सकता। वसे चित्र मे व्यञ्जना (implication of sense) व कल्पना (suggestive hint, pointers, indicators आदि) ही उपयुक्त स्थान पायेगी। अवश्य ही व्यञ्जना व कल्पना—दोनो को ही सवादिनी होना आवश्यक ह। जसे कि यह य त्र (जसे श्रीयन्त्र) अमुक देवता (जैसे ललिता) का है, इसमे उस देवता के ये ये प्रभाव विभावादि ह—केवल इतना समझने से यन्त्र को पूरा पूरा व वस्तुत समझना नही हो जाता। बीज वण आदि भी नही समझे जाते।

यह जो Cosmic scheme (भुवन परिकल्पना) ह, इसकी उत्पत्ति स्थिति परिणति मे मूल Matrix क्या ह—इसका स धान लेना होगा। वह मूल निरूपक बिन्दु (origin या Radix) ह। उसके के द्र मे बठ कर य त्राकृति को उदभावित (evolve) करना होगा। बिन्दु ज्यामितिक 'point' नही ह। यह सव सम्भावना बीज की परिसीमा ह। यह Primal Evolvent centre ह। इसी से रेखा, त्रिभुज, वत्त आदि सभी evolutes का उदवतन होता ह। पहले उद्वतन पव मे मिलती हैं 'नाभि' एव 'नाभिनिष्ठ' (intrinsic) हृल्लेखा (core picture of power disposition)। रेखा, त्रिभुज, वत्त आदि की व्यञ्जना अनुरूप मौलिक दष्टि से ही समझनी होगी। इनमे से प्रत्येक total power disposition scheme का एक एक specification ह—विशेष विशेष आलोच्य अनुबन्धो (frame of reference) मे।

अत मे एक प्रश्न ह—मूल मातृका रूप बिदु किस गोत्र का है ?—जड, प्राण या व्यावहारिक चेतन ? उत्तर—इनमे से कोई भी विशेष रूप से नही, अथ च इन सभी का मूल अधिष्ठान एव पूण सम्भावना वही ह। विज्ञान मे जड, प्राण, मन को जितने ही घनिष्ठ रूप से समझ रहे है उतना ही उस मूल—(Thing or Power in itself) को समझने की ओर अग्रसर हो रहे ह। उतना ही षटकोणी आदि सृष्टि मे अनुस्यूत य त्रसमूह को अच्छी तरह समझ रहे है। जड, प्राण व मन—यह त्रिधारा जहा मिलित है, परस्पर की पूर्ण उपकारक व सम्पूरक ह वही प्रज्ञान की भूमि है। आज कृत्रिम उपाय से gene तैयार किया गया एक—Chemical entity that works wonder in biological evolution की तरह, यह ठीक है। किन्तु chemical basically and really क्या वस्तु ह ? Physics कुछ स्पष्ट नही कह पायेगा आज नही तो परसो ? मनोविज्ञान आदि भी तब तक गाल पर हाथ धरे बैठे रहेगे क्या ? मूल की तलाश तो करनी ही होगी—जितना विज्ञान कर सके उतना उससे, बाकी प्रज्ञान से। विज्ञान को छोडा तो नही जा सकता।

मूल बगला से अनूदित—डॉ० ऊर्मिला शर्मा

अद्वैत वेदान्त मे वृत्ति की धारणा

(कुमारी) ऊर्मिला शर्मा

जो कुछ अनुभवगोचर ह, इसका मूलभूत तत्त्व क्या ह और उस तत्त्व का अनुभव क्या है ? कैसे होता है, हो रहा है व हो सकता ह—इसी की खोज दशन ह। तत्त्व का स्वरूप क्या ह, तथा अनुभव का स्वरूप, उपाय व प्रकार क्या ह — इन दो जिज्ञासाओ से प्रवत्त विचार दशन के दो पक्ष ह जिनका परस्पर निरपेक्ष अस्तित्व सम्भव नही, तत्त्व क्या ह इसी की मान्यता पर अनुभव के स्वरूप, उपाय व प्रकार आदि का चिन्तन निभर ह इस प्रकार तत्त्व मीमासा व अनुभव मीमासा ये दो दशन मात्र के अनिवाय व अविभाज्य दो पहलू है।

अद्वैत वेदान्त दशन मे परमतत्त्व और अनुभव या ज्ञान अभि न ह। कि तु वह पार मार्थिक स्थिति है, जहा अनुभविता, अनुभाव्य व अनुभव की त्रिपुटी नही ह, निर्विकल्प स्वप्रकाशबोध अपने आपमे विराजमान है उससे इतर कुछ ह ही नही। किन्तु जिस स्थिति से विचार किया जाता ह वह व्यावहारिकह। यहा अन त नानात्व से भरा जगत ही अनुभविताओं के सम्मुख है। विचार का आरम्भ होता ह इस प्रश्न को लेकर कि विचारक स्वय कौन ह ? उसका परिवेष रूप यह जगत क्या ह ? तथा इन दोनो मे सम्ब ध क्या है व कब तक ह ? तत्त्वमीमासा से उत्तर मिलता ह कि क्योकि तत्त्व एक ही ह, (जिसे कहना ही हो तो ब्रह्म कहा जा सकता है) अत विचारक भी उस तत्त्व से पथक नही, उसका परिवेष नानात्मक है, सत्य एक है अत नाना को मिथ्या मानना होगा, इस परिवेष का भी तत्त्व वह एक ही है, उसी की सत्यता से यह स्थित ह, उसी के चैत य से यह प्रकाशित है, प्रवत्तिशील है। इस परिवेष से विचारक का सम्ब ध भी फिर उस एक तत्त्व से पथक कुछ और नही हो सकता। स्थूल रीति से कहे तो इन दोनो मे सम्ब ध यही है कि एक ही तत्त्व से ये दोनो अनुप्राणित है, प्रकाशित है। किन्तु इतने से अन्तिम प्रश्न का पूरा समाधान नही होता, क्योकि एक ही आधार पर स्थित होने से अतिरिक्त भी कुछ सम्बन्ध इन दोनो मे परस्पर दिखाई देता है कुछ ऐसा सम्ब ध कि एक के बिना दूसरे की कोई साथकता नही, स्थिति ही नही, यह कहना भी असत्य नही। वह सम्ब ध है एक (चेतन) पक्ष द्वारा दूसरे (अचेतन) का उपयोग = व्यव हार। इसके भी मूल मे ह एक के द्वारा दूसरे का जाना जाना। एक के प्रति दूसरे का प्रकट होना। इस प्रकार "जानना" ही वास्तव मे ततीय प्रश्न का उत्तर है। इस प्रकार विपुल विश्व से असख्य अनुभविताओ की सम्पक रेखा भी है ज्ञान ही। अब प्रश्न उठता है कि एकमात्र तत्त्व का स्वरूपभूत ज्ञान तथा विचारक व परिवेष का सम्बन्धभूत ज्ञान क्या एक ही वस्तु है ? परमतत्त्व तथा विचारक परिवेष (जीव जगत, चेतन चेत्य) की वस्तुता मे जितना सा (पारमार्थिक व व्यावहारिक होने का) अन्तर है वह भी इन स्वरूप व सम्बन्ध रूप ज्ञानो मे है या नही ? जो तत्त्व विचारक व परिवेष के अस्तित्व की भित्ति है, वही क्या इन दोनो मे परस्पर उक्त सम्बन्ध की भी भित्ति है ? तथा अनिवचनीय भूल (माया) से रचित इन

दोनो (जीव जगत, चेतन चेत्य) के अधिष्ठान रूप से गूढ (छिपा हुआ स्थित) एक तत्त्व ही क्या इनके परस्पर सम्ब ध (ज्ञात ज्ञेय भाव के घटक ज्ञान) रूप मे प्रकट है ? किन्तु यह ज्ञान ह अनेक सीमाओ से घिरा, विश्व सागर के अतीव क्षुद्र सीकरो को भी क्रमश (एक समय मे एक ही विषय को) पकडकर अनुभविता से उसका सम्ब ध कराने वाला। पारमार्थिक स्थिति के ज्ञान (एकमात्र तत्त्व के स्वरूपभूत ज्ञान = चैतन्य) का इस व्यावहारिक स्थिति के ज्ञान (जीव का होनेवाला, पथक पथक विपयो का कादाचित्क ज्ञान) से क्या सम्ब ध ह इसे देखने के लिये प्रवत्त होने पर सामने आते ह व्यावहारिक स्थिति की व्याख्या करने वाले अनेक वाद जो सच्चिदान द अद्वय निष्कल ज्ञानस्वरूप परमतत्त्व के—विपरीत स्वरूप वाल सचराचर विश्व की सम्भाविका—माया से हुए, सम्पक के—विश्लेषण मे विचारक मति वैचित्र्य के कारण प्रसृत हुए है। इन वादो मे अनुभविता व अनुभा य जगत के स्वरूप पथक-पथक आलोचित हुए ह। इस पाथक्य को ध्यान मे रखते हुए पूर्वाक्त समस्या (पारमार्थिक ज्ञान व व्यावहारिक ज्ञान का सम्ब ध क्या ह, कसा व कब तक ह ?) पर विचार तथा व्यावहारिक स्थिति मे सम्भाव्य सभी ज्ञान प्रकारो का अद्वतसिद्धा तो के प्रकाश मे विश्लेषण प्रसगानुकूल होने पर भी इस लघुनिबन्ध मे सम्भाव्य नही। तथापि अद्वैतवेदा त के सवतोमा य तथ्य के रूप मे अतिसक्षेप मे कहा ही जा सकता ह कि अखण्ड अमेय ब्रह्म तथा अनिवचनीयस्वरूपा माया के अनिर्वचनीय ही सम्भेद (परस्पर अध्यास) की कृति ह यह विश्व उन दोनो की ही अमेयता, अनिर्देश्यता ("यह ऐसा ह"—न कहा जा सकना) समान ही है। स्वयप्रकाश रूप ही तत्त्व सभी कुछ का आधार ह अवश्य किन्तु उस रूप मे वह कहा पकड मे आ रहा ह ? माया द्वारा अनेक प्रकार से नापा जाता हुआ भी वह अमेय ह, और उस अमेय को नानाविध माप मे लाने वाली माया भी अपने स्वाभाविक स्वरूप मे अमेया ही है। अब अमेय "एक" का—अन त मेय (दश्य) मान (दशन) माता (द्रष्टा) से भरे जगत का अधिष्ठान होना, तथा अमेया का उक्त अधिष्ठित की सम्भाविका (स्थिति देने वाली) बनना घटित कसे होता है ? यह प्रश्न भी पूर्वोक्त प्रश्नो के साथ मिलकर जिज्ञासा को उत्कट बनाता ही ह।

इन सब प्रश्नो का उत्तर वेदान्त की ज्ञानमीमासा मे मिल जाता है। तदनुसार पारमार्थिक ज्ञान ही वास्तव मे ज्ञान पदाथ है, उसके व्यावहारिक रूप—विभि न अनुभविताओ को होने वाले विविध प्रकार के कादाचित्क विपयज्ञान की उपपत्ति के लिये कल्पना की गई है एक उपाधि की, जो विभि न जानने वालो व विभिन्न विषयो की अपेक्षा से विभि न सख्या वाली होते हुए, अखण्ड नित्य ज्ञान पदाथ की खण्डश अनित्य अभिव्यक्तिया कराती है, अनुभविता व जगत की स्थिति रहने पयन्त जिस किसी भी स्तर व प्रकार का ज्ञान सम्भव ह, उस (ज्ञान) मे इस (वृत्तिरूप) उपाधि की नियत अपक्षा ह, अथवा समस्त व्यावहारिक ज्ञानो का अनिवाय घटक ह वत्ति रूप उपाधि।

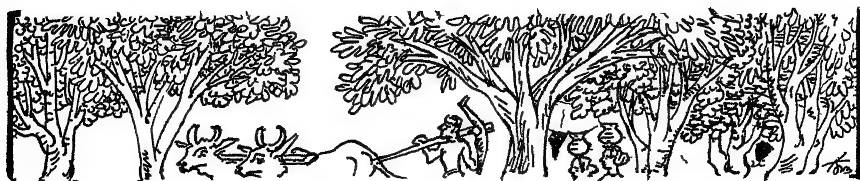
इस वत्ति का स्वरूप ह—चि मात्र तत्त्व के अविद्या-सनिधान से निष्प न ज्ञाता रूपो (सवज्ञ सववित ईश्वर व अल्पज्ञ जीव) की उपाधियो (माया, अविद्या, अ त करण) का ज्ञानानुकूल ज्ञेयविषयाकार परिणाम, जो कि समस्त सचराचर जगत चित्र की भित्ति रूप मे सर्वत्र सवदा स्थित ब्रह्मचैतन्य (पारमार्थिक ज्ञान पदाथ) को "विषयज्ञान" रूप से अभिव्यक्त कराता ह, जैसे कि सूयकान्त मणि सब ओर सामान्य रूप से व्याप्त होकर सभी को प्रकाशित

करती हुई सूयरश्मियो को, किसी एक स्थल पर दाहक (जलाने वाली) रूप मे व्यक्त करता है ।

जीव के कदाचित्क विषयज्ञान के रहस्य की जिज्ञासा से जिस वत्तिपदाथ की कल्पना की गई है, उस पर ध्यान केद्रित रख कर उसका स्वरूप विश्लेषण करने पर दिखाई देता ह कि केवल घट पट आदि विषयो के कदाचित्क ज्ञान की समस्या को सुलझाने मे ही वत्ति पदाथ कृत-कृत्य नही, अपितु मायावाद के समान ही वत्तिधारणा भी अद्वैत वेदा त के जगद व्यवहार के व्याख्यापक सिद्धा तो की भित्ति है । तथा जगत की उत्पत्ति, स्थिति व विलय भी वत्ति के ही काय है । ईश्वर जगत स्रष्टा है जगदविषयक ईक्षण करने के कारण । ईक्षण ईश्वर की उपाधि माया का परिणाम होने से वृत्ति ही ह, (यह साधारण सष्टिवाद का अभिमत है) । जीव को एक ही मानने के पक्ष मे उसकी उपाधि द्वारा विषय किये गये ब्रह्मचैत य पर अध्यस्त है जगत, अत जीव की दष्टि निरूपिता ही समस्त सष्टि ह, उस दष्टि की स्थिति ही सष्टि की भी स्थिति ह । किसी भी प्रकार से जगत जब तक स्थित ह तब तक इसमे चलने वाले, अनु भाव्य के सम्ब ध रूप ज्ञान का प्रत्येक प्रकार वत्ति-घटित ही ह ।

इसके अतिरिक्त, ब्रह्म से लेकर तण पय त जो कुछ भी वत्तमान है वह विद्यमान होता (= जाना जाता) है किसी न किसी से सम्बद्ध होकर ही (यह सम्ब ध व्यक्त हो चाहे न हो) । वत्ति ही किसी भी स्थितिशील वस्तु को, यहा तक कि अमेय असग वस्तु ब्रह्म को भी किसी सम्ब ध मे लाकर प्रमेयरूपता देती है । शुद्ध चैतन्य को ज्ञप्ति, ज्ञान, ज्ञेय व ज्ञाता आकारो मे लाती है वत्ति ही । अथवा अखण्ड भान (सभी कुछ के अधिष्ठानभूत चैत य या ज्ञान) मे विषय विषयि भाव उदित होता है वत्ति की अपेक्षा से ही । जहा से वत्ति उदित होगी वह (ज्ञाता) विषयी ह, जहा पहुँचेगी व जिसे अपने क्रोड मे लाकर अवभास्य बनायेगी वह विषय (ज्ञेय) ह, उस वत्ति पर आरूढ होकर चैत य विषय को प्रकाशित करेगा वह बोध (ज्ञप्ति) है—इत्यादि ।

इस जगत का व अनुभविताओ के सीमित भाव का विलय भी होता है अखण्ड ब्रह्माकारा वत्ति के द्वारा ही । अथवा समग्र ब्रह्मचैत य के स्वेतर उपाधि से अस्पष्ट स्वरूप को विषय बनाकर निखिल प्रपच का प्रविलय करते हुए पारमार्थिक स्थिति के प्रकट होने मे साधकतम कारण है वृत्ति ही। इस प्रकार अद्वैत वेदान्त दशन के तत्त्वमीमासा व ज्ञानमीमासा दोनो पक्षो मे वत्ति धारणा की महत्ता सम व्याप्त है ।



विट्‌गेंस्टाइन के अनुसार दर्शन का स्वरूप

देवकीनन्दन द्विवेदी

१ "दशन" तथा इसके समानाथक अ य शब्दो का प्रयोग कई अर्थो मे किया गया ह । इन अर्थो मे व्याप्त किसी सामा य प्रत्यय की खोज स्पष्टत व्यथ ह । होता यह है कि दशन की कोई भी परिभाषा एक विशेष दाशनिक सिद्धा त के अनुसार दी जाती है भले ही यह बात प्रथम दष्टि मे स्पष्ट न हो । यह बात वापसमान[१] की तटस्थ लगने वाली परिभाषा के साथ भी कमोवेश रूप से सत्य है । विटगेंस्टाइन के बिश्लेषण की यह विशेषता है कि उसमे दशन की परिभाषा देने का कोई प्रयास नही ह । इस विषय मे विटगेंस्टाइन का कोई सैद्धातिक आग्रह नही दिखता । यह कहना कि उसके अनुसार दशन भाषिक विश्लेषण ह, केवल अशत सत्य ह, और यदि इसे सावधानी से न समझा जाय तो कई भ्रान्तिया उत्पन्न हो सकती है ।

सबसे पहले यह बताना उपयोगी होगा कि विटगेंस्टाइन के दाशनिक विकास मे स्पष्ट रूप से दो अवस्थाये है, जिनमे कई महत्त्वपूण अन्तर है । कि तु यह कहना कि इन दो अवस्थाओ मे दो विटगेंस्टाइन ह, जिनमे कोई साम्य नही ह, एकदम गलत ह । दोनो अवस्थाओ मे मूल समस्याये वही ह, और उनके समाधान की विधा भी लगभग एक ही है । रसेल[२] का मत कि "ट क्टेटस" का विटगेंस्टाइन एक मौलिक विचारक ह किन्तु बाद का विटगेंस्टाइन गभीर चि तन से विमुख हो गया ह, निश्चयत असत्य है। दो अवस्थाओ मे उसका सम्ब ध तर्कशास्त्र की प्रधान समस्याओ से है, और दोनो अवस्थाओ मे पारम्परिक दाशनिक समस्याओ का विश्लेषण किया गया ह ।

२ विटगेंस्टाइन काट की तरह दशन को "आलोचना"[३] मानता ह । कि तु यह आलोचना बुद्धि की नही बल्कि भाषा की ह । काट के लिए मुरय प्रश्न था निर्धारण करना कि मानव बुद्धि कितना और किस रूप मे जान सकती ह । विटगेंस्टाइन ज्ञान मीमासा को "मनोविज्ञान का दशन "[४] कहता ह । बुद्धि की आलोचना किसी न किसी रूप मे मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित ह । इसलिए विटगेंस्टाइन भाषा को दाशनिक विश्लेषण का आधार मानता है । किन्तु इसका यह अथ नही, जैसा कि प्राय समझा जाता ह कि दशन दाशनिक समस्याओ के रूप मे नही बल्कि किसी अ य रूप मे भाषा का अध्ययन करता ह । भाषा-विश्लेषण की आवश्यकता इसलिए पडती ह कि जिससे दाशनिक समस्याओ की साथकता का निर्धारण हो सके । वह ट क्टेटस की प्रस्तावना मे कहता है[५]

१ वापसमान एफ, "क टेम्पोररी ब्रिटिश फिलासफी",

२ रसेल, बी "माई फिलसाफिकल डेवलपमेट" प २१६–१७

३ ट्रैक्टेटस, ४ ० ० ३

४ ,, ,, ४ ११२१

५ ,, ,, पृ २७

(उसका पूरा अथ सक्षेप मे कुछ इस तरह व्यक्त हो सकता है)—जिसका कथन हो सकता है उसे स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है, और जिस विषय मे कथन नही हो सकता उसके लिए चुप रहना आवश्यक है।

इसलिए इस पुस्तक मे विचारो की, अथवा विचारो की नही बल्कि विचारो की अभिव्यक्ति की, सीमा निर्धारित की जायगी।

इस लिए यह सीमा केवल भाषा मे खीची जा सकती है और जो मीमा के उस पार है वह निरथक है।

अत ट्रेक्टेटस का एक मुख्य विषय है यह बताना कि किस प्रकार के तकवाक्य साथक है। विटगेस्टाइन के अनुसार सभी साथक तकवाक्य (पुनरुक्ति और व्याघात को छोड कर) वास्तविक अथवा सभावित स्थितियो[1] का कथन करते है। केवल वणनात्मक वाक्यो[2] का ही अथ होता ह। वे एक विशेष स्थिति के होने अथवा होने का कथन करते है। यह कथित अथवा वर्णित स्थिति ही तकवाक्य का अथ है। किसी अ य बात का कथन नही हो सकता। इस तरह सभी साथक भाषाये स्थितियो अथवा तथ्यो का चित्रण करने वाले वाक्यो तक ही सीमित है। विचार भी इन तथ्यो तक सीमित है क्योकि "विचार एक साथक वाक्य है।"[3] विचार और भाषा की सीमाये एक ही ह। अत विचार और भाषा दोनो का विषय स्थितिया अथवा तथ्य ही ह।

इससे यह निष्कष निकलता ह कि जो वाक्य किसी तथ्य का चित्रण (या कथन) नही करता वह निरथक ह। उसका कथन निरथक ह। इस दष्टि से तथाकथित पारमार्थिक वस्तुओ—ईश्वर, आत्मा के विषय मे कोई कथन नही हो सकता। मूल्यो—नैतिक एव सौ दर्यात्मक का कथन भी अथहीन है। केवल प्राकृतिक विज्ञान के तथ्यो का साथक कथन हो सकता है। अत दशन के अधिकतर प्रश्न और सिद्धा त असत्य नही, बल्कि निरथक है। जब ऐसे विवाद उठाये जाते है, तो हम केवल कृत्रिम दशन मे फँस कर रह जाते है। तत्त्वशास्त्र, नीतिशास्त्र, सौ दयशास्त्र, धमशास्त्र तथा अ य अनुभवातीत विषयो से सम्बद्ध विषय प्राय ऐसे ही कृत्रिम तथा मिथ्या प्रश्नो पर विवाद करते है। केवल उसी विषय का कथन हो सकता है जिसे स्पष्ट रूप से कहा जा सके। अर्थात् केवल वणनात्मक भाषा (जो प्राकृतिक तथ्यो का वणन करे) ही साथक है। इसका यह अथ नही कि जो अनुभवातीत है वह असत ह, केवल उसका कथन नही हो सकता।

यदि साथक कथन केवल प्राकृतिक तथ्यो का ही हो सकता है, तो दशन मे किसी सिद्धान्त का निरूपण नही हो सकता। प्राचीन दाशनिको के अनुसार दशन एक विशेष प्रकार का ज्ञान अथवा ज्ञान की खोज है। यह दाशनिक ज्ञान पारमार्थिक सत्ता के स्वरूप को व्यक्त

१ नोट 'स्थिति" वस्तुओ के क्रमबद्ध सगठन को कहते है। "वस्तु" एक, अविभाज्य तत्त्व है जिसे केवल नाम दिया जा सकता ह।

२ नोट यहा सुविधा के लिये मैने "तकवाक्य" और "वाक्य" के पारिभाषिक अन्तर पर ध्यान न देते हुए दोनो का लगभग एक ही अथ मे प्रयोग किया है।

३ ट्रैक्टेटस, ४।

करता है। कुछ दार्शनिक दर्शन को ज्ञान का विश्लेषण मानते हैं। कुछ आधुनिक दार्शनिक दर्शन के क्षेत्र में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करते हैं और दर्शन को एक विशेष प्रकार का संश्लेषात्मक विज्ञान मानते हैं। दर्शन की इन सभी परिभाषाओं में दो कार्यों को मिला दिया गया है—सत्य की खोज और प्रत्ययों का स्पष्टीकरण। प्रथम क्रिया स्पष्टत सिद्धान्तो का निरूपण करती है, किन्तु द्वितीय केवल अर्थ के स्पष्टीकरण से सम्बन्धित है। पहला कार्य वैज्ञानिक का है और दूसरा दार्शनिक का। वैज्ञानिक केवल सत्य अथवा तथ्य का अन्वेषण करता है। दार्शनिक का कार्य केवल अर्थ का विश्लेषण एवं स्पष्टीकरण करना है। अत दर्शन भाषा की आलोचना है। दर्शन सिद्धान्त न होकर एक क्रिया है। दर्शन न तो विशेष प्रकार का विज्ञान है, न विज्ञान के समकक्ष। यह ज्ञान का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी नहीं है। किन्तु दर्शन सभी प्रकार के वाक्यों का उद्देश्यहीन विश्लेषण नहीं है। इसमें प्रयोगो, सन्दर्भो तथा वाक्यो का स्पष्टीकरण किया जाता है जिनका तार्किक रूप न समझने के कारण क्रमिक दार्शनिक विवाद उत्पन्न होते हैं।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि "ट्रैक्टेटस" में विटगेंस्टाइन का एक मुख्य उद्देश्य दार्शनिक क्रिया का स्वरूप निर्धारित करना था। बाद के लेक्चर नोट तथा 'फिलासाफिकल इन्वेस्टीगेशन्स" में भी उसकी प्रधान समस्यायें हैं दर्शन किस तरह की क्रिया है? एक दार्शनिक समस्या का क्या स्वरूप है? दार्शनिक समस्यायें किस तरह उत्पन्न होती हैं? विटगेंस्टाइन के विचारो को और अच्छी तरह से जानने के लिए यह आवश्यक है कि दोनो अवस्थाओं की समता और अन्तर को जान लिया जाय। "ट्रैक्टेटस में वह मानता है कि दर्शन सिद्धान्त नहीं बल्कि क्रिया है। दर्शन का परिणाम दार्शनिक तर्कवाक्य नहीं बल्कि तर्कवाक्यो का स्पष्टीकरण है। "इन्वेस्टीगेशन्स" में वह कहता है कि दार्शनिक सिद्धान्त नहीं होते। कम से कम अपने लिए वह कहता है, "मैं दर्शन में कोई मत नहीं रखता। वह कहता है कि दर्शन किसी प्रकार की व्याख्या नहीं करता, उसमें केवल वर्णन रहता है। दर्शन में समस्याओं का समाधान नई सूचना देने से नहीं बल्कि जो कुछ पहले से ज्ञात है उसे सही क्रम में समझने से होता है।[1] दर्शन में हम कोई निष्कर्ष नहीं निकालते। दर्शन में केवल वही कथन किया जाता है जिसे सभी स्वीकार करते हैं।[2] दर्शन की समस्यायें वैज्ञानिक समस्यायें नहीं हैं। दार्शनिक समस्यायें नए तथ्यो के अभाव के कारण नहीं भाषा का स्वरूप न समझने के कारण उत्पन्न होती हैं। भाषा का ऊपरी रूप या उसका साधारण व्याकरण भ्रान्तिया उत्पन्न करता है। दार्शनिक समस्यायें भाषाजनित भ्रम पर आधारित हैं। अत भाषा का स्पष्टीकरण ही दार्शनिक समस्याओं का समाधान कर सकता है

दर्शन भाषा द्वारा उत्पन्न हमारी बुद्धि के सम्मोहन के विरुद्ध युद्ध है।

फि इ सेक्शन १०९

१ विजडम, जे, "लुडविग विटगेंस्टाइन १९३४ १९३७" माइण्ड, अप्रैल, १९५९, पृ०२५९
२ फि इ, सेक्शन १०९
३ फि इ, सेक्शन ५९९

इस प्रकार दोनो कृतियो मे दार्शनिक समस्याओ की उत्पत्ति का कारण भाषा के तार्किक स्वरूप को न समझना माना गया ह और दोनो स्थानो पर उनका समाधान भाषिक स्पष्टीकरण ह । कि तु भाषा के तार्किक स्वरूप तथा तार्किक स्पष्टीकरण के विषय मे दोनो कृतियो मे अन्तर ह ' ट्रैक्टेटस ' मे विटगेस्टाइन ने माना था कि भाषा सरल तकवाक्यो का समूह ह । यद्यपि साधारण भाषा के वाक्य मिश्रित तथा अस्पष्ट होते ह कि तु उनका तार्किक आकार कलकुलस की तरह शुद्ध और स्पष्ट ह । भाषा का बाह्य रूप उसकी आ तरिक तार्किक रचना को छिपा देता ह । दार्शनिक विश्लेषण वाक्यो के तार्किक आकार को अभिव्यक्त करता ह । भाषा के स्पष्टीकरण अथवा वाक्यो के विश्लेषण का अथ ह मिश्र वाक्यो को सरल वाक्यो मे इस प्रकार विभाजित करना कि पहले का सत्य मूल्य सरल वाक्यो के सत्य मूल्य पर पूणत निभर हो । बाद मे विटगेस्टाइन ने इन दोना मतो को छोड दिया । भाषा कलकुलस नही ह उसका प्रच्छन्न रूप है । भाषा की तार्किक रचना समझने के लिए विभक्तात्मक विश्लेषण की आवश्यकता नही ह । वाक्यो का कोई आ तरिक आकार नही ह जिसे दार्शनिक विश्लेषण द्वारा प्रकट किया जाय । भाषा और विश्लेषण का यह स्वरूप कृत्रिम दार्शनिक सिद्धा तो पर आधा रित था । 'पूणतया सरल और "पूणतया सुनिश्चित" केवल दार्शनिक मा यताये थी । कोई ऐसा मानदण्ड नही ह जिसके आधार पर उचित आकार का निर्धारण किया जाय । दार्शनिक का काय तक वाक्य का विश्लेषण करना नही, अपितु उसे समझना ह । और इसको समझने का अथ यह जानना नही है कि यह वाक्य किस तथ्य का चित्रण करता ह, या इसका प्रच्छन्न आकार क्या है । इसे समझने का अथ ह यह जानना कि यह वाक्य क्या करता ह, इसका काय क्या है यह किस उद्देश्य की पूर्ति करता ह और किन भाषिक क्रियाओ मे इसका प्रयोग किया जाता ह । वाक्य पहले से ही स्पष्ट है । महत्त्वपूण यह ह कि वाक्यो को गलत समझा जा सकता ह । यदि वाक्यो के गलत समझे जाने की सभावना न हो तो दशन की आवश्यकता न पडे ।

"ट्रैक्टेटस" के विषय मे कुछ आवश्यक बाते और है । एक तो यह ह कि यद्यपि विटगेस्टाइन ने तत्त्व मीमासा को अथहीन माना कि तु "ट्रैक्टेटस' भाषा तथा सत दोनो के विषय मे तात्त्विक सिद्धा त, परोक्ष रूप से, देता है । जगत का आणविक तथ्यो तथा भाषा को सरल तक वाक्यो का समुदाय मानना और दोनो की तार्किक सरचना को एक मानना किसी भी दार्शनिक सिद्धान्त से कम शानदार योजना नही थी । इसके अतिरिक्त आत्मा, जगत् और दोनो की सीमा, इच्छा, ईश्वर तथा मूल्यो के विषय मे विटगेस्टाइन के रहस्यात्मक सूत्र जमन प्रत्ययवादी दार्शनिको की परम्परा मे ही है । दूसरे विट्गेस्टाइन केवल तथ्य परक भाषा को ही साथक मानते हुए भी एक सम्पूण पुस्तक की रचना करता है जिसकी भाषा उसी के सिद्धा त के अनुसार अथहीन है । इस निष्कष को वह स्वीकार भी करता ह । कि तु इस भाषा का प्रयोग भाषा तथा जगत की तार्किक सरचना बताने के लिए हुआ ह, अत वह इसे अथ हीन होते हुए भी महत्त्वपूण मानता ह । इसकी स्थिति सीढी की तरह है जिसकी आवश्यकता चढाई पूरी कर लेने के बाद नही पडती । यह सब उसके भ्रामक भाषा सिद्धा त का अनिवाय परिणाम था ।

४ "इ वेस्टीगेशस" तथा अ य कृतियो मे विटगेस्टाइन "ट्रैक्टेटस" के दार्शनिक पूर्वा-

ग्रहो से पूणतया परिचित है और उनसे मुक्त होने का प्रयास करता है। उसके दशन की द्वितीय अवस्था, एक प्रकार से प्रथम अवस्था की प्रतिक्रिया ह। भाषा और तक का स्वरूप, नियम का प्रयोग, अथ का स्वरूप तथा अ य सभी समस्याओ के विश्लेषण मे यह बात स्पष्ट रूप से देखी जा सकती ह। यहा हम केवल दाशनिक समस्याओ के स्वरूप तथा उनकी उत्पत्ति और समा धान तक ही सीमित रहेगे।

४ १ दाशनिक समस्या की एक विशेषता जो, उसे अ य समस्याओ से पथक करती ह, उसकी अस्पष्टता ह। उसमे विमूढ और भ्रमित करने की शक्ति होती ह। दाशनिक अपनी दाशनिक मनोदशा मे विमूढ हुए बिना नही रह सकता। जो इस तरह की उलझन महसूस नही करता वह समस्या का पूरा रूप समझ नही सकता। विटगेस्टाइन हमेशा लोगो को यह उलझन महसूस कराना चाहता था, और सुकरात की तरह साधारण स्वीकृत सिद्धान्तो मे भ्रान्तिया तथा विसगति निकालता था। यदि कोई व्यक्ति दाशनिक उलझन मे घिर जाता है, तो उसकी दशा बडी असहाय हो जाती ह। वह कई वकल्पिक समाधानो का प्रयास करता है, कि तु व्यथ। उसने एक बार मालकम से कहा था कि दाशनिक भ्राति मे पडा हुआ व्यक्ति उस मनुष्य की तरह ह जो एक कमरे से निकलना चाहता ह किन्तु निकलना नही जानता। यह खिडकी से प्रयास करता ह कि तु वह बहुत ऊची है। वह चिमनी से निकलना चाहता ह कि तु यह बहुत सकरी ह।[1] एक दूसरी जगह वह कहता ह कि दरवाजे की ओर जो सदैव खुला रहता ह उसका ध्यान ही नही जाता।

यहा आप यह कह सकते ह कि सभी विषयो मे ऐसी स्थितिया आती है। निस्स देह अन्यत्र भी ऐसी कठिनाइया आती है, कि तु नए तथ्यो के प्रकाश मे उनका समाधान हो जाता है। यहा पर तथ्यो का अज्ञान हो समस्या उत्पन्न करता है। पर दाशनिक समस्याये विशेष कर उ ही परिस्थितियो मे उत्पन्न होती ह जिनमे नए तथ्यो से कोई मदद नही मिल सकती, जिनमे समाधान के लिए नए तथ्यो की आवश्यकता नही रहती। हम सभी प्रासगिक तथ्यो को जानते ह। उदाहरण के लिए समय सम्ब धी सभी तथ्य हमे ज्ञात ह, फिर भी यह समस्या बनी रहती ह कि समय वास्तविक ह या नही। हम इस पहेली के सभी अशो को जानते है। नही जानते तो केवल यह कि वे कसे एक साथ फिट होते है। यहा स्पष्ट दष्टि का अभाव ह। दाशनिक जिस तरह वस्तुओ को देखता ह उसी मे कुछ गडबडी है। उसकी समस्या वैज्ञानिक नही ह। वह महज एक भ्रा ति है जो समस्या के रूप मे सामने आती ह।[2] उसकी बुद्धि रोगग्रस्त ह और वह सप्रत्ययात्मक रोग से पीडित ह।

४ २ अब प्रश्न उठता ह कि दाशनिक समस्याये उत्पन्न कैसे होती है? हमारी बुद्धि क्यो भ्रमित हो जाती ह? जो हमे उलझन मे डाल देती ह? विटगेस्टाइन के अनुसार अधि-काश दाशनिक समस्याये भाषा सम्बन्धी भ्रान्त धारणाओ से उत्प न होती है। जिन विभि न तरीको से भाषा हमे भ्रमित करती ह उनमे तीन का विशेष महत्त्व है। (१) विभि न प्रयोगो का समावेश, (२) चित्र (Picture) और (३) शब्दो को वास्तविक स दर्भो से अलग रखने की प्रवत्ति।

१ मालकम एन, "लुडविग विटगेस्टाइन ए मेम्वापर" पृ० ५१

२ बी बी, पृ० ६

विटगेस्टाइन कहता है कि 'साधारणीकरण की प्रवत्ति के कारण हम शब्दो के विभिन्न प्रयोगो का एक मे ही समावेश कर लेते ह ।[1] हम यह मान लेते है कि शब्दा का एक तरह से ही प्रयोग होता हैं और सभी वाक्या का एक ही प्रकार का काय ह । यह प्रवत्ति व्याकरण द्वारा और पुष्ट होती ह । हम यह भूल जाते ह कि भाषा के व्याकरणिक रूप उसके विभि न काया की अपेक्षा बहुत कम ह । उदाहरण के लिए, विश्वास करना, चलना, 'देखना', 'दौडना, 'सोचना क्रियाये ह कि तु इन सबका एक ही प्रयाग नही है । 'क दौड रहा ह' और 'क सोच रहा है'' दोना का व्याकरणिक रूप एक ही ह किन्तु इनके काय भिन्न है । अर्थात ''दौडने' का प्रयोग एक प्रक्रिया के लिए होता ह पर सोचने' का प्रयाग किसी प्रक्रिया के लिए नही होता । किन्तु व्याकरणिक समरूपता हमे भ्रमित करके इस निष्कष पर ले जाती ह कि सोचना एक प्राइवेट, गुप्त मानसिक प्रक्रिया ह । इसी तरह हम यह मान लेते ह कि सभी सज्ञा शब्दो का प्रयोग दश्य अथवा अदश्य वस्तुओ के लिए होता ह । 'दद'' और विचार'' उसी तरह से वस्तुआ का बोध कराते ह जैसे 'मेज' और पड'' । हम यह भी मान लेते ह कि सभी वाक्य जिनका ज्ञानात्मक अथ है वणनात्मक ह ।

दूसरा तरीका पहले से ही सम्बन्धित है । शब्दा के प्रयोग का एक चित्र या रूप हमे मोहित कर देता है । व्याकरणिक समरूपता के कारण हम किसी शब्द के एक विशेष प्रयोग को उस प्रकार के शब्दो का मानदण्ड अथवा आदश प्रयाग मान लेते ह । किन्तु मोह अथवा दासता की यह स्थिति व्याकरण तक ही सीमित नही ह। किसी भी विषय मे हम एक विचार या धारणा से इतना प्रभावित हो सकते है कि उसके अ य कार्यो या प्रयोगा को एकदम अस्वीकृत कर दे । उदाहरण के लिए सशयवादी गणित की विधि को आदर्श मानकर उन सभी विषयो पर सशय करता ह जि हे इस विधि मे सिद्ध न किया जा सके । विटगेस्टाइन इस प्रकार के नमूनो के कई उदाहरण देता ह । हम प्रत्यय अथवा धारणा को एक मानसिक वस्तु के रूप मे, मन को एक रहस्यात्मक वस्तु अथवा स्थान के रूप मे तथा याद करना, सोचना, आशा करना, समझना इत्यादि को शारीरिक क्रियाओ का भाति मानसिक प्रक्रियाओ के रूप मे चित्रित करते है । उसके अनुसार दार्शनिक समस्याआ पर विचार करते समय हम एक विशेष चित्र से प्रभावित रहते ह और एक आदश हमे भ्रमित करता रहता ह । दाशनिक अपने ही चित्रो अथवा नमूनो का ब दी ह ।

यहा एक चेतावनी आवश्यक ह । चित्र' का यह अथ नही कि वह सदैव सचेत और निश्चित हो । इतना ही पर्याप्त ह कि हम किसी विषय मे एक विशेष प्रकार से या एक विशेष नमूने के अनुसार सोचते ह और कहते ह । हम केवल उ हा स्थितियो पर ध्यान देते ह जो हमे रुचिकर लगती है ।

तीसरे, दाशनिक समस्यायें तब उत्प न होती ह जब हम शब्दो को वास्तविक सदर्भो से निकाल कर उन पर अलग से विचार करते ह । दाशनिक चितन करते समय हम किसी शब्द के वास्तविक प्रयोगो पर ध्यान नही देते, केवल चितन द्वारा उसके काय का निर्धारण

१ वही प १४-१८

करते है। इस प्रकार हम एक आदश स्थापित करते है और उसे वास्तविक भाषा पर आरोपित कर देते ह। उदाहरण के लिए, 'सत' (real) के स्वरूप पर विचार करते समय मूर 'रियल' शब्द के विभि न प्रयोगो पर विचार न करके वह पूछता ह कि वह कौन सा गुण ह जो उन सभी वस्तुओ मे ह जिन्हे हम रियल कहते ह। कि तु यदि हम विभि न प्रयोगो को देखे तो स्पष्ट हा जायगा कि ऐसा कोई गुण नही ह। 'रियल शब्द का प्रयोग विभि न प्रकार की विशेषताआ, दोषो, विचलनो और व्यक्तिक्रमो को अलग करने के लिए होता ह, किसी सामा य गुण का कथन करने के लिए नही। और हम क्या अलग करना चाहते है, क्या अ तर बताना चाहते है, यह विशेष सन्दभ से जान सकते ह। जो बात 'रियल' के लिए सत्य ह वही अधिकतर शब्दो के लिए भी सत्य ह जिनका दशन म महत्त्व ह। साधारण मनुष्य, और दार्शनिक भी जब वे दाशनिक चिंतन न कर रहे हो, इन शब्दो का ठीक-ठीक प्रयोग करते ह और किसी प्रकार की उलझन मे नही पडते। किन्तु दाशनिक चिंतन करते समय कोई एक रूप हम पर हावी हो जाता ह और हम उलझन मे फँस जाते है।

विट्गेस्टाइन इस निष्कष पर पहुचता ह कि अधिकाश दाशनिक समस्याये वास्तविक समस्याये नही ह। तथाकथित दाशनिक समस्याये केवल भ्रात धारणाये है जो भाषा के तार्किक रूप को ठीक ठीक न समझने के कारण उत्प न होती हैं। कि तु इससे यह न समझा जाय कि उसके अनुसार दाशनिक समस्याये तुच्छ ह या वे किसी साधारण अथ मे भ्रा त है। ऐसा नही ह कि वे भ्रात धारणाये केवल किसी सामा य बुद्धि वाले मनुष्य की त्रुटिया है। ऐसी त्रुटिया भाषा के रूप से ही उत्प न होती है। इन मिथ्या धारणाओ का स्रोत भाषा ही ह। भाषा ही हमे हतबुद्धि कर देती ह। और ये भ्रा तिया हमारे सोचने की आदतो मे इतनी घुली मिली रहती है कि हम उ हे साधारणतया जान भी नही पाते।

अब प्रश्न यह ह कि इन समस्याओ का समाधान क्या है? हमने यह देख लिया ह कि विटगेस्टाइन के अनुसार दाशनिक चि तन करते समय भाषा हमे फास लेती ह। अत एक वास्तविक दशन का काय है हमे भाषा के जाल से निकलने मे सहायता करना। किसी दाशनिक समस्या का समाधान यह जानने मे ह कि क्यो और कसे भाषा को गलत समझा गया। दाशनिक समस्या एक सप्रत्ययात्मक बीमारी का लक्षण ह और दाशनिक का काय इसके कारण का पता लगाना है। इसके लिए हमे दशन के लिए महत्त्वपूण शब्दो के वास्तविक प्रयोगो को देखना चाहिए।

जब दाशनिक किसी शब्द, "ज्ञान" "सत्", "वस्तु", 'मै', "तक वाक्य", 'नाम"—का प्रयोग करते हे और वस्तु का सार रूप जानना चाहते है तो अपने आप से यह पूँछना आवश्यक है क्या इस शब्द का प्रयोग कभी भी इस रूप मे उस भाषा क्षेत्र मे होता है जो इसका मूल घर है?—हम शब्दो को उनके तत्वशास्त्रीय प्रयोगो से वापस दैनिक प्रयोगो पर लाते है।

—फि इ, सेक्शन ११६

यहा एक चेतावनी आवश्यक है। कोई यह समझ सकता ह कि दाशनिक का काय केवल एक कोशकार का काय ह। अर्थात केवल शब्द के विभि न प्रयोगो को बिना किसी क्रम

के इकट्ठा कर देना। किन्तु दशन मे किसी जटिल शब्द के विभिन्न प्रयोगो को इस तरह रखा जाता है जिससे एक विशेष समस्या का समाधान किया जा सके।

जैसा कि विटगेस्टाइन से आशा की जा सकती ह, वह इस काय के लिए किसी एक विधि का प्रयोग सभी समस्याओ के समाधान के लिए नही करता। प्रत्येक समस्या का अपना अलग स्वभाव ह और इसी रूप मे उसका अध्ययन होना चाहिए। कोई सामान्य विधि नही है

एक दाशनिक विधि नही है, यद्यपि विभिन्न चिकित्साओ की तरह विभिन्न विधिया है। फि इ, से १३५

किन्तु इन विधियो के द्वारा विट्गेस्टाइन का उददेश्य सप्रत्ययात्मक स्पष्टीकरण प्राप्त करना ह। यह जटिल शब्दो के विभिन्न वास्तविक एव सभावित प्रयोगो का अध्ययन करने से हो सकता ह। इसके लिए कुशलता एव कल्पनाशील अन्तदष्टि की आवश्यकता ह। केवल प्रयोगो को इकट्ठा कर देने से कोई लाभ नही। दाशनिक विश्लेषण मात्र भाषिक विश्लेषण नही है। इसका सम्बन्ध दाशनिक समस्याओ के समाधान से ह। और यह शब्दो के विभिन्न प्रयोगो का क्रमबद्ध अध्ययन करने से सम्भव ह। यहा विट्गेस्टाइन कुछ सहायक विधिया बताता है, जैसे "मध्यवर्ती प्रयोगो का पता लगाना और निर्माण करना," और "मूल भाषा खेलो का पता लगाना" (या कल्पना करना)। दाशनिक दष्टि से जटिल शब्द के कई प्रयोग होते है। हमे उनके बीच का सम्बन्ध, जो सदैव स्पष्ट नही होता, जानना चाहिए। शब्दो का काय जानने की एक अन्य विधि ह किसी शब्द का उससे सम्बन्धित अन्य शब्दो से साम्य तथा वैषम्य का अध्ययन करना।

इन सभी विधियो मे दशन वणनात्मक ही रहता है। वह किसी चीज की व्याख्या नही करता।[1] यही नही दशन शब्दो के वास्तविक प्रयोगो मे कोई परिवतन नही करता, वह केवल उनका वणन करता ह। वह हर चीज को वह जिस रूप मे है हमारे समक्ष रख देता है। कुछ भी गुप्त नही है जिसकी व्याख्या करनी हो। जो गुप्त ह दशन मे उसका महत्त्व नही। किन्तु वणन न तो निरुददेश्य है, न क्रमहीन।

दाशनिक समस्याये वैज्ञानिक अथवा तथ्यात्मक नही है, अत दशन वणनात्मक है न कि व्याख्यात्मक। शब्दो के प्रयोगो का स्पष्ट रूप ज्ञात हो जाने पर समस्याये विलीन हो जाती है। दार्शनिक चिंतन का उददेश्य पूण स्पष्टता ह इससे समस्या का समाधान नही होता, क्यो कि वास्तविक समस्या है ही नही। समस्या ही नही रह जाती।[2] विट्गेस्टाइन कहता है कि दार्शनिक बोतल मे बन्द मक्खी की तरह है—निकलने का रास्ता न पाकर बार बार एक वद दायरे मे घूमता हुआ। उसे यह समझ मे ही नही आता कि दरवाजा सदा खुला ह। अत उसके अनुसार वास्तविक दार्शनिक चिंतन मुक्ति (भ्राति निराकरण) प्रद है

दशन मे तुम्हारा उद्देश्य क्या है?—मक्खी को बोतल से निकलने का रास्ता दिखाना। फि इ, से ३०९

---

१ फि इ, से १०९

२ फि इ, से १३३

क्या उसका दर्शन मात्र निषेध नही है ? वह स्वय इस आक्षेप की कल्पना करता ह और कहता है

हम जिसका निषेध कर रहे ह वह काड के घर के सिवा और कुछ नही है, और हम भाषा की वह भूमि साफ कर रहे है जिस पर वे खडे हे।

उपरोक्त विवरण से दो प्रश्न मुरय रूप से उभर कर सामने आते है। क्या साधारण भाषा पूणतया उपयुक्त है ? और, क्या दार्शनिक का काय केवल निपेधात्मक ह ? बहुत से दार्शनिक यह कहते है कि विट्गेस्टाइन ने सावारण भाषा को पवित्र माना है ओर उसके साथ किसी परिवतन को अशुद्ध प्रयोग कहा ह। उसके सिद्धात मे भापा के विकास की कोई सभावना नही ह। किन्तु ऐसे दार्शनिक यह भूल जाते ह कि विटगेस्टाइन विशेष प्रयोजनो के लिये भ्रातियो के निराकरण के लिये तथा नए तथ्यो के लिये सावारण भाषा मे परिवतन स्वीकार करता है।[1] वह केवल दार्शनिक द्वारा असावारण प्रयोगो का विरोव करता है सभी शब्दो का चाहे वे सामा-य हो चाहे विशेष (टेक्निकल) वास्तविक सदर्भो मे प्रयोग ही सार्थक ह। उनका असाधारण प्रयोग भ्रातिया को ही ज म देता ह। दूसरे प्रश्न के विषय मे यह कहा जाता ह कि विट्गेस्टाइन के अनुसार दार्शनिक समस्याये केवल भाषा के सम्ब-व मे ह, और वे पूणतया तुच्छ और अर्थहीन ह। ये दोना बाते गलत है।

विटगेस्टाइन यह नही कहता कि दाशनिक समस्याये भापा के विषय मे है। यद्यपि अधिकाश दार्शनिक समस्याये भाषा से ही उत्प न होती ह। कि तु उनका विषय ज्ञान स्मति सत्य, देश, काल, प्रत्यक्ष सवेदना, समझ, अभिप्राय तथा अ य दाशनिक समस्याये ह। यह बहुत बडी भूल ह कि विट्गेस्टाइन की रुचि केवल भापा मे ह, तथ्यो मे नही। कि-तु दार्शनिक का सबध तथ्यो से उसी रूप मे नही होता जिस रूप मे बज्ञानिक का होता है। इसी प्रकार जब वह दार्शनिक समस्याओ को बौद्धिक बीमारी, काड का घर तथा अथहीन कहता ह तो वह उन्हे व्यर्थ अथवा तुच्छ नही मानता। यद्यपि ये समस्याये भापा के अशुद्ध प्रयोग से उत्प-न होती है, कि-तु उनमे एक प्रकार की गहराई होती है। उनमे गम्भीर असतोष व्यक्त होता है, और उनका वही महत्त्व है जो भाषा का[2]। यदि दाशनिक समस्याये अस्पष्ट तथा भ्रात होती है तो दार्शनिक चिंतन के पश्चात हमे चीजो को देखने की सही दष्टि प्राप्त होती ह। दर्शन कोई सूचना नही देता न कोई सिद्धात कि तु उससे हमारी भ्राति दूर होती ह, ओर हम वम्तुओ को उनके सही परिप्रदय म समझ सकते है। ५ २ किन्तु त्रिटगेस्टाइन को विश्लेषण मे एक कमी अवश्य ह। उसके अनुसार दर्शन अत्यधिक निषेधात्मक ह। उसमे केवल विशेष समस्याओ के समावान अथवा समाप्ति का व्यववान ह। कि-तु एक विशेष विषय से सम्बन्धित सभी समस्याओ के आ तरिक सबधो का व्यक्त करते हुए वणनात्मक दर्शन भी सम्भव ह। विभि-न समस्याओ का अलग अलग विश्लेषण करने के साथ साथ उनका क्रमबद्ध अध्ययन भी आवश्यक ह। इस ओर आक्सफोड दार्शनिको ने ध्यान दिया है और विटगेस्टाइन के दर्शन को आगे बढाया ह।

१ कि इ, से १३२

२ कि इ, से १११

युगलावतार श्री चैतन्य एक विश्लेषण

तपेश्वरनाथ

१६ वी शदी के वष्णवाचार्यो मे माधुय भावी उपासना की दष्टि से बगाल के महाप्रभु चैतन्यदेव का स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूण ह । वे भगवान श्रीकृष्ण की प्रेम माधुरी के उमत्त गायक और राधा माधव की श्रृगार लीला के रमता सकीत्तनकार थे । यद्यपि उन्हान अपने नाम से किसी विशिष्ट पथ या सम्प्रदाय का सुचिन्तित प्रवत्त न नही किया किन्तु अपने चरित्र मे विलक्षण सम्मोहन रखने के कारण वह ज्धिर ही गये उनके चारो ओर वष्णव भक्तो की भावुक मण्डली बनती गयी । महाप्रभु के जीवनकाल मे ही उनकी भावुकतापूण लीला भक्ति का लेकर बगाल से लेकर व दावन तक एक विशिष्ट सकीर्त्तन पथी दल का व्यापक वितान तन गया । सैकडा भक्त उनने अनुयायी बन गये । इनमे रूप, जीव, सनातन गास्वामी नित्यान द, कृष्णदास कविराज, गोपाल भट्ट, गदाधर भट्ट आदि के नाम उल्लेखनीय ह । इनमे रूप गोस्वामी ने प्रथमबार अपने दो ग्रथ 'भक्ति रसामतसि धु तथा 'उज्जवल नीलमणि' मे अपनी विलक्षण प्रतिभा से भक्तिरस को शास्त्रीय पष्ठाधार प्रदानकर कृष्ण को रस राट सिद्ध कर दिया । कृष्णदास कविराज ने अपने 'चैतन्य चरितामत' मे महाप्रभु के भ्रमणशील जीवन की सम्पूण मधुर झाकी प्रस्तुत की । यह एक आर जहा जीवनी साहित्य ह वहा दूसरी ओर गौडीय वैष्णवो के भक्ति सिद्धान्तो का तत्त्व कल्पतरु भी । चैत य मत के रस सिद्ध हिन्दी कवियो की भी एक समृद्ध परम्परा ह जिसमे भक्तियुग के गदाधर भट्ट से लेकर आधुनिक युग के श्री कृष्ण चैत य[1] तक सैकडा कवि समाविष्ट रहे है । इस प्रकार, चैतन्यदव को सम्पूण साधना और उसके विलक्षण प्रसार पर दकपात करने पर यह प्रतिभासित हुए विना नही रहता कि अवतार वादी चारित्र्य, शास्त्रीय गरिमा और कवित्व—इन त्रिविध आयामो पर उनकी युगल मूर्ति राधा कृष्ण की मधुरोपासना पूणत श्रेयस्कर सिद्ध हुई ।

चैत य का व्यक्तित्व मध्ययुग के अ य सभी वैष्णव साधको की अपेक्षा विलक्षण था । इनका ज म सन १४८५ मे बगाल के नदिया जिले मे शान्तिपुर नामक स्थान मे हुआ था । इनके जन्म का नाम विश्वभर था । यही बाद मे अपने अनुयायियो द्वारा कृष्ण चैत य के नाम से प्रसिद्ध हुए । अत्य त गौरवण के उज्जल पुरुष होने के कारण इन्हे गौराङ्ग महाप्रभु के रूप मे भी स्मरण किया जाता ह । इ होने १८ वष की उम्र मे लक्ष्मी देवी से विवाह कर गाहस्थ जीवन मे प्रवेश किया । अल्पायु मे ही इन्होने समस्त शास्त्रो मे निपुणता प्राप्त कर ली दुर्भाग्यवश लक्ष्मीदेवी के आसामयिक निधन से इ हे दूसरा विवाह करना पडा । किन्तु, लक्ष्मी वियोग से चिर दग्ध चित्त मे लोकानुरक्ति का बिरवा पुन पनप न सका । इसी वियुक्त चित्त से जब वह पितरो के पिण्डदान हेतु गया (विष्णुपद) आये तो ईश्वरपुरी नामक एक प्रसिद्ध

---

१ द्रष्टव्य–'चैत य मत और ब्रज साहित्य'–श्री प्रभुदयाल मीतल, हि दी सस्थान, मथुरा

वैष्णव स त के प्रभाव से उनके हृदय मे पूरी विरक्ति जग पडी[1] और वे काला तर मे घर-वार छोडकर स यासी बन गये।[2] हरि नाम सकीर्त्तन ही इनके सन्यासी जीवन का एकमात्र आधार बन गया। ये इसी मधुर सकीर्त्तन मे सुधि बुधि खोकर रमण करते रहे। निर तर कृष्ण नाम का गान ही इनका पावन मत्र[3] था जो नवद्वीप मे प्रस्फुटित होकर जगन्नाथ पुरी से वृन्दावन तक प्रसरित हो गया।

इ होने भारत के सभी प्रमुख तीर्थो का भ्रमण किया। इनमे दक्षिण देश की यात्रा का विशेप महत्त्व ह। क्योकि, भारतीय भाषाओ मे कदाचित सव प्रथम तमिल साहित्य (आल्वार प्रब धन) मे ही राधा कृष्ण ('नविन्नईकण्णन') की मधुरोपासना का प्रचार प्रसार हुआ। महाप्रभु तमिल प्रदेश के प्राय सभी वैष्णव क्षेत्रो मे घूमे।[4] बहुत सभव है कि इस यात्रा मे वे भावुक भक्तकवि आल्वारा की रचनाओ से परिचित और प्रभावित हुए हो।[5] इस यात्रा के अन तर उनके जीवन मे एक विशेष उल्लास दष्टिगोचर होता ह। इसी यात्रा मे इनका उत्कल देश के प्रसिद्ध विद्वान (तथा राजमन्त्री) राय रामानन्द से साक्षात्कार हुआ था। गोदा तट पर यह दो वैष्णव भक्तो का एक अदभुत मिलन था। इसका विस्तत विवरण कृष्णदास कवि राज के 'चैत यचरितामत'—मध्यलीला मे मिलता ह। चतन्य महाप्रभु ने भक्ति रहस्य के सबध मे जा स्फुट जिज्ञासा की राय रामान द ने कही सक्षेप और कही विस्तार से उत्तर दिये।

महाप्रभु ने पूछा-'हे विद्व न ! तुम भक्ति किसे कहते हो ?'
राय रामान द—'स्वधर्माचरण ही भक्ति ह।'

पर तु महाप्रभु को इससे स तोष न हुआ। वह हर बार पूछते गये—' ए हो बाह्य, आगे कह आर' (अर्थात यह भी बाह्य है, कुछ और आगे कहो)। क्रमश कृष्णार्पण, शरणागति, प्रेमा, दास्य, सख्य, का ता प्रम के भी आगे प्रश्न करने पर राय रामान द राधा प्रेम को सर्वश्रेष्ठ बतलाकर चुप हो गये—

प्रभु कहे—एक साध्यावधि सुनिश्चय
कृपा करि कह यदि आगे किछु हय।
राय कहे—इहार आगे पुछे हेत जने
एतो दिन नाहि जानि आछ्ये भुवने।
इहार मध्ये राधार प्रेम साध्य शिरोमणि
याहार महिमा सवशास्त्रेते बाखानि ॥ ८/९६ ९८

1 Dr S, K De—'Early Hitor, of the Vaisnava Faith's Movement in Bengal, P 76
2 Prof Sukumar sen–A Hiofory of Brajbuli literature, P 12
3, Dr S K De–E H V F M B P 78 80 (Life & Personality of Chaitanya')
4 त्रितब्द भिक्षु-भक्ति प्रदीप तीथ, पृ० ७९
5 D N Gauguli–'The life of Shree Gauranga, P 45

कान्ताभाव के आगे चैतन्य की जिज्ञासा पर रामानन्द को विस्मय हुआ इसके आगे पूछने वाला जन ससार मे कोई ह, ऐसा तो वे इतने दिनो से नही जानते थे। कान्ता प्रेम की साधना मे राधा प्रेम ही चरम साध्य है। इस पर महाप्रभु ने गदगद चित्त से कहा–' हा, राधाभाव ही श्रेष्ठ है परन्तु प्रमाण क्या ह ?' डा द्विवेदी के शब्दो मे—[१] यह लक्ष्य करने की बात ह कि महाप्रभु ने केवल अन्तिम बात के लिए प्रमाण मागा था। पहले जितनी बाते बतायी गयी है वे अतिपरिचित ह। प्रथम कहे गए सभी मत गीता और श्रीमदभागवत मे मिल जाते है। परन्तु गीता या भागवत मे राधा की चर्चा नही ह। राय रामानन्द ने इसके प्रमाण मे, 'गीत गोविन्द' का मत उदधत किया जिसम बताया गया ह कि भगवान श्री कृष्ण ने राधा को हृदय मे धारण करके अन्याय ब्रज-सुन्दरियो को याग दिया था।[२]

इस प्रसग से स्पष्टत दो बाते सामने आती ह। पहली यह कि राय रामानन्द को यदि राधा भाव की भक्ति का प्रेरक व्याख्याता मान लिया जाय तो अत्युक्ति न होगी। दूसरी बात यह कि दक्षिण मे राधा भाव की उपासना पहले ही पनप चुकी थी, जो परवर्ती युग मे (निम्बाकमत से होते हुए) चत यादि मतो मे गहीत और प्रचलित हुई।

उपयु क्त बातो के अतिरिक्त चत यमत को प्रभावित करने वाले कुछ तथ्य ये है—

(१) महाप्रभु का दक्षिण के आल्वार भक्तो की मधुर कृतियो से परिचय।

(२) ११ वी १२ वी शतीय लीलाशुक के 'कष्णकर्णाम्त'[३] और जय देव के 'गीत गोविन्द' का व्यापक प्रभाव

(३) राय रामान द के राधा कष्ण युगल प्रेम[४] का चैतन्य मत पर प्रभाव।

(४) राय रामानन्द से मिलनोपरान्त महाप्रभु का लक्षणीय भावान्तर।

(५) निष्कर्षत दक्षिण की राधा कृष्ण माधुय भक्ति का रस-सचार उत्तरापथ मे चैतन्य महाप्रभु द्वारा उत्कल देश के माध्यम से हुआ, जहा के धार्मिक वातावरण मे (विशेषत जगन्नाथ मन्दिर मे) जयदेव के गीत गोविन्द का पवित्र स्वर पहले से गूँज रहा था।[५] उनके दिव्य भावान्तरण पर दाक्षिणात्य भ्रमण तथा वैष्णव गोष्ठियो का विशेष महत्त्व है। विशेषत राय रामानन्द से हुई गोष्ठी पूण लाभप्रद रही। वैसे, चैतन्य भी इस युगलवाद से परिचित थे, इसका प्रमाण है। राय रामानन्द ने इसी ओर लक्ष्य करते हुए चैतन्य से स्पष्ट कहा था—

अभिनट तूमि सूत्रधार

ये मत नाचाओ ते मत चाहि नाचिवार। (चै० च०, मध्य०) अत महाप्रभु के नीलाचल (उत्कल) मे अवस्थान काल से पूव ही यह भाव धारा इस क्षेत्र मे प्रवाहित हो रही

१ मध्यकालीन धर्म साधनका, प० १४४-१४५

२ गीतगोविन्द—३/१—कसारिरपि ससारवासनाबद्धशृखलाम।
राधामाधाय हृदये तत्याज ब्रजसुन्दरी ॥

३ महाप्रभु द्वारा दक्षिण से लायी गयी दो पाण्डुलिपियो मे से एक यह भी है।

४ रामानन्द रचित राधाकृष्ण प्रेम परक सस्कृत नाटक 'जगन्नाथ वल्लभ' द्रष्टव्य

५ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८, अक १ (जयदेव और उनका गीतगोबिन्द प० शिवदत्त शर्मा)

थी। चैनयदेव ने पूर्वी और सुदूर उत्तर पश्चिमी भारतीय अचल मे इस प्रवाह को अपने मधुर व्यक्नित्व से ओर भी प्रखर वेग प्रदान कर दिया।

चैतन्यदव का स यास भी निराला ही था। उसमे विधि निषेध ओर कमकाण्ड का कोइ व्यवधान नही था। निर तर राधाभाव की महादशा मे आत्मप्रक्षेपण (सेल्फ प्रोजेक्शन) ओर हरिनाम सकीर्तन का निग्ध माधुरी से उनका बहिर तर पूरी तरह सरावोर हो चुका था।[१]

चतन्य वल्लभाचाय के समसामयिक थे। इन दोना का साक्षात्कार भी विद्वानो को प्राय मा य ह। तदनुसार वल्लभ दिग्विजय' के अनुशीलन से ऐसा विदित हाता ह कि वल्लभाचाय न सन १५१८ ई० (स० १५७५) के आस पास अपनी पुरी यात्रा मे महाप्रभु से साक्षात्कार किया था। ओर, वे चतन्यदव की युगलोपासना से प्रभावित भी हुए थे। तथापि चत य की भावुकता की अपेक्षा वल्लभाचाय मे गाभीय प्रबल था। कृष्ण प्रेम मे तन्मयता, मुक्तता और खुलावा होने के कारण ही चतन्य का स यासी सस्कार शकराचाय की तरह बौद्धिक और वल्लभाचाय की तरह साम्प्रदायिक न था। वल्लभाचाय की वैष्णवता प्रब धात्मक थी। उसक मूल मे भागवत की भक्ति भावना कायरत थी। इसके प्रतिकूल, चैतन्य देव का चरित्र था—पूण मुक्त और रसपेशल, उसके मूल मे ब्रह्मववत्त पुराण और राधा कृष्ण पदावली साहित्य की तरलता काम करती थी। इन दो महान विभूतिया का चारित्रिक अन्तर मध्ययुग की कृष्ण भावना को समझन का सवाधिक विश्वस्त सास्कृतिक आधार है। वल्लभाचाय मलत बालकृष्ण के उपासक भक्त थे। गोपियो की प्रेम लक्षणा भक्ति का समावेश उन्होने भागवत के अतिरिक्त चत य मत और चरित्र से भी प्रभावित होकर किया, अधिकाश पडितो[२] का ऐसा ही विश्वास ह। इस तरह दक्षिण क पेरियालवार(विष्णुचित्त) से मध्यदेश के वल्लभाचाय और उनके प्रतिनिधि शिष्य सूरदास तक बालकृष्ण की भक्ति का यात्रा वत्त पूरा हो जाता ह। इस यात्रा वत्त के दो मार्गा की यदि कल्पना करें ता चत यदेव ही पूर्वी (सचार) वत्त के प्रबल सवाहक सिद्ध होते ह। आण्डाल से मीरा तक—पश्चिमी (सचार) वत्त का उल्लेख स्वय भागवत माहात्म्य के "उत्प ना द्राविडे " (१/४८) वाले सूत्र मे हो गया ह। इसके साथ रामानुज का भी यथष्ट याग था जिन्हे दक्षिण मे तिरुप्पावै जीयर' (आण्डाल की माधुय पूण कृति 'तिरूपाव व पदो मे अहर्निशि रस मग्न रहने वाले) और उत्तर मे मध्य युगीन भक्ति आ दोलन का पुरोधा कहलाने का द्विविध श्रेय प्राप्त है।

चत य अपने अवतार स्वरूप म श्रीकृष्ण और उनकी लीला सहचरी राधा देवी की समन्वित प्रतिमूर्ति थे। उनका अ तरग कृष्णमय और बहिरग राधामय था। गौडिय वष्णव

१ Prof S sen H, B B L, P 14—' the Radha Krishna legend is a grand nallegody of the eternal relation between man & god has been proved by the life of Chaitanya himself

२ (i) Dr S Sen-A History of Braj Buli Literature, P 379

(ii) डा० दीनदयालु गुप्त अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ५२८

(iii) श्री प्रभुदयाल मीतल—'ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद', पृ० ४८

की मा यता मे 'व दावन नागर' कृष्ण ही 'नदिया नागर' चैत य रूप मे अवतरित हुए थे ।[१] कृष्ण के रूप मे ही उन्होने कृष्ण-प्रेयसी राधा की उज्ज्वल कान्ति पायी थी । इसीलिए उ हे 'अन्त कृष्ण बहिर्गोर भी कहा जाता ह । इस राग रग का राज स्वय भागवत मे ही प्रच्छन्न ह ।[२] इसी भाव के आधार पर रूप गोस्वामी ने अपने कडचा' मे 'राधाभावद्युतिसवलित साक्षात कृष्ण स्वरूपी चैत य' की वन्दना की ह—

चैत यारय प्रकटमधुना तदद्वय चक्यमाप्त ।
राधाभावद्युतिसुवलित नौमि कृष्ण-स्वरूपम ।।

इस अवतरित स्वरूप की प्राप्ति के लिये उन्हे चिरन्तन भाव याग करना पडा था । उनके इस योग के चारो ओर भागवत और ब्रह्मववत की मधुर लीला, लीलाशुक और जयदेव के श्रृ गारिक श्लोक, कवीन्द्रवचन समुच्चय और सदुक्ति कर्णामत के असती ब्रज्या' के पद्य विद्यापति और चण्डीदास की मिलन विरह ज य पदावली सब पचाग्नि का काम दे रही थी । महाप्रभु के दिव्यचरित का निर्माण इन्ही तानो बानो से हुआ था । यह कोई विस्मय की बात नही । वैष्णव भक्तो के विश्वास मे मध्ययुग का प्रत्येक आचाय अवश्य ही कृष्ण या कृष्ण के किसी-न किसी परिकर का अवतरित स्वरूप ह ।[३] सो, चैत य भी राधा कृष्ण के युगल अव तार मान्य थे ।[४] राय रामान द को उ होने अपना यही युगल स्वरूप दर्शाया था—

तबे हासि तारे प्रभु देखाल स्वरूप
रसराज महाभाव दुइ एक रूप ।। (चै० च०, मध्य, अष्टमपरिच्छेद)

बगाली विद्वानो ने उक्त धारणा मे अपना गभीर प्रत्यय प्रकट किया ह ।[५]—

" The life story of Gauranga (Chaitanya Deva) who was & is believed to be an incarnation of Radha & Krishna in Union "

चैतन्यावतार की कल्पना मे राधा कृष्ण युगल अवतार की भावना स्वयमेव अ तर्निहित है । उनके इस युगल स्वरूप के निर्माण म तात्कालीन बग सस्कृति और साधना का हाथ था । चैतन्य पूव पूर्वी प्रदेश बौद्ध धम की तात्रिक प्रवृत्तियो से आछ न था । इसमे शाक्ततत्र की साधना के समाना तर सहज मत मे 'युगनद्ध' (आलिगन बद्ध स्त्री पुरुष) की कल्पना का विकास हुआ । बगाल मे शिव और शक्ति के समाना तर राधा और कृष्ण की सम्मिलित प्रतिमूर्ति का प्रचार १२वी से १४वी शती के बीच शन शनै होता दिखाई पडता है । ब्रह्म-वैवत मे राधा के साथ कृष्ण का प्रथम प्राकटय इसी रूप मे निर्दिष्ट है ।[६] विद्यापति पदावली मे

१ श्री राधा का क्रम-विकास—डा० शशि भूषण दास गुप्ता (पृ० २४२)

२ श्रीमद भागवत ११/५/२९ ('कृष्णवणत्विषाकृष्ण ')

३ वल्लभाचाय—अग्नि + कृष्ण—'सम्प्रदायप्रदीप'–५९ { विट्ठलनाथ कृष्ण / गोपीनाथ बलराम }
हितहरिवश वशी 'हित चरित्र'
चौरासी वैष्णव बन की वार्ता, पृ० १९१,४७८

४ चैतन्य—राधा + कृष्ण—चैत य चरितामृत, आदि लीला ।

५ (i) Prof S Sen H B, B L, P 16
(ii) Dr S K De E H V F M B, P 229 " they regard Chaitanya as both Krisna&Radha in one Perdonality"

६ ब्रह्मवैवर्त पुराण, श्रीकृष्ण ज म खण्ड, अध्याय ६

भी एकाध स्थल पर इसी बिम्ब का विधान हुआ ह । चतन्य चरित्र मे भी यही भाव प्रकटित है। कि तु तीनो मे भाव साम्य के अतिरिक्त रूपगत सूक्ष्म अ तर भी ह । युगनद्ध रूप मे स्त्री पुरुष पूण आलिंगन बद्ध ह, अद्धनारीश्वर रूप मे दोनो आधे आधे है, चत य स्वरूप मे ये दोनो अ तर्बाह्य है । युग्म की प्रेम अद्वतता तीनो मे अभीष्ट ह । रावा कृष्ण युगल मूर्ति मे भी यही अ तरग सम्बध ह । अत चत य चरित मे राधाकृष्ण युगल चरित्र पूणत प्रतिबिम्बित ह । और, इसे देखते हुए यह निस्सकोच स्वीकार करना पडता ह कि १६वी शती की वष्णव–साधना और कृष्ण भक्ति काव्य मे युगलावतार के रसात्मक प्रवेश का श्रेय चत यावतार को ही ह । यदि चैतन्य का अवतरण न हुआ होता तो ब्रज का कृष्ण काव्य राधा कृष्ण काव्य न होता ।

मध्य दश मे भागवतीय कृष्ण भक्ति धारा के प्रव क और उन्नायक वल्लभाचाय हुए । उनकी पुष्टिभक्ति के विषय भगवान कृष्ण और आश्रय गोपिया ह । उनका प्रतिपाद्य विषय सम्पूण कृष्णचरित ह, केवल कृष्ण की रजनकारिणी लीला नही । उनकी उपासना पचभावोपासना (शा त, दास्य सख्य वात्सल्यादि) ह, केवल मधुरोपासना नही । उ होने भागवत की (पश्चिमी) धारा का अनुवत्तन किया, जिसमे उक्त बातो के अतिरिक्त अपेक्षित गाभीय ह ।

दूसरी ओर, चतन्य मत ने ब्रह्मवैवत की (पूर्वी) धारा का आश्रय ग्रहण किया ह । इनमे वात्सल्य का पक्ष गौण और मधुर भाव का प्राबल्य ह । इनमे पचभावोपासना के स्थान पर माधुर्योपासना सविस्तार व्यजित है । यहा राधा और कृष्ण क्रमश परकीया और उपपति (जार) ह । यहा कृष्णावतार का लक्ष्य प्रेम लीला है । दोनो पर शाक्त तत्र का प्रभाव ह । राधा प्रेम और राधा विरह दोनो के प्रिय विषय है । इनमे शास्त्र की अपेक्षा जन भावना और जन काव्य के प्रति प्रबल आग्रह ह ।

इस पुराण मे ऐसे ही कई तत्त्व ह जिनका सामा यत पूर्वी प्रदेश की कृष्ण-भावना के अतिरिक्त चैतन्य की युगलोपासना पर प्रत्यक्ष प्रभाव पडा है । तो स्पष्ट है कि कृष्ण-भावना को लेकर भागवत परम्परा से भिन्न पूर्वी अचल मे भागवत परम्परा अर्थात राधा प्र ान ब्रह्म विवर्ती कृष्ण लीला का प्रतिनिधित्व रहा । जयदेव विद्यापति, चण्डीदास और चैतन्यदेव इसी परम्परा के गायक और भक्त है ।[1] इनका मूल उपजीव्य कृष्ण लीला का मधुर पक्ष है सम्पूण कृष्णचरित नही । गौडीय वैष्णवो ने इसी ओर लक्ष्य कर रागात्मिका (साध्य) भक्ति को साधन भक्ति के रागानुगा माग से और आगे बढे हुए प्रेम (प्रेमा) को महाभाव दशा (राधा महाभाव) तक अ तर्व्याप्त सिद्ध किया ह । रूप गोस्वामी ने अपने रस शास्त्र मे पुष्टिमार्गी भक्ति (वल्लभ सम्प्रदाय की भागवतीय भक्ति) का स्पष्ट नाम्मोल्लेख कर इसी अ तर का साक्षात्कार कराया है[2]—कृष्णतदभक्त कारुण्य मात्र लाभैक हेतुका ॥ १०८ ॥

पुष्टिमागतया कश्चिदिय रागानुगोच्यते ।

अर्थात, 'कृष्ण और उनके भक्तो की करुणा मात्र की प्राप्ति ही जिसका एकमात्र फल

---

१ द्रष्टव्य–'भारतीय साधना और सूर साहित्य', पृ० १७४–डॉ० मुशीराम शर्मा

२ ,,–हि दी भक्ति रसामृत सि धु श्लोक–१०८, रूप गोस्वामी (स० डा० विजयेन्द्र स्नातक)

ह इस प्रकार की इस रागानुगा भक्ति को कुछ लोग 'पुष्टिमाग' कहते हैं।' वल्लभाचाय और चैत य का सम्मिलन प्राय इ ही दो धाराओ (भागवत और ब्रह्मववत) का सगम है। इसमे शास्त्रीयता और लोक परम्परा भक्ति और श्रृङ्गार भावना प्रब ध और मुक्तक शली सब एक साथ सहित हो गयी है। मध्यम युग के कृष्णचरित मे इसी भाव-सहिति की अभिव्यक्ति हुई ह। ब्रज कवियो के कृष्ण काव्य मे जो माधुरी और महिमा ह वह इन स्रोतो के समीकरण का ही परिणाम ह।[1] यहा पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण सम्पूण देश की रस साधना बिल्कुल एकमेक हो गयी है।

ऊपर चैत यावतार पर युगल स्वरूप के आरोप की बात कही जा चुकी है। और, इसके साथ ही यह भी बतलाया जा चुका है कि इसका मूल कारण चैत य चरित को प्रभावित करने वाली तत्कालीन बगभूमि की तात्रिक साधना ह। इस सिद्धा त के अन्तगत विभिन्न वज्रयानी देवताओ को अपनी शक्तियो के साथ समागम करते हुए वर्णित किया गया ह। इसी को 'प्रज्ञोपाय साधना' भी कहते हैं। बगाल मे शिव और शक्ति के समानान्तर राधा और कृष्ण को वष्णव सहजिया मत मे सम्मिलित कर लिया गया ह। चैतन्यचरित वैष्णव सहजिया मत की इस युगल साधना का मूत प्रतीक ह। यह बात बाहर से देखने पर कुछ अजीब सी लगती ह कि तु राधा कृष्ण युगल प्रतिष्ठा के सन्दभ मे यह एक रहस्यपूण तथ्य है।

प्रश्न है कि सगुण और निगु ण का यह सम वय कब हुआ ? चैतन्यदेव वैष्णव भक्ति और सहज साधना के सम्मिलन की स्वाभाविक परिणति है, यह बात उनकी गुरु परम्परा से भी चरिताथ होती है। चैतन्य के गुरु ईश्वरपुरी और उनके गुरु माधवे द्र पुरी प्रेममार्गी अद्वत स त थे।[2] प्रो० सुकुमार सेन की धारणा मे चनन्य सभवत माधवेन्द्र पुरी की प्रेमद्वैत भाव धारा के ही 'ज मा तर प्रतीक' थे।[3]

इसके अतिरिक्त, चैत यदेव की युगल साधना की एक प्रेरणा-दायिनी पुस्तक 'कृष्ण-कर्णामत' भी है। और, इसके रचयिता दक्षिणदेशीय लीलाशुक लिल्व मगल ठाकुर पहले अद्वैत स त थे जो पीछे कृष्ण भक्त बन गये। यह बात स्वय 'बिल्व मगल स्तव' के इस श्लोक से सिद्ध है—[4]

> अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्या स्वान दसिहासनलब्धदीक्षा ।
> शठेन केनापि वय हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन ॥ ३७२ ॥

अर्थात, अद्वैतानुयायी पथिको के पूजनीय एव आत्मान दी मुझको (लीलाशुक) भी गोपियो के किसी जारने बरबस अपना दास बना लिया।"

उपयुक्त गुरु और कवि परम्परा की साधना परिणति को लक्ष्य करने पर यह भलीभाति

---

१ ,,–मध्यकालीन धम-साधना, पृ० १४५–डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ('लीला और भक्ति से')

२ Dr S K De—E H V F M B, P 23

३ Prof S Sen—A H B B L, P 12

४ भक्तिरसामृत सि धु, पश्चिम विभाग, शा त लहरी, श्लोक ३७२ मे उद्धृत।

कहा जा सकता है कि चैतन्यदेव वैष्णव भक्ति के क्षेत्र मे सहज और तत्र मत का बीज पडने से उत्पन्न हुए थे।

युगल साधना के अतिरिक्त सहज मत की एक दूसरी विशेषता है—आरोप साधना। यह ससीम रस से सीमाहीन की उपलब्धि और आस्वादन पर जोर देती ह। राधा और कृष्ण को युगल स्वरूप मे देखने और रसास्वादन करने का श्रेय उत्तरकालीन वैष्णव सहजियो को ही ह। चतन्यावतार मे इसका पूण प्रत्यक्षीकरण ह। आचाय हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ब्रज भाषा काव्य की युगल मूर्ति (राधा कृष्ण) के सविधान म इस सहजवाद के महत्त्व पर विशेष बल दिया ह। उनके अनुसार इस तत्र तत्त्ववाद का प्रवेश जब वष्णव भूमि मे हुआ तब राधा कृष्ण ही शिव शक्ति के स्थानापन्न हो गये।[१] प० गोपीनाथ कविराज जी के मतानुसार—'प्रत्यभिज्ञा दशन मे जो शिव और शक्ति ह त्रिपुरा सिद्धान्त मे वही कामेश्वर और कामेश्वरी है और गौडीय दशन मे वही श्रीकृष्ण और राधा ह। शिव शक्ति, कामेश्वर कामेश्वरी, कृष्ण राधा एक और अभिन्न ह।[२] तन्त्र मे कृष्ण को काम बीजात्मक और राधा को रति बीजात्मक कहा गया है।[3] कृष्ण और राधा का यह रूप युगल भाव की माधुर्योपासना का अन्यतम प्रेरक ह। राधा और कृष्ण का यह प्रेम माधुयभक्ति की सर्वोच्चता का प्रतिष्ठापक ह। इसी कारण चैतन्य ने राधा कृष्ण पदावली (जयदेव, विद्यापति, चण्डीदासरचित) को अपनी भाव धारा का मूल उपजीव्य बनाया था, जिसपर माधुय भक्ति की प्रतिष्ठा हो सकी।

इस माधुर्य के भी आश्रय के स्वरूप भेद से दो भेद हो जाते है। दाम्पत्य प्रेम मे जहा आश्रय स्वकीया ह, इस प्रेम की तीक्ष्णता कम रहती है। किन्तु, युगल प्रेम मे जहा आश्रय परकीया और आलम्बन जार या विट ह, वारण के कारण प्रेम मे अपेक्षाकृत अधिक तीक्ष्णता और गरिष्ठता आ जाती ह। चतन्य के राधा और कृष्ण परकीया प्रेम के ही आश्रयालम्बन ह।[४]

इस परकीया प्रेम को भी हम सहज और तत्र मत को तीसरी देन मान सकते है। तत्र मे परकीया साधना को आदश रूप प्रदान किया गया है। और, इस मत के प्राय सभी साधको ने अपनी साधना की सिद्धि के लिए परकीया नायिका का 'महामुद्रा' या 'सहज सुन्दरी' के रूप मे उपयोग किया ह। सहजिया वैष्णवो ने भी इसी पद्धति का अनुगमन किया। उनकी यह आरोप साधना परकीया प्रेम के आश्रय म ही अग्रसर हुई। इसके प्रमाण मे जयदेव, चण्डीदास, राय रामानन्द, चैतन्य तथा उनके अनुयायी षड गोस्वामियो को भी किसी-न-किसी परकीया (मुद्रा) के साथ सम्बद्ध बताया जाता ह।[५] ससार मे परकीया प्रेम की उत्कठा और प्रखरता अदभुत ह। वष्णव सहजियो ने राधा कृष्ण के आदश प्रेम के रसास्वादन मे इसी

---

१ सूर-साहित्य प० १९-२१ ('राधा कृष्ण का विकास' शीषक निबन्ध)—डॉ द्विवेदी।

२ हिन्दी भक्ति रसामृत-सिन्धु की भूमिका—डा विजयेन्द्र स्नातक द्वारा उदधत।

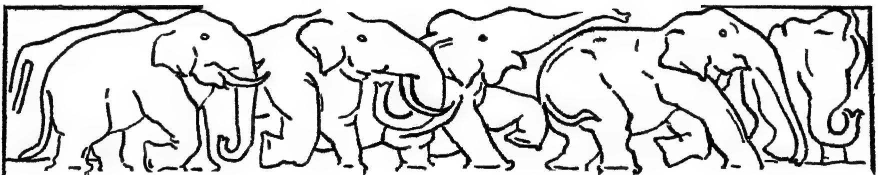
४ डा विजयेन्द्र स्नातक—'हिन्दी भक्ति रसामृत सिन्धु' की भूमिका, प० ४।

५ 'परकीया भावे अति रसेर उल्लास'—चै० च०, आदि लीला (चतुथ अनुच्छेद)

६ विस्तृत विवरणार्थ द्रष्टव्य—'रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना' प० ७१—डॉ० भुवनेश्वर मिश्र 'माधव'

परकीया प्रेम को सोपान बनाकर इसे लोकोत्तर महिमा प्रदान की है। कि तु यह परकीया प्रेम जहा बौद्ध मत मे आत्म-सुख का भी कारण है, वहा वैष्णव मत मे राधा और कृष्ण की 'केलि' तटस्थ दशन की वस्तु ह।[1] और, इसका आन द परकीया-भावापन्न साधक ही निर तर अपने अन्त करण मे अनुभव करता रहता है।[2] इस मत मे निश्चय ही कृष्ण की अपेक्षा राधा की विशेष महिमा ह। यहा राधा के बिना कृष्ण अपूण है।

निष्कषत चैत यावतार मे राधा कृष्ण की युगलोपासना पूणत प्रतिबिम्बित ह। इस युगलोपासना के स्वरूप और परम्परा पर भली भाति विचार करने पर चत य के साथ साथ कृष्ण चरित की विशेषताएँ भी प्रकाश मे आ जाती ह। चैत यदेव ने इस युगल स्वरूप को मध्ययुग (१६ वी शती) के सावभौम प्रतीक के रूप मे प्रतिष्ठित किया। इससे तत्कालीन सभी वैष्णव आचाय, सम्प्रदाय और कवि प्रभावित हुए। आचाय द्विवेदी ने इसी तथ्य को चमत्कार पूण ढग से हिन्दी जगत मे यह कहकर उदघाटित किया था—'वल्लभाचाय और सूरदास मे सहज मतवाद का अस्तित्व है।[3] वस्तुत चत य की ही मध्यस्थता मे यह युगलवाद इन भक्तो को उपलब्ध हुआ था।



१ प० परशुराम चतुर्वेदी—'सहजिया सम्प्रदाय', हिन्दी साहित्य कोश—प० ८२६

२ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी–सूर साहित्य–प० २७ ('स्त्री पूजा और उसका वैष्णव रूप')

३ वही—प० २१

महाभारत मे धर्म और अर्थ का संबंध-विचार

सुखमय भट्टाचाय

महर्षि व्यासदेव का महाभारत एक अमूल्य ग्रथ ह। यह महान ग्रथ सवविध ज्ञान का आकर ह, इसीसे पचम वेद के नाम से यह सुप्रसिद्ध ह। धथ, अथ, काम और मोक्ष—चतुवग के सम्बन्ध मे समस्त ज्ञातव्य बाते इसमे पाई जाती है। भारतसावित्री मे व्यासदेव कहते है—

ऊध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छणोति माम।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमथ न सेव्यते॥

'मै हाथ ऊँचा उठाकर ऊँचे स्वर से घोपणा कर रहा हू कि धम का आश्रय लेने से अथ और काम की प्राप्ति हो सकती ह किन्तु कोइ भी मेरी बात सुन नही रहा ह।"

इस कथन से स्पष्ट होता ह कि महाभारत के मत से धम ही अर्थ का मूल है। धम का छोडकर अर्थ की चिन्ता करना सगत नही ह। धम शब्द की महाभारत मे किस प्रकार व्यारया की गई है, पहले हमे यह जान लेना चाहिए। व्युत्पत्तिगत 'धम' के दो अथ प्रसिद्ध है। 'धत' 'पूवक' 'ऋ धातु मे 'मक' प्रत्यय जोडने से धम शब्द बनता ह। उसका अथ होता है—जिससे धन की प्राप्ति होती ह। धन शब्द से पार्थिव और अपार्थिव सब प्रकार के धन का वोध होता है ऐसा समझना चाहिए। दूसरी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—धारणाथक 'ध' धातु मे 'मन' प्रत्यय जोडने से धम शब्द बनता ह। उसका अथ है—जो सबको धारण करता है, अर्थात लोकस्थिति जिसके ऊपर निभर शील ह। ये दोनो ही अथ धम शब्द से निकलते है। व्यष्टि और समष्टिगत लोकस्थिति जिसके ऊपर निभर है अर्थात जिसको केद्रित करके प्रत्येक की जीवनायात्रा का निर्वाह होता है तथा जो वस्तु साधु उपाय से अथ कामादि की प्राप्ति मे सहायक होती है—वही धम है।

धम शब्द का धातु प्रत्ययलब्ध अथ जो भी क्यो न हो शब्द के सुनते ही अनेक अनिंद्य आचरण के विषय हमारे मन मे उदित होते ह। नाना अर्थो मे प्रयुक्त धमशब्द के प्रतिशब्द स्वरूप 'अनिंद्य आचरण' शब्द का सभवत व्यवहार किया जा सकता ह। आचरण केवल बाहर का व्यवहार मात्र नही ह, मन की सच्चि ता भी धर्माचरण के भीतर गिनी जाती ह।

केवल मात्र इहलौकिक स्थिति को धम के चरम उददेश्य रूप मे प्रकाश करना महाभारत का अभिप्राय नही है। आनुष्ठानिक अनेक धर्माचरण कष्टसाध्य ह। स्वभावत कष्ट विमुख मानव परलोक की कल्याण कामना से ऐहिक दु ख को भी धम के निमित्त वरण करता है। युधिष्ठिर के प्रश्न के उत्तर मे भीष्म पितामह ने कहा था—

प्राय लौकिक व्यवहार के ऊपर धम का विधान निभर करता ह, आपत्काल मे अधम को भी धम के रूप मे स्वीकार करना पडता है। साधारण लोगो के लिए धम का निणय

करना दु साध्य है। किन्तु यह बात निस्सदेह रूप से कही जा सकती है कि धर्म इस लोक तथा परलोक मे कल्याण प्रदान करता ह।धम की ग्लानि से मानव की 'महती विनष्टि' ह।

सवभूता की कल्याण चिंता, मैत्री और अहिसा ही शाश्वत धम ह। 'सर्वेषु भूतेषु मनसा शिवमाचरेत' प्रभति महाभारत वचनो म इसी सत्य का उपदेश दिया गया ह। अतएव अथनीति सपर्कित समस्त व्यवस्था इस मूल सत्य का अनुसरण करेगी तो कभी मूल से भ्रष्ट नही होगी। यही महाभारत का उपदेश है। प्रधानत शातिपव की राजधम विषयक आलोचना म यह बात परिष्कृत रूप से ज्ञात होता ह सभापव की नारदीय राजधम तथा कणिक की कूटनीति आश्रमवासिक पव की धतराष्ट्र जिज्ञासा, उद्योगवग की विदुरनीति प्रभति प्रकरणो मे भी इस विषय की अनेक बाते विवृत हुई ह।

राजा प्रजाजन के मगल के लिए राज्य तथा तमाज की अथनीति स्थिर करते ह। इस विषय से सम्बधित अमात्यो के अतिरिक्त एक नि स्पह सच्चरित्र विद्वान ब्राह्मण पुरोहित उनका प्रधान उपदेष्टा होता था। राजा की नियुक्ति के विषय मे प्रजासाधारण का भी अधिकार था। राजा होते थे—सदवश के क्षत्रिय त्यागी, विद्वान और धार्मिक व्यक्ति।

राजा अथशास्त्रीय नीति के अनुसार राजकाय की धमवद्धि की व्यवस्था करते थे, केवल प्रजा के पीडन से आर्थिक उ नति नही हो सकती। अथनीति समस्त रक्षण के अनुकूल होगी, कभी प्रतिकूल नही, समाज के सुखस्वाच्छन्द्य की वद्धि के प्रति दष्टि रखकर अथनीति स्थिर करना उचित है।

असयत अश्व जिस प्रकार सवार को दु ख देता ह, उसी प्रकार अजितेद्रिय राजा की अथस्पहा समग्र राज्य का नाश करके राजा का भी नाश कर देती है। राज्यलक्ष्मी उ हे शीघ्र ही त्याग देती ह। करभार से प्रपीडित प्रजावग का असन्तोष राजा की श्री नष्ट करने करने का अयतम कारण ह। अतएव प्रजा के ऊपर कर निर्धारण विचार पद्धति की सुष्ठु व्यवस्था, शिल्प और वाणिज्य की उन्नति निषयक नीति आदि के सम्ब ध मे राजा को सदा अवहित रहना चाहिए। सब प्रकार को ही सामाजिक उन्नति अथनीति के ऊपर निभर रहती ह।

अथ के सग्रह तथा व्यय के काय मे साधुचरित्र दक्ष व्यक्तियो को नियुक्त करने का उपदेश दिया ह, इस विषय मे जो साधुता ओर दक्षता का परिचय दे, उन्हे पुरस्कृत और सम्मानित करना चाहिए। कोष शस्त्रागार आदि की देखरेख के लिए विश्वस्त, विचक्षण और निर्लोभ पुरुष को नियुक्त करना चाहिए। आय और व्यय का एक सभावित हिसाब पहले से ही स्थिर कर लेना चाहिए। आय और व्यय के बीच नियत सामञ्जस्य की रक्षा करना आवश्यक ह। आय के चतुर्थांश, अर्धांश, अथवा त्रिचतुर्थांश द्वारा व्यय चलाने का उपदेश महाभारत मे दिया गया है। स्थायी भण्डार या राजकोष को सब समय उन्नत रखने का यत्न करना चाहिए।

अध, मूक, विकलाग, अनाथ व्यक्ति राजकोष से सहायता प्राप्त करेगे। प्रजा के किसी व्यक्ति की चोरी हो जाने पर राजा चोर को दण्ड दे और मालिक का धन मालिक को लौटवाए। चोर को न पकड सकने पर राजकोष से उसी परिमाण मे धन मालिक को देना

होगा। ब्रह्मस्व की किसी प्रकार क्षति नही करनी चाहिए। उपयुक्त बिद्वान बुद्धिमान सद वशज चरित्रवान अमात्य वग के परामश के अनुसार अथनोति निश्चित करने का विधान है। अथबल और लोकबल ही सब शक्तियो मे प्रधान ह।

याज्ञिक ब्राह्मण एव देवता का धन कभी नही छीनना चाहिए। जिसके धन का अस त्पथ मे व्यय होता ह राजा को बलपूवक उसका धन हरण करके जनता मे बाट देने का आदेश दिया गया है। दस्यु तथा निष्कर्मी व्यक्तियो के हाथ अथ नही सौपना चाहिए। उस धन पर समाज का अधिकार ह। अथ विषयक सभी विचार विवेचना भविष्य के कल्याण पर दष्टि रखकर करनी चाहिए। अनागत विधाता पुरुष कभी विपन्न नही होते।

अथनीति का मूल लक्ष्य हो—समाज के साधु और कमठ मनुष्यो की वद्धि। विद्या, शौय, बल, दक्षता एव धैय—ये पाच मानव के सहजात परम मित्र के रूप मे वर्णित किए गए है। अन्य प्रकार की समस्त सम्पत्ति कृत्रिम मित्र है। आवश्यकता पडने पर कृत्रिम मित्र का परित्याग करने पर कुण्ठित नही होना पडता।

वर्णाश्रम व्यवस्था मे ब्राह्मण तथा क्षत्रिय की शक्ति के परस्पर न मिलने से वैश्य शक्ति और शूद्रशक्ति भी परस्पर मिल नही सकती। समाज की श्री वद्धि के लिए यह अत्यत विपरीत है। अतएव मस्तिष्क और बाहुबल के सुमाग पर बढने पर समाज की आर्थिक उन्नति सुनिश्चित है। पुरोहित और अमात्यवग का परामश एव समाजपति राजा का सुशासन न रहने से समाज का आर्थिक विपयय अनिवाय हो जाता है। बहस्पति और वशिष्ठादि के पौरोहित्य के कारण ही देवराजादि की सव प्रकार की समद्धि सभव हुई थी। यह कथा महाभारत मे वर्णित ह। नारद युधिष्ठिर से पूछते ह—'तुम्हारी सभा मे आयव्यय का हिसाब रखनेवाले गणितशास्त्र के ज्ञाता व्यक्ति नियुक्त है न ?' गणितज्ञ सच्चरित्र व्यक्ति को अथसबधी दायित्व अर्पित करना चाहिए।

सभी क्षेत्रो मे अधिकारी का विचार करना चाहिए। अनधिकारी व्यक्ति के ऊपर अथनीति की व्यवस्था स्थापित करने का भार अर्पित करने से समाज की दुगति को रोका नही जा सकता।

पाँच प्रकार के बल और सात प्रकार की प्रकृति मे धन का स्थान ह। पहले ही जानना चाहिए—राजकोष की सम्पत्ति राजा की व्यक्तिगत सपत्ति नही ह। अपने आमोद-प्रमोद अथवा इच्छा पूरी करने का अधिकार राजा को नही दिया गया है। प्रजा के मगल के लिए ही नृपतिगण राजसूय, अश्वमेधादि यज्ञ करते थे। जहा भी राजकोष से अथ का व्यय होता दिखता है वहा प्रजावग उपकृत होती है—यह भी दिखता ह। धन का साथक वितरण हो अथनीति का आदश है। व्यक्तिगत सम्पत्ति को स्फीततर करना और उससे उत्पन्न मत्तता भारतीय आदश नही है।

वानप्रस्थ ग्रहण करने के अन तर धतराष्ट्र को जो सब उपदेश दिए है, उनमे एक प्रसग है—'महाराज, कोष जमा करने के लिए सदा न्याययुक्त प्रयास करे, कि तु अ यायपूवक अथ वृद्धि के लिए प्रयत्न न करे।'

अथसग्रह के सबध मे पितामह भीष्म भी युधिष्ठिर से कहते है—'राजा प्रजा के लिए ही उससे कर वसूल करे। देश, काल और पात्र का विचार करके अपना प्रजा का, दोनो पक्षो का मगल और प्रतिपाल्य प्रतिपालक सबध की जिससे कोई क्षति न हो, उसी प्रकार अथसग्रह करना चाहिए। भौरा जिस प्रकार फूल के पौधे को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचाते हुए फूल से मधुसचय करता ह, तुम उसी तरह प्रजा की किसी प्रकार क्षति न करते हुए उनके अतिरिक्त धनाश से कोषवद्धि की व्यवस्था करो। गाय को दुहते समय बछडे का अनिष्ट न हो यह ध्यान रखना पडता ह। राज्यदोहन मे भी प्रजा जिससे दुबल न हो, यह लक्ष्य रखना होगा। व्याघ्री जिस प्रकार अपने बच्चे को दातो मे दबाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती है और बच्चे को उससे किसी प्रकार की क्षति नही होती, ठीक उसी तरह प्रजा को कष्ट न पहुँचाते हुए उससे अथसग्रह करके कोषवद्धि करनी चाहिए। एक तरह का चूहा होता ह, जो सोते हुए मनुष्य के पैरो के तलवे का मास कोमल ढँग से काटकर ले जाता है और निद्रित व्यक्ति को किसी प्रकार की पीडा का अनुभव नही होता—तुम भी उसी प्रकार प्रजावग को कष्ट पहुँचाए बिना कर वसूल करो। जो सम्पन्न हो, उनसे हर वष पहले वष की अपेक्षा कुछ अधिक कर वसूल करना चाहिए। इस प्रकार उन्हे कोई कष्ट नही होगा। अकाल मे, अस्थान मे एव अन्यायपूण उपायो से कर वसूल नही करना चाहिए। स्थिरचित्त से सदय निपणतापूवक कर निश्चित करना चाहिए। असगत आचरण से प्रजागण विद्रोही हो उठते ह।'

प्रजावग को आय का दशमाश कर के रूप मे ग्रहण करने की बात सुलभा जनक सवाद के रूप मे कही गई ह। प्रजा द्वारा उत्पन्न वस्तु का षष्ठाश कर के रूप मे वसूल करने की बात भी अनेक स्थलो पर कही गई है। इन उल्लेखो से प्रतीत होता है, महाभारत के समय मे षष्ठाश कर ही वसूल किया जाता था। कृषक शिल्पी, वणिक तथा अन्य वत्तिविशिष्ट प्रजा की जो वार्षिक आय होती थी, उसके छ भागो मे से एक भाग राजा को देने का नियम था। अश्व, वस्त्र, मणिमाणिक्य, धान्य प्रभति वस्तुएँ भी कर रूप मे वसूल की जाती थी। अर्थात जिस जनपद मे जो वस्तु उत्पन्न होती थी एव जो परिवार जिस व्यवसाय द्वारा जीविका निर्वाह करता उससे वही वस्तु ही कर रूप मे स्वीकार की जाती थी।

उस प्रसग मे हमको यह स्मरण रखना होगा—उसकाल मे कर वसूली के बदले राज्य की रक्षा करना—इस प्रकार का कोई समझौता राजा प्रजा के बीच मे नही था। राजा धम बुद्धि से ही प्रजापालन करते थे, प्रजागण भी धमबुद्धि से ही राजकर देते थे। सब श्रेणी की प्रजा से कर नही वसूल किया जाता था। दरिद्र, अनाथ, विधवा, विपन्न व्यक्ति, तपस्वी एव स्वधमनिष्ठ ब्राह्मणो से कर वसूल करने का नियम नही था। अत्यधिक कर अदायगी की बार-बार निन्दा की गई ह।

कृषक, शिल्पी, वणिक प्रभति व्यक्तिगण अपने-अपने काय मे प्रतिष्ठित रहते हुए उत्साहपूवक जिससे वत्ति की उन्नति कर सके, इस विषय मे सतक दष्टि रखने के लिए राजा को उपदेश दिए गए है। अत्यधिक धन की लालसा के फलस्वरूप राष्ट्र एव कृष्यादि वत्ति का जिससे उच्छेद न हो जाय, कर निर्धारण मे इस बात पर तीक्ष्ण दृष्टि रखनी चाहिए। लोभी राजा के प्रजाविद्रोह होता रहता है। प्रजागण ऐसे राजा पर विश्वास नही कर सकते।

शास्त्रानुसार अपराधी को दण्ड देने से प्राप्त धन, करस्वरूप प्राप्त वस्तु, एव सुरक्षित वणिका द्वारा प्रदत्त कर राजा को राजकोष मे जमा करना होता था। इसके बाद यदि किसी की जीवनयात्रा अचल हो जाय, तो राजकोप से उसकी सहायता करनी हागी। प्रजा का समस्त खच चलाने के लिए राजा धमत बा'य था।

अथशास्त्र विरुद्ध अथनीति के प्रयोग से राष्ट का ध्वस अवश्यभावी ह। नार'', शुक्राचाय वहस्पति प्रमुख अथनीतिविशारद मनीषियो के विभि'न उपदेशा की कथा महाभारत मे कीर्तित हुई मिलती ह। कहा गया ह कि राजा यदि उन सब उपदेशो के अनुसार धर्मानुमोदित अथनीति का आश्रय ले तो वसुमती उसके ऊपर माता के समान कल्याणदायी रहती है।

भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा ह —'महाराज, आप मालाकरके समान राष्ट के कल्याण के लिए अथनीति का प्रयोग करे, आगारिक के समान नही। आगारिक अगार के लिए वन जगल को जला डालना है और मालाकार बन को उद्यान मे परिणत करके उसकी शोभा से स्वय मुग्ध होता ह दूसरे को भी मुग्ध करता ह। अधिक सुगधित कुसुम चुनकर उत्कृष्ट माला प्रस्तुत करता ह। अथनीति के सुष्ठु प्रयोग से प्रफुल्ल प्रजाव'द की श्रद्धा और कृतज्ञता का आन'द ही तुम्हारे लिए सुगन्धित माला के समान लोभनीय हो।'

राष्ट्र की आर्थिक अव'था को देखकर व्यय का विधान करना चाहिए। जिस वप कृषि वाणिज्यादि की अवस्था अच्छी रहे, उस वष अथ के चतुर्थांश द्वारा सम्पूण व्यय का निर्वाह करना चाहिए। जिस वष उनकी अवस्था मध्यम हो, उस वष सचित अथ का आधा खच करना चाहिए और जिस वष देश मे दुर्भिक्ष हो, उस वष चार भाग मे से तीन भाग धन खच करना चाहिए।

जो राजा अथ शोषण मे पटु कि'तु रक्षण के समय उदासीन रहता ह—'त वै राज कलि हन्यु प्रजा सन्नह्य निघणम।

—प्रजागण मिलकर उम अधम राजा को निदयभाव से मार डाले।

शा'तिपव मे भीष्म युधिष्ठिर से कहते है—'केवल अथशास्त्र के निर्देशानुसार सवत्र अथनीति का प्रयोग करना ठीक नही है। धम के साथ योग रखकर अथनीति का प्रयोग न करने से राष्ट्र समूल विनाश को प्राप्त हो जाता ह।'

इस समस्त आलोचना से स्पष्टत समझ मे आता है—समाज की सवविधि आर्थिक व्यवस्था का भार राजा के ऊपर यस्त था। प्रजाजन के कल्याण के प्रति दष्टि रखकर ही वे इस कत्तव्य का पालन करते थे। सर्वोपरि यह 'यवस्थापना धमकेन्द्रित थी। प्रधानत धम के प्रति राजा को लक्ष्य रखने के लिए कहा गया ह। लोकस्थिति की अनुकूलता अर्थ एव धम दोनो पर ही चरम लक्ष्य होने पर भी धम ही दोनो मे प्रधान ह। इसी कारण अवस्थाविशेष मे धम भी रक्षा के निमित्त प्रचलित आर्थिक विधान को परिवर्तित करना पडता ह।

आपत्काल मे अथ नीति मे परिवतन के उपदेश से भी स्पष्ट होता है कि अथनीति मे परिवतन सभव होने पर भी शाश्वत मानवधम का परिवतन कभी सभव नही है। आनु

भाविक धम यद्यपि समाजविशेष तथा समय विशेष मे परिवतन योग्य ह, तथापि सवसाधारण मानवधम यथा—सत्य, अस्तेय, अहिंसा प्रभति का अ यथाचरण नही चलेगा। इससे भी धम और अथ के बीच धम का ही प्राधा य सूचित होता है।

धम ह उपजीव्य, पर तु अथ उपजीवक ह, अर्थात धम के ऊपर निभरशील ह। यह उपजीव्य–उपजीवक भाव ही दोनो का सम्ब ध ह। व्यासदेव ने इसी तथ्य की ऊँचे स्वर म घोषणा की ह—

'धर्मादथश्च कामश्च'



व्यापार, व्यापारी और अर्थनीति

हनुमान प्रसाद पोद्दार

भारतीय सस्कृति म प्रसिद्ध चार पुरुषाथ ह—अथ, धम, काम और मोक्ष। अथ सबसे पहले ह क्योकि अथ के विना ससार मे जोवन यापन नही हो सकता, पर अथ अनथ रूप बनकर पतन, भीषण दु ख एव नरक य त्रणाका कारण भी बन सकता ह और अथ पर माथरूप बनकर उत्थान, आत्यन्तिक सुख और परम कल्याण—मोक्षका हेतु भी बन सकता है। जो अथ धमनियन्त्रित, धममूलक और धमसाधनाथ ह वह परमाथरूप ह। उससे प्राप्त होनेवाला 'काम' भी पवित्र ह और उसका फल मोक्ष ह। धम वही ह जिससे परिणाम मे अपना और दूसरो का हित हो, जिससे सबका धारण हो। यह धम तथा अध्यात्म भारतीय सस्कृति का आत्मा है। पर जो अथ भोगवासनाप्रेरित ह, भोगमूलक और नीच स्वाथ मोह जनित, सग्रह या इन्द्रिय तप्त्यथ है, उसका फल बन्धन है नरक ह। इसीसे धमहीन तथा भौतिक भोगो मे रचा पचा मनुष्य पशु या असुर ही हो जाता ह।

शुद्ध अथ का धम के साथ नित्य सम्बन्ध ह। इसी से वणधम के अन्तगत एक पूरा वण—वैश्य वाणिज्य, गोरक्षण और कृषि आदि के द्वारा अर्थोत्पादन करके अपना एव सबका जीवन निर्वाह करता ह, वाणिज्य आदि के द्वारा वह अपनी जीविका चलाता हुआ सबकी सेवा करता ह और इसी के द्वारा वह मानव जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष का अधिकारी होता है। हमारा प्रत्येक क्षुद्र से क्षुद्र कम भी धम से सम्बन्धित है, अतएव व्यापार-वाणिज्य भी धम से सम्बन्धित ह। यह धम सम्बन्ध आज क्रमश भुलाया जा रहा ह। इसी से व्यापार के पवित्र सेवा के क्षेत्र मे क्षुद्र स्वाथ का प्रवेश हो गया है और इसी से उसमे विभिन्न प्रकार के दोषो का अवाञ्छनीय उदय और सवद्धन हो रहा ह एव फलत हमारा नतिक पतन हो रहा है एव हम आये हुए सकटो से मुक्त होने के लिए नित्य नये नये सकटो को बुला रहे ह।

'स्व' जितना सीमित होता है, उतना ही स्वाथ भी सीमित तथा सकुचित होता ह। यही कारण है कि विश्व-चराचर मे आत्म दशन करने वाला भारतवष आज राज्यो तथा जमीदारियो के विलयन के बाद भी एक राष्ट्र न होकर खण्ड खण्ड हुआ जा रहा है और भूमि की सीमा, भाषावाद, जातिवाद आदि को लेकर भारतवासी आज एक दूसरे पर वैसे ही मूखतापूण आघात करके अपना ही विनाश साधन कर रहे है, जैसे कोई मनुष्य अपने ही अगो की रक्षा के लिए अपने ही अगो को अपन ही अगो के द्वारा मार काट रहा हो। इसी से आज नये नये वादो की सृष्टि हुई ह और सभी वाद विवादग्रस्त होकर प्रमादवश अपने ही हाथो अपना सहार करन मे सलग्न है। अपने वाद के या वादगत किसी एक दल के हित के मनोरथ से देश का स्वाथ या हित भुला दिया जाता ह और व्यक्ति की हित कामना या स्वाथ साधना के लिए दलके हित का त्याग कर दिया जाता है। सवत्र इसी क्षुद्र-सकुचित भाव का विस्तार हो रहा है—व्यक्ति के स्वाथ के लिए देश के स्वाथ का अनायास बलिदान हो रहा है।

यह स्थिति सभी क्षेत्रो मे ह । वतमान अथत त्र भी मुरयतया इसी लिए अस्त व्यस्त तथा अनिश्चित हो गया ह । वाणिज्य व्यापार के क्षेत्र मे भी यही विष प्रवेश कर गया ह । इसी से सत्य, ईमानदारी परहित आदि सदभावो, सदविचारो का परित्याग करके मनुष्य अवाञ्छनीय व्यक्तिगत स्वाथसाधन के लिए हेय प्रवृत्ति मे लगा हुआ उसी मे गोरव का अनुभव करता ह । इसी से खाद्यपदार्थो मे, रोगियो को रोगमुक्त करने के लिए दी जाने वाली दवाइयो मे ऐसी चीजे मिलायी जाती ह जिनका स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पडता ह । ऐसी बाते सुनने मे आयी ह कि घी मे पशुओ की चरबो मिलायी जाती ह, चीनी मे आटा मिलाया जाता ह, आटे मे लकडी का चूरा मिलाया जाता ह पिसी हल्दी मे घोडे की लीद मिलायी जाती ह नकली जीरा नकली काली मिच, नकली पीपल, नकली केसर नकली तेल आदि बनते हैं, जो स्वास्थ्यनाश के साथ ही अन्य अनेक प्रकार के दोष उत्प न करते ह । बढिया वस्तु बता कर घटिया देना, तौल मे कम देना धोखा देकर दाम ज्यादा लेना या कम देना आदि अनेक दोष प्रधानतया नीच स्वाथ के कारण ही व्यापारी समाज मे आ गये है । ये दोष धमहीनता तथा अथ पैशाचिकता के ज्वल त प्रमाण ह, जा चारी डकती से भी बुरे ह ।

व्यापारियो मे वह परम्परागत ईमानदारी आज प्राय नही रही ह जो रहनी चाहिये थी, पर यह भी निर्विवाद ह कि यह रोग केवल व्यापारी समाज मे ही नही आया है, प्राय सभी क्षेत्र इसमे आक्रा त है । व्यापारी समाज को खुले आम 'चोर' कहा जाता है आर समाजवाद के नाम पर उसकी जड खोदी जा रही ह । भाति भाति से उसको सत्रस्त किया जाता ह । 'कर तो इतने अधिक बढ गये ह कि वे 'कर' न रहकर मानो धन की बलात डकैती जैसे हो गये ह । बचत के पैसे रह ही नही पाते । यही कारण ह कि निजी व्यापारका विस्तार होने मे बडी रुकावट आ गयी ह । पिछले १५ वर्षो मे कई सो गुना करभार प्रजापर बढा ह । जितने कर बढे है उतनी ही कर' की चोरी भी स्वाभाविक ही बढी ह । आदत बिगडने और पैसो का मोह बढ जाने के कारण पूरी तो चोरी ब द नही होगी, पर कर घटा दिये जायेगे तो बहुत अश मे चोरी भी घट जायेगी । शायद घटी दर मे भी 'कर' के उतने ही पैसे आ जायेगे, जितने बढी दर म आते ह । ऐसा होने पर सरकारी लोकप्रियता बढेगी और व्यापारियो को व्यापार विस्नार मे सुविधा होने के साथ उनकी चोरी की बुरी आदत भी अशत छूटेगी । सरकार को इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये ।

व्यापारिया की चोरी मे अधिकारियो का भ्रष्टाचार भी एक प्रधान करण ह, चूँकि अधिकारियो मे भी व्यक्तिगत नीच स्वाथ है, जो उन्हे भ्रष्टाचार मे लगाये रखता ह और वे स्वाभाविक ही व्यापारियो से मिल जुलकर चोरी करते कराते ह । व्यापारियो का स्थान आज कल सहकारी मण्डलो को दिया जा रहा है और उ्ही के द्वारा खरीद बिक्री का काम करवाया जाता है पर उनके भी कायकर्त्ता उसी स्वाथ से ग्रस्त है । अतएव वे भी चोरी करते ह और उनसे सम्बन्ध रखने वाले स्वाथ परायण अधिकारी, शासक या नेतव द भी जिनका सहकारी मण्डलवालो से स्वाथ सम्ब ध है, चोरी करने कराने मे सीधे टेढे सहायक होते है। यो सहकारी मण्डल वालो के रूप मे प्राय काला बाजार करने वाला एक नया भीषण वग बन गया है । ऐसे कई सहकारी मण्डल पकडे भी गये है । झूठे राशनकाड जगह जगह पकडे जाते है (पर सब थोडे ही पकडे जाते है) । बात भी यह है कि जिस चीज की कण्ट्रोल मे दो रुपया किलो

कीमत हो, उसके जब काले बाजार मे ६ या ८ रुपये किलो दाम आते हा तब झूठा राशन काड बनवाने मे आज के अथपरायण स्वार्थी लोगो का सचेष्ट होना क्या आश्चय की बात ह ? फिर कण्ट्रोल मे जहा २ ४ किलो से अधिक वस्तु नही मिलती वहा काले बाजार मे ऊँची कीमत देने पर बोरे के बोरे मिल जाते है तब उसका यह अथ लगाना भी अनुचित नही कहा जा सकता कि सरकारी तन्त्र ही आवश्यकता वाले लोगो को मानो काले बाजार से माल खरीदने का मूक परामश देकर काले बाजारो का प्रोत्साहन देते ह। इसमे भी सरकारी त त्र के अधिकारियो का व्यक्तिगत स्वाथ ही प्राय कारण होता ह।

जबसे सरकार खाद्यपदार्थो का व्यापार करने लगी ह, तब से कई बार ऐसे समाचार मिले है कि अमुककी भूलसे या अमुक अनिवाय कारण से इतने हजार बोरे चावल या गेहू सड गये और वे मनुष्यो के खाने के योग्य नही रह गये। फिर वह सडा माल मिट्टी के मोल बेच दिया जाता ह और वही काले बाजारो मे पहुच कर अच्छे माल के साथ मिलाकर बेचा जाता ह। इसमे बहुतो की हिस्सेदारी तो रहती ही ह।

सकुचित स्वाथ के साथ ही कुछ ऐसे और कारण भी ह जिनसे व्यापारियो की कठिनाइया बढने के साथ ही व्यापार के क्षेत्र मे कई अवाञ्छनीय दोष आ गये है। उनमे प्रधान कारण ह—ऐसे लोगो के हाथो मे शासनाधिकारका रहना जो कदाचित अधिकाश ईमानदार होने पर भी व्यापार से सवथा अनभिज्ञ ह जिनको जो काम आता नही, वे उस कामको ठीक नही कर सकते, चाहे वे अपने दूसरे काम मे बडे ही निपुण हो। व्यापारी पद्धति तथा व्यापारी मनोवत्तियो से तथा व्यापारी हानि लाभ से पूण परिचित न होने के कारण वे ऐसे काय कर बैठते ह, जिनसे विभिन्न प्रकार की बहुत सी कठिनाइया और अस्त व्यस्तता उत्पन्न हो जाती ह। जैसे—व्यापारियो पर प्रतिबन्ध, वस्तुआ के मूल्य पर प्रतिबन्ध, यातायातपर प्रतिबन्ध, उत्पादन पर प्रतिब ध, परमिट से माल मिलना, आये दिन नये नये करो की वद्धि, अफसरी स्वभाव के अधिकारियो द्वारा उद्योगध धो का सचालन आदि। व्यापारी जब खुला निजी व्यापार करते ह, मूल्य तथा यातायत पर कोई प्रतिबन्ध नही होता, तब वे जिस प्रदेश मे माल अधिक होता है और सस्ता होता ह, वहा से खरीद कर उस प्रदेश मे पहुँचा कर बेचते है, जहा मालकी कमी ह और बहुत तेजी है। व्यापार ज्यादा हो, इसलिये वे थोडे नफे पर काम करते है, और चूकि स्वय घाटे नफे के उत्तरदायो होते है अतएव माल सडने नही देते, उजडने नही देते, रेल पर पडा नही रहने देते, क्योकि उनको इससे कष्ट होता ह। परिणाम यह होता है कि अधिकता तथा यूनतावाले दोनो ही स्थानो मे वस्तुओ की कीमत प्राय समान-सी हो जाती है, सबको सब चीजे मिल जाती है। काला बाजार न होने से व्यथ का लालच नही बढता और वस्तुओ के सग्रह की प्रवृत्ति तेजी और कमी मे ही हुआ करती है। उत्पादन पर प्रतिब ध न होने पर वह माल सहज हो जाता ह। पक्षा तर मे कण्टोल होते ही वस्तु भूमिगत हो जाती है और सहज ही कीमत बढ जाती ह। यह सब अनुभवहीन अधिकारका ही दुष्परिणाम है।

इसी के साथ साथ सरकार की श्रमिको तथा कमचारियो के साथ बरती जानेवाली नीति भी दोषपूण है। महँगी के युग मे उ हे वेतन अच्छा अवश्य मिलना चाहिये, इसमे जरा भी दो मत नही हो सकते। पर उनमे काम न करके पैसे लेने की जो प्रवत्ति बढ रही ह, यह

यह स्थिति सभी क्षेत्रो मे ह। वतमान अथतन्त्र भी मुख्यतया इसी लिए अस्त व्यस्त तथा अनिश्चित हो गया ह। वाणिज्य व्यापार के क्षेत्र मे भी यही विष प्रवेश कर गया ह। इसी से सत्य ईमानदारी परहित आदि सदभावो, सदविचारो का परित्याग करके मनुष्य अवाञ्छनीय व्यक्तिगत स्वाथसाधन के लिए हेय प्रवृत्ति मे लगा हुआ उसी म गोरव का अनुभव करता ह। इसी से खाद्यपदार्थो मे, रोगियो को रोगमुक्त करने के लिए दी जाने वाली दवाइया मे ऐसी चीजे मिलायी जाती ह जिनका स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पडता ह। ऐसी बाते सुनने मे आयी ह कि घी मे पशुओ की चरबो मिलायी जाती ह, चीनी मे आटा मिलाया जाता ह, आटे मे लकडी का चूरा मिलाया जाता ह पिसी हल्दी मे घोडे की लीद मिलायी जाती ह नकली जीरा नकली काली मिच, नकली पीपल, नकली केसर नकली तेल आदि बनते है, जो स्वा स्थ्यनाश के साथ ही अन्य अनेक प्रकार के दोष उत्प न करते ह। बढिया वस्तु बता कर घटिया देना तौल मे कम देना, धोखा देकर दाम ज्यादा लेना या कम देना आदि अनेक दोष प्रधानतया नीच स्वाथ के कारण ही व्यापारी समाज मे आ गये है। ये दोष धमहीनता तथा अथ पैशाचिकता के ज्वल त प्रमाण ह, जो चारी डकती से भी बुरे ह।

व्यापारियो म वह परम्परागत ईमानदारी आज प्राय नही रही ह जो रहनी चाहिये थी, पर यह भी निर्विवाद ह कि यह रोग केवल व्यापारी समाज मे ही नही आया है, प्राय सभी क्षेत्र इसमे आक्रा त है। व्यापारी समाज को खुले आम 'चोर' कहा जाता है और समाज वाद के नाम पर उसकी जड खोदी जा रही ह। भाति भाति से उसको सत्रस्त किया जाता ह। 'कर तो इतने अधिक बढ गये ह कि वे 'कर' न रहकर मानो धन की बलात डकैती जैसे हो गये है। बचत के पैमे रह ही नही पाते। यही कारण ह कि निजी व्यापारका विस्तार होने मे बडी रुकावट आ गयी ह। पिछले १५ वर्षो मे कई सो गुना करभार प्रजापर बढा ह। जितने कर बढे है, उतनी ही कर' की चारी भी स्वाभाविक ही बढी ह। आदत बिगडने ओर पैसो का मोह बढ जाने के कारण पूरी तो चोरी ब द नही होगी, पर कर घटा दिये जायेगे तो बहुत अश मे चोरी भी घट जायेगी। शायद घटी दर मे भी 'कर' के उतने ही पैसे आ जायेगे, जितने बढी दर म आते ह। ऐसा होने पर सरकारी लोकप्रियता बढेगी और व्यापा रियो को व्यापार विस्नार मे सुविधा होने के साथ उनकी चोरी की बुरी आदत भी अशत छूटेगी। सरकार को इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये।

व्यापारियो की चोरी मे अधिकारिया का भ्रष्टाचार भी एक प्रधान करण ह, चूँकि अधिकारियो मे भी व्यक्तिगत नीच स्वाथ ह जो उन्हे भ्रष्टाचार मे लगाये रखता ह और वे स्वाभाविक ही व्यापारिया से मिल जुलकर चोरी करते कराते है। व्यापारियो का स्थान आज कल सहकारी मण्डलो को दिया जा रहा है और उ्ही के द्वारा खरीद बिक्री का काम करवाया जाता है पर उनके भी कायकर्त्ता उसी स्वाथ से ग्रस्त है। अतएव वे भी चोरी करते ह और उनसे सम्बन्ध रखने वाले स्वाथ परायण अधिकारी, शासक या नेतव द भी जिनका सहकारी मण्डलवालो से स्वाथ सम्बन्ध ह, चोरी करने कराने मे सीधे टेढे सहायक होते हैं। यो सहकारी मण्डल वालो के रूप मे प्राय काला वाजार करने वाला एक नया भीषण वग बन गया है। ऐसे कई सहकारी मण्डल पकडे भी गये है। झूठे राशनकाड जगह जगह पकडे जाते है (पर सब थोडे ही पकडे जाते है)। बात भी यह है कि जिस चीज की कण्ट्रोल मे दो रुपया किलो

कीमत हो, उसके जब काले बाजार मे ६ या ८ रुपये किलो दाम आते हो तब झूठा राशन काड बनवाने मे आज के अथपरायण स्वार्थी लोगो का सचेष्ट होना क्या आश्चय की बात ह ? फिर कण्ट्रोल मे जहा २ ४ किलो से अधिक वस्तु नही मिलती वहा काले बाजार मे ऊची कीमत देने पर बोरे के बोरे मिल जाते है तब उसका यह अथ लगाना भी अनुचित नही कहा जा सकता कि सरकारी तन्त्र ही आवश्यकता वाले लोगो को मानो काले बाजार से माल खरीदने का मूक परामश देकर काले बाजारो को प्रोत्साहन देते ह। इसमे भी सरकारी त त्र के अधिकारियो का व्यक्तिगत स्वाथ ही प्राय कारण होता है।

जबसे सरकार खाद्यपदार्थो का व्यापार करने लगी है, तब से कई बार ऐसे समाचार मिले है कि अमुककी भूलसे या अमुक अनिवाय कारण से इतने हजार बोरे चावल या गेहू सड गये और वे मनुष्यो के खाने के योग्य नही रह गये। फिर वह सडा माल मिट्टी के मोल बेच दिया जाता ह और वही काले बाजारो मे पहुच कर अच्छे माल के साथ मिलाकर बेचा जाता ह। इसमे बहुतो की हिस्सेदारी तो रहती ही है।

सकुचित स्वाथ के साथ ही कुछ ऐसे और कारण भी ह जिनसे व्यापारियो की कठिनाइया बढने के साथ ही व्यापार के क्षेत्र मे कई अवाञ्छनीय दोष आ गये है। उनमे प्रधान कारण ह—ऐसे लोगो के हाथो मे शासनाधिकारका रहना जो कदाचित अधिकाश ईमानदार होने पर भी व्यापार से सवथा अनभिज्ञ ह जिनको जो काम आता नही, वे उस कामको ठीक नही कर सकते, चाहे वे अपने दूसरे काम मे बडे ही निपुण हो। व्यापारी पद्धति तथा व्यापारी मनोवत्तियो से तथा व्यापारी हानि लाभ से पूण परिचित न होने के कारण वे ऐसे काय कर बैठते ह, जिनसे विभिन्न प्रकार की बहुत सी कठिनाइया और अस्त व्यस्तता उत्पन्न हो जाती है। जैसे—व्यापारियो पर प्रतिबन्ध, वस्तुओ के मूल्य पर प्रतिबन्ध, यातायातपर प्रतिबन्ध, उत्पादन पर प्रतिब ध, परमिट से माल मिलना, आये दिन नये नये करो की वद्धि, अफसरी स्वभाव के अधिकारियो द्वारा उद्योगध धो का सचालन आदि। व्यापारी जब खुला निजी व्यापार करते ह, मूल्य तथा यातायत पर कोई प्रतिबन्ध नही होता, तब वे जिस प्रदेश मे माल अधिक होता है और सस्ता होता ह, वहा से खरीद कर उस प्रदेश मे पहुँचा कर बेचते हैं, जहा मालकी कमी ह और बहुत तेजी है। व्यापार ज्यादा हो, इसलिये वे थोडे नफे पर काम करते है, और चूँकि स्वय घाटे नफे के उत्तरदायो होते है अतएव माल सडने नही देते, उजडने नही देते, रेल पर पडा नही रहने देते, क्याकि उनको इससे कष्ट होता ह। परिणाम यह होता ह कि अधिकता तथा यूनतावाले दोनो ही स्थानो मे वस्तुओ की कीमत प्राय समान-सी हो जाती ह, सबको सब चीजे मिल जाती है। काला बाजार न होने से व्यथ का लालच नही बढता और वस्तुओ के सग्रह की प्रवृत्ति तेजी और कमी मे ही हुआ करती है। उत्पादन पर प्रतिब ध न होने पर वह माल सहज हो जाता ह। पक्षा तर मे कण्टोल होते ही वस्तु भूमिगत हो जाती है और सहज ही कीमत बढ जाती ह। यह सब अनुभवहीन अधिकारका ही दुष्परिणाम ह।

इसी के साथ साथ सरकार की श्रमिको तथा कमचारियो के साथ बरती जानेवाली नीति भी दोषपूण है। महँगी के युग मे उ हे वेतन अच्छा अवश्य मिलना चाहिये, इसमे जरा भी दो मत नही हो सकते। पर उनमे काम न करके पैसे लेने की जो प्रवत्ति बढ रही है, यह

यह स्थिति सभी क्षेत्रो मे ह। वतमान अथत त्र भी मुरयतया इसी लिए अस्त व्यस्त तथा अनिश्चित हो गया ह। वाणिज्य व्यापार के क्षेत्र मे भी यही विष प्रवेश कर गया ह। इसी से सत्य, ईमानदारी परहित आदि सदभावो, सदविचारो का परित्याग करके मनुष्य अवाञ्छनीय व्यक्तिगत स्वाथसाधन के लिए हेय प्रवृत्ति मे लगा हुआ उसी म गौरव का अनुभव करता ह। इसी से खाद्यपदार्थो मे, रोगियो को रोगमुक्त करने के लिए दी जाने वाली दवाइयो म ऐसी चीजे मिलायी जाती ह जिनका स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पडता ह। ऐसी बाते सुनने मे आयी ह कि घी मे पशुओ की चरबो मिलायी जाती ह, चीनी मे आटा मिलाया जाता ह, आटे मे लकडी का चूरा मिलाया जाता ह पिसी हल्दी मे घोडे की लीद मिलायी जाती ह नकली जीरा नकली काली मिच, नकली पीपल, नकली केसर नकली तेल आदि बनते है, जो स्वास्थ्यनाश के साथ ही अन्य अनेक प्रकार के दोप उत्प न करते ह। बढिया वस्तु बता कर घटिया देना, तौल मे कम देना, धोखा देकर दाम ज्यादा लेना या कम देना आदि अनेक दोष प्रधानतया नीच स्वाथ के कारण ही व्यापारी समाज मे आ गये है। ये दोष धमहीनता तथा अथ पैशाचिकता के ज्वल त प्रमाण ह, जो चारी डकती से भी बुरे ह।

व्यापारियो म वह परम्परागत ईमानदारी आज प्राय नही रही ह जो रहनी चाहिये थी, पर यह भी निर्विवाद ह कि यह रोग केवल व्यापारी समाज मे ही नही आया है, प्राय सभी क्षेत्र इसमे आक्रा त है। व्यापारी समाज को खुलेआम 'चोर' कहा जाता है और समाजवाद के नाम पर उसकी जड खोदी जा रही ह। भाति भाति से उसको सत्रस्त किया जाता ह। 'कर तो इतने अधिक बढ गये ह कि वे 'कर' न रहकर मानो धन की बलात डकैती जैसे हो गये ह। बचत के पैमे रह ही नही पाते। यही कारण ह कि निजी व्यापारका विस्तार होने मे बडी रुकावट आ गयी ह। पिछले १५ वर्षो मे कई सो गुना करभार प्रजापर बढा ह। जितने कर बढे ह, उतनी ही कर' की चोरी भी स्वाभाविक ही बढी है। आदत बिगडने और पैसो का मोह बढ जाने के कारण पूरी तो चोरी ब द नही होगी, पर कर घटा दिये जायेगे तो बहुत अश मे चोरी भी घट जायेगी। शायद घटी दर मे भी 'कर' के उतने ही पैसे आ जायेगे, जितने बढी दर म आते ह। ऐसा होने पर सरकारी लोकप्रियता बढेगी और व्यापारियो को व्यापार विस्नार मे सुविधा होने के साथ उनकी चोरी की बुरी आदत भी अशत छूटेगी। सरकार को इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये।

व्यापारियो की चोरी मे अधिकारिया का भ्रष्टाचार भी एक प्रधान करण ह, चूँकि अधिकारियो मे भी व्यक्तिगत नीच स्वाथ है, जो उन्हे भ्रष्टाचार मे लगाये रखता ह और वे स्वाभाविक ही व्यापारिया से मिल जुलकर चोरी करते कराते ह। व्यापारियो का स्थान आजकल सहकारी मण्डलो को दिया जा रहा है और उ ही के द्वारा खरीद बिक्री का काम करवाया जाता है पर उनके भी कायकर्त्ता उसी स्वाथ से ग्रस्त है। अतएव वे भी चोरी करते ह और उनसे सम्बन्ध रखने वाले स्वाथ परायण अधिकारी, शासक या नेतव द भी जिनका सहकारी मण्डलवालो से स्वाथ सम्बन्ध ह, चोरी करने कराने मे सीधे टेढे सहायक होते है। यो सहकारी मण्डल वालो के रूप मे प्राय काला बाजार करने वाला एक नया भीषण वग बन गया है। ऐसे कई सहकारी मण्डल पकडे भी गये है। झूठे राशनकाड जगह जगह पकडे जाते ह (पर सब थोडे ही पकडे जाते है)। बात भी यह है कि जिस चीज की कण्ट्रोल मे दो रुपया किलो

कीमत हो, उसके जब काले बाजार मे ९ या ८ रुपये किलो दाम आते हो तब झूठा राशन काड बनवाने मे आज के अथपरायण स्वार्थी लोगो का सचेष्ट होना क्या आश्चय की बात ह ? फिर कण्ट्रोल मे जहा २ ४ किलो से अधिक वस्तु नही मिलती वहा काले बाजार मे ऊची कीमत देने पर बोरे के बोरे मिल जाते है तब उसका यह अथ लगाना भी अनुचित नही कहा जा सकता कि सरकारी तन्त्र ही आवश्यकता वाले लोगो को मानो काले बाजार से माल खरीदने का मूक परामश देकर काले बाजारो को प्रोत्साहन देते ह। इसमे भी सरकारी तन्त्र के अधिकारियो का व्यक्तिगत स्वाथ ही प्राय कारण होता है।

जबसे सरकार खाद्यपदार्थो का व्यापार करने लगी है, तब से कई बार ऐसे समाचार मिले है कि अमुककी भूलसे या अमुक अनिवाय कारण से इतने हजार बोरे चावल या गेहू सड गये और वे मनुष्यो के खाने के योग्य नही रह गये। फिर वह सडा माल मिट्टी के मोल बेच दिया जाता ह और वही काले बाजारो मे पहुच कर अच्छे माल के साथ मिलाकर बेचा जाता ह। इसमे बहुतो की हिस्सेदारी तो रहती ही ह।

सकुचित स्वाथ के साथ ही कुछ ऐसे और कारण भी है जिनसे व्यापारिया की कठिनाइया बढने के साथ ही व्यापार के क्षेत्र मे कई अवाञ्छनीय दोष आ गये है। उनमे प्रधान कारण है—ऐसे लोगो के हाथो मे शासनाधिकारका रहना जो कदाचित अधिकाश ईमानदार होने पर भी व्यापार से सवथा अनभिज्ञ है जिनको जो काम आता नही, वे उस कामको ठीक नही कर सकते, चाहे वे अपने दूसरे काम मे बडे ही निपुण हो। व्यापारी पद्धति तथा व्यापारी मनोवत्तियो से तथा व्यापारी हानि लाभ से पूण परिचित न होने के कारण वे ऐसे काय कर बैठते हैं, जिनसे विभिन्न प्रकार की बहुत सी कठिनाइया और अस्त व्यस्तता उत्पन्न हो जाती ह। जैसे—व्यापारियो पर प्रतिबन्ध, वस्तुओ के मूल्य पर प्रतिबन्ध, यातायातपर प्रतिबन्ध, उत्पादन पर प्रतिब ध, परमिट से माल मिलना, आये दिन नये नये करो की वद्धि, अफसरी स्वभाव के अधिकारियो द्वारा उद्योगध धो का सचालन आदि। व्यापारी जब खुला निजी व्यापार करते ह, मूल्य तथा यातायत पर कोई प्रतिबन्ध नही होता, तब वे जिस प्रदेश मे माल अधिक होता है और सस्ता होता ह, वहा से खरीद कर उस प्रदेश मे पहुँचा कर बेचते हैं, जहा मालकी कमी ह और बहुत तेजी है। व्यापार ज्यादा हो, इसलिये वे थोडे नफे पर काम करते है, और चूँकि स्वय घाटे नफे के उत्तरदायो होते है अतएव माल सडने नही देते, उजडने नही देते, रेल पर पडा नही रहने देते, क्योकि उनको इससे कष्ट होता ह। परिणाम यह होता है कि अधिकता तथा यूनतावाले दोनो ही स्थानो मे वस्तुओ की कीमत प्राय समान-सी हो जाती ह, सबको सब चीजे मिल जाती है। काला बाजार न होने से व्यथ का लालच नही बढता और वस्तुओ के सग्रह की प्रवृत्ति तेजी और कमी मे ही हुआ करती है। उत्पादन पर प्रतिब ध न होने पर वह माल सहज हो जाता ह। पक्षा तर मे कण्टोल होते ही वस्तु भूमिगत हो जाती है और सहज ही कीमत बढ जाती ह। यह सब अनुभवहीन अधिकारका ही दुष्परिणाम ह।

इसी के साथ साथ सरकार की श्रमिको तथा कमचारियो के साथ बरती जानेवाली नीति भी दोषपूण है। महँगी के युग मे उ हे वेतन अच्छा अवश्य मिलना चाहिये, इसमें जरा भी दो मत नही हो सकते। पर उनमे काम न करके पैसे लेने की जो प्रवत्ति बढ रही है, यह

प्रत्यक्ष राष्ट्रकी हानि ह । इससे उत्पादन घटता ह, उत्पादित घटता ह, उत्पादित बस्तु का मूल्य बढता है, पू जी लगाने वालो को लाभ कम मिलता ह और श्रमिको मे अकमण्यता तथा आलस्य प्रमाद की आदत पड जाती ह, जो आगे चलकर उनके लिये तथा प्रकारा तर से देश के लिए बडी घातक होती है । सरकारको इन विषयो पर गहराई से विचार करना चाहिये । मेरी समझ से मूल्यो पर तथा यातायात पर कम से कम प्रतिब ध लगाये जायँ, उत्पादन पर प्रतिवन्ध न लगे, निजी उद्योगो पर प्रतिब व हटा दिये जायँ, व्यापारियो को बेरोकटोक प्रतियोगिता करने दिया जाय और माल चाहे जहा, भेजा लाया जा सके तो बहुत कुछ स तुलन ठीक हो सकता ह ।

इधर व्यापार सगठनो के राष्ट्रीयकरण या सरकारीकरण की बाते बहुत उठ रही है । प्रतिब ध तो जब तब लगाये ही जाते हैं, पर ध्यान देकर देखा जाय तो अबतक के अनुभव से यही सिद्ध होता ह कि उन्गोगध धो के क्षेत्र मे सरकार प्राय असफल हो रही है । रेलवे मे जो सदा ही नफा करती आयी ह, घाटे के दशन होने लगे है । यह खेदकी बात ह । यह काय कुशलताका लक्षण नही है । सरकारी उद्योगधन्वा मे घाटे के कारणो मे व्यक्तिगत नीच स्वाथ, बढी हुई चारी तो कारण ह ही, सचालन की त्रुटि भी एक प्रधान कारण ह । वस्तुत सरकारी उद्योगध धो की स्थिति आज बडी शोचनीय है । कोई भी विचारशील निरपेक्ष पुरुष उस स्थिति से सतुष्ट नही हो सकता । सरकारी उद्योगधन्धो मे जितनी पू जी लगी ह उसके अनु पात से लाभ बहुत ही कम मिला ह, सभी प्रकारके खच की अधिकता ह, उत्पादन की कोई खास चि ता नही । अफसराना ढग के अधिकारियो का नुकसान मे अग नही कटता, इसीलिये वे उसमे लापरवाह रहते है । चीजे उजडती बिगडती है, उत्पादन नही होता । पर वे इससे दु खी नही होते, अवश्य ही अपने कागज कलमको वे ठीक रखते है । यह स्थिति ह । सरकारी कारखाने तभी सफल समझे जायँगे, जब उनमे लगी हुई पूँजी देश को बदले मे पूरा लाभ देगी और तभी उनकी प्रशसा भी होगी ।

अतएव सरकार को मेरी समझ से नये नये उद्योगो का राष्ट्रीयकरण न करके अथवा नये सरकारी उद्योगधन्धे न खोलकर पुराने चलाये हुये कामो को सम्भालना तथा उनकी त्रुटियो को दूर करके उ हे सफल बनाना चाहिये । और सरकार को उन्ही महत्त्वपूण कार्यों को करना चाहिये, जिन्हे सरकार ही भलीभाति कर सकती ह दूसरे नही । शेष उद्योग ध धो के सारे कार्या को निजी तौर पर करने के लिये स्वत त्र छोड देना चाहिये । जैसे पडोसी छोटे से देश जापान की सरकार देश के अथत त्र के विकास के लिये माग दशन करती हैं, सहकार करती ह, अथ सहयोग देती है, पर निजी कार्यो मे दखल नही देती । जापान मे उद्योगध धो का सरकारी क्षेत्र भारत की अपेक्षा बहुत ही सीमित है । इसी प्रकार यहा भी करना चाहिये ।

ईमानदारी घटने का एक प्रधान कारण 'जीवनस्तर ऊँचा करने का' आ दोलन भी ह। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगो मे देखादेखी अनावश्यक अभाव बढ गया, आदते बिगड गयी, जीवन खर्चीला हो गया, स्वय श्रम करने और काम सभालने की वत्ति घट गयी, आमोद-प्रमोद, छायाचित्र आदि के व्यसन बढ गये । इससे कुशिक्षा तथा असदाचार को प्रोत्साहन

मिला। शिक्षालयो की स्थिति बिगडी। अप्रौढ धमहीन शिक्षा मिली। फलत चरित्रहीन, सस्कारहीन जीवन का निर्माण होने लगा। उसीका दुष्परिणाम है—वर्तमान बढती हुई अराजकता, किसी का भी किसी भी व्यवस्था को न मानना और इसमे गौरव का अनुभव करना लूटपाट करना, राष्ट्रीय सम्पत्ति का नाश करना, तोड फोड करना, आग लगाना और दगाइ हिंसात्मक प्रवृत्तियो के लिये उत्साहित रहना। फलस्वरूप—बाजार मे अशान्ति, घर मे अशान्ति शिक्षालयो मे अशान्ति, सरकारी कार्यालयो मे अशान्ति, कारखानो मे अशान्ति—ऐसी सावत्रिक अशान्ति मे व्यापार कैसे पनपे ? वहा तो शान्ति चाहिये। फिर आये दिन व्यापारियो के प्रति सरकार के नये नये प्रतिबन्ध तथा कानूनो का आतङ्क, बैको की सहूलियत छिन जाने की आशङ्का, कम्यूनिस्टो का बढता हुआ भय तथा पडोसी देशो के द्वारा आक्रमण की तयारी और व्यापारियो की अपनी झूठी शान के लिये बढाये हुए अभावो की पूर्ति के हेतु नीच स्वाथ साधना की वत्ति, चोरी असत्य की बढती हुई आदते—वतमान व्यापारी जगत की यह दु स्थिति वस्तुत बडी ही भयानक ह।

इधर सरकार की बडी विचित्र 'विकास योजना' चल रही ह। उससे कुछ सुविधाएँ अवश्य हुई है, पर अब तक विकास के नाम पर जो कुछ हुआ ह, उसे 'विनाश' न भी कहे तो यह तो कहा ही जा सकता ह कि जो नैतिक विकास, समाज के लिये नित्य वाञ्छनीय ह वह तो नही हुआ। बल्कि इससे देश में नतिक और भौतिक दोनो ही प्रकार का दरिद्रता और निराशा की वृद्धि अधिकाश मे हुई ह। देश मे आज चारो ओर त्राहि त्राहि मची ह। करोडो नर नारी महगी की भयानक चक्की मे बुरी तरह पिसे जा रहे है। लोगो के नैतिक चरित्र का बुरी तरह पतन हुआ ह और अशान्ति बढी ह। कुछ समय पूव श्रीजयप्रकाशनारायणजी ने कहा था—

'विकास-योजना तो निष्फल गयी ही और लोगो मे सत्ता तथा धन प्राप्त करने की होड चली और अनुचित लाभ उठाने के लिये राजकीय पक्ष के ग्रामीण क्षेत्रो ने पहुँचकर गावो मे झगडने की जड रोप दी।'

इन विकास योजनाओ के लिये हमारी सरकार ने ऋण लेना स्वीकार किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत के पास अपनी पूँजी थी। अब बीस वर्षो मे जो ऋण बढा है उसके आकडे सभी को चौका देने वाले है।

सन् १९६७ ६८ के अन्त तक भारत पर ११,७२६ करोड ३१ लाख यानी १,१७,२६,३१,००,००० एक खरब सत्रह अरब छब्बीस करोड इकतीस लाख रुपये कज के देने होगे। सम्मा य श्रीमोरारजी भाई के कथनानुसार सन १९६७ के माच की ३१ तारीख को ४७,९७,७७ ००,००० सैतालीस अरब, सत्तानबे करोड सतहत्तर लाख रुपये केवल विदेशो का ऋण देना था। इसमे से इस वष मूल रकम की किश्त के १६७ ४९ करोड तथा व्याज पेटे १४१ ४७ करोड रुपये चुकाने पडेगे। श्रीमोरारजी भाई की गणना के अनुसार आगामी सन २०१७ के माच की ३१ तारीख तक पचास वर्षो मे अन्तिम किश्त चुकायी जा सकेगी।

यह सभी जानते है कि व्यक्ति हो चाहे राष्ट्र, बहुत अधिक ऋण बढ जाने से आर्थिक स्थिति बडी कमजोर हो जाती है, साख घटती है, सिर नीचा होता है और उसका बुरा प्रभाव

सभी क्षेत्रो पर पडता है। फिर एक बुरी आदत पड जाती है। जब तक ऋण मिलता है, तब तक ऋण लेकर ही सब काम बडी शान से करने का मन रहता ह। फिर वह चाहे हमारी सरकार की भाति नया उद्योगधन्धा हो या भूखे पेट मे दाने डालने के लिये अनाज का प्रयोजन हो, शासन सुदढ बनाना हो या युद्धसामग्री का निमाण या सग्रह करना हो, हवाई विमानो, समुद्री जहाजो या रेलो का सुधार निर्माण हो या सडके नहरे आदि निकालना हो—एक दूसरे प्रदेशो मे, विभागो मे शासन तथा व्यक्तियो मे इसके लिये प्रतिद्वद्विता और आग्रह दुराग्रह चलते है। भगवत्कृपा से उत्पादन बढ जाय, यथाथरूप मे विकास हो, तब तो किसी तरह काम चल जाता ह, पर कही दुर्भाग्यवश ऐसा न हो तो फिर बढा हुआ कज राष्ट्र के सम्मान तथा गौरव को नष्ट करने मे कारण बनता ह। भगवान ही जाने देश का क्या होनेवाला ह ?

इसमे जो कुछ भी कहा गया ह, वह किसी दूसरे की आलोचना नही है। अपने द्वारा अपनी ही स्थिति का दिग्दशन मात्र ह, क्योकि हम ही व्यापारी है, हम ही सरकार ह, हम ही मालिक ह, हम ही मजदूर ह। सब एक ही शरीर के विभि न अङ्ग है।

भगवान हम सबको सदबुद्धि दे। सरकारी अधिकारी, व्यापारी सभी व्यक्तिगत सकुचित स्वाथ को छोडकर देश तथा राष्ट्र का हित सोचे तथा धमसम्मत सवहितकारक अर्थोपाजन एव अथतन्त्र का सचालन करे तो सभी का कल्याण हो सकता है। जब से समझे, तभी से मङ्गल।



अर्थशास्त्र और नैतिक मूल्य

जे० एस० माथुर

आज के युग मे, जब कि प्रत्येक व्यक्ति भौतिक सुख एव कल्याण के ही सदभ मे सोचता है, विकास एव प्रगति के आर्थिकेतर पक्षो पर विचार करना विरोधाभास प्रतीत होगा। परन्तु आज विश्व ऐसी स्थिति मे पहुँच गया ह कि मानवजाति के ममक्ष विशुद्ध आर्थिक स्वार्थो एव प्रेरणाओ के कारण उपस्थित गभीर सकटो पर विचार करना अनिवाय हो गया ह। इस कथन मे कोई अत्युक्ति नही होगी कि यदि समाज के लिय अपरिहाय आर्थिकेतर मूल्यो की उपेक्षा की गई तो वतमान आर्थिक ढाचा भी अधिक समय तक कायम नही रह सकेगा। इन्ही सकटो के प्रति हमे आगाह करते हुये बर्ट्रेण्ड रसेल ने कहा था—"मैं नही जानता कि हमारी विपत्ति मे कौन सी विभीषिकाएँ होगी लेकिन इसमे कोई सदेह नही कि यदि कोई आमूल परिवतनकारी कदम नही उटाया गया तो विज्ञानोमुख मानव जाति का विनाश निश्चित है। आज की दुनिया मे विनाश का एक सक्रिय एव प्रभावी सकल्प काय कर रहा है जो आज तक हर विपत्ति मे विवेक पर विजयी रहा ह। यदि हमे जीवित रहना ह तो इस स्थिति को रोकना आवश्यक ह।"[1] अल्बट स्वेत्जर का कथन है, "अब यह प्रत्येक व्यक्ति को सुस्पष्ट हो गया है कि सभ्यता का आत्मघात प्रगति पर ह। इसमे जो कुछ अवशिष्ट रह गया है, वह भी अधिक सुरक्षित नही ह। यह अभी भी अवशिष्ट है, केवल इसलिये कि यह उन विध्वसकारी शक्तियो के दबाव से बच गया जिनसे अय और भाग अभिभूत हो गए, परतु उसी की भाति यह भी रेत पर टिका ह और कोई अगला शैलपात, बहुत कुछ सभव ह, इसे भी बहा ले जाय।[2]

मानवका पर यह सकट इसलिये आ पडा है कि वतमान आर्थिक ढाचा ही मानवीय मूल प्रवत्तियो को भ्रान्त धारणा को अनुचित महत्त्व देता है और मिथ्या मूल्यो का आग्रह करता ह। आज के आर्थिक जीवन की मौलिक मान्यता ही है, आकाक्षाओ मे अनियत्रित वद्धि और परिणामस्वरूप इन अतोषणीय आकाक्षाओ की सतुष्टि के लिये अधिकाधिक प्रयत्न। अथशास्त्री आकाक्षाओ की अतोषणीयता को प्रगति का एक माध्यम मानते है। वास्तव मे व्यक्ति का मूल्याकन उसके गुणो से नही अपितु उसकी भौतिक सम्पन्नता एव प्रभाव से किया जाता ह। "विगत दो शताब्दियो मे यत्रो के प्रसार के साथ साथ आवश्यकता—वद्धि का मत भी फैला। उदयोगो का लक्ष्य केवल उत्पादन वृद्धि एव उत्पादन की वस्तुओ मे विविधता लाना ही नही रहा, बल्कि उनका प्रयोग वस्तुओ की माग बढाने के लिये भी किया गया। हम आवश्यकतामूलक अथ व्यवस्था से अभिग्रहणमूलक अथ व्यवस्था मे आ गए।'[3] अभिग्रह-

१ हैज मैन ए फ्यूचर, पृ० ३६ ३७

२ डिके एण्ड रेस्टीरेशन आव सिविलाइजेशन, पृ० १६

३ ल्युइस ममफोड-कोटेड बाई हेरिस ब्राउन दि चैलेन्ज आफ मन्स फ्यूचर, पृ० १८७

णमूलक अथ व्यवस्था ही आज सवमा य प्रतीत होती ह। राजा मोदास को भी कुछ ऐसी ही आकाक्षा थी पर तु उसे उसका क्या फल भोगना पडा, यह हम सब को भली भाति मालूम ह। आज के समाज का भी वही हाल ह। आधुनिक मानव की कल्पना का स्वग सम्भवत एक ऐसा विभागीय भण्डार होगा जिसमे नित्य नई वस्तुएँ आती रहे और जिसमे हर मनचाही वस्तु को प्राप्त करने के लिये प्रचुर धनराशि हो। हमारी उत्पादन प्रणाली प्रतिदिन नई आवश्यकताओ को ज म देती रहती ह और उनकी सतुष्टि के नये नये साधन भी प्रस्तुत करती जाती ह। उत्पादन एव उपभोग स्वय मे ही साध्य बन गए हैं।

"अधिक उत्पादन ही क्यो ?" और "तरह तरह की वस्तुओ की जरूरत ही किस लिए ?' —इन प्रश्नो पर कोई विचार ही नही करता।

एक ऐसे समाज मे, जिसमे सामाजिक स्तर और प्रतिष्ठा वस्तुओ के स्वामित्व और उपयोग के लिये प्रतियोगिता चलती रहे स्वभावत किसी भी व्यक्ति की सम्पत्ति की तष्णा शायद ही शा त की जा सकती ह। स्पष्टत सम्पत्ति की सावजनीन तष्णा की शाति का प्रश्न ही नही उठता। सम्पत्ति का कितना भी समान व्यापक एव उचित वितरण क्यो न किया जाय, सामुदायिक सम्पत्ति की कितनी ही वद्धि क्यो न हो जाय, पर यह तष्णा जिसके मूल मे दूसरो के सम्पत्ति के स्वामित्व मे अतिक्रमण कर जाने की भावना विद्यमान है, शा त नही हो सकती। किसी निणायक उपलब्धि का कोई प्रयास ही सम्भव नही ह क्योकि यह सघष वास्तव मे प्रतिष्ठा की एक होड है जो ईर्ष्या पर आधारित है।"[1]

भौतिक सम्प नता के विभिन्न पागल प्रयासो के कारण उत्पादन प्रणाली ऐसी हो गई है जिसमे मशीनी सस्कृति का प्रभुत्व ह। उत्पादन उत्तरोत्तर जटिल, यात्रिक और केद्रित होता जा रहा ह। परिणामस्वरूप प्राकृतिक साधनो का दुरुपयोग हो रहा ह। शक्ति के अपूरणीय स्रोतो का द्रुतगति से शोषण किया जा रहा है तथा उनके स्थान पर नवीनतर स्रोतो की खोज की जा रही ह। शक्ति के साधन के रूप मे कोयले का स्थान पहले भाप और उसके बाद विद्युत ने ले लिया। आज जैसे जैसे शक्ति के पुराने स्रोतो का क्षरण होता जा रहा है नए नए स्रोत खोजे जा रहे हैं।

"छोटी से छोटी यात्रिक क्रिया भी जितनी शक्ति उत्पन्न नही करती उत्प न नही उससे अधिक शक्ति खच करती हैं, फिर इन सब क्रियाओ मे खच होने वाली शक्ति सम्मिलित रूप से कैसे बहुलता प्रदान कर सकती ह। तकनीकी विकास से सम्प नता असम्भव हैं। वस्तुत होता यह ह कि उपयोग शनै शनै हमेशा बढता ही जाता ह। यह एक नशस बर्बादी है जिसका कोई दूसरा उदाहरण नही है। साधनो की अधिकाधिक बबादी वतमान तकनीक की विशेषता है। इस बरबादी से ही इसका अस्तित्व और प्रसार सम्भव ह।"[2] यही कारण है कि तकनीक से अत मे प्राकृतिक साधनो की समाप्ति एव मानव जाति की निधनता ही हाथ लगती है। "यह निधनता तकनीकी प्रयत्नो से दूर नही की जा सकती। यह तो स्वय

१ वेबलेन—दि थियोरी आफ लेजर क्लास, पृ० ३२।

२ दि फेल्योर आफ टेक्नालाजी, पृ० २०।

तकनीक मे ही अतर्निहित ह । यह तकनीक औद्योगिक युग के साथ ही आगे वढी ह और अ त तक बढती ही रहेगी । [1]

साधना की समाप्ति के फलस्वरूप सगठन का उत्तरात्तर वज्ञानिक पुनगठन भी हुआ ह । और व्यक्ति का नियत्रण इसी उद्देश्य स खास तौर पर प्रशिक्षित विशेपज्ञो के हाथ मे आ गया ह । "और जसे जसे नियत्रता बढती ह, सगठन का व्यक्ति पर दबाव बढता जाता ह, क्योकि यह अपेक्षाकृत अधिक आवश्यक हो जाता ह कि उसे अ तिम बूद तक निचोड लिया जाय । यह निदयता मनुष्य की प्रत्येक क्रिया मे लक्षित होती ह । ऐसी दशा अवरुद्ध नगरो, देशो और पोतो मे जिनकी रसद कम हो रही हो, दिखाई पडती ह ।'[2] औद्योगिक सगठना मे ऐसे कमचारिया की सख्या लगातार तेजो स बढ रही ह जो पूणतया अनुत्पादक है । "यदि आज अ वेषको का आवाहन किया जा रहा ह और उन्हे अपनी प्रतिभा का प्रमाण देने, आगे बढने और अधिक तेजी से उत्पादन बढाने के लिये प्रोत्साहित किया जा रहा ह तो इसका उद्देश्य यही ह कि भूमि के शाषण के साधना के वज्ञानिकीकरण द्वारा भूमि का अधिकाधिक शोषण किया जाय ।"[3]

बढते हुए सगठन तथा उसको पूणता के कारण शोपण के नए माध्यम स्थापित हो गए ह । यहा तक कि समाजवादी देशो मे भी विशेषज्ञ दूसरो पर नियत्रण का अधिकार प्राप्त कर लेता ह और उसका यह अधिकार बढता ही रहता ह । वज्ञानिक प्रगति से उत्पन्न सगठन को कठोरता का यह अवश्यम्भावी परिणाम होता है । यह अनुत्तरदायी और परोक्ष सत्ता शक्ति बनने मे प्रवृत्त होता ह । अधिकारियो की यह निरकुशता बढते हुए सगठन का सर्वाधिक दुष्परिणाम ह । और यदि वैज्ञानिक समाज कुछ दफ्तरशाही की उद्धत नौकरशाही को बर्दाश्त करने के लिये कतई नही तैयार है तो इससे बचाव का उपाय अत्य त आवश्यक ह ।"[4]

ऐसी सामाजिक आर्थिक व्यवस्था मे व्यक्ति अपने को खोया हुआ और अकेला महसूस करता ह । लोक प्रत्यायन किवा सम्मोहन के साधनो के माध्यम से हम अधिकाश जनता को यह समझाने मे सयुक्त हो गए है कि उनके कल्याण का सर्वोत्तम निणय सत्तारूढ व्यक्तियो द्वारा ही किया जा सकता ह । दो तीन पीढिया से असख्य व्यक्ति श्रमिको के रूप मे जी रहे है, मानव के रूप मे नही । तकनीकी प्रगति के साथ साथ असहायता और असुरक्षा की भावना भी बढती जा रही ह । अनवरत एव द्रुत परिवतन ने इस भावना मे वद्धि की ह, इस को तीव्र तर किया है । प्रविधिज्ञो के प्रयत्नो से मानव जीवन का प्रयोजन जितना सीमित हुआ ह आध्यात्मिक शून्यता या रिक्तता की भावना उतनी ही बढी ह । और इस प्रकार शू यता ज म सत्रास प्रविधिज्ञ दुनिया की सष्टि का अग ह । यह सत्रास मानव चेतना मे विविध रूपो मे

१ दि फेल्योर ऑफ टेक्नालाजी, प० १३ ।
२ वही प० १७ ।
३ वही प० ८३ ।
४ रसेल दि इम्पैक्ट आफ साइस आन सोसाईटी, प० ७२ ।

णमूलक अथ व्यवस्था ही आज सवमा य प्रतीत होती ह। राजा मोदास को भी कुछ ऐसी ही आकाक्षा थी पर तु उसे उसका क्या फल भोगना पडा, यह हम सब को भली भाति मालूम ह। आज के समाज का भी वही हाल ह। आधुनिक मानव की कल्पना का स्वग सम्भवत एक ऐसा विभागीय भण्डार हागा जिसमे नित्य नई वस्तुएँ आती रहे ओर जिसमे हर मनचाही वस्तु को प्राप्त करने के लिये प्रचुर धनराशि हो। हमारी उत्पादन प्रणाली प्रतिदिन नई आवश्यकताओ को ज म देती रहती ह और उनकी सतुष्टि के नये नये साधन भी प्रस्तुत करती जाती ह। उत्पादन एव उपभोग स्वय मे ही साध्य बन गए हैं।

"अधिक उत्पादन ही क्यो ? और "तरह तरह की वस्तुओ की जरूरत ही किस लिए ?' —इन प्रश्नो पर कोई विचार ही नही करता।

एक ऐसे समाज मे, जिसमे सामाजिक स्तर और प्रतिष्ठा वस्तुओ के स्वामित्व और उपयोग के लिये प्रतियोगिता चलती रहे स्वभावत किसी भी व्यक्ति की सम्पत्ति को तष्णा शायद ही शा त की जा सकती ह। स्पष्टत सम्पत्ति की सावजनीन तष्णा की शाति का प्रश्न ही नही उठता। मम्पत्ति का कितना भी समान व्यापक एव उचित वितरण क्यो न किया जाय, सामुदायिक सम्पत्ति की कितनी ही वद्धि क्यो न हो जाय, पर यह तष्णा जिसके मूल मे दूसरो के सम्पत्ति के स्वामित्व मे अतिक्रमण कर जाने की भावना विद्यमान है, शा त नही हो सकती। किसी निर्णायक उपलब्धि का कोई प्रयास ही सम्भव नही है क्योकि यह सघष वास्तव मे प्रतिष्ठा की एक होड है जो ईर्ष्या पर आधारित है।"[1]

भौतिक सम्प नता के विभिन्न पागल प्रयासो के कारण उत्पादन प्रणाली ऐसी हो गई है जिसमे मशीनी सस्कृति का प्रभुत्व ह। उत्पादन उत्तरोत्तर जटिल, यात्रिक और केद्रित होता जा रहा है। परिणामस्वरूप प्राकृतिक साधनो का दुरुपयोग हो रहा ह। शक्ति के अपूर णीय स्रोतो का द्रुतगति से शोषण किया जा रहा है तथा उनके स्थान पर नवीनतर स्रोतो की खोज की जा रही ह। शक्ति के साधन के रूप मे कोयले का स्थान पहले भाप और उसके बाद विद्युत ने ले लिया। आज जैसे जैसे शक्ति के पुराने स्रोतो का क्षरण होता जा रहा है नए-नए स्रोत खोजे जा रहे है।

"छोटी से छोटी यात्रिक क्रिया भी जितनी शक्ति उत्पन्न नही करती उत्प न नही उससे अधिक शक्ति खच करती है, फिर इन सब क्रियाओ मे खच होने वाली शक्ति सम्मिलित रूप से कैसे बहुलता प्रदान कर सकती ह। तकनीकी विकास से सम्प नता असम्भव है। वस्तुत होता यह है कि उपयोग शनै शनै हमेशा बढता ही जाता ह। यह एक नशस बर्बादी है जिसका कोई दूसरा उदाहरण नही है। साधनो की अधिकाधिक बर्बादी वतमान तकनीक की विशेषता ह। इस बरबादी से ही इसका अस्तित्व और प्रसार सम्भव ह।"[2] यही कारण है कि तकनीक से अत मे प्राकृतिक साधनो की समाप्ति एव मानव जाति की निधनता ही हाथ लगती है। "यह निधनता तकनीकी प्रयत्नो से दूर नही की जा सकती। यह तो स्वय

१ वेबलेन—दि थियोरी आफ लेजर क्लास, प० ३२।

२ दि फेल्योर ऑफ़ टेक्नालाजी, पृ० २०।

तकनीक मे ही अतर्निहित ह । यह तकनीक औद्योगिक युग के साथ ही आगे बढी ह और अ त तक बढती ही रहेगी ।[1]

साधनो की समाप्ति क फलस्वरूप सगठन का उत्तरात्तर वज्ञानिक पुनगठन भी हुआ ह । और व्यक्ति का नियत्रण इसी उद्देश्य स खास तौर पर प्रशिक्षित विशेषज्ञो के हाथ मे आ गया ह । 'और जसे जसे निधनता बढती ह सगठन का व्यक्ति पर दबाव बढता जाता ह क्योकि यह अपक्षाकृत अधिक आवश्यक हो जाता ह कि उसे अ तिम बूँद तक निचोड लिया जाय । यह निदयता मनुष्य की प्रत्येक क्रिया मे लक्षित होती ह । ऐसी दशा अवरुद्ध नगरो, देशो और पोतो मे जिनकी रसद कम हो रही हो, दिखाई पडती ह ।'[2] औद्योगिक सगठनो मे ऐसे कमचारिया की सरया लगातार तेजो से बढ रही ह जो पूणतया अनुत्पादक है । "यदि आज अन्वेषको का आवाहन किया जा रहा ह आर उन्हे अपनी प्रतिभा का प्रमाण देने, आगे बढने और अधिक तेजी से उत्पादन बढाने के लिये प्रोत्साहित किया जा रहा है तो इसका उद्देश्य यही ह कि भूमि के शाषण के साधना के वज्ञानिकीकरण द्वारा भूमि का अधिकाधिक शोषण किया जाय ।"[3]

बढते हुए सगठन तथा उसकी पूणता के कारण शाषण के नए माध्यम स्थापित हो गए ह । यहा तक कि समाजवादी देशो मे भी विशेषज्ञ दूसरो पर नियत्रण का अधिकार प्राप्त कर लेता ह और उसका यह अधिकार बढता ही रहता ह । वज्ञानिक प्रगति से उत्पन्न सगठन को कठोरता का यह अवश्यम्भावी परिणाम होता ह । यह अनुत्तरदायी और परोक्ष सत्ता शक्ति बनने मे प्रवृत्त होता ह । अधिकारियो की यह निरकुशता बढते हुए सगठन का सर्वाधिक दुष्परिणाम ह । और यदि वैज्ञानिक समाज कुछ दफ्तरशाही की उद्धत नौकरशाही को बर्दाश्त करने के लिये कतई नही तैयार है तो इससे बचाव का उपाय अत्य त आवश्यक ह ।"[4]

ऐसी सामाजिक आर्थिक व्यवस्था मे व्यक्ति अपने को खोया हुआ और अकेला महसूस करता है । लोक प्रत्यायन किंवा सम्मोहन के साधनो के माध्यम से हम अधिकाश जनता को यह समझाने मे सयुक्त हो गए है कि उनके कल्याण का सर्वोत्तम निणय सत्तारूढ व्यक्तियो द्वारा ही किया जा सकता ह । दो तीन पीढिया से असरय व्यक्ति श्रमिको के रूप मे जी रहे है, मानव के रूप मे नही । तकनीकी प्रगति के साथ साथ असहायता और असुरक्षा की भावना भी बढती जा रही ह । अनवरत एव द्रुत परिवतन ने इस भावना मे वद्धि की है, इस को तीव्र तर किया है । प्रविधिज्ञो के प्रयत्नो से मानव जीवन का प्रयोजन जितना सीमित हुआ है आध्यात्मिक शून्यता या रिक्तता की भावना उतनी ही बढी है । और इस प्रकार शू यता ज म सत्रास प्रविधिज्ञ दुनिया की सष्टि का अग ह । यह सत्रास मानव चेतना मे विविध रूपो मे

१ दि फेल्योर ऑफ टेक्नालाजी, पृ० १३ ।
२ वही पृ० १७ ।
३ वही पृ० ८३ ।
४ रसेल दि इम्पैक्ट ऑफ साइस आन सोसाईटी, पृ० ७२ ।

समाविष्ट हो जाता ह—ऊब, विषाद, असारता, उददेश्य विहीनता घबराहट और बेचनी की अनुभूतियो के रूप मे।"[१]

इस दष्टिकोण ने प्रत्येक व्यक्ति का अत्य त स्वार्थी एव आत्मकेन्द्रित बना दिया है। उसे दूसरो की समस्याओ की कोई फिक्र हा नही। और वह कभो एक क्षण के लिये भी विचार नही करता कि उसके कार्या का समाज के अ य सदस्या पर क्या प्रभाव पडता ह। एक सामा य अमरीकी नागरिक की प्रवत्तियो का वणन करत हुये एक विख्यात समाजशास्त्री ने कहा—"आज का सामा य अमरीकी नागरिक प्राय निजी समस्याओ से ही सम्बन्ध रखता है। सम्बन्ध रखने से मेरा तात्पय ह कि नागरिक उस समस्या के विषय मे केवल चर्चा करने तक ही सीमित न रहे अपितु कभी कभी उसकी नीद भी हराम हो जाय। स्वास्थ्य, सम्पत्ति एव परिवार से सम्बन्धित समस्याओ से तो उसकी नीद हराम हो जाती है पर सामाजिक समस्याओ से उसकी नीद नही हराम होती, क्योकि वह सामाजिक महत्त्व के अनुभवो एव दूसरो से सम्पक को अपने जीवन का अग नही समझता। वह तो अपने ही स्वाथ से मतलब रखने वाला समाजनिरपेक्ष व्यक्ति ह।" "देश के भीतर और बाहर सवत्र, समाज ऐसे वर्गो मे बँटता जा रहा ह जिनमे एक दूसरे के प्रति विदवेष निर तर बढता जा रहा ह। सहयोग का स्थान अविवेकजन्य घणा लेती जा रही ह इतिहास की अनेक शक्तिशाली सभ्यताओ के पतन की यह पूव पीठिका रही ह। ऐसा सोचने का कोई कारण नही ह कि हमारी नियति इससे भि न होगी, जब तक कि हम समस्या को स्पष्ट रूप से नही कहते और आज के सामाजिक, वैयक्तिक एव शक्षिक क्षेत्र मे पाये जाने वाले विशिष्ट वग (इलाईट) स उत्कृष्ट वग विकसित करने का प्रयत्न नही करते। सामाजिक जीवन प्राणीजीवन से कम से कम एक माने मे समानता रखता ह वह यह कि जब सामा य विकास अवरुद्ध हो जाता ह तब वैकारिक प्रक्रिया आरम्भ हो जाती ह। यह सौहाद या सहिष्णुता से अविश्वास तक का छोटा कदम ही है जहा से सामा य सामाजिक सम्ब ध शिथिल होते है।"[२]

इस प्रकार यह स्पष्ट ह कि आत्मकेन्द्रितता, तथा समाज (जिसके हम अभिन्न अग है) की चि ता के अभाव से समाज जीवित नही रह सकता। इससे गम्भीर अव्यवस्था उत्पन्न हो जाने की आशका ह। अस्तु। किसी बाह्य एजेसी की आवश्यकता ह जो उन मा यताओ पर नियत्रण रक्खे जो आज असख्य लोगो को प्रेरणा प्रदान कर रही ह। समूह मे हम 'कल्याण' 'समता' समदष्टि' 'निष्पक्षता' आदि के आधार पर सोचते ह। पर तु ऐसे आ दोलनो को स्वत बहुत थोडी या नगण्य गति मिल पाती है क्योकि वयक्तिक मूल्यो एव विशिष्टताओ तथा सामुदायिक या वर्गीय प्रतिमानो एव मानदडो मे स्वाभाविक अर्तविरोध ह। चूँकि व्यक्ति दूसरो के हितो का ध्यान रखने का अभ्यस्त नही है इसलिये सरकार या राज्य के रूप मे किसी बाह्य सवशक्तिमान सत्ता को सामुदायिक कल्याण की व्यवस्था करनी पडती ह। गैसेट दसे 'यूरोपीय सभ्यता के लिये गम्भीरतम खतरा 'मानते हुये कहते है—"इसका उदगम स्वय सस्कृति मे ही ह, किंच यह उसकी महिमा का एक अग ह।'[३] इसी क्रम मे वे कहते हं,

१ वही, फ्युचर आफ टेक्नालाजी, प० १३१।

२ इरिक फ्राम्म—फ्रीडम इन वक सिचुएशन, प० ६–७।

३ मेयो, स्पेशल प्राब्लमस आफ एन इण्डस्ट्रियल सिविलाइजेशन, प० ११९।

"हमारे युग मे राज्य एक जटिल यत्र बन गया ह। जो आश्चयजनक ढग से काय करता ह और जिसकी कुशलता भी साधनो के गुण एव सूक्ष्मता के कारण आश्चय जनक ह। एक बार समाज मे उसकी स्थापना हो जाने पर उसके बहुत यत्रों को चलित होने एव इस प्रकार समाज के किसी भी अग पर व्यापक प्रभाव डालने के लिए एक बटन दबाने को ही देरी रह जाती है।'[२] राज्य का हस्तक्षेप आज की सभ्यता के समक्ष उपस्थित गभीरतम खतरो मे से अ यतम ह। वास्तव मे अब ऐसा समय आ गया है जब कि समाज का अस्तित्व राज्य के लिये होगा और मनुष्य का शासन तत्र के लिपे। गाधीजी ने कहा था—"राज्य शक्ति की वद्धि को मै सर्वाधिक भय की दष्टि से देखता हूँ क्योकि बाह्य रूप से शोषण को कम करके भलाई करती हुई भी वह शक्ति वैयक्तिकता को जो कि प्रत्येक प्रगति के मूल मे है समाप्त करके मानवता का सबसे बडा अहित करती है।"[३] उनकी दष्टि मे राज्य सगठित एव केद्रित हिसा का प्रतीक ह। इन प्रवत्तियो ने, जो कि आज सभ्यता के लिये आतक बनी हुई ह, गम्भीरचेता विचारको को वतमान समाज के भविष्य के प्रति सशयालु बना दिया ह। हमे लाड रसेल की चेतावनी पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि "सम्भवत हम मानवता के अतिम चरण मे रह रहे है और यदि ऐसा ह, तो उसके बिनाश का दायित्व विज्ञान पर ही होगा।"[४]

इसलिए गाधीजी ने इसे बात की हिमायत की कि हम अपनी आवश्यकताओ को अन त सीमा तक बढाने की प्रवृत्ति का स्वेच्छया नियमन करे उ होने कहा—"हमारी सभ्यता-हमारी सस्कृति, हमारा स्वराज्य अपनी आवश्यकताओ के परिसीमन या आत्म निग्रह पर निर्भर हो, न कि उनकी वद्धि या आत्मरति पर।"[५] अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए उ होने बाइबिल का यह उदाहरण प्रस्तुत किया—"धनवान के लिए प्रभु के साम्राज्य मे प्रवेश पाना कितना दुष्कर होगा। एक ऊँट का सुई छेद से निकलता एक धनवान के प्रभु के साम्राज्य मे प्रवेश पाने की बनिस्बत कही आसान होगा।" मनुष्य का सुख सतोष मे ही निहित है। जिसे सतोष नही ह, वह चाहे जितना धन रक्खे पर अपनी इच्छाओ का दास ही रहेगा। यह कहना निरा पागलपन होगा कि विश्व के हर व्यक्ति को यूनतम परिश्रम से उच्चतम सम्भव जीवन स्तर प्राप्त हो। किसी भी समाज का समष्टिरूप से विलासपूण जीवनयापन एक असम्भव कल्पना ह और जब कि बिलासिता की कोई सीमा ही नही है।तो हम कहाँ जाकर रुकेगे। इसलिए हमे अपनी आवश्यकताओ के नियमन के सदभ मे सोचना चाहिए। ' एक सीमा तक भौमिक सुविधा आवश्यक ह लेकिन उसके बाद यह साधक न रह कर बाधा बन जाती ह। अतएव असीमित सख्या मे आकाक्षाओ को उत्पन्न और सन्तुष्ट करते जाने का आदश मात्र प्रवचना एव भ्रमजाल ह। इसके पहिले कि उसको परिणति शारीरिक एव बौद्धिक

१ गैसेट—दि रिवोल्ट आफ दि मासेस, प० ८५
२ ,, वही , पृ० ८७
३ मैथस—इका० थाट पृ० ५२९
४ इम्पैक्ट—आफ साइस आन सोसाइटी, प० १२७
५ इका० थाटस प० ५२७

ऐयाशी मे हो जाय मनुष्य की सभी शारीरिक और बौद्धिक आवश्यकताओ की स तुष्टि का एक सीमा पर विराम हो जाना चाहिए। मनष्य को अपनी समस्त भौतिक एव सास्कृतिक परिस्थितियो को इस ढग से व्यवस्थित करना चाहिये कि वे मानवता को सेवा मे, जिस पर उसको सभी शक्तिया केन्द्रित हो बाधा न उपस्थित कर सक।"[१]

नही, हमे एक कदम और आगे जाना चाहिए और सभी प्राणिया—केवल मनुष्यो ही नही—और निर्जीव वस्तुओ मे भी तादात्म्य स्थापित कर लेना चाहिए।

इसका तात्यय हो सकता ह वतमान उत्पादन प्रणालो म आमूल परिवतन और इसके स्वरूप का और अपेक्षाकृत अधिक सरलीकरण। इसका तात्पय हो सकता ह तकनीको और उससे सम्बन्धित सभी चीजो का काफी हद तक परित्याग। लाड रसेल के अनुसार "यत्र की पूजा घृणित काय ह। पूजा की एक वस्तु के रूप मे यत्र शतान का आधुनिक स्वरूप ह और इसकी पूजा आधुनिक असुर पूजा।"[२] एक अ य समाजशास्त्री का कथन है— 'तकनीको के अद्यावधि निरकुश विकास पर कठोर नियत्रण का अथ ह—इसका ऐसा कठोर परिसोमन जा मनोरजन के कारखानो मे हर घटे निर्मित कृत्रिम सवेगो एव आनन्दो से मतवाले ही नही अपितु शक्ति एव बाह्य अन्तरिक्ष पर विजय का स्वप्न देखने वाले युग से लगभग जगली स यास को अपेक्षा करता ह।"[३] इसी कारण गा धी जी चाहते थे कि भारत आर्थिक विकास को एक ऐसी प्रणाली अपनाए जो औद्योगीकरण को छोडकर गावो और कुटीरो का विकास कर सके। उनका विश्वास था कि "विश्व के साथ सुलह से रहकर और अपने सहस्रो कुटीरो का अभ्यु त्थान करके सरल परन्तु उदात्त जीवन व्यतीत करता हुआ स्वतत्र भारत विकासशील बिश्व के प्रति अपने कतव्यो का निर्वाह कर सकता है।"[४] उनके चरखे के सदेश को भी इसी परि-प्रेक्ष्य मे देखना चाहिये। 'चरखे का सदेश अपनी परिधि से अधिक यापक है। इसका सदेश सादगी, सेवा एव दूसरो को बिना कष्ट पहुँचाए जीने का सदेश है। व्यापक सदेश स्वाभावत सबके लिए होता ह।"[५] इसी तरह के ही मनोवेगा को व्यक्त करने हुए लाड रसेल ने कहा था— 'बात अपने मूल रूप मे इतनी सरल है कि प्रगल्भ दोष दर्शियो की उपहासपूण उपमाओ से स्वागत किए जाने के डर से मैं इसे कहने मे सकोच कर रहा हूँ। कृपया क्षमा कीजिएगा, मेरा तात्पय प्रेम—ईसाई प्रेम या करुणा—से है। यदि आप मे इसकी भावना है तो आपके पास अस्तित्व को एक प्रेरणा है, काय मे पथ प्रदशक है साहस का हेतु है और और ह बौद्धिक ईमानदारी का एक अनिवाय निमित्त। यदि आप मे इसकी भावना है तो आपके पास वह सब है जिसकी किसीको धमपथ पर आवश्यकता पड सकती है। यद्यपि आपको सुख न भी मिल सके परन्तु आपको इन लोगो की तरह निराशा का अनुभव नही करना पडेगा जिनका जीवन

१ इका० थाटस, प० ५८३

२ दि इम्पैक्ट आफ साइस आन सोसाइटी, प० १००

३ फ्यूचर आफ टेक्नालॉजी (बी० सी०)

४ इका० थाटस, (१९६६)

५ इका० थाटस (१९२७)

लक्ष्यविहीन और उददेश्यशून्य है, क्योकि आप मानबीय कष्ट की विशाल राशि को कम करने के लिये सदैव कुछ कर सकते है।"[1]

गाधीजी ने अपने आश्रम मे नेताआ को इन मूल्यो को अपनाने का प्रशिक्षण दिया। उनके आश्रम के सदस्यो के अवश्य पालनीय व्रत थे—अपरिग्रह ऐच्छिक निधनता और अहिंसा अर्थात सभी प्राणियो अपिच प्रकृति के प्रति प्रेम एव करुणा। यह प्रचलित एव अगीकृत मूल्यो के सवथा विपरीत है। "वस्तुत तार्किक सिद्धान्तो के प्रामाण्य और भाषा की सम्पूण बीभत्स स्पष्टता से युक्त पूण अमानवीय विचार हम लोगा मे प्रचलित है। एक ऐसी सामाजिक मनो वत्ति उत्पन्न कर दी गयी ह जो व्यक्ति मे मानवता को निरुत्साहित करती ह। असहानुभूति और अलगाव को—जिनका अपरिचितो के प्रति आजकल प्रत्येक प्रकार से स्पष्ट प्रदशन किया जाता है, अब सचमुच असभ्यता नही माना जाता बल्कि इन्हे कुशल एव अनुभवी व्यक्ति का व्यवहार स्वीकार कर लिया गया है। हमारा समाज प्रत्येक मानव को मानवीय मूल्य एव मर्यादा नही प्रदान कर पाया है। मानव जाति के अनेक वग मनुष्य के रूप मे मात्र उपादान बनकर रह गये है।"[2]

इन मूल्यो को धार्मिक या नतिक विचार कह कर ठुकराया जा सकता है लेकिन गाधी जी हम लोगो से भि न दष्टिकोण रखते थे। उन्होने कहा—"मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मै अथशास्त्र और नीतिशास्त्र मे कोई सूक्ष्म भेद नही मानता। जो अथशास्त्र किसी व्यक्ति या राष्ट्र के नैतिक स्वास्थ्य को क्षति पहुँचाना ह वह अनैतिक अतएव पापमय है।"[3] अल्वई स्वेत्जर भी इस मत से सहमत है कि नतिक प्रगति वह ह जो वास्तव मे सभ्यता के लिए सारवान हो। "जब तक हम सभ्यता के उस सतही दष्टिकोण से जिसने हमे दास बना रक्खा है, मुक्त नही हो जाते और स्वय को पुन नैतिकता के प्रति समर्पित नही कर देते तब तक एक स्थायी आधार पर सभ्यता को पुन प्रतिष्ठित करने मे सफल नही हो सकेगे।"[4] गाधीजी के शब्दो को पुन उदघृत करते हुये—"अथशास्त्र को उपयोगी सिद्ध होने के लिए धम और अध्यात्म तक सीमित होने मे सक्षम होना चाहिए।"[5]

एक विश्व समुदाय की स्थापना सम्भव ह जिसमे लोग सुख और सदभाव से रह सके। आज मानवता का भाग्य खतरे मे ह। हमे नए प्रशिक्षण की आवश्यकता ह ताकि स्वाथ, अज्ञान एव घणा को उदारता, ज्ञान और प्रेम के वशीभूत कर सके। "सभ्यता का नवोत्थान तभी सम्भव है जब कि यथेष्ट सख्या मे लोग प्रचलित मनोवत्ति से स्वतत्र बल्कि विपरीत मनोवृत्ति अपनाए जो सामुदायिक मनोवृत्ति पर धीरे धीरे हावी हो सके और अन्तत उसके स्वरूप का निश्चय करे। एक नैतिक आदोलन हौ वबरता को केचुल छुडाने मे समथ हो सकता है"[6]

१ इम्पैक्ट आफ साइस आन सोसाइटी, पृ० १४९
२ डिके एण्ड रेस्टोरेशन, पृ० ३२
३ इका० थाटस पृ० ५२९
४ डिके एण्ड रेस्टोरेशन, पृ० ६
५ इका० थाटस पृ० ८६
६ डिके एण्ड रेस्टोरेशन, पृ० ६८

हमे ऐसे व्यक्तियो को आवश्यकता है जो प्रवाह के विपरीत तैर सके । कोई भी समाज एक विद्रोही चेतना के अभाव मे प्रगतिशील नही हो सकता । आशा ह, बडी सख्या मे निष्ठावान व्यक्ति आगे बढेगे और गुरुदेव टैगोर के इस गीत से प्रेरणा लेगे—

यदि तीर डाक शुने केऊ न आसे तबे एकला चलो रे,
एकला चलो, एकला चलो, एकला चलो रे ।
यदि केऊ कथा न काय, ओरे, ओरे, ओ अभागा,
यदि सबाई थाके मुख फिराए, सबाई करे भय
तवे परान खुले,
ओ, तुई मुख फूटे तोर मनेर कथ एकला बोलो रे
यदि सबाई फिर जाय, ओरे ओरे औ अभागा,
यदि गहन पथे जावार काले केऊ फिरे न चाय
तवे पथेर काटा
ओ, तुई रक्त माखा चरन तले एकला दलो रे ।
यदि आलो न धरे ओरे ओ अभागा
यदि झड बादले आधार राते दुआर देय धरे
तबे वज्रानले,
आपन बुकेर पाजर ज्वालिये निए एकला जलो रे ।



कला और संस्कृति खण्ड

•

साधना के समर्थ उपाय के रूप मे संगीत

प्रेमलता शर्मा

भारतीय सगीत शास्त्र का यह वैशिष्ट्य ह कि उसके ग्र थो मे सगीत के लिए, विशेषत गीत के लिए अनेक ऐसे उल्लेख मिलते ह जिनमे आध्यात्मिक जीवन मे उसकी उपयोगिता का महत्त्व बताया गया ह। इन उल्लेखो का स्थूलरूप से निम्नलिखित शीषको मे रक्खा जा सकता ह —

१ नाद-प्रशसा

यथा— नादादभिव्यज्यते वण, पद वर्णात्पदाद वच ।
वचसो व्यवहारोऽय नादाधीनमतो जगत ॥
(स० र० १–२–२)

नाद से वण की, वण से पद की और पद से वचन (वाक्य) की अभिव्यक्ति होती ह। सब व्यवहार वाणी से ही चलता है, इसलिए जगत नाद के अधीन है।

२ नादोपासना की प्रशसा

यथा— नादोपासनया देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ।
भव त्युपासिता नून यस्मादेते तदात्मका ॥
(स० र० १–३–२)

नाद की उपासना से ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इन देवो की उपासना हो जाती है, क्योकि ये नादात्मक है यानी इनका स्वरूप नाद ह।

३ देवत्व की विभिन्न अभिव्यक्तियो मे गीत के प्रति प्रेम

यथा— गीतेन प्रीयते देव सवज्ञ पावतीपति ।
गोपीपतिरन तोऽपि वशध्वनिवशगत ॥
सामगीतिरतो ब्रह्मा वीणाऽऽसक्ता सरस्वती ॥
(स० र० १–१–२६, २७)

सवज्ञ देव पावतीपति गीत से प्रसन्न होते है, अनन्त भी वशी ध्वनि के वश मे है, ब्रह्मा सामगान मे रत ह और सरस्वती वीणा मे आसक्त है।

४ चारो-पुरुषार्थो की गीत मे साधकता

यथा— तस्य गीतस्य माहात्म्य क प्रशसितुम ईशते ।
धर्माथ - काम मोक्षाणामिदमेवैक साधनम ॥
(स० र० ४–१–३०)

गीत का माहात्म्य कौन कह सकता है ? धर्माथ काम मोक्ष का यही एक साधन है।

साधना के समर्थ उपाय के रूप मे संगीत

प्रेमलता शर्मा

भारतीय सगीत शास्त्र का यह वैशिष्टय ह कि उसके ग्र थो मे सगीत के लिए, विशेषत गीत के लिए अनेक ऐसे उल्लेख मिलते ह जिनमे आध्यात्मिक जीवन मे उसकी उपयोगिता का महत्त्व बताया गया ह। इन उल्लेखो का स्थूलरूप से निम्नलिखित शीपको मे रक्खा जा सकता ह —

१ नाद-प्रशसा

यथा— नादादभिव्यज्यते वण, पद वर्णात्पदाद वच ।
वचसो व्यवहारोऽय नादाधीनमतो जगत ।।
(स० र० १–२–२)

नाद से वण की, वण से पद की और पद से वचन (वाक्य) की अभिव्यक्ति होती ह। सब व्यवहार वाणी से ही चलता है, इसलिए जगत नाद के अधीन है।

२ नादोपासना की प्रशसा

यथा— नादोपासनया देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ।
भव त्युपासिता नून यस्मादेते तदात्मका ।।
(स० र० १–३–२)

नाद की उपासना से ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इन देवो की उपासना हो जाती ह, क्योकि ये नादात्मक है यानी इनका स्वरूप नाद ह।

३ देवत्व की विभिन्न अभिव्यक्तियो मे गीत के प्रति प्रेम

यथा— गीतेन प्रीयते देव सवज्ञ पावतीपति ।
गोपीपतिरन तोऽपि वशध्वनिवशगत ।।
सामगीतिरतो ब्रह्मा वीणाऽऽसक्ता सरस्वती ।।
(स० र० १–१–२६, २७)

सवज्ञ देव पावतीपति गीत से प्रसन्न होते है, अन त भी वशी ध्वनि के वश मे है, ब्रह्मा सामगान मे रत ह और सरस्वती वीणा मे आसक्त है।

४ चारो पुरुषार्थो की गीत मे साधकता

यथा— तस्य गीतस्य माहात्म्य क प्रशसितुम ईशते ।
धर्माथ - काम मोक्षाणामिदमेवैक साधनम ।।
(स० र० ४–१–३०)

गीत का माहात्म्य कौन कह सकता है ? धर्माथ काम मोक्ष का यही एक साधन है।

सगीत शास्त्र के ग्र थो के अतिरिक्त स्मति पुराण आदिको मे एव तत्सम्ब धी साहित्य मे सगीत के प्रशसात्मक अनेको वाक्य मिलते ह । उदाहरण के लिए--

वीणावादनतत्त्वज्ञ श्रुतिजातिविशारद ।
तालज्ञश्चा प्रयासेन मोक्षमाग निगच्छति ।।
गीतज्ञो यदि गीतेन नाप्नोति परम पदम ।
रुद्रस्यानुचरो भूत्वा तेनव सह मोदते ।।

(याज्ञ० स्मृति ३–४–११५, ११६)

जो वीणावादन के तत्त्व या सार को जानता है, जो श्रुतियो और जातिया (के प्रयोग) मे कुशल है, जो ताल का ज्ञाता ह, वह मोक्ष माग को प्राप्त होता ह । गीतज्ञ यदि गीत के द्वारा परम पद को प्राप्त नही होता तो वह रुद्र का अनुचर बन कर उनके सग मे आन द पाता रहता है ।

एक विरयात पौराणिक उक्ति इस प्रकार ह—

अचनादधिक ध्यान ध्यानात कोटिगुण जप ।
जापात् कोटिगुण गान गानात परतर नहि ।।

ध्यान पूजा से अधिक ह, जप ध्यान से अधिक ह, गान जप से अधिक है और गान से अधिक कुछ भी नही ह ।

ऊपर उद्धत वाक्यो से निम्नलिखित निष्कष निकल सकते है —

(१) सगीत न केवल उपासना और साधना का एक उपाय है, अपितु उत्कृष्ट उपाय है ।

(२) देवत्व की विभिन्न अभिव्यक्तिया (देव देवी) न केवल सगीत से प्रेम रखती है, अपितु उनकी सर्वोत्तम धारणा यही हो सकती है कि वे नादात्मक है ।

(३) सगीत की साधना के विभिन्न स्तर ह । उसके निम्न स्तरो मे धम, अथ, काम की प्राप्ति होती है और उच्च स्तर मे मोक्ष की ।

हम सगीत के माहात्म्य के इन तीनो पहलुओ को कुछ विस्तार से समझने का यत्न करेंगे और इस परम्परा की दाशनिक भित्ति का भी सधान पाना चाहेंगे । ये तीनो पहलू एक दूसरे से जुडे हुए ह । इसलिये इ हे पथक पथक रूप से लेना सभव नही होगा, किन्तु उपसहार मे इन तीनो के साथ पूरी बात को सबद्ध करने का यत्न किया जायगा ।

मौलिक सत्ता अथवा परम तत्त्व को ब्रह्म कहा जाता ह और वह निरपेक्ष, तर्कातीत तत्त्व है । यह सत्ता हमारे उच्चतम अनुभव मे 'अस्ति' (विशुद्ध विरुपाधिक सत्ता), 'भाति' (चित्) और 'प्रिय' (आन द) के रूप मे प्रकट होती है ।

'आन द' के प्रसग मे ब्रह्म को 'भूमन' और कभी कभी 'मधु' भी कहा जाता है । इस प्रकार वह आन दात्मक चैतन्य है —

योवै भूमा तत्सुखम । नाल्पे सुखमस्ति ।

(छान्दोग्य० ७ २३-१)

यह आन द अथवा रस सत्तामात्र की व्यापक पष्ठभूमि है। अन त आकाश अथवा असीम अणव की भाति यह आनन्द विश्व मे सभी सत्ताओ का आधार ह। इन दो उपमाओ मे आकाश विशेषत सत और चित के वणन मे उपयोगी ह और अणव विशेषत आन द का सूचक ह। वास्तव मे ये दो पहलू पथक नही किये जा सकने। आकाश नि स्पन्द अधिष्ठान का द्योतक ह और अणव मूलस्पन्द का। महामौन का मूलवाक मे अभिव्यक्त करता ह महानन्द जिसे ॐकार या प्राणब्रह्म भी कहा जाता ह। इस प्रकार ॐकार के रूप मे महानाद सृष्टि की प्रथम अभिव्यक्ति ह। इसका न लेवल सत और चित से अपितु आन द से सबध ह अर्थात यह तीनो की अभिव्यक्ति है। आन द का मूलस्प द से सीधा सबध ह और सत + चित उसका अधिष्ठान ह, इसलिये आनन्द को ही समग्र सृष्टि का उदगम स्थान, पोषक और विलय स्थान कहा जाता है।

आन द्राद ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आन देन
जातानि जीव ति। आनन्द प्रत्यभिसविशन्तीति।

(तैत्ति० ३ ६)

भूमा की प्रथम आत्माभिव्यक्ति है महानाद और भूमा तो रस अथवा आन द से अभिन्न ह। भूमा अथवा आन द उस मूलस्पन्द का समग्र स्वरूप है जिससे सष्टि का आरम्भ होता ह, जिस पर वह स्थित रहती है और जिसमे विलीन होती ह।

रस अथवा आन द समग्र सृष्टि का 'हृत (सारभूत के द्रबिन्दु) है। सगीत द्वारा इस 'हृत' तक पहुँचना सुगम हो सकता है क्योकि (१) यह नादात्मक ह, अत मूलस्पन्द अथवा महानाद के अनुभव का यह सुखद और सुगम माग हो सकता है। (२) स्थूल स्तर पर भी सगीत हष की स्वाभाविक और सावभौम अभि यक्ति के रूप मे सवमा य ह। हा, यह अवश्य है कि उपयुक्त अनुभूति के लिये उचित भाव मन और शरीर की शुद्धि तथा अनन्य लगन सवथा आवश्यक है।

सृष्टि के आरम्भ की बात यहा तक हुई। जहा तक सष्टि के विस्तार का प्रश्न है, उसके लिये यह उल्लेखनीय ह कि सष्टि का क्रम ऋजु, सम और अखण्ड नही है अपितु वह आवतनात्मक है जो तरग का, चक्र का अथवा सर्पिल कुण्डली का आकार धारण करता ह। उदाहरण के लिये बीज से वक्ष और वक्ष से पुन बीज यह एक चक्रिक क्रम ह। तदनुसार महानाद बीजरूप 'बि दु' बनता है और वही 'कला' के रूप मे उस बिन्दु की क्रमबद्ध अभि व्यक्ति भी बनता ह। अभी जिन तीन आकारो का हमने उल्लेख किया वे सभी सगीत मे स्पष्ट रूप से मिलते है। यथा ध्वनि तरगो से तरगवत क्रम, ताल से चक्रिक क्रम और स्वर अष्टको के सबध मे सर्पिल क्रम का सादश्य पाया जाता है।

सष्टि विकास के उपयुक्त क्रम के अनुसार महानाद अथवा परनाद अपने आपको सुषम छन्द (विविध होते हुए भी एकता के सूत्र से आबद्ध) के ढाचे मे अभिव्यक्त करता है। विविधता और एकता का यह समन्वय भारतीय सगीत के राग और ताल मे बहुत उत्कृष्ट रूप मे पाया जाता है।

रस अथवा आन द मूलत स्वसमाहित अवस्था का द्योतक ह जिसे 'स्वलसित' कहा जा सकता है। यही अपने आपको 'उल्लसित' अथवा त्रिलसित' बनाता ह। सगीत की भाषा मे बात करे तो ॐकार या परनाद स्वरसप्तक के रूप म अपनी अभिव्यक्ति करता ह। (प्राचीन सगीतशास्त्र मे मोलिक स्वरग्राम को षडजग्राम कहा गया ह और उसम षडज, ऋषभ, गान्धार का श्रुतिक्रम ४, ३, २ ह। यही श्रुतिक्रम प, ध, नि मे पुनरावर्तित होता ह। ये दोनो त्रिक समान है ओर दोनो के बीच मे जोडने वाली कडी के रूप म मध्यम पडा हुआ ह। स्पष्ट ह कि इस ग्राम मे दूसरा त्रिक पहले का ही पुनरावतन है।) यह स्वलसित का स्तर ह। उल्लास के लिये स्वर आधारभूत 'सुर' (ड्रोन) बनता ह ओर विलास के लिये वह स्वरसन्निवेशात्मक 'धुन' का रूप लेता ह। अभिव्यक्ति का यह क्रम जो एक अखण्ड नाद से आरम्भ होता ह, सगीत के स्थूलतम स्तर पर भी इ द्रियगोचर हो सकता है और योगज य अनुभव के सूक्ष्म स्तरो मे भी अवगत हो सकता ह। सष्टि की अभिव्यक्ति का अनुलोम क्रम और लय का विलोम क्रम—ये दोनो सगीत के द्वारा जितनी सुगमता से अवगत हो सकते है उतने शायद किसी अ य साधना से नही।

यदि उपयुक्त अनुभूति को सगीत का लक्ष्य मान लिया जाय तो फिर किसी राग को गाते बजाते समय यही काफी नही ह कि स्वरो का यथोचित सन्निवश किया जाय अपितु यह भी आवश्यक होगा कि स्वरो को नाद के अधिष्ठान अथवा भित्ति पर अभिव्यक्त किया जाय। 'नाद मे अभिव्यक्ति का क्रम और 'बीज मे विलय का क्रम अनुस्यूत ह और सगीत मे इन दोनो का स्थान है।

सगीत द्वारा अध्यात्म साधना का लक्ष्य है वितान अथवा विस्तार और विलय के क्रम का अनुभव करना। नादात्मक अभिव्यक्ति (स्वरोदय) और बि दवात्मक लय (स्वरविलय) की मात्रा अथवा नाप होना बहुत आवश्यक ह। 'अमेय' का 'मान' आवश्यक है और यही सगीत मे ताल का आधार है।

सुषम छ द के ढाचे मे अभिव्यक्ति की जो बात हमने ऊपर कही उस पर पु न ध्यान दे तो यह कहा जा सकता है कि जिसे मोक्ष या मुक्ति या योग कहा जाता है उसका सत्त्व है सभी मानसिक, बौद्धिक, भावनात्मक, शारीरिक सघर्षो दबावो या तनावो का अन्त। 'समत्व योग उच्यते'। हम लोग विषम स्तर पर पडे हुए है और इससे हमे सुषम स्तर पर जाना ह। इसी बात को योग की भाषा मे यो कहा जाता ह कि इडा और पिंगला की गति वक्र ह और सुषुम्ना की गति सरल, सीधी है। सुषुम्ना के पथ म प्रवेश ही योगी का साध्य होता है। सगीत मोक्ष का साधन बन सकता है यदि वह इस पथ को खोलने म सहायक हो और सुप्त शक्ति (कुण्डलिनी) के जागरण मे प्रेरक हो। इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए स्वर और छन्द की साधना जो कि सगीत का सत्त्व है, महत्त्वपूण है।

भारतीय सगीत मे राग को साधना का फामू ला माना जा सकता है। निरुक्त पद्धति से 'राग' के घटक 'र', 'आ', 'ग'—इन तीनो की निम्नलिखित व्याख्या की जा सकती है।

'र' को अग्नि के बीजाक्षर 'र का प्रतिनिधि माना जा सकता है। मनुष्य के शरीर मे अग्नि अथवा तेज का स्थान है मणिपूर चक्र जहा से नाद उठता है। नाद के उत्थान से

पहले मूलाधार मे अग्नि का सुलगना आवश्यक है। मूलाधार से स्वाधिष्ठान चक्र तक उस सुलगी हुई अग्नि मे प्रवाहिता आनी चाहिये क्योकि स्वाधिष्ठान 'अप' या जल का स्थान है। सच्चे सगीत की बात छोड दें तो हमारी साधारण वाक का व्यापार कण्ठ मे ही होता है और उसका नियमन इडा, पिंगला की विषम गति द्वारा ही होता है। इस गति का समान होना आवश्यक है (प्राणापानौ समौ कृत्वा)। इस समानता के बिना सुषुम्ना का पथ नही खुलेगा और शक्ति रूपा अग्नि गतिशील नही होगी कुल कुण्डलिनी मे गति नही आयेगी। सुषुम्ना की अग्नि की गति अभिव्यक्ति के क्रम मे बि दु + नाद + कला ह और विलय के क्रम मे कला + नाद + बिन्दु है।

'र' और 'ग' के बीच मे जो 'आ' पडा हुआ है वह इस बात का द्योतक है कि 'र' अचल नही है बल्कि वह परनाद, पर बि दु और सुषम कला के रूप मे अभिव्यक्त होता है।

ग' गति का प्रतिनिधि ह और जैसे 'क ब्रह्म = भूमा अथवा 'ख ब्रह्म = आकाश, वैसे ही 'ग ब्रह्म' = प्राण ब्रह्म। 'राग' मे 'ग इस बात का द्योतक है कि मुख्यप्राण के रूप मे प्राणब्रह्म को प्राण अपान के दासत्व से मुक्त होकर 'अधमात्रा'[1] अथवा कुलकुण्डलिनी को जगाना ह ताकि रजस तमस के निम्न स्तरो से उन्नत शक्ति के स्तर प्रज्ञान और आन द तक पहुँचा जा सके।

राग की साधना यदि ठीक ढग से की जाय तो इस ऊर्ध्व गति मे सहायक हो सकती है। इस प्रकार राग अपने उच्चतम स्तर मे रस अथवा आन द की अपनी अलसित (अ यक्त) स्थिति से स्वलसित, उल्लसित और विलसित स्तरो तक की गति का द्योतक है। अत राग आन द समाधि अथवा महाभाव का साधन हो सकता है, जो कि परमलक्ष्य है।

सृष्टि का हृत (सारभूत केद्रबि दु) जो कि रस अथवा आन द ह उसकी बात फिर से की जाय तो यह समझना होगा कि इस हृत की अपनी हृल्लेखा (आ तरिक आलेख्य) ह। इस आलेख्य को काल के प्रसग से अबाधित प्रवाह के रूप मे समझा जा सकता ह और देश के प्रसग से निर्धारित स्थिति के रूप मे। इनमे से प्रथम (काल सबधी) चल है और वह ऋत के रूप मे काय करती ह और दूसरी (देश सबधी) अचल है जो सत्य के रूप मे काय करती ह। इस द्विविधता मे हृत अपने चल रूप मे 'हृदय' बनता है और अचल रूप मे 'हृद्देश' बनता है। भारतीय सगीत के प्रबन्धो मे, जैसे कि ध्रुपद मे, ध्रुव अथवा स्थायी को 'हृद्देश' का प्रतिनिधि कहा जा सकता है क्योकि वह पुनरावर्तित होने के कारण एक प्रकार का अचलत्व धारण करता ह और गीत के अ य खण्ड, जैसे कि अतरा, सचारी, आभोग, जो कि अधिक पुनरावर्तित नही होते उ हे 'हृदय' अर्थात चलता का प्रतिनिधि माना जा सकता ह। उसी प्रकार राग मे किसी एक स्वर को (प्राचीन परिभाषा के अनुसार) वादी, अश अथवा स्थायी बनाना होता है और शेष स्वर उसके सवादी अथवा अनुवादी होते है। इस प्रकार किसी राग के वादी अथवा स्थायी स्वर को उसका 'हृद्देश' कहा जा सकता ह क्योकि वह स्थिर है और उसे अपने आपको 'हृदय' मे भी परिणत करना होता ह अर्थात जो स्वर

१ अधमात्रा' मे 'अध' का अथ आधा नही ह। उसका अथ ह ऋध्यमान = सदा वद्धि को प्राप्त होता हुआ, सदा विस्तत होता हुआ।

स्थायी नही है उसकी चलता से वादी स्वर को गति मिलती ह और इस प्रकार स्वलसित रस का उल्लसित और विलसित मे विकास होता ह। इस प्रकार की प्रस्तुति के लिये नाद ब्रह्म + बि दुब्रह्म का कलाओ मे विस्तार अपेक्षित ह जिसे सुषम कला वितान कह सकते ह। कलाओ की अभिव्यक्ति के क्रम मे स्वर का वित्राह छ द से हो जाता ह 'अमेय' का गठब वन 'मेय' से हो जाता ह।

हि दू सगीत की कला और विज्ञान का आधार दशन मे किस प्रकार मिल जाता ह इस का सकेन ऊपर दिया गया ह। इमी प्रसग मे कुछ अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते है, यथा—

(१) कलनी शक्ति, जो कलाओ के रूप मे अभिव्यक्ति का क्रम बनाती है, मूलत षडग योजना के अनुसार काय करती ह। ये छ अग 'र 'ल' 'व' इत्यादि छ बीजाक्षरो मे अनुस्यूत है। मूल राग भी छ ही ह—राग रागिणी पद्धति मे तो वैसा है ही, प्राचीन ग्राम-राग पद्धति मे भी शुद्ध राग छ ही है। मूल रागो की यह सरया (६) मनुष्य शरीर मे छ चक्रो से भी सबद्ध ह। राग रागिणी पद्धति के छ रागो के साथ छ बीजाक्षरो का सम्ब-ध जोडा जा सकता ह। उदाहरण के लिये—'ॐ व को मेघ राग का बीज माना जा सकता है क्योकि 'व' जल का बीजाक्षर ह उसी प्रकार 'ॐ र दोपक राग का बीज हो सकता है क्योकि 'र' अग्निबीज ह।

(२) 'गमक' का भारतीय सगीत मे महत्त्वपूण स्थान है। गमक के द्वारा ही 'नाद' की 'मूर्च्छा टूटती है और आलाप से स्वरो का 'नत्य' आरम्भ होता है। 'गमक = 'गमन' कराने वाला यानी ज्ञान कराने वाला। स्वर का वैचित्र्य विलास गमक से ही होता है। यह शब्द शास्त्रीय दष्टि से बहुत साथक है।

(३) भारतीय सगीत की प्राचीन पद्धति मे मूच्छना शब्द का मौलिक महत्व है। 'मूच्छ' धातु के दो अथ ह—मोह और उभार। दोनो अर्थो का सागीतिक मूच्छना मे स्थान है। मूच्छना के द्वारा ही नाद अपनी अलसित (मूच्छित) स्थिति मे से जागता ह अथवा अव्यक्त बीजरूप बिन्दु का सुषम कलाओ मे विकास होता है। पारिभाविक शब्दो मे कहे तो मूच्छना ही ग्राम के सातो स्वरो को सभावनाओ को व्यक्त करती ह। विलोम क्रम मे ग्राम पुन अव्यक्त बन जाता है। इस प्रकार 'मूच्छ' का उभार अथ मूच्छना मे लागू होता है। कमल की पखुडियो का विकास और सकोच उदाहरण के रूप मे यहा समझा जा सकता ह। अभिव्यक्ति के क्रम मे 'अखण्ड' और 'अमात्र' रस खण्डित और विलोम क्रम से खण्डित और मात्रिक रस पुन अखण्ड और अमात्र हो जाता है।

'प्रिय' अथवा आन द ही तो अस्ति भाति का 'हृत' है और सृष्टि एव विलय मे उसका एक मात्र काम ह सुषमता लाना अथवा मधुच्छ द बनना। सुसमता ही तो सगीत का प्राण है। सृष्टि क्या ह—निर्दोष ताल मे 'नत्य' है, आन्तरिक घनिष्ठना मे 'वादन है, और आन-दतिरेक मे गान ह। नत्य और वादन मे निर्दोष 'मात्रा' (नाप) की आवश्यकता है और गान मे उन दोनो (नृत्य वादन) का उत्कष है अमेय आन द मे। नत्य और बादन का व्यापार सुषम कलाओ मे चलता है और गीत मे नाद बि दु का सयोग ह, जहा से कि कलाओ

का उदगम होता है। नत्य वादन मे व्यासवत्ति प्रधान है अर्थात काल और देश के प्रसग मे पथक्क रण प्रमुख है और गान मे समास अथवा समाहृति प्रधान है अर्थात एकीकरण प्रमुख ह । प्राणन = प्राणव्यापार का तालात्मक नि सरण नृत्य है मनन की वाद्यो से घनिष्ठता वादन ह अर्थात मन मे कल्पित स्वर सन्निवेश की वाद्य पर अवतारित रूप के साथ घनिष्ठता ह और गीत मे गति भावन और आह्लादन ह, जो नत्य और वादन की भी मौलिक प्रेरगा बनते है । वाक प्राण मन के वैदिक त्रिक की भाषा मे कहे तो नत्य मे प्राण प्रधान है वादन मे मन और गान मे वाक । नत्य का सम्ब-ध हमारे शरीर से, वादन का मस्निष्क (बुद्धि) से और गीत का हृदय से कहा जा सकता है । इसीलिए हि-दू सगीत की परम्परा मे गान मे आलाप के द्वारा 'राग' का सवेदन आवेदन सर्वोत्कृष्ट रूप से हो सकता है क्योकि उसमे एकीकरण की उच्चतम अवस्था की सभावना है ।

उपसहार से पूव यह कहना आवश्यक ह कि ऐसे लघु लेख मे केवल उदाहरण-रूप से कुछ सकेत देना ही सम्भव ह जिससे हिन्दू सङ्गीत के वैदिक और तान्त्रिक (यौगिक) आधार का दिक्सूचन हो सके। इस विराट विषय के साथ कुछ भी न्याय करना सम्भव नही। यहा इतना ही कहना पर्याप्त है कि हिन्दू सगीत का एक ओर शरीर मूलक हठयोग से घनिष्ठ सब-ध ह और दूसरी ओर मनोमूलक राजयोग से। सगीत मे वाक प्राण, मन का समी स्तरो पर समत्व साधा जाता है । अत सगीत बडी सुगमता से किसी भी साधना पद्धति का सहगामी बन सकता ह, जो शरीर को मन को अथवा वाणी को आधार मानकर चलती हो।

इस लेख के उपक्रम मे जो तीन निष्कष रखे गये थे उन्हे यहा उपसहार म दोहरा लेना उचित होगा।

(१) हि-दू सगीत साधना का उत्कृष्ट उपाय है क्योकि उसकी सकल्पनाएँ वदिक दर्शन योग और तत्र पर आधारित ह ।

(२) देवत्व की विभि-न अभिव्यक्तियो की धारणा उन्हे नादात्मक समझने से सर्वोत्कृष्ट रीति से हो सकती ह क्योकि नाद मौलिक अभिव्यक्ति भी है और बीजरूप बिन्दु भी ह । देव-देवियो की धारणा या तो मौलिक शक्तियो की अभिव्यक्ति के रूप मे होती ह अथवा इस व्यक्त सृष्टि के बीज के रूप मे ।

(३) हि-दू सगीत की सकल्पना ऐसी है कि उसमे निम्नतम से लेकर उच्चतम स्तरो की साधना के लिये अवकाश ह और मुक्ति का सबध स्वाभाविक रूप से उच्चतम स्तर के साथ ह ।



'काकु' का शास्त्रीय विचार

(श्रीमती) सुभद्रा चौधरी

काकु अथवा ध्वनि विकार के द्वारा विभिन्न भावो की अभिव्यक्ति होती ह । प्रति दिन के व्यवहार मे ध्वनि का ऊचा नीचा पन, म दता तीव्रता, द्रुत अथवा विलम्बित गति ही उन भावो को प्रकट करती ह । करुणा, शोक, व्याधि मे ध्वनि नीची और गति धीमी रहती ह । हष या प्रसन्नता के वेग मे स्वाभाविक रूप से आवाज ऊ ची और गति द्रुत हो जाती ह । डाटने फटकारने, लडाई झगडे मे आवाज मे 'चिल्लाहट' मौर गति द्रुततर हो जाती ह । स्वर परिवतन से 'हा' का 'नही' और 'नही' का हा' हो जाता ह । काकु भेद के इन शब्दो के द्वारा निराशा, विस्मय, हष, प्रश्न आदि आदि भावो का बोध भी हो सकता ह। इसका अथ यह है कि स्वर या ध्वनि भेद ही अथ के नियामक होते ह ।

नाटच जीवन की ऐसी अनुकृति ह जिसम थोडे समय और थोडे शब्दो मे बहुत से अथ और भाव भरने पडते हैं, इसलिये इसमे अभिनय की प्रमुखता रहती है। नाठच का वाचिका मिनय के अन्तगत स्थान ह । इसके लिये शब्दयोजना और पाठच दोनो ऐसे होने चाहिये जिससे व्यग्याथ का भी बोध हो । नाटय मे पाठच दो प्रकार का हो सकता ह—गद्य कथोपकथन और पद्य । यो तो 'गीत' भी वाचिकाभिनय मे ही आता है लेकिन जसे सामा य बोल-चाल ओर सस्वर पाठ मे अ तर ह उसी प्रकार 'पाठच' और 'गीत' या 'गान' मे भी अन्तर है । कुछ आगे चल कर इनके अ तर पर प्रकाश डाला जायगा । नाटय मे पाठच का अत्य त महत्त्व होने के कारण भरत ने उस पर बहुत बल दिया ह । प्रस्तुत लेख भरत के काकु सबधो अध्याय और उस पर अभिनवगुप्त की टीका पर आधारित ह ।

नाटयशास्त्र मे काकुविचार पाठच के सदभ म हुआ ह । इस अध्याय की सख्या बडौदा सस्करण मे १७ और बनारस सस्करण मे १९ ह ।

इस अध्याय मे भाषा ओर कमविधान कहने के बाद भरत ने पाठय के षडलकारो का विषय-प्रवेश कराया है । यथा—

एव भाषाविधान तु ज्ञात्वा कर्माण्यशेषत ।
तत पाठय प्रयुञ्जीत षडलङ्कारसयुतम् ॥

षडलकार पाठ्य के 'गुण' है जो इस प्रकार है—सप्तस्वर, त्रिस्थान, चतुवण, द्विविधा काकु, षडलकार और षडग । इन से उपकृत हो कर या इनका विशेष सयोग पा कर काव्य पाठय बनता ह । अब भरत के अनुसार इनके स्वरूप निरूपण और विनियोग पर प्रकाश डाला जायगा ।

स्वर—७ स्वर होते ह—षड्ज, ऋषभ, गा धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद । ये रसो मे उपयोगी है । इनका विशेष उपयोग तो नाट्य के अन्तगत ध्रुवाओ मे होता है लेकिन

किसी एक स्वर को 'स्थायी' या आधार बना कर ही 'पाठय' सभव होने के कारण यहा भी स्वरो को छोडा नही जा सकता। वस्तुत काकु मे स्वर ही उपकारी होते है अर्थात स्वर के सयोग से ही काकु स्पष्ट होती ह। इसलिये काकुविधान मे स्वर का यही उपयोग ह कि वे पाठ के लिये नियत आधार प्रदान करते है।

किस स्वर का किस रस मे किस प्रकार प्रयोग करना चाहिये इसे भरत ने सूत्ररूप मे इन दो कारिकाओ मे कहा है

हास्यशृङ्गारयो कार्यौ स्वरौ मध्यमपञ्चमौ।
षडजर्षभौ तथा चैव वीररौद्राद्भुतेषु च ॥
गन्धारश्च निषादश्च कतव्यौ करुणे रसे।
धैवतश्चैव कतव्यो बीभत्से सभयानके ॥

'कार्यौ स्वरौ की टीका मे अभिनवगुप्त ने जात्यशकविनियाग की जो चर्चा की ह उसका अथ यही है कि इन स्वरो को आधार बनाकर पाठय प्रयोग करना चाहिये।

स्थान—भरत ने तीन स्थान कहे ह—उर, शिर और कण्ठ। स्थान से पहले 'स्वर' का विनियोग बता चुकने के कारण सगीत के मद्र मध्य, तार स्थानो का ग्रहण न कर लिया जाय इसलिये भरत ने 'शारीर्यामथ वीणाया' के द्वारा शरीर वीणा के—उर, शिर, कण्ठ—इन तीन ही स्थानो का ग्रहण कराया ह। स्वर सबसे पहले शरीर से ही उत्पन्न होते है और वे भी उर, शिर, कण्ठ—इन तीन स्थानो से ही। दारवी वीणा का पाठय मे उपयोग नही क्योकि उसमे वर्णो की उत्पत्ति सभव नही ह। साथ ही तत्री मे 'रक्ति' व 'अनुरणन' होने के कारण वीणा का प्रयोग होते ही पाठ न रहकर 'गान' हो जाता है इसीलिये भरत ने स्पष्ठ रूप से शरीर वीणा के ही स्थान कहे है।

अभिनवगुप्त ने 'स्थान' को स्वर का 'स्वरूपनिष्पत्तेराश्रय' कहा है अर्थात स्थानो के आश्रित होकर ही स्वर के स्वरूप की निष्पत्ति होती है। स्वरो के स्थानो के बारे मे यह शका हो सकती है कि क्या वर्णो की अपने मूर्द्धादि स्थानो से उत्पन्न होते हुए, उर कण्ठादि स्थानो से भी उत्पत्ति सभव ह? अभिनवगुप्त ने इसे इस रूप मे स्पष्ट किया ह कि मूर्द्धादि वर्णो के उत्पत्ति स्थान है और उरकण्ठादि स्वरो के। मूद्धादि स्थानो के प्रयत्न से वर्णो की उत्पत्ति होती है लेकिन उन वर्णो का उच्चारण मन्द्र, मध्य, तार ध्वनियो मे भो सम्भव ह और ये ध्वनिया क्रमश उर, कण्ठ और शिर से उत्पन्न होती ह। इसलिये मूद्धादि मे उत्पन्न वर्णो का स्वरो की दष्टि से त्रिस्थानगत प्रयोग भी किया जा सकता ह।

सगीत की दष्टि से 'स्थान और 'सप्तक पर्याय माने जाते है लेकिन सप्तक म २२ श्रुतिया स्वत ग्राह्य होती ह। भरत ने 'सप्तक' के बजाय स्थान' शब्द का प्रयोग इसीलिये किया ह कि सप्तक कहने से कही यह अथ न समझ लिया जाय कि निश्चित अन्तरालो से युक्त सप्तको मे पाठ किया जाय।

तीन स्थानो के प्रयोग के लिये भरत ने यह विधान किया ह—दूरस्थ के प्रति भाषण

म शिर से अर्थात् ऊची ध्वनि मे, बहुत दूर न हो तो कण्ठ से यानी न बहुत ऊँची, न बहुत नीची बल्कि मध्यम ध्वनि और 'पाश्वत' यानी बिल्कुल पास हा तो उर से अर्थात नीची ध्वनि मे पाठ करना चाहिये। जब कोई विशेष भाव व्यक्त न करना हो, केवल सामा य बात कहनी हो तो वाक्य उर से आरम्भ करके कठ मे समाप्त करना चाहिये। यही स्वाभाविक क्रम ह। सामा य रूप से नीची ध्वनि म बोलना शुरू करके उत्साह वद्धि के साथ साथ स्वर की तीव्रता म भी वद्धि हो जाती ह और समाप्त करते समय मध्यध्वनि मे अन्त किया जाता ह। इसलिये शात प्रसग या आवशशून्य अवस्था मे इसी प्रकार पाठ हाता है।

वण — 'वण' की व्युत्पत्ति करते हुए अभिनवगुप्त कहते ह 'विवण्वते प्रकटयन्ति' अर्थात पाठक्रिया का विस्तार करते ह। भरत के अनुसार 'तपोधन' अर्थात सूक्ष्मदर्शी लोग उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और कम्पित इन चार वर्णो के योग से पाठ्य करते है।

वण की टीका करते हुए अभिनवगुप्त ने कहा ह कि स्वरो के 'रक्ति' तथा 'अनुरणन' धर्मो का त्याग करके उच्च, नीच, मध्यम और कम्पनयुक्त ध्वनि के स्पशमात्र से उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, कम्पित वर्णो का प्रयोग करना चाहिये। 'रक्ति' ही प्रधानरूप से 'गान' का लक्षण ह इसलिये उसका त्याग पाठय के लिये आवश्यक है। पाठय और गान का अ तर 'अपूणस्वरता (७ स्वरो की अपेक्षा कम स्वरो का प्रयोग) और 'पूणस्वरता' नही ह। अभिनव ने उदाहरण दिय ह कि षाडव ओर औडव रूप मे भी गानक्रिया होती ह। यहा तक कि कुछ भाषा राग चतु स्वर और त्रिस्वर भी कहे है।

लोकगीतो, अभिनयगीतो आदि मे भी ३ ४ स्वरो का ही प्रयाग साधारणत होता ह तब क्या वे पाठ कहे जा सकते है? वदिक मत्रो का उच्चारण कुछ स्वरो मे ही होता ह लेकिन रक्ति नही होती इसलिये वह 'मन्त्रपाठ' कहलाता ह। लेकिन उ ही मत्रो का 'रक्ति' से युक्त सप्तकरूप स्वरो मे प्रयोग होते ही वही 'सामगान' कहलाता है। इसलिये रक्ति से रहित केवल उच्चनीच ध्वनिसहित प्रयोग ही पाठय कहा जाता है।

'वण' के सबध मे यह स्पष्ट रूप से समझ लेना जरूरी है कि पाठय और गान मे भेद स्थापित करने की दष्टि से ही भरत ने पाठय योग मे उदात्तदि ४ बण कहे और गान के ४ वण अलग से २९वे अध्याय मे कहे है अयथा अलग अलग वण कहने की कोई जरूरत नही थी।

उपयु क्त विवेचन से यह निष्कष निकलता है कि उदात्तादि वर्णो के योग के कारण पाठ्य के अ तगत सामान्य बोलचाल और स्वरविशेष को 'अश' या आधार बना कर किया जाने वाला पाठ —इस प्रकार 'गान' के अतिरिक्त मनुष्य के समूचे वाग्व्यवहार का ग्रहण हो जाता ह।

वर्णो का रसो मे विनियोग भरत ने इस प्रकार करने के लिये कहा है—हास्य शृगार मे स्वरित उदात्त, वीर-रौद्र-अद्भुत मे उदात्त कम्पित, करुण वीभत्स भयानक मे अनुदात्त स्वरित कम्पित वर्णों से पाठ करना चाहिये। इस अश की टीका मे अभिनव ने किस स्वर को स्थायी बनाकर किस वण का कौन-कोन सी जातियो मे विनियोग करना चाहिये यह भी बताया है।

इस सदभ मे जाति कहने का इतना ही अभिप्राय ह कि उन जातियो के अश स्वरो का प्रयोग होना चाहिये ।

काकु—'साकाक्ष' और निराकाक्ष' वाक्यो के आधार पर भरत ने द्विविधा काकु कही है—'साकाक्ष काकु आर 'निराकाक्ष काकु' । साकाक्ष वाक्य उसे कहा जा अनियुक्तार्थक' है और निराकाक्ष वाक्य वह ह जो नियुक्तार्थक' ह । सामान्य रूप से इसका अथ यह किया जा सकता है कि जिस वाक्य का अथ निश्चित न हो या जिसमे आकाक्षा बनी रहे यानी बात अधूरी रह जाय वह साकाक्ष वाक्य होता ह और जहा आकाक्षा समाप्त हा जाती ह यानी निश्चित अथ का बोध हो जाता ह वह निराकाक्ष वाक्य ह । साकाक्ष वाक्य म प्रयुक्त काकु साकाक्ष और निराकाक्ष वाक्य मे प्रयुक्त काकु निराकाक्ष कहलाती ह । अभिनवगुप्त ने 'काकु' की टीका मे अनेक मत मतान्तरा का खडन मडन करते हुए अपना पक्ष स्थापित किया ह । यहा काकु सम्बन्धी विश्लेषण अभिनवगुप्त के अपने मत के आधार पर ही करने का प्रयत्न किया गया ह ।

साकाक्ष काकु वह ह जो शब्दो द्वारा वाच्य अथ के अतिरिक्त बहुत अधिक अथ का बोध कराती ह । काकु मुख्य रूप से दो काय करती ह—१ अथबाध और २ चित्तवत्तिबाध । इनमे से पहली 'अथकाकु' और दूसरी 'रसकाकु' ह । स्वर, स्थान, वण अलकार, अग—ये पाचो गुण वास्तव मे काकु को ही उपकृत करते हैं । काकु इन सबमे व्याप्त ह इसलिये वही प्रमुख ह । 'अल करोति इति अलकार ' इस व्युत्पत्ति से काकु का पर्याप्त विस्तार करने के कारण ही उच्चदीप्तादि को 'अलकार' कहा जाता ह । ये काकु के उपकारक, सम्पादक (निर्माता) और परिपूणता लाने वाले ह । 'विच्छेद' आदि अग भी रस, अथ, शोभा और कम द्वारा काकु का ही पोषण करते है । वाचिकाभिनय मे भी काकु ही अथ का 'अभिनयन करती ह—'अभि मुख्येन नयतीति अभिनय ' अर्थात मुख्य रूप से ले जाती ह । शेप पाचो गुण काकु के ही विस्तारहै, इसीलिये भरत ने अध्याय के अन्त मे 'उक्त काकुविधानम' के द्वारा काकु मे ही शेष पाच का भी समावेश कर दिया है ।

चित्तवत्तिबोधिका रसकाकु वणहीन भी हो सकती ह । 'सवित' के 'स्पन्दन' या 'प्राणो' के 'उल्लास' से जो नादात्मिका वाणी उत्पन्न होती है उसमे सदा सार्थक वर्णो का प्रयोग नही होता इसलिये उसके द्वारा चित्त के हषशोकादि भावा का ही बोध होगा । पशुपक्षियो की बिशिष्ट ध्वनियो से भी उनकी भय, शोकादि चित्तवत्ति का बोध तो हो सकता है लेकिन नाद के बल से उसका अनुमान ही किया जाता ह, वर्णो का प्रयोग न होने से सीधे वाच्य नही होता । इसलिये नादात्मक ध्वनि मे 'व्यभिचार' नही हो सकता, एक प्रकार का नाद सदा एक ही भाव का बोध करा सकता ह । 'झटिति' निकलने वाली यह ध्वनि मुखराग, पुलकादि सात्त्विक भावो के समान है जो स्वय उदभूत होते है और भावो का बोध करा के तुरन्त विलीन हो जाते है । लेकिन वर्णात्मक ध्वनि मे काकु का प्रयोग होने पर वाच्याथ से भिन्न व्यग्याथ भी निकल सकता ह जो वाच्याथ से विपरीत भी हो सकता ह ।

रसकाकु को चित्तवत्तिबोधिका और अथकाकु को अथबोधिका कहने से यह शका हो सकती है कि नेपथ्य पाठ या दूरस्थ के प्रति भाषण मे उपयुक्त दोनो व्यापारो को छोडकर

मे शिर से अर्थात ऊँची ध्वनि मे, बहुत दूर न हो तो कण्ठ से यानी न बहुत ऊँची, न बहुत नीची बल्कि मध्यम ध्वनि और 'पाश्वत' यानी बिल्कुल पास हो तो उर से अर्थात नीची ध्वनि मे पाठ करना चाहिये। जब कोई विशेष भाव व्यक्त न करना हो, केवल सामा य बात कहनी हो तो वाक्य उर स आरम्भ करके कठ मे समाप्त करना चाहिये। यही स्वाभाविक क्रम है। सामान्य रूप से नीची ध्वनि मे बोलना शुरू करके उत्साह वद्धि के साथ साथ स्वर की तीव्रता म भी वृद्धि हो जाती ह और समाप्त करते समय मध्यध्वनि मे अन्त किया जाता ह। इसलिये शा त प्रसग या आवेशशून्य अवस्था मे इसी प्रकार पाठ होता ह।

वण — वण' की व्युत्पत्ति करते हुए अभिनवगुप्त कहते ह 'विवण्वते प्रकटर्या त' अर्थात पाठक्रिया का विस्तार करते ह। भरत के अनुसार 'तपोधन' अर्थात सूक्ष्मदर्शी लोग उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और कम्पित इन चार वर्णो के योग से पाठ्य करते ह।

वण की टीका करते हुए अभिनवगुप्त ने कहा ह कि स्वरो के 'रक्ति' तथा 'अनुरणन' धर्मो का त्याग करके उच्च, नीच, मध्यम और कम्पनयुक्त ध्वनि के स्पशमात्र से उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, कम्पित वर्णो का प्रयोग करना चाहिये। 'रक्ति' ही प्रधानरूप से 'गान' का लक्षण है इसलिये उसका त्याग पाठय' के लिये आवश्यक है। पाठय और गान का अ तर 'अपूणस्वरता (७ स्वरो की अपेक्षा कम स्वरो का प्रयोग) और 'पूणस्वरता' नही ह। अभिनव ने उदाहरण दिये है कि षाडव और औडव रूप मे भी गानक्रिया होती है। यहा तक कि कुछ भाषा राग चतु स्वर और त्रिस्वर भी कहे है।

लोकगीतो, अभिनयगीतो आदि मे भी ३-४ स्वरो का ही प्रयाग साधारणत होता है तब क्या वे पाठ कहे जा सकते है? वैदिक मत्रो का उच्चारण कुछ स्वरो मे ही होता ह लेकिन रक्ति नही होती इसलिये वह 'मन्त्रपाठ' कहलाता ह। लेकिन उ ही मत्रो का 'रक्ति' से युक्त सप्तकरूप स्वरो मे प्रयोग होते ही वही 'सामगान कहलाता ह। इसलिये रक्ति से रहित केवल उच्चनीच ध्वनिसहित प्रयोग ही पाठय कहा जाता है।

वण' के सबध मे यह स्पष्ट रूप से समझ लेना जरूरी ह कि पाठय और गान मे भेद स्थापित करने की दष्टि से ही भरत ने पाठय योग मे उदात्तदि ४ बण कहे और गान के ४ वण अलग से २९वे अध्याय मे कहे है अ यथा अलग अलग वण कहने की कोई जरूरत नही थी।

उपयु क्त विवेचन से यह निष्कष निकलता ह कि उदात्तादि वर्णो के योग के कारण पाठय के अन्तगत सामान्य बोलचाल और स्वरविशेप को 'अश' या आधार बना कर किया जाने वाला 'पाठ'—इस प्रकार 'गान' के अतिरिक्त मनुष्य के समूचे वाग्व्यवहार का ग्रहण हो जाता है।

वर्णो का रसो मे विनियोग भरत ने इस प्रकार करने के लिये कहा है—हास्य शृ गार मे स्वरित-उदात्त, वीर रौद्र अद्भुत मे उदात्त कम्पित, करुण-वीभत्स भयानक मे अनुदात्त स्वरित-कम्पित वर्णो से पाठ करना चाहिये। इस अश की टीका मे अभिनव ने किस स्वर को स्थायी बनाकर किस वण का कौन कोन सी जातियो मे विनियोग करना चाहिये यह भी बताया है।

इस सदभ मे जाति कहने का इतना ही अभिप्राय है कि उन जातियो के अश स्वरो का प्रयोग होना चाहिये ।

काकु—'साकाक्ष' और निराकाक्ष' वाक्या के आधार पर भरत ने द्विविधा काकु कही ह—'साकाक्ष काकु आर 'निराकाक्ष काकु' । साकाक्ष वाक्य उसे कहा जा अनियुक्तायक' है और निराकाक्ष वाक्य वह है जो 'नियुक्तायक' ह । सामान्य रूप से इसका अथ यह किया जा सकता है कि जिस वाक्य का अथ निश्चित न हो या जिसमे आकाक्षा बनी रहे यानी बात अधूरी रह जाय वह साकाक्ष वाक्य होता ह और जहा आकाक्षा समाप्त हा जाती ह यानी निश्चित अथ का बोध हो जाता ह वह निराकाक्ष वाक्य ह । साकाक्ष वाक्य मे प्रयुक्त काकु साकाक्ष और निराकाक्ष वाक्य मे प्रयुक्त काकु निराकाक्ष कहलाती ह । अभिनवगुप्त ने 'काकु' की टीका मे अनेक मत मतान्तरों का खडन मडन करते हुए अपना पक्ष स्थापित किया है। यहा काकु सम्बन्धी विश्लेपण अभिनवगुप्त के अपने मत के आधार पर ही करने का प्रयत्न किया गया है।

साकाक्ष काकु वह ह जो शब्दो द्वारा वाच्य अथ के अतिरिक्त बहुत अधिक अथ का बोध कराती ह । काकु मुख्य रूप से दा काय करती ह—१ अथबाध और २ चित्तबत्तिबाध । इनमे से पहली अथकाकु' और दूसरी 'रसकाकु' ह । स्वर, स्थान, वण, अलकार, अग—ये पाचो गुण वास्तव मे काकु को ही उपकृत करते हैं । काकु इन सबमे याप्त ह इसलिये वही प्रमुख ह । 'अल करोति इति अलकार ' इस व्युत्पत्ति से काकु का पयाप्त विस्तार करने के कारण ही उच्चदीप्तादि को 'अलकार' कहा जाता ह । ये काकु के उपकारक, सम्पादक (निर्माता) और परिपूणता लाने वाले ह । 'विच्छेद आदि अग भी रस, अथ, शोभा और कम द्वारा काकु का ही पोषण करते ह । वाचिकाभिनय मे भी काकु ही अथ का 'अभिनयन' करती है—'अभि मुख्येन नयतीति अभिनय ' अर्थात मुख्य रूप से ले जाती ह । शेष पाचो गुण काकु के ही विस्तारहै, इसीलिये भरत ने अध्याय के अन्त मे 'उक्त काकुविधानम' के द्वारा काकु मे ही शेष पाच का भी समावेश कर दिया है।

चित्तवत्तिबोधिका रसकाकु वणहीन भी हो सकती ह । 'सवित' के 'स्पन्दन' या 'प्राणा' के 'उल्लास' से जो नादात्मिका वाणी उत्पन्न होती ह उसमे सदा साथक वर्णो का प्रयोग नही होता, इसलिये उसके द्वारा चित्त के हषशोकादि भावा का ही बोध होगा । पशुपक्षियो की बिशिष्ट ध्वनियो से भी उनकी भय, शोकादि चित्तवत्ति का बोध तो हो सकना है लेकिन नाद के बल से उसका अनुमान ही किया जाता है, वर्णो का प्रयोग न होने से सीधे वाच्य नही होता । इसलिये नादात्मक ध्वनि मे 'व्यभिचार' नही हो सकता, एक प्रकार का नाद सदा एक ही भाव का बोध करा सकता ह । 'झटिति' निकलने वाली यह ध्वनि मुखराग, पुलकादि सात्त्विक भावो के समान है जो स्वय उदभूत होते हैं और भावो का बोध करा के तुरन्त विलीन हो जाते है । लेकिन वर्णात्मक ध्वनि मे काकु का प्रयोग होने पर वाच्याथ से भिन्न व्यग्याथ भी निकल सकता ह जो वाच्याथ से विपरीत भी हो सकता है।

रसकाकु को चित्तवत्तिबोधिका और अथकाकु को अथबोधिका कहने से यह शका हो सकती है कि नेपथ्य-पाठ या दूरस्थ के प्रति भाषण मे उपयुक्त दोनो व्यापारो को छोडकर

मे शिर से अर्थात ऊची ध्वनि मे, बहुत दूर न हो तो कण्ठ से यानी न बहुत ऊँची, न बहुत नीची बल्कि मध्यम ध्वनि और 'पाश्वत' यानी बिल्कुल पास हो तो उर से अर्थात नीची ध्वनि मे पाठ करना चाहिये। जब कोई विशेप भाव व्यक्त न करना हो, केवल सामा य बात कहनी हो तो वाक्य उर से आरम्भ करके कठ मे समाप्त करना चाहिये। यही स्वाभाविक क्रम ह। सामान्य रूप से नीची ध्वनि मे बोलना शुरू करके उत्साह वद्धि के साथ साथ स्वर की तीव्रता म भी वृद्धि हो जाती ह ओर समाप्त करते समय मध्यध्वनि मे अन्त किया जाता ह। इसलिये शा त प्रसग या आवेशशून्य अवस्था मे इसी प्रकार पाठ होता है।

वण — 'वण' की व्युत्पत्ति करते हुए अभिनवगुप्त कहते ह 'विवण्वते प्रकटर्या ति' अर्थात पाठक्रिया का विस्तार करते ह। भरत के अनुसार 'तपोधन' अर्थात सूक्ष्मदर्शी लोग उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और कम्पित इन चार वर्णो के योग से पाठ्य करते है।

वण की टीका करते हुए अभिनवगुप्त ने कहा ह कि स्वरो के 'रक्ति' तथा 'अनुरणन' धर्मो का त्याग करके उच्च, नीच मध्यम और कम्पनयुक्त ध्वनि के स्पशमात्र से उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, कम्पित वर्णो का प्रयोग करना चाहिये। 'रक्ति' ही प्रधानरूप से 'गान' का लक्षण ह इसलिये उसका त्याग पाठय के लिये आवश्यक है। पाठय और गान का अ तर 'अपूणस्वरता (७ स्वरो की अपेक्षा कम स्वरो का प्रयोग) और 'पूणस्वरता' नही ह। अभिनव ने उदाहरण दिये है कि षाडव और औडव रूप मे भी गानक्रिया होती है। यहा तक कि कुछ भाषाराग चतु स्वर और त्रिस्वर भी कहे है।

लोकगीतो, अभिनयगीतो आदि मे भी ३-४ स्वरो का ही प्रयाग साधारणत होता ह तब क्या वे पाठ कहे जा सकते है ? वैदिक मन्त्रो का उच्चारण कुछ स्वरो मे ही होता ह लेकिन रक्ति नही होती इसलिये वह 'मन्त्रपाठ' कहलाता ह। लेकिन उ ही मत्रो का 'रक्ति' से युक्त सप्तकरूप स्वरो मे प्रयोग होते ही वही 'सामगान' कहलाता ह। इसलिये रक्ति से रहित केवल उच्चनीच ध्वनिसहित प्रयोग ही पाठय कहा जाता ह।

'वण' के सबध मे यह स्पष्ट रूप से समझ लेना जरूरी ह कि पाठय और गान मे भेद स्थापित करने की दष्टि से ही भरत ने पाठय योग मे उदात्तदि ४ बण कहे और गान के ४ वण अलग से २९वे अध्याय मे कहे है अ यथा अलग अलग वण कहने की कोई जरूरत नही थी।

उपयु क्त विवेचन से यह निष्कष निकलता ह कि उदात्तादि वर्णो के योग के कारण पाठय के अ न्तगत सामान्य बोलचाल और स्वरविशेष को 'अश' या आधार बना कर किया जाने वाला 'पाठ'—इस प्रकार 'गान' के अतिरिक्त मनुष्य के समूचे वाग्व्यवहार का ग्रहण हो जाता है।

वर्णो का रसो मे विनियोग भरत ने इस प्रकार करने के लिये कहा है—हास्य शृ गार मे स्वरित-उदात्त, वीर रौद्र अद्भुत मे उदात्त कम्पित, करुण वीभत्स भयानक मे अनुदात्त स्वरित-कम्पित वर्णो से पाठ करना चाहिये। इस अश की टीका मे अभिनव ने किस स्वर को स्थायी बनाकर किस वण का कौन कोन सी जातियो मे विनियोग करना चाहिये यह भी बताया है।

इस सदभ मे जाति कहने का इतना ही अभिप्राय है कि उन जातिया के अश स्वरो का प्रयोग होना चाहिये ।

काकु—'साकाक्ष' और 'निराकाक्ष' वाक्या के आधार पर भरत ने द्विविधा काकु कही है—'साकाक्ष काकु और 'निराकाक्ष काकु । साकाक्ष वाक्य उसे कहा जा 'अनियुक्तार्थक' है और निराकाक्ष वाक्य वह ह जो 'नियुक्तार्थक' ह । सामान्य रूप स इसका अथ यह किया जा सकता है कि जिस वाक्य का अथ निश्चित न हो या जिसमे आकाक्षा बनी रहे यानी बात अधूरी रह जाय वह साकाक्ष वाक्य होता ह और जहा आकाक्षा समाप्त हा जाती ह यानी निश्चित अथ का बोध हा जाता ह वह निराकाक्ष वाक्य ह । साकाक्ष वाक्य मे प्रयुक्त काकु साकाक्ष और निराकाक्ष वाक्य मे प्रयुक्त काकु निराकाक्ष कहलाती ह । अभिनवगुप्त ने 'काकु' की टीका मे अनेक मत मतान्तरो का खडन मडन करते हुए अपना पक्ष स्थापित किया है । यहा काकु सम्बन्धी विश्लेषण अभिनवगुप्त के अपने मत के आधार पर ही करने का प्रयत्न किया गया है ।

साकाक्ष काकु वह ह जो शब्दा द्वारा वाच्य अथ के अतिरिक्त बहुत अधिक अथ का बोध कराती ह । काकु मुख्य रूप से दो काय करती ह—१ अथबाध और २ चित्तवृत्तिबाध । इनमे से पहली 'अथकाकु' और दूसरी 'रसकाकु' ह । स्वर, स्थान, वण, अलकार, अग—ये पाचो गुण वास्तव मे काकु को ही उपकृत करते है । काकु इन सबमे व्याप्त ह इसलिये वही प्रमुख ह । 'अल करोति इति अलकार ' इस व्युत्पत्ति से काकु का पर्याप्त विस्तार करने के कारण ही उच्चदीप्तादि को अलकार' कहा जाता ह । ये काकु के उपकारक, सम्पादक (निर्माता) और परिपूणता लाने वाले ह । विच्छेद आदि अग भी रस, अथ, शोभा और कम द्वारा काकु का ही पोषण करते है । वाचिकाभिनय मे भी काकु ही अथ का 'अभिनयन' करती ह—'अभि मुख्येन नयतीति अभिनय ' अर्थात मुख्य रूप से ले जाती ह । शेष पाचो गुण काकु के ही विस्तारहै, इसीलिये भरत ने अध्याय के अ त मे 'उक्त काकुविधानम' के द्वारा काकु मे ही शेष पाच का भी समावेश कर दिया ह ।

चित्तवृत्तिबोधिका रसकाकु वणहीन भी हो सकती ह । 'सवित' के 'स्पन्दन' या 'प्राणो' के 'उल्लास' से जो नादात्मिका वाणी उत्पन्न होती ह उसमे सदा साथक वर्णो का प्रयोग नही होता, इसलिये उसके द्वारा चित्त के हषशोकादि भावा का ही बोध होगा । पशुपक्षियो की विशिष्ट ध्वनियो से भी उनकी भय, शोकादि चित्तवृत्ति का बोध तो हो सकता ह लेकिन नाद के बल से उसका अनुमान ही किया जाता ह, वर्णो का प्रयोग न होने से सीधे वाच्य नही होता । इसलिये नादात्मक ध्वनि मे 'व्यभिचार' नही हो सकता, एक प्रकार का नाद सदा एक ही भाव का बोध करा सकता है । 'झटिति' निकलने वाली यह ध्वनि मुखराग, पलकादि सात्त्विक भावो के समान है जो स्वय उदभूत हाते है और भावो का बोध करा के तुरन्त विलीन हो जाते है । लेकिन वर्णात्मक ध्वनि मे काकु का प्रयोग होने पर वाच्याथ से भिन्न व्यग्याथ भी निकल सकता है जो वाच्यार्थ से विपरीत भी हो सकता ह ।

रसकाकु को चित्तवृत्तिबोधिका और अथकाकु को अथबोधिका कहने से यह शका हो सकती है कि नेपथ्य पाठ या दूरस्थ के प्रति भाषण मे उपयुक्त दोनो व्यापारो को छोडकर

दूरश्रव्यता ही प्रयोजन होता ह, तब वहा कौन सी काकु मानी जाय ? इस शका का समाधान अभिनवगुप्त के अनुसार यह ह कि सामान्य व्यवहार मे तो केवल दूरश्रव्यता प्रयोजन हो सकता है लेकिन नाटय मे किसी परिस्थिति को साथक बनाना या व्यक्तिविशेष की चित्तवत्ति पर प्रकाश डालना ही नेपथ्यपाठ या पुस्तकपाठ के अभिनय का प्रयोजन होने के कारण वहा भी अथबोध या चित्तवत्ति बोव ता होता ही है। इसलिये श्रव्यता रूपी प्रयोजन के आधार पर तीसरी काकु मानने की जरूरत नही ह । लेकिन किसी विशेष परिस्थिति मे 'स्वरकाकु' मान सकते है । जैसे—कुछ दूरी पर कुछ व्यक्ति झगड रहे हो तो शब्द स्पष्ट सुनाई न देने पर भी आवाज से ही समझ मे आ जाता ह कि झगडा हो रहा है ।

भरत ने सिफ 'साकाक्ष और 'निराकाक्ष' काकु ही कही है अथकाकु, रसकाकु या स्वरकाकु नही, फिर भी पाठ्य के जिस उच्चारणभेदरूप धम को उसने काकु कहा हे उसका कारण स्वरभेद है इसलिए उसे स्वरकाकु' सज्ञा दी जा सकती ह । स्वरो के विनियोग द्वारा पाठ्य और उर, शिर तथा कठ से उत्पन्न स्वरो मे सामान्य बोलचाल—भरत के वचनो से 'स्वरकाकु' के ये दो रूप समझ मे आते ह ।

भरत के अनुसार प्रश्नसूचक वाक्य को नीची ध्वनि मे शुरू करके उसका अ त सबसे ऊँची ध्वनि मे करना चाहिए । उसी वाक्य का ध्वनिकम उल्टा करने से सामा य वाक्य हो जाता ह । यही साकाक्ष और निराकाक्ष काकु ह । जैसे—'काम हो गया ? काम हो गया । इन दो वाक्यो मे से पहले मे 'गया' के अ त मे स्वर सबसे ऊँचा रहेगा । दूसरा वाक्य स्वीकृति सूचक ह क्योकि 'गया' मे काम' की अपेक्षा ध्वनि क्रमश नीची होती जायगी।

काकु शब्द की व्युत्पत्ति 'कक लौल्ये' धातु से ह जिसका अथ ह चचलता । लेकिन सदभ के अनुसार लौल्य का अथ ह स्वरवैचित्र्य । जिस वाच्यभूमि मे यह वैचित्र्य ईषत रूप से दिखे वह 'काकु' कहलाती ह । 'कक' का अथ जिह्वा भी होता ह । जिह्वा अर्थात् वाणी व्यापार से काकु कहा जा सकता ह ।

अलकार—'अल पर्याप्त काको स्वरूप येन सम्पाद्यते सोऽलङ्कार'—अभिनवगुप्त ने 'अलकार' की यह व्युत्पत्ति दी ह । इसका अथ यह ह कि काकु का स्वरूप जिसके द्वारा पर्याप्त रूप से सम्पन्न हो वह अलकार ह । ध्वनि के तीनो स्थान यानी म द्र, मध्य और तार मे से हरेक मे ध्वनि के फिर से नीच, मध्य, उच्च यानी अनुदात्त, स्वरित और उदात्त भेद हो सकते है । इन गुणो के कारण ही काकु स्फुट होती ह । भरत ने छ अलकार बताए ह—उच्च, दीप्त मन्द्र, नीच, द्रुत तथा विलम्बित । इनमे दो दो के तीन जोडे ह—उच्च दीप्त, मन्द्र नीच, द्रुत विलबित । शुरू के दो जोडे मुख्य रूप से स्थानो से और तीसरा जोडा लय से सबध रखता ह ।

'उच्च' शिर के अधोभाग मे रहता है । दूरस्थ के प्रति भाषण मे, बिस्मय, उत्तरोत्तर सजल्प (एक दूसरे से बढ बढ कर बाते), परोक्ष व्यक्ति को बुलाने और त्रास देने मे इसका प्रयोग होता है । तीन विभिन्न प्रकार के काय करने के कारण अभिनवगुप्त ने इसके ३ भेद किये—दूरस्थ के प्रति भाषण प्रयोजन होने से 'स्वरकाकु', विस्मयादि अपने हृदगत भावो को

प्रकट करने मे प्रयुक्त होने वाली 'रसकाकु' और त्रासादि देने मे यानी अ य व्यक्ति मे भाव उत्पन्न करने मे कारणस्वरूप विभावकाकु'।

'दीप्त' शिर के ऊध्वभाग मे स्थित होता ह। इसका प्रयोग आक्षेप, कलह, विवाद, अमष, घष्टता, क्रोध, शौय, दप, ललकार, भत्सना, क्र दन मे होता ह। स्वरकाकु ही शिर के तारतर भेद से 'श्रुतिकाकु' कहलाती ह। तार' शब्द का अथ ही प्रकष ह। द्वीप्त मे उच्च की अपेक्षा स्वर का प्रकष होता ही ह।

'म द्र' हृदय के ऊध्वभाग मे और 'नीच' हृदय के अधोभाग मे रहते ह। निर्वेद, ग्लानि, चि ता औत्सुक्य, दै य, याधि, शस्त्रक्षत, मूर्छा, मद, गुप्तकथन मे 'म द्र' और स्वाभाविक भाषण, व्याधि, शम, श्रम से उत्पन्न थकान, त्रम्त होने गिरने, मूर्छा मे 'नीच' प्रकट होता है। इनमे भी 'स्वचित्तवत्ति अपण होने पर अर्थात अपने भावो का बोध कराने मे रसकाकु और 'परस्य रूपोत्पादन' मे यानी दूसरे व्यक्ति म भाव उत्पन्न कराने मे अभिनवगुप्त ने 'विभावकाकु' कही ह। प्रयोजन भेद से अलकारो का मिश्रण भी हो सकता है।

'द्रुत' और 'विलबित' मुरय रूप से लय से सबधित अलकार है यह पहले कहा जा चुका है। भरत ने कहा है कि ये कण्ठ के ऊध्वभाग से सम्पन्न होगे जिसका अभिप्राय स्पष्ट नही है। त्वरितगति से युक्त 'द्रुत' और धीमी गति से युक्त विलबित' अलकार होता ह। विलास, बुदबुदाना, भय, शीत, ज्वर, त्रासित, वेदनादि मे 'द्रुत' का और श्रृगार करुण, वितर्कित विचार अमष, असूया अ॰यक्नाथ, प्रमाद, लज्जा, चि ता, तजन, दोषवणन, दीघरोग मे 'विल-बित' काकु होती है।

विभिन्न भावो की अभिव्यक्ति मे अनेक अलकारो का एक साथ प्रयोग होता है। दूर स्थित व्यक्ति से बात करने, ललकारने, डराने धमकाने आदि मे ध्वनि स्वाभाविकत तार से तारतर होती जाती ह और गति भी द्रुत हो जाती है। इसलिये इन प्रसगो मे उच्च, दीप्त, द्रुत अलकारो से युक्त काकु का प्रयोग करना चाहिए। व्याधि शोक, भयभीत, शस्त्र से क्षत होने, गूढ बात कहने, चि ता आदि मे स्वर नीचा हो जाता है, इसलिए मन्द्र, नीच अलकार-प्रयोग का विधान है। इन प्रसगो मे गति भी धीमी हो जाती है। इसी प्रकार अन्य परिस्थितियो मे भी एक से ज्यादा अलकारो का एक साथ प्रयोग होता है।

लघु अक्षरो से युक्त पाठच मे उच्चदीप्त और गुरु अक्षर युक्त पाठच जो सौम्य अथ और सुखकर भावो से पूण हो उसमे मन्द्र विलबित प्रयोग होता ह। जिनमे तीक्ष्ण, रूक्ष अक्षरो का ज्यादा सयोग हो उनमे भी दीप्त का प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार भरत ने अक्षरो की योजना के साथ भी अलकार विनियोग बताया है।

हास्य, श्रृगार, करुण मे विलबिता, वीर, रौद्र, अदभुत मे दीप्ता और वीभत्स, भया नक मे द्रुता, नीचा काकु का प्रयोग करना चाहिये। इस रूप मे नाना भावो और रसो के उप-युक्त काकु प्रयोग का भी भरत ने विधान किया ह।

अग—अग ६ है—विच्छेद, अपण, विसर्ग, अनुबन्ध, दीपन, प्रशमन। उच्चारण के बीच मे विराम के कारण होने वाला अग 'विच्छेद' है। तरगित होते हुए मधुर स्वर से युक्त नाद से रगस्थल को भरते हुए पाठ होने पर 'अपण' होता है। वाक्य समाप्ति पर होने वाला

न्यास विमग' ह । पदा के बीच मे जहा विच्छेद न हो यानी उच्छवास न हो वहा 'अनुबध' होता ह । तीनो स्थाना मे शाभित होने वाला स्वर का क्रमश चढते जाना 'दीपन' और तार म पहुचे हुए स्वरो का वैस्वय के बिना क्रमश नीचे उतरना 'प्रशमन' होता है ।

अभिनव गुप्त ने विच्छेद अनुब ध, अपण विसग और दीपन प्रशमन यो तीन द्विक बनाये ह । द्विको के अग विपरीताथक है । विच्छेद अनुब ध मे ध्वनि का 'त्रुटितत्व-अत्रुटितत्व' या 'अभाव-भाव' होता ह । विच्छेद मे ध्वनि न रहने से त्रुटितत्व या अभाव होता ह । भरत के अनुसार 'विसग' का अथ वाक्य के अ त मे होने वाला विराम है, लेकिन अभिनवगुप्त ने विसग को अपण का विपरीताथक बताया ह । 'अपण' मे नाद की पुष्टता यानी भरापन रहता है, इसलिये विसग मे अपुष्टता यानी भराव का अभाव होना चाहिये । विसग के भरतोक्त लक्षण 'वाक्य यास ' का अथ अभिनवगुप्त ने वाक्योच्चारण के समय नाद का त्याग अथवा क्षीणता किया है । लेकिन किसी विशेष चित्तवृत्ति मे तो यह हो सकता ह, सदा नही । अभिनवगुप्त ने इनका सम्बन्ध नाद के पीवरत्व अपीवरत्व से भी जोडा है, इसलिये सामान्य अथ यह निकाला जा सकता ह कि अपण मे नाद पुष्ट या भरा हुआ और उत्तरोत्तर बढती हुई तीव्रता से युक्त तथा विसग मे इसके विपरीत अपुष्ट, विना भरा और क्रमश क्षीण होता हुआ रहता है । क्रमश दीप्त होता हुआ यानी तारस्थान की ओर चढता हुआ 'दीपन' और क्रमश शभित होता हुआ यानी तार से म द्र की ओर उतरता हुआ 'प्रशमन' होता है ।

इस प्रकार दीपन प्रशमन मे नाद की 'तारता' (पिच), अर्पण विसग मे 'तीव्रता' (इ टैंसिटी) और विच्छेद अनुब ध मे 'काल' (डयूरेशन)—नाद के तीन गुणो का समावेश किया जा सकता है । नाद की चौथी विशेषता 'विशेष गुण' (टिम्बर) का यहा अभाव ह क्योकि नाटच प्रयोग के लिये विशिष्ट प्रकार की कठ ध्वनि वाले नर का चुनाव तो किया ही जाता ह, इसलिये चुन लिये जाने पर 'कठगुण' का नही बल्कि कठ मे भावानुकूल परिवतन का ही महत्त्व हो सकता है । इसी को काकु कहा गया है । विशेष गुण' का सम्ब ध विभिन्न व्यक्तिया या वाद्यो के उस गुण से ह जिसके कारग एक व्यक्ति की ध्वनि अ य व्यक्ति से अथवा एक वाद्य की दूसरे वाद्य से अलग पहचानो जाती ह ।

पाठ्य मे हास्य शृगार को अभिव्यक्ति के लिये अपण, विच्छेद, दीपन, प्रशमन का, करुण के लिये दीपन, प्रशमन का वीर, रौद्र, अद्भुत के लिये विच्छेद अनुबन्ध, दीपन, प्रशमन का, बीभत्स, भयानक के लिये विमग, विच्छेद का प्रयोग करना चाहिये । अगो का त्रिस्थानगत प्रयाग इस प्रकार ह—दूरस्थ के प्रति भाषण मे शिर से उत्पन्न तार स्थान से, कुछ पास स्थित के प्रति कण्ठ से उत्पन्न मध्य स्थान से और बिल्कुल पास वाले के प्रति हृदय से उत्थित म द्रस्थान से पाठ्य प्रयोग करना चाहिये । मन्द्रतम और तारतम स्थानो का प्रयोग नही होता ।

रसो मे विभि न लयो का विनियोग यो ह—हास्यशृगार मे मध्य लय, करुण मे विलम्बित और वीर, रौद्र, अद्भुत, बोभत्स, भयानक मे द्रुत । विच्छेद मे विराम के काल का निणय लय के आधार पर ही होता ह, इसीलिये लय विधान भी किया गया ह ।

भरत ने अग मे विराम का आधार अथसमाप्ति बताया गया है, छन्द नही क्योकि

अथसमाप्ति का बोध कराने के लिये एक, दो तीन या चार अक्षरो के वाद भी विराम हो सकता है लेकिन छन्द मे विराम निश्चिन स्थान पर ही होता ह। विराम भेद से एक ही वाक्य का अथ बदल जाना ह। जैसे—नही जाओ। इसमे नही के वाद विराम करने से 'जाओ' अथ निकलेगा और विराम के बिना एक साथ उच्चारण से 'मत जाओ'। विराम का गलत स्थान पर प्रयोग हाने से अथ का अनथ भी हो सकता है। इसलिये भरत ने विराम मे विशेष प्रयत्न करने के लिये कहा ह।

आगिक वाचिक अभिनय मे भी विराम का अत्यन्त महत्त्व है। बात शुरू होने पर दृष्टि उठती और समाप्ति के साथ नीचे गिरती ह। बात के आरम्भ और समाप्ति के साथ हाथ भी उठते व गिरते ह। वीर रौद्र रस मे हाथ मारने के लिये आकुल हाते ह और बीभत्स मे घणा के कारण सिकुड जाते ह। करुण मे स्तब्ध होने पर और भयभीत हाने पर हाथ निचेष्ट होकर खुल जाते ह। इस प्रकार भरत के अनुसार अथ निश्चय हाथो के अभिनय, अलकार और विराम से होता है।

विराम का प्रयोग अथ समाप्ति, पद समाप्ति या 'प्राण' के अनुरोध से होता है। 'प्राण' का अथ सामान्यत 'सास टूटना' लिया जा सकता है। अभिनवगुप्त ने इसके लिये कहा है—'प्राणा रसभावाद्या तदौचित्येन छेद' अथात रसभाव नाटच प्रयोग के प्राणरूप है। रस भाव के औचित्य के अनुसार होने वाले 'छेद' या विराम को 'प्राणवश' कहा जा सकता ह।

अथबोध मे अक्षरो के कषण का विशेष महत्त्व ह। 'कषण' का अथ ह दीघ उच्चार। इसका सम्बन्ध लय से ह। अक्षरो का कषण होने पर लय स्वाभाविक रूप से विलबित हो जाती है। पाठ्य मे अक्षरो को अधिक से अधिक ६ कलाओ तक खीचा जा सकता ह ('कला' सगीतशास्त्र का पारिभाषिक शब्द ह जिसका मुख्य अथ १० लधु अक्षरो के उच्चारण का काल है।) विराम का प्रयोग इस ढग से होना चाहिये कि छन्द टूटे नही, छन्दो मे मिश्रण का भ्रम न हो और अथ भग न हो।

भरत की काकु का ध्वनि के 'गुण' से सबध नही ह। काकु और ध्वनि के 'गुण' का सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न सबसे पहले शाङ्गदेव के सगीत रत्नाकर' मे किया गया है। इस ग्रन्थ के प्रकीणकाध्याय मे 'छाया' नामक स्थाय के पर्याय के रूप मे 'काकु' का प्रयोग हुआ है। काकु के ६ भेद कहे गये है—स्वरकाकु, रागकाकु, अन्य रागकाकु, देशकाकु, क्षेत्रकाकु और यन्त्रकाकु। इनका सबन्ध सगीत से है। इसलिये यहा नामोल्लेख ही पर्याप्त है।[1]

'काव्य प्रकाश' के ततीय उल्लास मे आर्थी व्यजना के निरूपण से भी काकु के महत्त्व पर कुछ प्रकाश पडता ह। इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित कारिका द्रष्टव्य ह।

> वक्त बोद्धव्य काकूना वाक्य वाच्यान्यसन्निधे।
> प्रस्ताव देश कालादेर्वैशिष्टचात प्रतिभाजुषाम।
> योऽथस्यान्याथधीहेतुर्व्यापारो व्यक्तिरेव सा॥

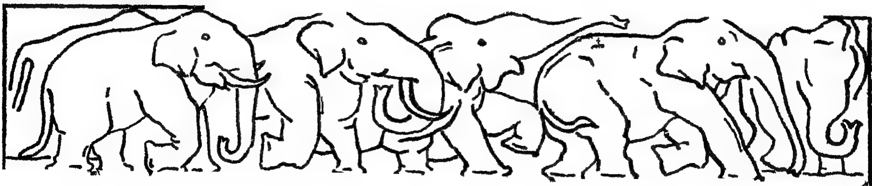
---

१ विशेष विवरण के लिये सगीत रत्नाकर, २, श्लोक १२०–१२६ देखे। विशेष विवेचनात्मक टिप्पणियो के लिये लेखिका का शीघ्र प्रकाशित होने वाला 'सगीत रत्नाकर' पर हिन्दी टीकाग्रथ द्रष्टव्य है।

अर्थात वक्ता, बोद्धा, काकु, वाक्य, वाच्यादि के वैशिष्टच से विदग्ध लोगो को वाच्याथ से भिन्न अ याथ की प्रतीति कराने वाला जो अथ व्यापार होता ह वह आर्थी व्यञ्जना ही ह। काकु का लक्षण मम्मट ने 'ध्वनेर्विकार' दिया ह। काकु (स्वर भेद) वाच्याथ से भिन्न लेकिन वाच्याथ के द्वारा ही व्यञ्जित होने वाले अथ का बाव कराती ह। अभिनव गुप्त ने अथबोधिका अथकाकु और भावबोधिका रसकाकु—मे जो दो भेद काकु के किये उन दोनो का समावेश काव्य प्रकाश की काकु मे हो जाता है क्योकि शब्दो के द्वारा अथबोध और उन शब्दो मे रहने वाले स्वर भेद से चित्तवत्तिबोध—ये दोनो प्रयोजन सिद्ध हो जाते है।

भरत के काकु विधान के विश्लेषण से यह निष्कष निकलता ह कि काकु के द्वारा बोधित होने वाली वस्तु व्यग्य ही होती ह वाच्य नही। वाच्याथ काकु का क्षेत्र नही ह। शब्दो के द्वारा वाच्याथ से भिन्न अनुभूत होने वाला अथ और स्वरो के आधार पर होने वाला भाव-बोध—दोनो व्यजित होते ह। किसी रस या भाव का नाम लेने से उसकी अनुभूति नही होती बल्कि उसके अनुकूल वातावरण का निर्माण करने पर ही होती ह क्योकि रस या भाव स्वरो के वाच्य नही होते बल्कि स्वरो के व्यग्य होते ह। वहा अभिधा, लक्षणा और आर्थी व्यजना पीछे छूट जाती है। जब शब्द की सब शक्तिया अभीष्ट भाव का बोध कराने मे असमथ हो जाती ह तब काकु अपना काय करती ह। चढना उतरना, तीव्र मन्द होना और विस्तार-सकोच-यही स्वर के धम ह, यही काकु ह यही सगीत के भावपक्ष का आधार और प्राण है।

काकु सबधी इस सारी चर्चा के आधार पर यह निष्कष निकाला जा सकता है कि भरत की काकु का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत ह जिसमे गान' तथा ध्वनि के 'विशेष गुण' को छोड कर सामान्य बोल चाल और पाठच से सबद्ध ध्वनि के सब धम समाविष्ट ह। काव्य प्रकाश कार की काकु आर्थी व्यजना के अनेक कारणो मे से एक ह जिसमे अभिनवगुप्त की अथकाकु और रसकाकु का समावेश ह। भरत की काकु नाटच से, मम्मट की काकु काव्य से और शार्ङ्गदेव की काकु मुख्य रूप से गीतवाद्य से सबधित ह। वास्तव मे ये सभी विभिन्न क्षेत्रो मे ध्वनि के उस धम की द्योतक है जिसके कारण अथबोध और भावबोध होता है जो ईश्वर प्रदत्त वाणी के मनुष्य कृत विकास की सूचक ह।



"प्राचीन भारतीय पुर एवं संस्कृति"

उदय नारायण राय

आज के युग मे हमे ग्राम की तुलना मे नगग मे अविक तडक भडक देखने को मिलती है। जब गाव का रहने वाला पहली बार नगर मे आता ह तो वहा की ऊँची अट्टालिकाओ, लम्बे चौडे राजमार्गो पर तेज रफ्तार से भागती हुइ तरह तरह की सवारियो नाटचशाला, सिनेमा घर, मनमोहक वस्तुओ से सुशोभित दूकाना तथा रात की रोशनी आदि की देख कर वह अपने को एक नई दुनिया मे पाने लगता ह। पुर के लागा की रहन सहन, बात चीत का ढग, दैनिक चया तथा आर्थिक और बौद्धिक जीवन आदि ग्रामवासियो की अपेक्षा पथक हुआ करता ह। इन सब बाता का देखते हुए हमारे मन मे इस कुतूहल का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही ह कि क्या प्राचीन काल मे भी ग्राम जीवन और नगर जीवन मे इस तरह का कोई भेद होता था या नही ? हमारा प्राचीन साहित्य विश्वास दिलाता है कि यह अ तर हमार देश म कोई आज ही नही, पहले भी माना जाता था। इस सब ध मे कालिदास के 'शाकु तलम नामक नाटक मे एक महत्त्वपूण उल्लेख मिलता ह। इस ग्रन्थ मे दिखाया गया ह कि राजा दुष्यन्त की प्रेयसी हसपदिका उनसे रुष्ट ह। वे विदूषक को आदेश देते ह कि तुम जाकर उसे जरा 'नागरिक वत्ति' से समझा दो।[1] इस समस्त पद से तात्पय शहर मे रहने वाले लोगा के वार्तालाप की निपुणता एव व्यवहार चातुय से है।

इसी ग्र थ मे कण्व ऋषि के आश्रम का वणन आता है, जिसमे शाङ्गरव और शारद्वत नामक उनके दो प्रिय शिष्य रहते थे। आचाय की आज्ञा के अनुसार वे शकुन्तला को ले कर राजा दुष्य त की राजधानी हस्तिनापुर मे उसे सोपने को पहुचे। उसका दुष्यन्त के साथ गान्धव विवाह कण्व के आश्रम मे पहले ही हो चुका था। शाङ्गरव वहा पहुँचते ही घबडा कर शारद्वत से अपने मनोभाव प्रकट करने लगा "मित्र ! यह बात तो सही है कि राज दुष्यन्त बडे ही आचार विचार वाले ह और उनके राज्य का कोई भी व्यक्ति अपने धम औ मर्यादा को नही छोडता, पर सूनी जगह पर रहने के कारण यहा का जनरव मुझे काटने दौ रहा है। मेरी तो दशा वैसी ही हो गई ह जिस तरह तेज आग की भयकर लपटो से खाव होते हुये घर को देखने पर होती है।'[2] शारद्वत भी उसका समथन करता हुआ कहता है— "मेरी भी दशा तुम्हारी ही तरह हो गई ह। पुर मे आने पर मनुष्य कुछ इसी तरह भोचक्क

---

१ "सखे ! गच्छ, नागरिकवृत्त्या सान्त्वयैनाम"

शाकुन्तलम, अक ५

२ "तथापीद शश्वत्परिचित विविक्तेन मनसा
जनाकीण मन्ये हुतवहपरीत गहमिव ॥
अभिज्ञान शकुन्तलम, अक ५,११

हो जाता ह । मै भी सासारिक सुख और वासनाओ मे चिपटे हुये नागरिको को उसी तरह देखता ह जिस तरह स्नान किया हुआ व्यक्ति तेल से सने गन्दे आदमी को, जागता सोते को, स्वतत्र पराधीन को या पवित्र नर पापी को देखता ह ।"[१] इन उल्लेखो से स्पष्ट है कि नगर जीवन और ग्राम जीवन तथा इसी तरह नगर जीवन और अरण्य-जीवन म भेद था ।

कालिदास प्रणीत मालविकाग्निमित्रम मे ग्राम नगर भेद के विषय मे एक महत्त्वपूण उल्लेख मिलता ह । इसके पहले अक मे गणदास और हरदत्त नाम के दो आचार्यो का वणन मिलता ह जो कि सगीत के ममज्ञ थे । पर, दोनो एक दूसरे से जलते और नीचा दिखाने की ताक मे रहते थे । एक दिन वे एक दूसरे को हराने की ठान कर राज दरबार मे पहुचे और महाराज से निवेदन किये कि श्रीमन, ! हम लोगो के कला ज्ञान की परीक्षा अपने सामने ले कर सदा के लिये निपटारा कर दे कि हम मे कौन विषय का अधिक ममज्ञ है ? उस समय दरबार मे सयोग वश महारानो और उनके साथ परिव्राजिका कौशिकी भी उपस्थित थी । महाराज देवी कोशिकी से बडे ही शिष्टाचार के साथ कहते है कि इन दोनो कलाकारो की ज्ञान परीक्षा अगर आप ही कर देती तो अच्छा रहता । इस पर परिव्राजिका अचम्भित हो, कहती ह— 'महाराज ! आप भी क्या मजाक करते है। नगर के रहते रत्न की परख कही गाव मे होता है' ?[२] राजशेखर प्रणीत कपूरमञ्जरी मे विदूषक (कुरङ्गक नामक) कहता है कि कस्तूरिका का विक्रम कही ग्राम मे सम्भव हो सकता है ? (कत्थूरिआकुग्गामे विवि कणि आदि) । इस उल्लेख से स्पष्ट है कि नगर म गुण की परख रखने वाले व्यक्तियो एव कला कारो का बाहुल्य था । इस कथन की तुलना हम बिहारीलाल के निम्नलिखित दोहो से कर सकते है—

वे न इहा नागर बडे जिन आदर तो आब ।
फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ गॅवई गाव गुलाब ॥
कर ल सूँघि सराहि कै सब रहे गहि मौन ।
ग धी ग ध गुलाब की गॅवई गाहक कौन ॥

अजो ! गाव मे गुलाब का फूलना न फूलना एक सा ही ह । भला, वहा वे कदरदा जौहरी (नागर) कहा ह जो उसकी कीमत को समझे । अरे इत्रफरोश ! तेरी अक्ल कही मारी गई ह क्या रे ? तू इस बात को समझता क्या नही कि तरे गुलाब के गाहक भला कही गाव (गॅवई) मे मिल सकेगे ? मालविकाग्निमित्रम एव कपूरमञ्जरी के प्रमाणो से स्पष्ट है कि जो विद्वान यह कहते ह कि प्राचीन भारत मे नगर नही थे वे भ्रम मे ह । ग्राम और नगर मे जो अन्तर आज माना जाता ह वह पहले भी माना जाता था ।

भास-कृत स्वप्नवासवदत्तम मे वणन मिलता ह कि जब राजा का दल बल सूने जगल मे ऋषि के आश्रम में प्रवेश करता ह तो वहा खलबली मच जाती ह । राजा का एक मुँहलगा

१ अभ्यक्तमिव स्नात शुचिरशुचिमिव प्रबुद्ध इव सुप्तम ।
बद्धमिव स्वैरगतजनमिव सुखसगिनमवैमि ॥" वही, अक ५,१२

२ अलमुपालम्भेन ! पत्तने सति ग्रामे रत्नपरीक्षा'
मालविकाग्निमित्रम, अक १

कर्मचारी जो सुलझा हुआ भी था दूसरे कमचारियो को फटकार लगाता हुआ कहता ह—"हे ! आप इस बात को समझते क्यो नही कि यह तपोवन है ? यहा किसी प्रकार की भगदड मचाने की आवश्यकता नही ह क्योकि इससे राजा की बदनामी होगी । आश्रम मे रहने वाला के साथ मीठे वचन बोलना चाहिए और अच्छा व्यवहार दिखाना चाहिये । वे नगर के अपमान से बचने के लिये ही तो आ कर वन मे रहते है।" इस उद्धरण से स्पष्ट ह कि नगर लौकिक साधनाओ के लिये था और जगल धम-साधना के लिये ।[१] पारमार्थिक बौधायन ने कहा ह कि पुर मे रहने वाले मनुष्य का नेत्र वदन एव शरीर कुण्ठित हो जाता ह तथा फलस्वरूप सिद्धि प्राप्ति के लिये वह आयोग्य हो जाता है ।[२] हप कृत रत्नावली नाटिका मे विक्रमबाहु का अमात्य वत्सभूमि उदयन की राजधानी कौशाम्बी मेरा जदरबार की चहल पहल का देख कर स्तब्ध हो कहने लगता ह —अजी ! कही हथसारो मे बँधे कुञ्जर मेरी दष्टि को लुभा रहे है तो कही मन्दुरा मे बँधे हुये तुरग ! कभी सगीत ध्वनि से मै आकृष्ट हो रहा हूँ तो कही दरबार मे लगी गोष्ठियो के द्वारा । राजमहल के बाहरी दश्य को ही देख कर सिंहलेन्द्र का ऐश्वय मुझे विस्मत हा जाता है । प्रवेश द्वार पर ही खढे मेरे कुतूहल को लख कर द्वारपाल मुझे गवार के रूप म ग्रहण कर रहा है ३—

'आक्षिप्तो जयकुञ्जरेण तुरगानिवणय वल्लभा
न्सगीतध्वनिनाहृत क्षितिभत गोष्ठीषु तिष्ठत्क्षणम ।
सद्यो विस्मतसिंहलेन्द्रविभव कक्ष्याप्रदेशेऽप्यहो
द्वा स्थेनैव कुतूहलेन महता ग्राम्यो यथाऽह कृत ।।

हुयेनसाग लिखता ह कि कान्यकुब्ज तथा अन्य नगरो मे रहने वाले भारतीय नागरिको की चाल ढाल अनुकरणीय थी । वात्स्यायन के कामसूत्र मे वर्णित 'नागरक' शहर की सभ्यता मे पले हुए कला-प्रमी शौकीन भारतीय नागरिक का प्रतिनिधित्व करता है । उन्होने 'नागरक' की जिस दिनचर्या का उल्लेख किया है, उसमे प्राचीन पुर-समाज के सास्कृतिक जीवन का हमे एक सुन्दर प्रतिबिम्ब मिलता है ।

प्राचीन समय मे नागरिको की वेशभूषा किस तरह की होती थी यह तो स्वय एक बडा विषय हो जाता है जिस पर स्वतत्र ग्रन्थ का निर्माण किया जा सकता है । यहा सक्षेप मे इतना कह देना आवश्यक ह कि चीनी यात्रियो का यह कथन कि भारतवष मे दर्जीगीरी होती ही नही थी, पूणतया निराधार ह । उनका यह वक्तव्य नगर मे रहने वालो की वेश भूषा से नही, अपितु बौद्ध श्रमणो के पहनावे से सम्बन्धित ह । चीनी यात्री यहा अधिकतर

१ 'परिहरतु भवान नपापवाद न परुषमाश्रमवासिषुप्रयोज्यम ।
नगरपरिभवान्विमोक्तुमेते वनमभिगम्य मनस्विनो वसन्ति ।।"
स्वप्नवासवदत्तम अक १

२ 'पुररेणुकुण्ठितशरीरस्तत्परिपूणनेत्रवदनश्च । नगरे वसन
सिद्धिमवाप्स्यतीति न तदस्ति ।' बोधायन धमसूत्र, २,३,५३ ।

३ देखिये मेरा ग्रन्थ 'स्टडीज इन एशेट इडियन हिस्टी ऐड कल्चर' प्रस्तावना ।

मठो मे रहते थे जहाँ पर भिक्षु लोग बिना सिले हुए वस्त्रो को प्रयोग मे लाते थे। जहा तक परवासियो का प्रश्न ह, व बारीकी के साथ सिले हुए कपडे पहनते थे। वस्तुस्थिति तो यह ह कि सैंधव सभ्यता काल से ही हमारे देश मे सुई तागे व्यवहार मे लाये जाते थे तथा कपडो की कतरन एव सिलाई एक पुरानी भारतीय परम्परा थी। अधोवस्त्र के रूप मे अधिकतर धोती काम मे लाई जाती थी, जो सूती और रेशमी दोनो ही हुआ करती थी। लोग कभी कभी पायजामा भी पहनते थे जिसको 'स्वस्थान'[1] कहा जाता था। लगता है कि भोजपुरी भाषा का 'सुत्थन' शब्द इसी 'स्वस्थान' शब्द का अपभ्रंश है। उत्तरीय वस्त्र के रूप मे मिजई या कुर्त्ता का प्रयोग होता था। विशेष अवसरो पर लम्बा कोट या घुटनो तक लटकती हुई अचकन पहनी जाती थी। सिर के ऊपर लोग टोपी या पगडी धारण करते थे। पुर ललनाएँ लहँगा, साडी, चोली तथा किनारेदार चादर प्रयोग मे लाती थी।[2]

सिर के बालो को सजाना उस समय के शृङ्गार का एक अभिन्न अग था। अजन्ता और बाघ की चित्रकारिया पुर सुन्दरियो द्वारा बाल सँवारने के ढग पर अच्छा प्रकाश डालती है। स्त्रिया अपने बालो को काढ कर एक सुन्दर चोटी गाछती थी जिसे 'वेणी' कहा जाता था। कभी कभी वे बालो को समेट कर ललाट पर एक जूडा बाधती थी जिसे हमारे प्राचीन साहित्य में 'ललाटजूटक'[3] कहा गया है। बाणभट्ट ने हर्षचरित मे लिखा ह कि थानेश्वर की वधुएँ अपने केशपाश पर जाली लगाती थी। यह आज की महिलाओ के 'हेयर नेट' का स्मरण दिलाता है। अधिक सौन्दर्य लाने के लिये वे अपने बालो मे यथास्थान सुन्दर फूल भी खोस लेती थी। राजशेखर के अनुसार कान्यकुब्ज की ललनाओ की केशरचना पूरे देश मे आदर्श मानी जाती थी।[4] उनके समय मे भारतवर्ष का यह प्रधान नगर था, अतएव वहा के नागरिको की वेशभूषा का अनुकरण यदि अन्य स्थानो पर किया जाता हो, तो यह कोई आश्चर्य की बात नही है। हमारे देश मे आज दिन फैशन की रोशनी बम्बई और दिल्ली जैसे महानगरो से आती है।

वात्स्यायन लिखते है कि नागरक अपने बालो को भलीभाति सँवार डाले अपने मुखबास को शुद्ध करने के लिये उसे ताम्बूल-सेवन तो अवश्य ही करना चाहिए (गृहीतमुखवासताम्बूल कार्यान्यनुतिष्ठेत्)। उसे सफेद और चिकने वस्त्रो का प्रयोग करना चाहिए

१ लेखक का ग्रन्थ 'प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन' (प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडेमी), पृष्ठ ३३१।

२ वही, पृष्ठ ३३१।

३ वही पृष्ठ ३३२।

४ 'यो मार्गः परिधानकर्मणि गिरा वा सूक्तिमुद्राक्रमे।
भङ्गिर्या कवरीचयेषु रचना यद्भूषणालीषु च ॥
दृष्टं सुन्दरि कान्यकुब्जललना लोकेरिहान्यच्च य
च्छिक्षन्ते सकलासु दिक्षु तरसा तत्कौतुकिन्य स्त्रिय ॥'

बालरामायण, १०, ९०

ताकि उसके व्यक्तित्व का उभाड अच्छा से अच्छा सम्भव हो सके। स्नान करते समय वह 'स्नानचूण' का प्रयोग करे।[१] लगता ह कि इस शब्द से वात्स्यायन का तात्पय किसी तरह के उबटन से ह जिसे पुरवासी नहाने के पहले प्रयोग मे लाते थे। उनके अनुसार तीसरे या चौथे दिन नागरक को अपनी दाढी अवश्य ही बनवा लेनी चाहिये। उस समय आज जैसा 'सेफ्टी रेजर' या अपने हाथ से दाढी बनाने का कोई साधन न था। इस काम के लिये नाई का सहारा लेना आवश्यक था, जिसका प्रतिदिन मिलना असभव था। नही तो यदि वात्स्यायन आज के युग मे होते, तो वे लिखते कि प्रतिदिन दाढी बनाना नितान्त आवश्यक ह।

पुरवासी उस समय भी सुगन्धित तेल और इत्र आदि का व्यवहार करते थे। भारतीय नगरो मे उनका उत्पादन अधिकता मे होता था तौर विदेशो मे उनकी तगडी माग थी। रोम का प्लिनी नामक नागरिक अपने देश वासियो को धिक्कारते हुए लिखता है कि वे राष्ट की अतुल धनराशि भोगविलास की वस्तुआ के पीछे भारतवष भेज देते थे। आधुनिक केवडा जल की भाति फूलो के निचोड से सुरभित जल तैयार किया जाता था जिसे लोग छोटी पिचकारियो की सहायता से अपने वस्त्र पर भली भाति छिडक लेते थे। चन्दन को घिस कर अनुलेप तैयार किया जाता था, जो बडा ही लोकप्रिय था। इसीलिए प्राचीन साहित्य मे चन्दनानुलेप'[२] का प्रचुर उल्लेख मिलता है। गर्मी के दिनो मे पुर सुन्दरिया इससे अपने अवयवो को चर्चित करती थी (काचित, पिपेषान्तर्विलेपनम)। सुवास के लिए आज लोग अगरबत्ती को ध्यवहार मे लाते हैं। उस समय अमीर लोग अपने बैठक खाने, शयनगह तथा पूजाघरो मे चन्दनबत्ती या धूपबत्ती जलाते थे। स्त्रिया चन्दनबत्ती (कालागरु) के धुए से अपने केशपाश को सुवासित कर अपने प्रियतम से मिलने जाती थी (शिरासि कालागरुधूपितानि कुर्वन्ति नाय सुरतोत्सवाय)।

उस समय भी अगराग कास्मेटिक का प्रयोग होता था। ये दो तरह के होते थे। एक तो केसरिगा रग का होता था, जो कास्मीर से मिलने वाले कुकुम के केसर से तैयार किया जाता था। इसे प्राचीन साहित्य मे 'कुकुराग'[३] कहा गया हैं। यह बडा ही खुशबुदार होता था और पयोधर एव नितम्ब भाग पर लगाया जाता था (पयोधर कुकुमरागपिञ्जरै)। दूसरा गाढे लाल रग का होता था जो लाक्षारस से तैयार किया जाता था। इसे अधरो के ऊपर चढाया जाता था (लाक्षारसरागलोहितै)। इस क्रिया को 'अधर-रजन[४] कहा जाता था। यह आधुनिक युग के लिपस्टिक का स्मरण दिलाता है। कुमारसभव मे कहा गया ह कि पावती के ओठ लाक्षारस के अगराग की तरह लाल रग के लगते थे।[५] इसे चरणो पर भी चढाया जाता था, जो कि महावर का स्मरण दिलाता ह। लाक्षारस का अगराग 'अलक्तराग'

---

१ देखिए मेरा ग्रथ 'प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीबब, पष्ठ ३३४।

२ देखिए मेरा ग्र थ 'प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर-जीवन', पृ० ३३५

३ ऋतुसहार पृ० ६, ५

४ नाट्शास्त्र २३, ३०

५ ऋतुसहार, १, ५

भी कहलाता था (अलक्तपाटलेन)। इसी अलक्तक शब्द से आलता शब्द निकला। आधुनिक काल मे स्त्रिया आलते से महावर रचती है।

उस समय के रईसो की सवारियो मे घोडा गाडी उल्लेखनीय ह। यह आकार मे आधुनिक पालकी गाडी या बग्घी के तुल्य थी, जिसमे कभी कभी दो घोडे जुते रहते ह। उन्नीसवी तथा बीसवी सदी के प्रारंभिक भाग मे धनीमानी सेठ साहूकारा तथा जमीदार घरानो मे इस तरह की घोडागाडिया प्रयोग मे लाई जाती थी। पटना मे इस तरह की घोडा गाडिया अब भी चलती ह। धनिक नागरिक पालकी पर भी निकलते थे। अमरावती की कला मे कई तरह की हवादार पालकियो का अकन किया गया ह। नागरिक मनोविनोद के लिए उद्यान यात्रा (पिक्निक) किया करने थे। उस समय नगरो मे उद्यान लगाने की प्रथा लोकप्रिय थी। मदसौर के लेख से ज्ञात होता है कि मालवा के दशपुर नामक नगर की वाटिकाएँ वहाँ की गजगामिनी पुरवधुओ की चाल से सुशोभित होती रहती थी।[1] मृच्छकटिक मे 'पुष्पकरण्डक नामक पुरवाटिका का उल्लेख मिलता ह, जो इलाहाबाद के आधुनिक कम्पनी बाग या खुसरोबाग की भाति नगर शोभा का प्राण रहा होगा।[2] इस नाटक मे विदूषक इसकी प्रसशा करता हुआ कहता ह कि यह उद्यान अपनी शीतलता द्वारा आज नन्दनवन को भी मान कर रहा है (लघुकरोतीव नन्दनवनस्य सश्रीकताम)।

रघुवश से ज्ञात होता ह कि उज्जयिनी के नागरिक मनोविनोद के लिए उद्यानयात्रा (पिक्निक) करते थे। इसका सबसे अच्छा वणन वात्स्यायन ने किया है। वे लिखते है कि नागरिक अच्छे वस्त्र और आभूषणो से सुशोभित (स्वलकृता) हो भली भाति सजी हुई सवारियो मे बैठ कर समीपवर्ती उद्यान मे जायँ। वे अपने साथ खाने पीने का सामान और गाने बजाने की टोली को भी ले ले। वे अपना पूरा दिन वही पर मधुर वार्तालाप और सामूहिक मनोविनोद मे व्यतीत करे और सन्ध्या के समय तक अच्छी तरह दिलबहलाव कर प्रसन्नचित हो घर वापस लौटे।[3] वात्स्यायन के वणन से लगता है कि उस समय उद्यान यात्रा अत्यन्त लोकप्रिय थी। पुरवाटिका प्रेमी प्रेमिकाओ के मिलन का गुप्त स्थान भी हुआ करता था। बहुधा वहा से युवको द्वारा अपनी प्रेयसी युवती को भगा ले जाने का घटनाएँ हो जाया करती थी (कन्यामपहरेदिति विवाहयोगा)।

अमीरो के घर खर्चीली दावते हुआ करती थी जिनमे मास मदिरा खूब चला करती थी। इन्हे 'आपानक' कहा जाता था। ऐसे अवसरो पर तरह तरह की मदिराएँ शराब के प्यालो मे, जिन्हे 'चषक कहा जाता था, भर कर पिलायी जाती थी। लगता है कि राजकुल की महिलाएँ भी कभी कभी मदिरापान करती थी। मालविकाग्निमित्रम नामक नाटक मे अग्निमित्र की प्रधान महिषी इरावती मदिरा मे उन्मत्त दिखाई गई ह।[4] विवाह के लिए प्रयत्न

१ 'अजस्रगामिश्च तुरागनभि वनानि यस्मि समलकृतानि' सरकार, सेलेक्ट इस्क्रिप्शस, पृ० १९१

२ देखिते, मेरा ग्रथ, 'हमारे पुराने नगर' (प्रकाशक, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलहाबाद), पृ० ११३।

३ कामसूत्र, पृ० ५३, सूत्र ४० ४१।

४ मालविकाग्निमित्रम्, पृ० ४९।

(कोटशिप) भी एक प्राचीन परम्परा थी। इसे 'अनुरजन' कहा जाता था (स्वयमेवानुर जयेत)। गुणसपन्न युवक एव युवतियो के ऐसे भी उदाहरण मिलते थे जिनका विवाह गरीबी या मा बाप के मर जाने के कारण रुक जाता था। अतएव विवाह के हेतु स्वय प्रयत्न के लिए वे बाध्य हो जाया करते थे। प्राय धनिक कुलो मे भी यह प्रथा प्रचलित थी। वात्स्यायन लिखते है जिस युवती पर युवक अनुरक्त हो, उसे वह विविध उपायो द्वारा प्रसन्न करने की चेष्टा करे (तया सह पुष्पावचय ग्रथन दुहितकाक्रीडायोजनम) अच्छे वस्त्र एव आभरणो से विभूषित होकर अपनी प्रेयसी के समक्ष जाय क्योकि युवतिया प्राय दाशनीय व्यक्ति से ही अधिक प्रभावित हाती हैं (युवतयो हि ससष्टमभीक्षणदशन च पुरुष प्रथम कामय ते)। उसके मन मे अपने प्रति अनुराग उत्पन्न करने के लिए वह उसे ऐसी वस्तुआ को भेट म द जिसमे उसकी अभिरुचि हो या सुन्दर कथा कहानिया और मधुर गीत आदि द्वारा उसे रीझ लेने की चेष्टा करे। (वधमानानुरागो वाख्यानके मन कुवतो म वर्थाभि कथाभिश्चित्तहारिणीभिश्च रजयेत)। इसी तरह यदि प्राप्त यौवना, किसी गुणसपन्न एव दशनीय युवक को अपनी चेष्टाओ द्वारा पति चुनने मे सफल होती थी, तो वह विवाह सामाजिक दष्टि से ठीक समझा जाता था। राजकुलो मे पतिवरण के इसी सिद्धान्त को लेकर स्वयवर की प्रथा निकली होगी।

नगर समाज कला और सगीत का प्रेमी सदा से ही रहा है। उस समय के नगरा मे ऐसी सस्थाएँ वतमान थी, जहा पर ललित कला के विविध विषयो—गाना बजाना तथा चित्रकारी आदि—की शिक्षा दी जाती था। मालविकाग्निमित्रम मे एक कलाभवन का उल्लेख मिलता है जिसमे गणदास नामक आचाय सगीत की शिक्षा देता था। वात्स्यायन ने लिखा ह कि प्रत्येक नागरिक के लिए उच्च कला का ज्ञान नितान्त आवश्यक ह। ललितविस्तर नामक ग्र थ मे राजकन्या गोपा के साथ कुमार सिद्धाथ के विवाह का जब प्रश्न छिडता ह उस समय उसके पिता इसके लिये अपनी अ यमनस्कता प्रकट करते हुए आग्रह करते ह कि हमारी कुलपरपरा के अनुसार अभी तक कन्याओ का विवाह कला मे निपुण व्यक्ति के ही साथ होता आया है। कुमार सिद्धाथ तो कलाज्ञान से सवथा रहित है। मैं अपनी कलानिपुणा पुत्री का उनके साथ विवाह, क्यो कर दूँ ?[1] जो बाजे नागरिको मे विशेष रूप से लोकप्रिय थे उनमे वीणा, बासुरी और मृदग उल्लेखनीय है। भास ने 'चारुदत्त' नामक नाटक मे वीणा को समुद्र से निकला हुआ रत्न कहा ह।[2] बासुरी (वेणु) की प्रशसा करते हुए वात्स्मायन लिखते ह कि वह वाद्य प्रियतमा के मन को मुग्ध करने का एक प्रिय उपाय है।[3] मृच्छकटिक के अनुसार वसन्तसेना की सगीतशाला मे भौर की मधुर गुञ्जार क समान वासुरी अत्यन्त मधुरता के साथ बजाई जा रही थी उसमे युवतिया जब अपने कोमल करो से मदग

१ 'अस्माक चाय कुलधम शिल्पज्ञस्य कन्या दातव्या नाशिल्पज्ञस्येति,
कुमारश्च न शिल्पज्ञस्तत्कथमशिल्पज्ञायाहे दुहिता दास्यामि'
ललितविस्तर १२, १४३

२ 'वीणा नाम समुद्रोत्थित रत्नम' चारुदत्त, अक ३।

३ 'वश वादयतो या शब्द शृणोति सा वश्या भवति' कामसूत्र, पष्ठ ३७९, सूत्र ४३।

बजाती थी, उस समय बादलो के गजन की तरह गम्भीर शब्द निकलता था।[१]

रईसो के घरो म पशुशाला और पक्षिशाला बनी होती थी। लोग अपने मनोविनोद के लिये भेडा, ब दर और मग पालते थे (क्रीडनाथ वा नरा वाञ्छति पक्षिणम)। उद्यान यात्रा (पिक्निक) के प्रसग मे वात्स्यायन ने लिखा ह कि नागरिक पुर वाटिका मे भेडो की लडाई (मेष युद्ध), तीतर बटेर की जुझान (लावक युद्ध) और मुर्गा लडान (कुक्कुट युद्ध) आदि द्वारा अपना दिलबहलाव करे।[२] कामसूत्र मे मुर्गा लडान (कुक्कुट युद्ध) की गणना चौसठ कलाओ मे की गई ह। मृच्छकटिक मे उज्जयिनी वेश्या वस तसेना की पशुशाला का मनोरम वणन मिलता है। इस ग्र थ के अनुसार वहा हाथी भात, तेल और घी से मिश्रित पिण्ड का भक्षण वडी ही मस्ती के साथ कर रहा था और उसके पास दुष्ट बन्दर, चोर की तरह मजबूती से जकड दिया गया था (पाटच्चर इव दढबद्धो शाखामग) कही घोडो के बाल सँवारे जा रहे थे, तो कही भेडो की गदन मली जा रही थी (मद्यते ग्रीवा मेषस्य)। उसमे तेल से मली हुई सीग वाले बैल (बलीवद) जो बैलगाडी (प्रवहण) मे जोते जाते थे, खडे थे। समीप ही अपमानित कुलीन व्यक्ति की तरह भैस लम्बी सासे ले रही थी।[३]

उसके घर मे पक्षिशाला, पशुशाला से अलग बनी थी। उसका दश्य तो और भी अनुपम था। उसमे मोर पख को फडफडा कर उत्साहपूवक नाच रहा था। वह अपनी सुन्दर चालो द्वारा मानो रमणियो को आदश गति की शिक्षा दे रहा था।[४] खूटियो मे लटकाए गए पिंजरो मे बटेर, तीतर और कबूतर आदि पक्षी पाले गए थे। अन्य पिंजरो मे कही तोता दही-भात से भरे पेट वाले ब्राह्मण की भाति वेद-पाठ कर रहा था, कही कबूतरो के जोडे आलिंगन मे रत हो कर सुख का आनद ले रहे थे (अ यो यचुम्बनपराणि सुखमभनुभवन्ति पाराबतमिथुनानि)। कही तरह तरह के फलो के रस का आस्वादन करमे से प्रसन्न सुरीली कठ वाली कोयल कूजन कर रही थी ओर कही जरूरत से ज्यादे सम्मान पाने के कारण गर्वित मैना टर टरा रही थी।[५]

जहा तक उत्सवो का प्रश्न ह इस बात का निर्देश पहले ही किया जा चुका है कि भारतीय नागरिक बडे समारोह के साथ इन्हे मनाते थे। यह हमारे प्राचीन साहित्य और विदेशो यात्रियो के वणन से स्पष्ट ह। भारतीम उत्सवो का परिचय इतनी थोडी जगह मे देना सभव नही हो सकता। इतना कह देना पर्याप्त होगा कि भारतीय उत्सवो की पष्ठभूमि बहुत कुछ सीमा तक सामाजिक और धार्मिक दोनो ही थी। यहा उदाहरण के लिए 'मदनोत्सव' का वणन किया जाता हैं, जिसका सस्कृत नाटको मे बहुधा उल्लेख मिलता ह। सम्राट हष की 'रत्नावली' नामक नाटिका मे इसका सुन्दर वणन प्राप्त होता ह। इसके अनुसार एक बार वसन्त ऋतु के आगमन के अवसर पर कौशाम्बी के नागरिको ने मदनोत्सव का आयोजन बहुत

१ 'युवतिकरताडिता जलधरा इव गम्भीर नदन्ति मदगा । मृच्छकटिक, अङ्क ४।
२ 'तत्रैवानुभूय कुक्कुटलावकमेषद्यूतयुद्ध ' कामसूत्र, पष्ठ ५ ३।
३ देखिए, मेरा ग्रथ 'हमारे पुराने नगर', पष्ठ ११५।
४ "पदगति शिक्षमाणानीव कामिनीनाम" मृच्छकटिक, अक ४।
५ "अधिक कुरकुरायते मदनसारिका" वही, अक ४।

ठाट बाट से किया था। इसे देखने के लिये महाराज उदयन अपने प्रासाद के कोठे पर आए। इस अवसर पर नगरवासियो का प्रमोद चरम सीमा पर पहुँच चुका था। विदूपक कहता ह— महाराज! आप जरा इस मदन महोत्सव की शोभा को ता देखे। मतवाली कामिनिया अपने हाथो मे पिचकारी लेकर मस्ती मे झूमते पुरुषो पर रग डाल रही है। पुरुपगण कुतूहलवश नत्य कर रहे है और उनकी तालियो के शब्दा से गलिया मुखरित हो रही है। उडाए गए गुलाल से दस दिशाओ का मुख पीतवण हा रहा ह।[1]

उदयन नगर वासियो के उत्साह एव असीम प्रस नता का देख कर अत्य त प्रस न होते ह। उन्हे ऐसा लगा, मानो इस अवसर पर उनका राजधानी कौशाम्बी कुबेर नगरी के भी ऐश्वय को मात कर रही थी। इस समय तक लोगो की पिचकारिया से निकला हुआ पानी चारो ओर फल रहा था। उस पर उद्धत स्त्रिया जब चलती थी, ता उनके कपाला से इस पर अबीर गिरता था जिससे वहा की फश लाल वण का हो जाती थी। जब मनचले नागरिक अपनी पिचकारिया के जल से वेश्याओ पर प्रहार करते थे, उस समय उनका हाव भाव और विकास दखते ही बनता था। जब लाग गुलाल तेजी से उडाने लगे उस समय चतुर्दिक अ ध कार सा फैलने लगा। बीच बीच मे भूषण के रूप म धारण की गई मणियो के आलोक मे जब साप के फण की आकृति वाली पिचकारिया दष्टिगोचर होती थी, तो पाताल लोक का दश्य स्मरण ही उठता था।[2]

यह उत्साह अभी चल ही रहा था कि मदनिका नामक दासी ने हाथ मे आम्रमजरी लिए हुए महाराज को सूचित किया —महारानी का निवदन ह कि मकर दोद्यान म जा कर अ शोक-वक्ष के नीचे कामदेव की पूजा करनी ह, अतएव आयपुत्र वहा शीघ्र पधारे। इसके अनु सार विदूषक के साथ उदयन मकरन्दोद्यान मे आए। इसकी छटा को देखते ही विस्मित हो बोल उठे—अहा! मकर दोद्यान कितना सु दर है। वस त के यहा आ जाने से ये वक्ष भी मत वाले से लग रहे है क्योकि मूँगे की सदश कान्ति वाले नव पल्लवो से इनकी लाली बढ गई ह। भौरो का शब्द कितना सुमधुर एव आह्लादकारी ह। दक्षिण वायु इनकी शाखाओ को हिला रही है। ऐसा लगता है कि नशे की मस्ती मे ये वृक्ष झूम रहे है।

---

१ "प्रकीणपटवासपुञ्जपिञ्जरितदशदिशामुखस्य सश्रीकता
मदनमहोत्सवस्य" रत्नावली, अक १

२ "अस्मि प्रकीणपटवासकतान्धकारे
दष्टो मनागमणिविभूषणरश्मिजालै।
पातालमुद्यतफणाकृतिश्रृङ्गकोऽय
मामद्य सस्मरयतीह भुजगलोक ॥ रत्नावली अक १, श्लोक १२

३ 'उद्यद्विद्रुमकान्तिभि किसलयैस्ताम्रा त्विष बिभ्रतो
भङ्गालीविरुतै कलैरविशदव्याहारलीलामत।
घूणन्तो मलयानिलाहतिचलै शाखासमूहमुहु—
र्भ्रान्ति प्राप्य मधुप्रसगमधुना मत्ता इवामी द्रुमा ॥
रत्नावली, अक १, श्लोक १७

उधर महारानी भी परिचारिकाओ एव दल बल सहित उद्यान मे आई। सद्य स्नान करने के कारण उनमे एक नई कान्ति आ गई थी। लाल रग की साडी पहने काम पूजा के लिए उद्यत, व लगती थी, मानो नव पल्लवो से युक्त व की लता हो। महाराज के साथ उन्होंने आसन ग्रहण किया और पूजा सामग्री के साथ अशोक वृक्ष के नीचे कामदेव की अर्चना की। इस बीच सन्ध्या हो गई और वैतालिक द्वारा इसकी सूचना पाते ही महाराज देवी के साथ शयन गृह मे पधारे। रत्नावली नाटिका के इस वर्णन से लगता है कि इस उत्सव के दो पक्ष थे वैयक्तिक तथा सामूहिक। जहा तक वैयक्तिक पक्ष था, महिलाएँ अपने पतियो सहित इस समय कामदेव की पूजा करती थी। यही कारण है कि इसका नाम 'मदन महोत्सव' पड गया। इस उत्सव का सामूहिक महत्त्व था—नागरिको का स्नेहमिलन एव पारस्परिक मनोविनोद। इस अवसर पर रग, अबीर और गुलाल खूब चलता था। आज का होलिकोत्सव इसी का परिवर्तित रूप सा लगता है।

गोष्ठिया उस समय भी होती थी, जिनमे नागरिक विचार-विनिमय करते थे। वात्स्यायन के कामसूत्र मे गोष्ठी शब्द का उल्लेख हुआ है। इनमे चर्चा के विषय विविध थे। काव्य की कोई समस्या दे दी जाती थी और लोग उसकी तत्क्षण पूर्ति की चेष्टा करते थे। इसके अतिरिक्त कला समस्याओ पर भी वहा विचार होता था। विभिन्न भाषाओ के ज्ञान का परिचय, स्वरचित कविताओ का पाठ तथा मनोरजक कथा-कहानियो का सुनाना आदि इनमे खूब चला करता था। शिष्ट कोटि की हसी और मजाक करने वाले लोग भी वहा आदर पाते थे (गोष्ठीषु पेशलतया परिहासशील)। वात्स्यायन लिखते है कि गोष्ठी मे भरसक ऐसी भाषा बोली जाय जिसे साधारण साक्षर भी समझ ले। वह न तो आलकारिक या क्लिष्ट हो और न तो गँवारू ही हो (नात्यन्त सस्कृतेनव नात्यन्त देशभाषया)। वहा जो लोग शुद्ध और सवसुलभ भाषा का प्रयोग करते थे उनका बडा यश हो जाता था। गोष्ठी मे आदर पाने के लिए कोई आवश्यक नही था कि पाण्डित्य उच्च कोटि का हो। वात्स्यायन के अनुसार कला प्रेमी नागरिक शास्त्रीय ज्ञान के सीमित होने पर भी अपने मधुर वार्तालाप, आकर्षक चाल ढाल तथा समयोचित प्रसग को छेडने तथा उन पर प्रकाश डालने की रीति द्वारा मित्र मडली को मुग्ध कर देते थे।[1]

चौपड और शतरज का खेल भी एक प्राचीन भारतीय परम्परा है। वात्स्यायन लिखते है कि नागरिको को चाहिए कि वे शतरज या चौपड के खेल के सामान सर्वदा अपने बैठक या शयनगृह मे रखे। शतरज की महीन चालो द्वारा वे अपनी कुशाग्रता का परिचय तो दे ही, साथ ही साथ इष्ट मित्र एव प्रियजनो की मडली मे इस खेल से वे अपना मनोविनोद भी करे। इस समय उनकी मेज पर स्वागत के लिए पान की डिबया भी पडी हो और सुविधा के लिए

१ "ब्रुवन्नप्यग्रशास्त्रणि चतु षष्टिविवर्जित
विद्वत्ससदि तात्यथ कथासु परिपूज्यते।
वर्जितोऽप्य थविज्ञानैरेतया यस्त्वलकृत
स गोष्ठ्या नरनारीणा कथास्वग्र विगाह्यते॥"

कामसूत्र, पष्ठ १८२, सूत्र ४० ५१।

फश पर एक पीकदान भी होना चाहिए।[१] अत्य त प्रारम्भिक काल से ही हमारे देश मे जुआ खेला जाता था। कौरवो एव पाडवा के जूए का खेल तो प्रसिद्ध ही ह। विशिष्ट पुर भागो मे जुआघर (द्यूतगह) बने हुए थे, जिनकी सरकारी लिखा पढी की जाती थी। इनके सचालक हुआ करते थे जिनको 'समिक' कहा जाता था। उसे द्यूतगह स्थापित करने के लिए राज्य को कर देना पडता था। जूआघरो की देख रेख के लिए राजकीय कमचारी भी हुआ करते थे। इसी तरह के पदाधिकारी को कौटिल्य ने 'द्यूताध्यक्ष' कहा ह।

मृच्छकटिक द्वारा जुआडियो के खेल पर अच्छा प्रकाश पडता ह। इस ग्र थ मे एक जुआढी इसकी प्रशसा करता हुआ कहता ह कि अजी, इस खेल का जायका तो बिना ताज की बादशाहत की तरह ह (द्यूत हि नाम पुरुषस्यासिंहासन राज्यम)। इसके चमत्कार को तो कुछ पूछो नही। जो चाहो इससे वही मिल जाय। सु दरी महल कुबेर की सपत्ति या दिल की कोई भी मुराद इससे पूरी हा सकती ह।[3] इस ग्रन्थ मे एक हारे जुआडी की दयनीय दशा का बडा अच्छा वणन मिलता ह। जुए मे सब कुछ लुटा दने के कारण वह प्रतिज्ञा करता ह कि अब वह आइ दा इस तरह के खेल या दाव पेच के चक्कर मे कभी नही आएगा। पर, ज्योही कौडियो की आवाज उसे सुनाई देती ह उसका मन इसे खेलने के लिए ललच उठता ह। वह अत्यन्त खेद प्रकट करते हुए कहता ह कि जिम तरह युद्ध के लिए पुकार करता हुआ नगाडे का शब्द या तुरही की आवाज हारे हुए राजा के मन को लडाई लडने के लिए ललचा देती है उसी तरह 'कत्ता शब्द' (कौडियो की आवाज) मेरे मन को लुभा दे रहा ह।[४] मैं यह भली भाति जानता हूँ कि जुए का खेल उसी तरह बर्बादी की जड है जिस तरह सुमेरु पवत की चोटी से फिसल कर चूर चूर हो जाना, तब भी पासे का शब्द मुझे आज अपनी ओर बरबस खीच रहा है।[५] मै अपने मन का इससे हटाने मे असमथ पा रहा हूँ। जैसे गदही कामुक गदहे को अपने पैरो के प्रहार से घायल कर देती है और तब भी वह उसका साथ नही छोडता, वैसे ही इस जुए रूपी गदभी की चोट बराबर खा कर भी मैं इसकी ओर ललच उठता हूँ। जिस प्रकार महाभारत की लडाई मे अगराज कण की शक्ति से घटोत्कच बुरी तरह धायल हो गया था उसी तरह इस जूए रूपी शक्ति के प्रहार से मैं पूण रूप से धराशायी हो गया हूँ।[६]

२ 'देखिए, मेरा ग्रन्थ हमारे पुराने नगर पष्ठ ११८।
१ देखिए, मेरा ग्र थ 'हमारे पुराने नगर', पष्ठ ११८।
२ "द्र य लब्ध द्यूतेनैव दारामित्र द्यूतेनैव" मच्छकटिक अक २।
३ "ढक्काशब्द इव नराधिपस्य प्रभ्रष्टराजस्य।
जानामि न क्रीडिष्यामि कत्ताशब्दो मनो हरति॥ वही, अक २
४ "जानामि न क्रीडिष्यामि सुमेरुशिखरपतनसन्निभ द्यूतम।
तथापि खलु कोकिलमधुर कत्ताशब्दो मनो हरति॥ वही, अक २
५ नवब धनमुक्तयेव गदभ्या हा ताडितोऽस्मि गदभ्या।
अगराजमुक्तयेव हा शक्त्या घटोत्कच इब धातितोऽस्मि शक्त्या॥" वही, अक २

मृच्छकटिक के वणन से लगता ह कि जुए की शर्तो का पालन बडी कडाई के साथ करना पडता था। यह आवश्यक था कि दाव पर जा सपत्ति रखी जाय या कोइ वादा किया जाय, उसे बिना किसी हिचक के अदा कर दिया जाय। जुए के खेल मे उज्जयिनी का एक हारा हुआ जुआडी, हारी हुई रकम को देने मे अपने को असमर्थ पाता ह। फिर तो उसके ऊपर चारो ओर से बौछारे पडने लगती ह। जीता हुआ जुआडी उससे कहता ह कि इस समय तू कही भी भाग कर नही जा सकता। अगर तू स्वग लोक या पाताल लोक मे भी शरण लेना चाहे तब भी तेरी खरियत नही ह। पैसा तो मुझे देना ही पडेगा। यदि तेरे पास कुछ भी नही ह, तो तू अपने शरीर को बेच कर इसे पूरा कर, नही तो तुझे अपनी जिन्दगी से हाथ धोना पडेगा। इसी बीच वसन्तसेना आ जाती ह। वह उसे धिक्कारती हुई कहती है—तू तो बडा ही गया बीता ह रे, केवल थोडे से ठिकरा के लिए पचेंद्रियो से बनी हुई ईश्वर की अनुपम रचना का मार डालना चाहता ह। भला, तेरा कल्याण हाने वाला ह। अवश्य ही तेरा विनाश होगा।[1] बडी कठिनाई से वह उसे उ मुक्त करा पाती ह।

यहा उल्लेख कर देना आवश्यक होगा कि प्राचीन नगर जीवन का एक दूषित पक्ष भी था जि।मे वेश्याएँ कुट्टनी एव चोर आदि आते थे। इ्ही क जीवन को लक्ष्य मे रख कर पाणिनि वे अपनी सुप्रसिद्ध रचना अष्टाध्यायी मे पुरसमाज के 'कुत्सित वग का उल्लेख किया है। इसके विपरीत 'प्रावीण्य वग' था जिसमे शिष्ट, सुशिक्षित एव सुसस्कृत नागरिक आते थे (नगरात्कुत्सनप्रावीण्ययो)[2]। मृच्छकटिक तथा दशकुमारचरित आदि ग्र थो मे दुष्ट वेश्याओ के काले कारनामो के उल्लेख मिलते है। मच्छकटिक मे कहा गया ह—अजी इन मायाविनी वेश्याओ का तो कुछ पूछो नही। भला, उनका कोई भरोसा हो सकता ह। ये झूठा प्रेम दिखा कर युवको को फास लेती है और अ त मे उन्हे चौपट करके ही छोडती ह। सन्ध्याकालीन लाली की भाँति वे क्षणिक राग वाली होती है। वे सागर की लहरो से भी चचल होती है और पुरुष का सारा धन चूस कर उसे अलक्तक की भाति निचोड डालती ह। हृदय से तो वे अन्य किसी पुरुष से प्रेम करती है, पर लोभ के पीछे ऊपरी प्रेम और ही से दिखाती है (अ य शरीरेण च कामयन्ते)। उनका विश्वास करना खतरे से खाली नही ह, क्योकि उनका सारा व्यवहार छल प्रपच से भरा होता ह। जैसे खेत मे फेका हुआ जौ धान नही हो सकता या गधे घोडे का काम नही कर सकते अथवा कमलिनी पवत की चोटी पर नही उग सकती, वैसे ही वेश्या का आचरण पवित्र नही हो सकता (न देशजाता शुचयस्तथागना)। इसलिए बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह उसका परित्याग उसी तरह कर दे, जिस प्रकार श्मशान भूमि पर पडा हुआ सु दर पुष्प अस्पश्य समझ कर छोड दिया जाता ह।[3]

इस नाटक मे विदूषक एक हितैषी के रूप मे चारुदत्त से कहता है—मै ब्राह्मण हो

१ "दुवर्णोऽसि विनष्टोऽसि दशस्वणस्य कारणात।
पचेन्द्रियसमायुक्तो नर व्यापाद्यते त्वया॥"

२ देखिये, मेरा ग्रन्थ 'स्टडीज इन ऐन्शेट इडियन हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर' प्रस्तावना।

३ "तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन
वेश्या श्मशानसुमना इव वजनीया॥" वही, अक ४,१४।

कर आपके पैरो पर गिर कर कहता हूँ कि आप वेश्या का साथ छोड दे। गणिका तो जूते मे पडी किंकिणी के समान है, जो एक बार घुसने के बाद बडी कठिनाई के साथ निकाली जाती है (गणिका नाम पादुकान्तरप्रविष्टेव लेष्टुका दु खेन पुनर्निराक्रिय ते)। मित्र ! अधिक क्या कहूँ जहा वेश्या रहती है वहा बुरे आदमी भी नही जाते, सज्जनो का तो कहना ही क्या ? उनके इन्द्रजाल से भगवान ही बचाये। वे धन के लिए क्षण मे हँसती ह और क्षण मे ही रोती भी है (एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतो) बाहर से वे पुरुषो को विश्वास दिखाती है पर उनका दिल प्रवचना से भरा होता ह। उज्जयिनी का यायाधीश विस्मित हो कर चारुदत्त से पूछता ह—आय ! क्या यह सच है कि आपकी मित्रता किसी गणिका से ह। चारुदत्त इसको स्वीकार करने मे शर्माता ह।[१]

राजश्याल शकार उज्जयिनी वेश्या वस तसेना के रूप पर लट्टू है पर वह उससे नफ रत करती ह। जब वह शकार के फदे मे नही आती, तब वह उसे धिक्कारता हुआ कहता है—अरे ! तुझे किस बात का घमड है ? तू तो उस बावडी की तरह है जिसमे पढा लिखा पडित मूख और अछूत सभी नहाते है। तेरी दशा तो उस लता की तरह ह जिस पर मोर, कौवे सभी बठने है। तू उम नौका की तरह है जिस पर ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य ओर शूद्र सभी बठते है। तेरा घर तो कामियो का वासस्थान ह। माग की लता के समान तू जनता जनादन की सपत्ति है। तू तो रूप का सौदा करती ह। जो पैसा दे दे, वही तुझे खरीद सकता है। तेरे लिए तो प्रिय अप्रिय समान ही है।[२] मच्छकटिक के उपयुक्त उदाहरणो से स्पष्ट ह कि उस समय भी वेश्याओ का जीवन कितना गिरा हुआ था और किस तरह वे समाज मे घृणित दष्टि से देखी जाती थी।

जो वेश्याये वृद्ध हो जाती थी उनका रूप व्यापार समाप्त हो जाता था। अतएव वे कुटटनी का काम करना प्रारम्भ कर देती थी। वे एक तरह से नई वेश्याओ के लिए माग दशक का काम करने लगती थी और उसके लिए उनकी आमदनी मे हिस्सा लेती थी। दयनीय दशा मे पडी युवतियो को गणिका वत्ति सिखा देना और उनके लिए युवको को फास लेना उनका काम था। कुटटनियो के हथकडो और उनकी जीवन वत्ति के ऊपर हमारे दो प्राचीन ग्र थो से प्रकाश पडता है—एक तो 'कुटटनीमतम और दूसरा 'दूतीकमप्रकाश। कुटटनी मतम की रचना दामोदरगुप्त ने की थी, जो आठवी शताब्दी के एक काश्मीरी कवि थे। इस ग्र थ मे वाराणसी की विकराला नामक एक कुटटनी का उल्लेख मिलता ह जो मालती नामक एक लावण्यमयी युवती को सफल वेश्यावत्ति के दाव पेच सिखाने की चेष्टा करती है।

पशेवर कुटटनियो के अतिरिक्त कुछ और भी तरह की कुटटनिया होती थी। 'दूती

१ "आय ! गणिका तव मित्रम ' वही, अक ९।

२ वाप्या स्नाति विचक्षणो द्विजवरो मूर्खोऽपि वर्णाधम।
फुल्ला नाम्यति वायसोऽपि हि लता या नोमिता र्बाहणा॥
ब्रह्मक्षत्रविशस्तरन्ति च यया नावा त एवेतरे।
त्व वापीव लतेव नौरिव जन वेश्यासि सव भज॥
मच्छकटिक, अक १, ३१।

कमप्रकाश' नामक ग्र थ मे इक्कीस तरह की कुटटनियो का वणन हुआ ह। इनमे धोबिन, दर्जिन, दाई, नाइन तथा मनिहारिन खास थी। वे भी नायक और नायिका के बीच लगाने बुझाने मे एक छँटी होती थी। उपयुक्त रचना का लेखक उनके छल प्रपञ्च पर प्रकाश डालता हुआ लिखता है कि इनके चरित को भगवान ब्रह्मा भी नही समझ सकते, मनुष्य की तो बात ही छोड दो।[१] कुटटनियो ओर उनकी पुछलगी गणिकाआ ने उज्जयिनी, वाराणसी और पाटलिपुत्र सरीखे प्राचीन भारतीय नगरो मे श्रृ गार हाट खोल रखा था, जहा रूप की सोदा गीरी होती थी।[२] यदि इस परपरा को देखना हो तो आज की काशी नगरी को देखिए। वहा यदि एक ओर बाबा विश्वनाथ या सकटमोचन की पवित्र गली ह, तो दूसरी ओर छिनाल पतुरिया और गुमाश्तो की भी गली खुली हुई है।

उस समय के चोग बदमाश भी बडे ही मँजे खिलाडी हुआ करते थे। उनके काय कलापो की ठीक जानकारी के लिए मच्छकटिक और दशकुमार चरित को पढना चाहिए। मच्छकटिक मे चोरी विद्या (चौर विज्ञान) के एक विद्यार्थी का उल्लेख मिलता ह। इससे स्पष्ट ह कि चालबाज उस्ताद अपने ही तरह धुप्पलबाज चेलो को पैतरबाजी सिखाते थे। वे लोग सेध मारने की कला, घर के भीतर घुस कर बडी ही सफाई के साथ सामान गायब कर देना और जरूरत पडने पर चकमा देकर खिसक जाना आदि चोरी से सम्बन्धित तरह तरह की बारीकियो को माजते थे। इस ग्र थ मे एक चोर दूसरे से कहता ह कि अजी, चोरी करना कौन बुरी बात है? यह काम तो बडे बडे महापुरुषो ने भी किया ह। अश्वत्थामा ने भी तो चोरी के ही साथ अपने शत्रुओ का वध किया था?[३] दूसरी बात यह ह कि यह जीविका का एक स्वत त्र पशा ह। इसमे कोई नौकरी थोडे ही बजानी ह।[४] जब वह सेंध मारने जाता है, तो देवताओ की पहले व दना करता है– हे खटपट महाराज! जरा आप शा त रहिएगा और हे रात्रियो मे विचरण करने वाले गण! आप लोगो को भी मै नमस्कार करता हूँ। मेरे ऊपर कृपया कल्याण कीजिएगा ताकि मेरा बाल भी बाका न हो सके।[५] जब राजमाग पर वह पहरेदार को देखता ह तो उसके प्राण सूख जाते ह। पर वह बडी ही

१ 'तच्चरित्रमिति ज्ञातु ब्रह्मणापि न शक्यते'

काव्यमाला, गुच्छक १३ (दूतीकम प्रकाश), श्लोक ५

२ 'कुटटनीमतम' के रचयिता दामोदरगुप्त के मन मे स देह था कि उनकी रचना का, अपरिपक्व विचारो वाले लोगो के मस्तिष्क पर कही प्रतिकूल प्रभाव न पड जाय और वे गलत रास्ता न पकड ले। अतएव वे अपने पाठको को अ त मे सावधान करते हुए कहते है कि इस ग्र थ के गूढ अथ को ही ग्रहण करना चाहिए। जो व्यक्ति बिट, धूत, वेश्या एव कुट्टनी के चगुल मे न पडेगे उनका जीवन हर तरह से सुखी रहेगा—

"काव्यमिद य श्रुणुते सम्यक्काव्याथपालनेनासौ।
नो वच्यते कदाचिद्विटवेश्याधूतकुट्टनीभीरिति॥" श्लोक १०१८

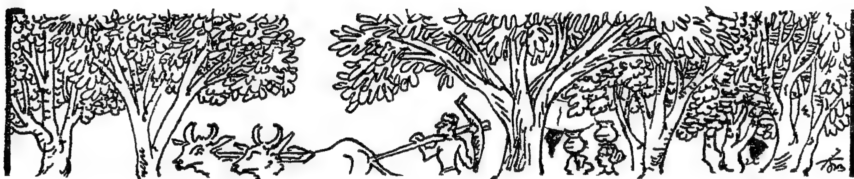
३ "मार्गो ह्येष नरेन्द्रसौप्तिकवधे पूव कृतो द्राणिना" मृच्छकटिक, अक ३।

४ "स्वाधीना वचनीयतापि तु वर वद्धो न सेवाञ्जलि" मच्छकटिक, अक ३।

५ "नम खटपटाय नमो रात्रिगोचरेभ्यो देवेभ्य चारुदत्त अक ३।

बारीकी के साथ उसकी आख बचा कर चम्पत हो जाता ह । फिर तो वह छलप्रतारणा पर अपनी विलक्षण दखल और दूसरो को चकमा देने वाली नाज पर डीग मारता हुआ फूले न समाता है ।[1]

गणिका, कुट्टनी तथा धूत एव प्रवचका के जीवन मे सहसा इस निष्कप पर पहुच जाना कि नगर गदगी के घर थे ठीक न होगा । इसका स्पष्टीकरण पहले ही किया जा चुका ह कि भारतीय नागरिका का चरित्र सगठन उच्च कोटि का था । मच्छकटिक के नायक चारु दत को ही लीजिए । यद्यपि उसका सबध वेश्या के साथ हो गया था तथापि उसके अ य गुण श्लाघनीय थे । इस ग्र थ के लेखक के शब्दो मे वह सदगुणो का के द्र, गरीबो का साथी और रोगियो के लिए औषधि के तुल्य था । पडोसी लोग तो उसे घर के ही सदस्य की तरह समझते थे ।[2] जिस समय न्यायाधीश ने उसे फासी की गलत सजा दे दी और जब वह राजपुरुषो द्वारा शूली पर चढाने के लिए ले जाया जाने लगा, उस समय पुरवासियो की आखो से आसू के परनाले बहने लगे । वे ईश्वर से बार बार प्राथना करन लगे कि सज्जना का कुटुम्बी सब प्रकार से निर्दोष चारुदत्त छूट जाय ।[3] यह इस बात का प्रमाण ह कि सदाशय नागरिक लोकप्रिय हुआ करता था । भाईचारे की यह भावना पुरवासिया की विशाल हृदयता का परिचय देती है । यही कारण ह कि विदेशी यात्रियो ने भारतीय नागरिका के दिल और दिमाग की विशेषताओ की ऊँची प्रशसा की ह ।



१ देखिए मेरा ग्रन्थ "हमारे पुराने नगर" पष्ठ १२४

२ मच्छकटिक, अक १ ।

३ "एता पुनहर्म्यगता स्त्रियो मा वातायनार्धेनविनि सृतास्या ।
हा चारुदत्तेत्यभिभाषमाणा वाष्प प्रणालीभिरिवोत्सृजन्ति ॥" मृच्छकटिक, अक १०

प्रस्तुत लेख मेरे शोध प्रब धो "प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन" और "हमारे पुराने नगर" (प्रकाशक हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद) तथा "स्टडीज इन ऐन्शेट इडियन हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर" (प्रकाशक लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद) पर मुख्यतया आश्रित ह । इस विषय पर अधिक सूचनाओ के लिये कृपया उपयुक्त ग्र थो को देखे ।

पूर्व मध्ययुगीन भारतीय कला मे समाज की झाँकियाँ

ब्रजनाथ सिह यादव

कुछ विद्वानो[1] के मतानुसार, गुप्तोत्तरकाल की मध्यकालीन कला वास्तविक जन जीवन से वियुक्त थी। नि स देह, यह कुछ हद तक सही है कि समाज चेतना के रूप मे कला, सामाजिक प्राणी का प्रत्यक्ष प्रतिबिम्ब नही है, इसमे रूढिया[2] और मुहावरे स्वभावत विकसित होते है, तथापि प्रत्येक युग की कला न्यूनाधिक मात्रा मे समाज की बिखरी झाकिया प्रस्तुत करती है। एव एतदनुसार पूव युगो के विपरीत, इस युग[3] की वास्तु और मूर्त्तिकला का मुरय लक्षण, सामा य सजावट मे अलकरणप्रीति, रत्नाभूषण का बाहुल्य और भव्य अलकरण ह, जो उस समय के अभिजात त त्र और उनके विलासमय[4] दरबारी सस्कृति से सबधित था। पुनश्च, कला के क्षेत्र मे स्फटिकीकरण और परम्परावादिता की प्रवृत्ति, समाज की सजनात्मक शक्ति के ह्रास[5] की सूचिका ह।

परवर्ती गुप्तकालीन समाजोन्मुख राजनीतिक शक्तिया भी, जो उस युग की कुछ सामाजिक सस्थाओ का नियमन करती थी, कला मे प्रतिफलित हुई है। ४५० से ७५० ई० के बीच की, अहिच्छत्र से प्राप्त कुछ मृण्मय लघु मूर्त्तिया (टेराकोटा फिगराइ स्) हूण जैसे विदेशी बबरो का प्रभाव[6] प्रकट करती ह, जो नि स देह एक महत्त्वपूण सामाजिक तत्त्व ह। इसके अतिरिक्त, गुप्तोत्तरकालीन तोमरो, चाहमानो, कन्नौज के राठौरो, बदायूँ के शासको

१ तुलनीय—मोतीच द्र—सम्मेलन पत्रिका—'लोक सस्कृति अक', वि० स० २०१०, प० ३२२।

२ पूव मध्ययुगीन कला मे रूढियो और मुहावरो के लिए देखिए—के०डे०बी० काड्रिंगटन मेडिएवल इडियन स्कल्पचर, प० १७, आर० पी० चन्द—एम० ए० एस० आई०, अक ४४, १९३०, प० २०।

३ तुलनीय—स्टेला क्रैमरिश—जनल आफ दी इडियन सोसाइटी आफ आरिय टल आट, खण्ड XV, १९४७, प० १७८ और आगे, के० खण्डालवाला इडियन स्कल्पचर ए ड पेटिंग, पृ० ३१, स्टेला क्रमरिश आट आफ् इडिया थ्रू दी एजेज फलक स० १३४, खजुराहो के मन्दिर, कोणाक का सूय मदिर—ए० एस० आई० आर०, खण्ड ११।

४ तुलनीय—वासुदेवशरण अग्रवाल कला और सस्कृति, प० २४१।

५ वही पृ० २४२।

६ तुलनीय—वासुदेवशरण अग्रवाल एन् शॅट इण्डिया, स० ४, १९४७, ४८, प० १५५।

इत्यादि के ताबे और कलधौत के सिक्को[1] पर बैठे हुए वपभ और अश्वारोही मे समान विधा का प्रकाश एव राजपूत कुलो का अभ्युत्थान एक ही समय मे घटित हाता है जो एक बहत समाजो मुख राजनीतिक आ दोलन[2] का द्योतक ह । यह भी सकेत[3] किया गया ह कि कला मे चित्रित राजपूत अस्त्र ओर वस्त्र, तातार सस्कृति मिश्रण से भारत मे आगत शक जैसे विजातीय सबध का साक्ष्य वहन करते है ।

उस युग की समाजो मुख राजनीतिक सरचना का मुख्य लक्षण सामन्त प्रणाली था । यह कुछ अश तक कला मे भी प्रतिबिम्बित हुआ है । 'अश्वरि श्री साम तराज ' आलेख युक्त चाहमानो की मुद्राओ[4] पर हम एक विशिष्ट कवचधारी साम त शूर को घोडे पर सवार देखते है । युद्धाश्व सहित सामन्त शूर की प्रतिकृति वहन करते हुए उक्त शताब्दी की कुछ स्मारक शिलाएँ, कश्मीर के वरमूला (वरामूला)[5] से पाई गई ह अविराम युद्ध कम ही उस युग का सामा य लक्षण था । खजुराहो[6] वग के एक मदिर मे हम याद्धाओ की शोभायात्रा और युद्ध के दश्यो का साक्षात्कार करते है । उडीसा के १२ १३ वी शताब्दी मे निर्मित एक मन्दिर के तराश[7] मे ढाल, तलवार सहित चार योद्धा चित्रित किए गए है । भिलसा से १२ वी शताब्दी की एक याद्धा[8] की आकृति (अब रायपुर, मध्यप्रदेश के सग्रहालय मे) उपलब्ध हुई ह । माउट आबू (राजस्थान) के देलवाडा मन्दिर (१२वी शताब्दी) मे सूरमाओ[9] की शोभा यात्रा उरेही गई ह । खजुराहो[10] के आदिनाथ मदिर की कला मे तत्कालीन युद्धास्त्रो का परिचय मिल सकता ह । साहित्यिक स्रोतो से उदघाटित रूढिगत शस्त्रो की सख्या छत्तीस थी । चित्तौड के उत्कीण चित्रो (रिलिफ स्कल्पचर) मे भी युद्ध-दश्य[11] प्रस्तुत किया गया है । यह उल्लेख योग्य ह कि इन दश्यो मे सामान्यत तलवार और भाले ही दिखलाई पडते है, ऐसा प्रतीत होता है कि धनुप और तीर का प्रयोग प्राय अप्रचलित हो गया था । यह सै य

१ द्रष्ट य—कैटलाग आफ काएस इन दी इण्डियन म्युजियम, कलकत्ता, खण्ड I, सप्लीमेंट्री कैटलाग भी ।

२ तुलनीय—सी० जे० ब्राउन काएस आफ इण्डिया, प० ५० ।

३ तुलनीय—आर० एस० पडित दी रिभर आफ किंग्स, प० ६२६ ।

४ काएस आफ मारवाड ।

५ रीभर किंग्स, फलक XVIII, वही, VIII ७२८ ।

६ तुलनीय—बी० एल० धम्म गाइड टु खजुराहो, प० १५, १६ ।

७ लेग अस्टन द्वारा सपादित दी आट आफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, प० ६२ ।

८ स्तेला क्रमरिश दी आट आफ इण्डिया थ्रू दी एजेज, फलक १४४ ।

९ वही, फलक, १३८ ।

१० गाइड टु खजुराहो, प० २१, यू० अग्रवाल खजुराहो स्कल्पचरस एण्ड देअर सिगनिफिकेन्स, प० १९६ और आगे, शस्त्रास्त्र और कवच के लिए देखिए—आर० एस० पडित रीभर आफ किंग्स, फलक, XX ।

११ स्मिथ हिस्ट्री आफ आट इन इण्डिया एण्ड सिलोन, प० २०३ ।

विज्ञान मे ह्रास का लक्षण ह जो साहित्यिक साक्ष्य[१] द्वारा भी पुष्ट होता ह। जैसा कि कुछ विद्वानो की धारणा ह, इन कलाकृतिया से स्पष्ट ह कि हाथियो का व्यवहार भी कम होन लगा था। मुद्राकन कला उस समय की आर्थिक अवस्था एव समाज सरचना पर और भी प्रकाश डालती ह। आरम्भिक मध्ययुग के प्रथम पव मे सिक्को का बेढगा और खोटापन,[२] साथ ही उनका अभाव, साधारणत व्यवसाय और वाणिज्य की अवनत अवस्था एव कृषि प्रधान समाज के प्राधा य की घोषणा करता ह—सामन्तवादीय मनोवत्ति की वृद्धि वण व्यवस्था की कठोरता तथा अन्य सभी जो इनके दायभाग मे मिल इस अवस्था के मूल मे थी। जो भी हो, कुछ विद्वानो[३] के विचारानुसार आगे चलकर गुजरात शली की चित्रकला के आवि र्भाव के साथ, समद्ध वणिक वग के अभ्युदय का सम्बन्ध ह जो उस समय ब्रोच और काम्बे के ब दरगाहो तक व्यापार करते थे। पाल काल के अन्तगत वद्धित वणिक वग के साथ बगाल बिहार मे विकसित मध्ययुगीन मूर्तिकला का भी सम्पक स्थापित किया जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता ह कि सेनो के शासन काल मे इस वग की सामाजिक मर्यादा के ह्रास होने के कारण, उक्त कला स्कूल का भी १२वी शताब्दी के पश्चात पतन[४] हो गया।

इस काल की कला आर्थिक जीवन के अ य पहलुओ पर भी पर्याप्त प्रकाश डालती ह। वयन शिल्प, काष्ठ कला, रत्नाभूषण के काम[५] कसीदाकारी आदि दक्षता की जिस ऊँचाई पर पहुँची थी, उसका प्रतिफलन उस युग की मूर्त्ति तथा वास्तुकला मे हुआ ह जिससे यह ध्वनित होता है कि शिल्पी वशानुक्रम के आधार पर श्रेणियो[६] मे सघटित थे। समाज के काठिन्य की वद्धि के साथ, इन श्रेणियो ने जाति का रूप धारण किया विशिष्ट कला मे आनुवशिक विशेषज्ञता से जहा उच्च शिल्प-दक्षता[७] दुराधष सामग्रियो पर प्रभुत्व और शैली[८] की एकरूपता हासिल हुई वही इसने कला मे व्यष्टिपरक प्रवत्तियो[९] को कुठित कर दिया। हम देख चुके है कि साहि

१ एलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज, एन शे ट हिस्ट्री सेक्सन, प० २३ और आगे।
२ तुलनीय—सी० जे० ब्राउन काएन्स आफ इण्डिया, अध्याय V।
३ तुलनीय—सर लेग अस्टन द्वारा स० दी आट आफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, प० ८७ ८८ के० एम० मुशी उदधत वही, स्थान उल्लिखित पर्सि ब्राउन इडियन आर्किटेक्चर, पृ० १३८।
४ तुलनीय—आर० डी० बैनर्जी ईस्टन स्कूल आफ मेडिएवल स्कल्पचर, द० ४१, वे ऐसा विचार पोषण करते हुए प्रतीत होते हे कि इस कला-स्कूल के, जो ८वी शताब्दी से १२वी शताब्दी तक फूला फला पतन का कारण मुसलमान विजय था (वही ४१)।
५ तुलनीय—ए० के० कुमारस्वामी हिस्टी आफ इडियन एण्ड इडोनेशियन आट, प० १३३ और आगे।
६ तुलनीय—बैजामिन रोलैड दी आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर आफ इडिया, प० १६५।
७ तुलनीय—स्मिथ दी हिस्टी आफ आट इन इण्डिया एण्ड सिलोन, प० १८२।
८ तुलनीय—काल खण्डलवाला, पूव उल्लिखित ग्रथ, प० ४३।
९ वही, उदधत सदभ।

त्यिक स्रोत भी श्रेणी सघो पर कुछ प्रकाश डालते ह । इस युग की भव्य और अतिशय अलकृत धार्मिक वास्तुकला भी व्यजित करती ह कि समाज की सम्पत्ति राजाओ, उनके सामन्तो और कुछ श्रेष्ठी कुमारो, जो निमाता थे की मुट्ठियो म और मन्दिरो मे भी बन्द थी ।

उस युग के क्रीडा कौतुक, आमोद प्रमोद भी कला मे प्रतिबिंबित हुए ह । खजुराहो के लक्ष्मण [1]मन्दिर म चित्रित दश्यो से आखेट प्रियता, मल्ल युद्ध, हस्ति युद्ध और नत्य कला प्रकट होती ह । चित्तौड[2] की मूर्त्तिकला (११ वी शताब्दी) मे द्वद्व युद्ध और सगीत उत्सव क दश्य देखने को मिलते है । कोणाक के मन्दिर[3] (१२३८–१२६६ इ०) म दिव्य सगीतज्ञ का चित्रित किया गया ह । इलाहाबाद (अब इलाहाबाद सग्रहालय मे) के समीप सिरसा स प्राप्त एक फलक (१२वी शताब्दी) मे एक रमणी की कदुक क्रीडा[4] दिखाई गइ ह । अहिच्छत्र से उपलब्ध आकृतियो का एक समूह,[5] जो ८५० ई० से ११०० ई० के बीच का है, मल्ल युद्ध , मुष्टि युद्ध और भारी पत्थर[7], फेकने की क्रीडा की लोकप्रियता प्रकट करता ह ।

कला मे हमे शिक्षा व्यवस्था की भी झलक मिलती है । खजुराहो मन्दिर की कला मे एक अध्यापक को शिष्यो के एक दल[8] के साथ चित्रित किया गया ह । १२वी शताब्दी क उडीसा के एक मन्दिर मे भी शिक्षण दश्य[9]प्रदर्शित किया गया ह । उसम हम तीन शिष्यो सहित एक वैष्णव गुरु का साक्षात्कार करते है । पलथी मारकर दाहिने छोर पर आचाय को बठा हुआ देखते है । उसके बाये हाथ मे पुस्तक ह और दाहिना हाथ उठा हुआ—शिक्षण–कला की मुद्रा मे ह । एक शिष्य के श्मश्रु भी है । ऊपर सगतराशी हुई छप्पर का एक आधार ह, जो स्पष्टत मन्दिर के मण्डप का प्रतिनिधित्व करता ह । ये दश्य इस तथ्य का उदघाटन करते ह कि मन्दिर विद्यापीठ के रूप मे विख्यात थे । भुवनेश्वर के एक मन्दिर म पत्र लेखन म व्यस्त एक नारी-आकृति अकित की गई ह जिससे विदित होता ह कि अभिजात परिवार की नारियो मे शिक्षा का प्रचलन था । इस युग की कला सामाजिक जीवन के कुछ अन्य पहलुओ को भी अभिव्यक्त करती ह । अहिच्छत्र[10]से प्राप्त सत्ती सत्त फलक (८५०–११०० ई०) द्वारा सती प्रथा के प्रचलन पर प्रकाश पडता है । इन फलको मे, पुरुष और स्त्री को उत्सग

१ ए० एस० आई० आर०, खण्ड II, प० ४२४, 'गाइड टु खजुराहो' भी, प० १५ ।
२ स्मिथ हिस्ट्री ऑफ आट इन इण्डिया एण्ड सिलोन, प० २०३
३ स्टेला क्रैमरिश दी आट आफ इडिया थ्रू दी ऐजेज, पृ० १४५
४ अेनटिक्विटी स० ए सी|२९५४
५ तुलनीय—वासुदेवशरण अग्रवाल अेनशेन्ट इडिया' स० ४, १९४७-४८, प० १७६
६ देखिए—यू० अग्रवाल खजुराही स्कल्पचरस एण्ड देअर सिगनिफिकेनस पृ० १४७ फुटनोट ।
७ हेमचन्द्र ने भी इस क्रीडा का उल्लेख किया है (अभिदान चिंतामणि, III ३५३) ।
८ गाइड टु खजुराहो, प० १५–१६ ।
९ दी आट आफ इडिया एड पाकिस्तान, पृ० ६१–६२ ।
१० तुलनीय—वासुदेवशरण अग्रवाल, पूव उल्लिखित सदभ प० १७६ ।

के निमित्त, सती प्रस्तर के समीप एक साथ खडा दिखलाया गया है। ढाका सग्रहालय[१] मे सुरक्षित प्राक मुगल कालीन कुछ मूतिकला कृतियो मे बाल्य विवाह प्रथा के प्रचलन का आभास मिलता है। ढाका सग्रहालय की इन प्राक यवनकालीन (१०००–१२०० ई०)[२] हिंदू बौद्ध मूर्तिकलाओ के अध्ययन से यह बात उजागर होती ह कि घडा[३] फूलदान[४], पलग[५]-पखा[६], छाता[७], रत्नपेटी, टोकरी[८] इत्यादि चीजे साधारणत व्यवहार की जाती थी। वाद्य यत्रो मे वीणा[९] लोकप्रिय थी। यह उल्लेखनीय ह कि नित्यप्रति सामान्य पूजा उपकरण के रूप मे व्यवहृत धूपदान सहित बगाल के बल्लाल सेन के शासन काल के ग्यारहवे वष मे जारी किया गया एक ताम्र दान पत्र नाल दा मे प्राप्त हुआ ह। [१०] इस धूपदान का आकार, अग्रेजी अक्षर 's' के अल्प परिवर्त्तित रूप से मिलता-जुलता ह। धातु की बनी दो कटोरेनुमा चकतियो पर यह आधारित ह। 's' के पतले भाग से उठती हुई थूनी एक सुघड लघु पात्र (प्याला)[११] को सँभाले हुए ह। इसमे फुलवारी उरेही गई ह। एक अन्य कम कलात्मक धूपदान[१२] (१००० ई०) राजस्थान से प्राप्त हुआ ह। नालन्दा मे दो लघु शख खोल[१३] पाए गए है, जो आधुनिक पानी शख (पाणि शख) से मिलते है। बगाल के पुजारियो द्वारा आज भी[१४] व्यवहृत ताम्र कुण्ड की तरह और एक पूजा करने का उपकरण ताबे का पात्र ह।

लोगो की वेष भूषा और सज धज के सम्बन्ध मे भी हमे विस्तत विवरण मिलता ह। पूवी कलम की मध्ययुगीन मूर्तिकलाओ[१५] से प्रकट होता ह कि औरते कम चौडी धोती और

१ एन० के० भट्टासाली आइकोनोग्राफी ऑफ बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मिनिकल स्कल्पचरस इन दी ढाका म्युजिअँम, फलक, XXXVI
२ रुपम, अप्रिल जुलाई अक्तूबर १९३०, प० १९
३ आइकोनोग्राफी आफ् बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मिनिकल स्कल्पचरस इन दी ढाका म्युजिअँम- फलक VII—ए, XI—डी, VXXII—बी-और VXXXII—ए
४ वही, फलक XXI
५ वही, फलक VIV—बी
६ वही, फलक VIII—बी
७ वही, फलक XVVII—बी, XVVII—ए, XVIX
८ वही, फलक XXXVI
९ वही, पूव उल्लिखित सदभ
१० इस्टन स्कूल ऑफ मेडीइवैल स्कलपचर, प० १४३
११ वही, VXXIII—ए
१२ के० डे० बी० काड्रिंग्टन मीडईवॅल इण्डियन स्कलपचर फलक X
१३ इस्टन स्कूल आफ मीडईवॅल स्कलपचर्, फलक VXII—ई और VXIX—डी
१४ वही, पृ० १४३
१५ आइकोनोग्राफी आफ बुस्द्धिट एण्ड ब्राह्मिनिकल स्कल्प्चरस इत्यादि, फलक—XXIX —XXXII—XXXIII

साडिया[1] पहना करती थी, काछा का भी इस्तेमाल होता था। घाघरे[2] की तरह भी साडियोके पहनने का रिवाज था। स्त्री पुरुष दोनो ही वग के लोग नाभि के नीचे कपडे पहना करते थे।

उत्तरीय का भी व्यवहार स्त्री पुरुष दोनो मे होता था। स्त्रिया इसका प्रयोग बाये पयोधर को एका त रूप से और दाहिने पयोधर को आशिक रूप से ढाकने के लिए करती थी। फल और रेखा अभिकल्प सामान्य प्रतिमान थे। शक्वाकार मुकुट, भुजबन्द, ककण, मजीर इत्यादि अलकार नर नारी दोनो ही पहनते थे। केश प्रसाघन[3] की विभिन्न शैलिया को भी हम गया से उपलब्ध अवलोकितेश्वर प्रतिमा (११ वी शताब्दी ई०) मे उत्कृष्ट केश विन्यास[4] का हम दशन करते ह। भुवनेश्वर के म दिर मे एक रमणी[5] को, बाये हाथ म दपण धारण कर, शृ गार मे रत देखते है। वह चित्रित चोली, मणिका खचित मेखला और हार तथा अ य रत्नाभूषण पहने ह। अहिच्छत्र से प्राप्त सत्ती सत्त फलक मे वनिताओ का लहँगा[7] पहनना भी प्रकट होता है। खजुराहो[6] म दिर मे अकित नारी आकृतिया चोली, रत्नखचित करधनी और कण्ठहार पहने दिखती है। उत्तर बग से प्राप्त अप्सरा[8] की आकृतियो (१२ वी शताब्दी ई०) मे, कमल कोरक दल के शीर्ष भागो मे मौक्तिक वन्दनवार, दीघ कवरी के दाहिने मोती की लडो सहित झूलती नजर आती ह। कमल फूलो सहित दीघ वतुलाकर मणिकाभूषित कणफूल, एक कण्ठाभरण तथा पयोधरो को स्पश करते हुए एक लम्बे हार को हम देखते है, जो शाल की सलवटो से आवत है।

उस युग का धार्मिक जीवन कला मे सबसे अधिक अभिव्यक्त हुआ ह। विभिन्न धार्मिक मतो एव सम्प्रदायो की लोकप्रियता और उनके प्रचलन क्षेत्रो की जानकारी देने मे म दिर एव मूर्तिकला की विविध कृतियो के प्राप्ति स्थान, हमे सहायता पहुँचाते है। अधिकाश हि दू वास्तु और मूर्तिकला, गुप्तोत्तर काल मे बौद्ध धम के पतन और पौराणिक नव हिन्दू-धम के पुनरुत्थान[9] का साक्ष्य वहन करती हुई दिखाई पडती है। उत्तर भारत के प्रमुख राजपूत वशो द्वारा मुद्राओ मे वषभ चिन्ह का प्रयोग, शैवमत का व्यापक प्रचार प्रसार, विशेष-कर शासक अभिजात वग मे, प्रकट करता ह। बगाल के पालकालीन[10] कुछ चित्रो (९ वी से

१ सिरसा से उपलब्ध नारी आकृतियो (जो १२वी शताब्दी ई० की है नारियो मे साडी पहनने की भो चलन थी यह प्रदर्शित करती है। इलाहाबाद म्युजिअँम अेनटिक्विटी स० ए सी/२९५४)।

२ रूपम, अप्रिल जुलाई अक्तूबर, १९३ , प० २०

३ बुद्धिस्ट एड ब्राह्मिनिकल स्कलपचरस आदि फलक VXIII, XXVII, इलाहाबाद सग्रहालय मे खजुराहो फाटक भी देखिए।

४ दी आट आफ इडिया एण्ड पाकिस्तान, प० ५९ ।

५ वही, प० ५६।

६ अेन से ट इडिया, स० ४ ।

७ इलाहाबाद सग्रहालय मे खजुराहो फाटक, दी आट आफ इडिया एण्ड पाकिस्तान प० ५७

८ दी आट आफ इडिया थ्रू दी एजेज, प० १४३ ।

९ तुलनीय—बैजामिन रौलैड, पूव उद्धृत ग्र थ, प० १६३

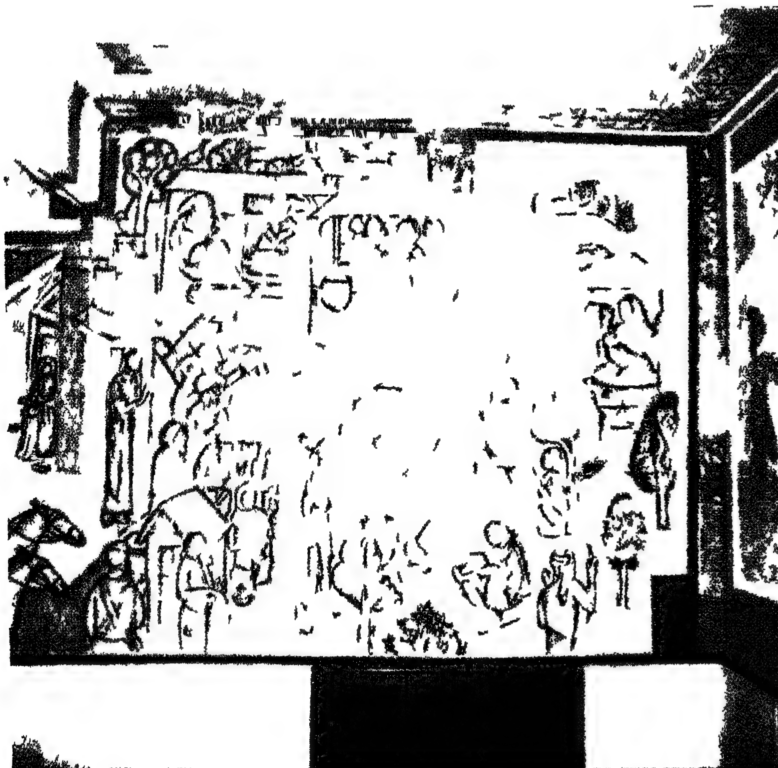
१० इडियन आट थ्रू दी एजेज, प० ७, दी मिनिस्ट्री आफ इनफोरमेसन एण्ड ब्रोडकास्टिंग, गवनमेट आफ इडिया।

१२ वी शताब्दी ई०) एव उडीसा[१] की मध्ययुगीन कुछ प्रतिमाओ मे गम्भीर भक्ति भावना की छाप, प्रसिद्ध भक्ति आन्दोलन के अभ्युदय की सूचना देती है। हर्षोत्तर काल मे तन्त्रमत[२] का बढता हुआ प्रचार भी, कला मे प्रतिबिम्बित हुआ है। उस युग की मूर्ति और चित्रकला द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार तन्त्रमत बौद्धमत पर हावी हो गया। बगाल के पाल स्कूल की ऐसी चित्रकलाकारी मे उल्लेख योग्य[३] नालन्दा मे, रामपाल (१०९५ ई०) के शासन काल मे लिखित एक पाडुलिपि के काठ के ढक्कन पर की गई नक्काशी, अब प्रिंस आफ वेल्स म्युजियम, बम्बई मे सुरक्षित पाच ताड पत्रो[४] (१२ वी शताब्दी ई०) पर प्रज्ञा पारमिता के निदर्शन चित्र तथा आशुतोष म्युजियम आफ इडियन आर्ट के अन्य दो पाण्डुलिपियो[५] पर किए गए निदर्शन चित्र, है।

१२ वी शताब्दी के एक शैव साधु[६] की रोचक आकृति दक्षिण भारत से उपलब्ध हुई है। साधु को, यौगिक कुमारासन तथा व्याख्यान मुद्रा मे बैठा हुआ, चित्रित किया गया है, जिसके दाहिने हाथ मे रुद्राक्षमाला तथा बाये हाथ मे, जो घुटने पर टिका है, एक पुस्तक और एक फूल है। वह रुद्राक्ष का यज्ञोपवीत तथा मनको का भुज बध पहने हुए है तथा उसके बाये कधे पर एक कमण्डल दिखलाई पडता है।

तान्त्रिक प्रभावान्वित आरम्भिक मध्ययुगी खजुराहो मन्दिर की अश्लील नक्काशी, अशत कलात्मक परम्परा के ह्रास एव अशत शासक वर्ग के निम्नगामी रुचि की परिचायिका है। मन्दिरो मे प्रचुर नर्तकियो[७] का चित्रण, देवदासी प्रथा की सूचना देता है। उस युग का समाज सघर्ष भी कला मे कुछ हद तक प्रतिबिम्बित हुआ है। मुख्यत समाज के निम्नस्तर से सबधित तान्त्रिक बौद्ध मत की एक शाखा वज्रयान के पुराणो मे, हिन्दू देव देवी—महेश्वर और गौरी, विष्णु, और लक्ष्मी का त्रैलोक्य विजय[८] और वज्र ज्वालानलाकर[९] द्वारा क्रमश रौंदे जाने का, वर्णन किया गया है। नालन्दा और बौद्धगया से प्राप्त, त्रैलोक्य-विजय की दो प्रतिमाओ[१०] मे उपर्युक्त धार्मिक बिब विधान प्रतिबिम्बित हुआ है। समाज सघर्ष मे उलझे बिना, धर्मदर्शन-सघर्ष ऐसा रूप ग्रहण नही कर सकता था। ●

१ तुलनीय—आर० पी० चन्दा, एम० ए० एस० आई०, अक ४४, १९३०, पृ० २०।
२ तुलनीय—वासुदेवशरण अग्रवाल, पूर्व उद्धृत ग्रन्थ पृ० २४२, देखिए—मेजिक स्क्वेस इन ए टेम्पल ऑफ खजुराहो, ए० एस० आई० आर०, खण्ड II, पृ० ४३४।
३ दी आर्ट आफ इडिया एड पाकिस्तान, पृ० ८७।
४ मोतीचन्द्र, दी जर्नल ऑफ इडियन म्युजिअॅमस, खड, VIII, १९५२, पृ० ९४।
५ जर्नल आफ इडियन सोसाइटी आफ आरिन्टल आर्ट, खण्ड, XV पृ० ८९ और आगे।
६ वही, पृ० १४१।
७ उदाहरणार्थ, इलाहाबाद सग्रहालय मे सुरक्षित खजुराहो फाटक, उपरि, भी
८ साधन माला, खण्ड II, स० २६२, बी० भट्टाचार्य इण्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी (द्वि० स०), पृ० १८४ और आगे।
९ साधन माला, खण्ड, II, स० २६३, बी० भट्टाचार्य पूर्व उद्धृत ग्रन्थ पृ० १८३, १८४
१० इडियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी फलक XXXIX (सी)।



लोक जीवन की झाकी

शान्तिनिकेतन के हिन्दी भवन मे भित्तिचित्र--मध्ययुगीन संतो का जीवन

—जया अप्पासामी

विनोद विहारी मुखर्जी, भित्ति चित्र की विशिष्ट कला का अभ्यास करने वाले शान्ति निकेतन कलम के वरिष्ठ कलाकारो मे एक हैं। भित्तियो पर चित्रण, जिसका अभी हाल तक भारत मे सुदीघ एव गौरवमय इतिहास बना रहा वस्तुत निर्वासित हो गया। विनोद बिहारी के काय हमलोगो की प्राचीन परम्परा मे, शान्तिनिकेतन के अनुसधान के अश रूप मे विवेचित किए जा सकते है, कि तु उससे अधिक महत्त्वपूण, यह भारतीय भित्ति चित्र मे एक नये अध्याय का सूत्रपात करता ह, क्योकि यह मौलिक और आधुनिक ह एव उनके वैयक्तिक उद्योग का अविच्छेद्य अग है।

न दलाल बोस के शिष्य के रूप मे विनोद विहारी ने लगभग १९१९ मे अपने कलाकार जीवन का आरम्भ शान्तिनिकेतन मे किया। न दलाल स्वय एक ज्वल त परम्परावादी थे और शान्तिनिकेतन कला-स्कूल के माध्यम से उ होने देशज कलाओ को सजीवित करने एव उनके यथोचित मूल्याकन की अभिवद्धि मे योग दिया। उन्होने आश्रम के विभिन्न भवना के मण्डन को कला भवन की कायसूची के रूप मे समाविष्ट किया तथा प्रोत्साहन दिया। भित्ति चित्रो मे विनोद विहारी के सवप्रथम प्रयोग सन १९२१ मे आरम्भ हुए। तत्कालीन छात्रा ने कई एक दिलहा बन्दी के काय सम्पन्न किए, जो शिशु विभाग की बाहरी दीवारो पर गहरे ताखो मे जडे हुए है। प्रथम पव का प्रतिनिधित्व करते हुए, उनमे से आज भी कुछ वहा मौजूद है, जिनमे परम्परा का प्रभूत प्रभाव लक्षणीय ह। शान्तिनिकेतन म और भी कई दशनीय भित्ति चित्र है, जो अनुमानत १९२१ से १९४८ के बीच निष्पन्न हुए है। ये विविध शिल्प पद्धतियो मे है। जयपुर शैली मे लाइब्रेरी बरामदे की सजावट और श्रीनिकेतन की एक दीवाल पर हलकषण का भित्तिचित्र, दो अविस्मरणीय कृत्य ह। भित्ति चित्रो की प्राचीन प्रतिकृतियो मे सबसे न्यारा प्रतिरूप बाघ का है जो १९४१ ई० मे पुराने सग्रहालय के स्टुडिओ की दीवाल पर उत्कीण किया गया था। ऊपर जिन कार्यो का उल्लेख किया गया, वे सभी न दलाल बोस और उनके छात्रो द्वारा सम्पन्न हुए थे। इनका उद्धरण, सिफ यह दर्शाने के लिए दे रही हू कि भित्ति चित्रो के पुनरुद्धार की सामान्य अभिरुचि क्रियाशील थी।

विनोद विहारी भित्ति चित्रो मे बहुधा प्रयोग किया करते थे। उ होने नानाविध विधाएँ अपनायी, जिनमे सफल, 'अँग टैम्परा' और 'फ्रेस्को बुउनो' है। उ होने तैल सहित भित्ति चित्रण भी आजमाया। उनकी बाद की महत्त्वपूण कृतियो मे, कला भवन छात्रावास (बरामदे की दीवार और छत) और चीन भवन की पहली मजिल की दीवारो के चित्र है।

हिन्दी भवन के भित्ति चित्र, उनके भित्रि चित्रण काय के शिखर के रूप मे, अलग खडे दिखते हैं, एक तरह से ये उनको कला के निष्कष हैं।

सामान्य चित्रण की अपेक्षा भित्ति चित्रण को भिन्न रूप से स्वीकृति देनी चाहिए। प्रथम स्थान मे, भित्ति चित्र दीवाल के अग ह, इसका काय स्थापत्य को सवारना होता ह और मण्डन के माध्यम से भवन को ओर भी अधिक अथपूण बनाना। उसके धरातल के साथ जॅचने लायक उपकरणो का चुनाव करते हुए और उस स्थान विशेष मे साथक कृति की सष्टि के लिए कलाकार को सस्थिति मे काम करना पडता है। जब तक वह अपनी तकनीक की पूरी दक्षता प्राप्त नही कर लेता है, प्रक्रिया ही उसे निमग्न और सीमाबद्ध करने के लिए तत्पर रहती है, सिफ तभी, जब उसने प्रक्रिया पर अधिकार प्राप्त कर लिया ह, वह स्वतत्रता पूवक काय कर सकता ह एव किसी सौन्दय परिणाम तक पहुँचने के लिए अपनी सीमाओ का उपयोग, यहा तक कि उनसे लाभ भी उठा सकता है। तब भित्ति चित्र, कलाकृति बनने के लिए सश्लिष्ट सारूप्य बोध और क्रिया की दष्टि से, शिल्प कौशल की सीमाओ को पार कर जाता है, यह अपने आप मे एक इकाई ह कि तु वहत अखड का भी अश है, यह अपने विषय वस्तु को तो व्यक्त करता ही है साथ ही चित्रकार के मानस को भी। इसकी शानदार और बहुमुखी अभिव्यक्ति जिस गह को अलकृत करती है, वह चिरस्थायी गौरव का विषय बन जाता है एव तब हम लोगो को प्राचीन मन्दिरो तथा यूरोप के गिरजाघरो के भित्ति चित्रो का स्मरण हो आता ह कि इस प्रकार के काय सम्पन्न किए जा सकते है। कि तु आधुनिक युग मे ऐसा कर पाना और भी कठिन ह अशत इसलिए कि कोई एकरूप रुचि या शैली हमारे युग पर छायी हुई नही ह। प्रत्येक कलाकार बेजोड होता ह, यद्यपि वह सहयोगियो का चयन कर सकता ह, सरचना एव अभिव्यक्ति का भार उस पर ही अधिक रहता है। स्वय वही परिणाम के लिये उत्तरदायी होता ह।

हिन्दी भवन, शान्ति निकेतन के भित्ति चित्र, केन्द्रीय ग्र थागार कक्ष के तीन तरफ से चित्रित किए गए है। दीवालो के उत्तरार्द्ध पर भित्तिचित्र, दरवाजो और खिडकियो के ऊपरी सिरो से छत तक, विस्तीण ह। गेरुए रग मे रगी पतली किनारी के सिवा इसमे कोई चौखट (फ्रेम) नही है, इसकी प्रशस्त नयनरजक चित्रयवनिका (टेपसटि) बीच की खाली जगह को किसी प्राचीन किमखाब की तरह भरती ह। इसकी छतगीरी अनलकृत ह, सिवा तीन फीट चौडी एक धारी के, जो उसी नयनाभिराम रगो द्वारा चित्रित बरबस ध्यान को न आकृष्ट करने वाले अपरूप अभिकल्पो (डिजाइनस) मे है। शान्ति निकेतन मे हि दी भवन एक सस्था ह, जो शोध मे निरत है। इसका सामान्य पर्यावरण शान्त ह, वक्षो के बीच स्थित यह भवन, उस प्राचीन आश्रम परम्परा का निर्वाह करता हुआ दिखता ह, जिसका उददेश्य 'सादा जीवन, उच्च विचार' था।

इस भित्ति चित्र का विषय 'मध्यकालीन स तो का जीवन' ह। विस्तारपूर्ण चर्चा करने के लिए यहा यह विषय हद से अधिक व्यापक ह, यहा सिफ यह देखना महत्त्वपूण ह कि कलाकार ने अपने विषय वस्तु का कसा प्रतिपादन किया है। भारत के सन्त दाशनिक, गायक कवि और गुरु थे, जिनके भाव और सगीत ने हमारे आध्यात्मिक विचारो को मधुर बनाया है,



काशी-गंगाघाट पर कीर्तन—नानक के अनुयायी रबाब बजाते हुए ।



काशी गगा मे नौकारूढ भजन कीतन मण्डली ।

आह्लादपूण समपण द्वारा जिनका जीवन एक निर्दिष्ट जीवन पद्धति का दष्टात था। उनमे से अधिकाश गहविहीन—उस महापथ के तीथ यात्री थे, जिन्हे अन्वेपण मे परमानन्द की प्राप्ति होती थी, विराग ही ईश्वर की उपलब्धि का साधन था और प्रेम ही उनका एक मात्र पुरस्कार था।

भित्ति चित्र की सरचना अखण्ड एव महाकाव्यात्मक ह। यह जनाकीण या रूपो से स्फीत कहा जा सकता है। फनदार आकार, छतो के ऋजुरेखीय गलियारे एव स्थापत्य विशेष रूप से मनोहारी होते है। प्रत्येक आकार को किसी सशक्त, चिरस्थायी एव स्पष्ट इकाई मे सरलीकृत किया जाता ह और ये बलिष्ठ बिम्ब सन्निकट, ग्रथित और परस्पर सम्बद्ध होते है वे पूण अखण्ड यथाथ के अश रूप मे प्रतिभात होते ह। भू दश्य, गह, वक्ष और आकृतियो के अवस्थान रूपात्मक आकारो के लघुतम हर मे परिवर्त्तित किए जाते है तथा भारी कूची से इस प्रकार चिह्नित किए जाते है कि प्रत्येक आकृति का वणन करते हुए उसे जीवन दान करते है। आकार एक दूसरे मे विलीन होते चले जाते ह, पल्लवगुच्छ स्थापत्य पर, आकृतियो, भू दश्य पर ढुलकते फिसलते अविछिन्न रूप से दष्टि को ज्वार भाटे की गति से सामने की ओर ले जाती ह। बिलाना और उभरना, नीरवना और मुखरता, समग्र चित्रात्मक कृति एक पल भर मे जीवन की शोभायात्रा बन जाती ह, ऐसी ह इसकी सक्षिप्तता और सावभौमिकता। एक उदास ग्रेगरीय (पोप ग्रेगरी का) लय इसके दूरत्व को मापता हुआ प्रतीत होता ह।

इस बहुल सयोजन के रग मटियाले और रागात्मकता रहित है। भगवा, मटियाला लाल और हाजा पत्थर (टेराभरट) रग प्रधान है, पाडु फलक पर पारदर्शी रग की झलक बिखेर दी गई ह जब कि श्यामवण का व्यवहार सूक्ष्म विवरण के प्रस्फुटन तथा रगाभास की विविधता द्वारा आकृतियो के स्वरूप दान मे हुआ है। रगो का पुट हल्का सफेद से लेकर लाल ह किन्तु रगो की गहराई कही भी नही है। गहराई और सकोचन खीचे गए है, रगे नही गए है। आकृतियो की गति द्वारा दष्टि कभी भीतर और कभी बाहर की ओर परिचालित होती ह, श्वेत आकार या वस्त्ररूपो के स्थल भी न तो प्रकाशमान है और न आवश्यक रूप से अग्रपरिसर। रग समग्र भाव से, कठिन वैराग्य, अनुशासन और उस विषय के पक्षपोषको के अपरिग्रह से भी सामजस्य रखता हुआ चलता है। यहा हम हर प्रकार के धार्मिकतत्त्वा वेषको का समावेश देखते है, जिन्होने आत्म सिद्धि के लिए ससार का परित्याग कर दिया ह। उनमे से कुछ बाल-सुलभ भोलापन लिए हुए आश्चर्य मिश्रित आनन्द मे समाधिस्थ है, कुछ प्रशान्त और सन्तुलित, दूसरे उपदेश दते या सेवा भाव लिए हुए, किन्तु सब मे प्रत्याहार, आत्म-सतोष, जागरूकता और गहन चिन्तन की सत्यता का तत्त्व निहित ह। यहा जिस जीवन का अकन किया गया वह सिफ सन्तो का ही नही, उन लोगो का भी ह जो उनके इद गिद ह, एव वह विशेष भू चित्रण जो उनका ही परिवेश ह। हम उन साधको को उनके अभीष्ट तीर्थो और पहाडी आश्रयो मे देखते है, हम उन गावा को भी देखते है जहा के लोग श्रद्धा-पोषण करते है एव उनके सन्धान को समझते है। ग्रामीण भारत का एक पष्ठाधार—वीर भूम की वह सूखी निराली 'रागा माटी' (लाल मिट्टी) उनको सभाले हुए ह। यह दास्तान सामान्य जीवन के अनेक रेखाचित्रो से उजागर की गयी है, नारियो के घरेलू कार्यो से, हाट की लेन देन से नदियो के घाटो से, नीरव दूर प्रान्तो से। साधक उनके शिष्यो सहित दिख-

लाई पडते है या ईश्वर का गुणगान करते हुए सगीतज्ञो के साथ या उपदेश देते हुए अथवा एकान्तवास करते हुए परिलक्षित होते है। वे महिमा मे अकेले (अद्वितीय) है, कि तु एकाकी नही। वे लीला से सम्बद्ध है, उस परम्परा के ह जिसने उन्हे उदभासित किया ह। नाम ओर स्थान का त्यागकर सारे जगत को घर और आकाश को आश्रय क रूप मे ग्रहण करने वाले ये रमते यागी उस विश्वास धारा के अश ह, जिसने इस धरती को पुष्ट किया ह।

विनोद विहारी मुखर्जी का अकन यहा मचीय तत्त्वो से आवेष्टित दिखलाई पडता ह। उनकी वर्षो मे सिद्धहस्तता प्राप्त सक्षिप्त और सुगठित रैखिक भाषा कूची द्वारा उनके सुपरिचित जीवन के भावचित्र सरलतम रूप से और भावावेश रहित उभारती है। यह भाषा अपने उत्तर काल मे सुलेखीय और अमूत्तप्राय हो गई ह। उनकी चित्र कलाकारी और रेखाकृतियो मे इनका प्रकारात्मक प्रकाश देखा जा सकता ह। प्रथमत उनकी सरचनाएँ रगा की स्थूल रेखाआ की बनी होती है या स्थापत्य द्वारा प्रसार-क्षेत्र की। ये आकृति एव आकारो द्वारा प्रभाव हीन कर दी जाती ह, सूक्ष्म काली कूची की रेखाओ द्वारा चिह्नित की जाती है जो कुचित किन्तु तीव्र होती ह, रग क्षेत्र बाह्य रेखाओ से मेल नही खाते है पर स्वच्छन्दता से उनकी सीमाएँ लाघ जाते है। भित्ति चित्रो मे यही तत्त्व बहुत एव चिरस्थायी रूप से रेखाकित ह। आकृतियो या वक्षो या गहो की इकाइया स्फटकीय प्रस्फुटन मे एक साथ मिल जाती है। कभी कभी आकृतियो मे, जैसे सन्तो का पूण विवरण अकित किया जाता ह, वे आभ्यन्तरिक प्राण वायु से युक्त प्रतीत होते है गौण आकृतियो मे, मुख्य खडी आकृतियो की ऊर्ध्वता प्राय दोहराई गई ह। वण सरलीकृत रेखण का अनुसरण करता है, यह समतल नही ह किन्तु स्पष्ट क्रम वि यास द्वारा आकारो को स्वरूप देता है। आकृतिया विस्तार रहित है तथापि विविधता और व्यक्ति वचिञ्य रहित नही ह। यहा अनेक प्रतिरूपो, जसे—श्मश्रुबहुल से लेकर मुडे हुए सिरो का, स्थूलकाय से लेकर क्षीणकाय, नग्न से लेकर वस्त्राच्छादित शरीरो का निदशन मिलता है। आकृतिया भी आशिक रूप मे दिखलाई पडती है, स्थापत्य के उभाडो के बीच और आर पार सिफ उत्तरार्द्ध प्रकट या ओझल होता हुआ लगता ह। अकन भरी नाव को पानी के पार कराता ह, दूर मे हम देखते ह कि नाव घाट पर लग चुकी ह। दूसरी दीवार पर एक औपचारिक शोभायात्रा देखते है, घोडे ओर सनिक एक दाढी धारी आरोही के साथ चले जा रहे ह।

सेलिनी द्वारा वर्णित 'फ्रेस्को बुउनो' शिल्पविधि को, जिसे सामा यत आद्र प्रक्रिया (वेट प्रोसेस) कहा जाता ह, कलाकार ने अपनाया ह। जसा पहले उल्लेख किया गया था कि विनोद विहारी शाति निकेतन की दूसरी दीवारो पर इस पद्धति का प्रयोग कर चुके थे, इस परिचित रीति से हटकर उन्होने पलस्तर की और एक परत लगायी। एक के बाद दूसरी परत लगायी गयी, आधी चूने की आधो बालू की। चूना के असार अश को जमाने के लिए भारतीय प्रयोग पद्धति के अनुसार इसे दही के साथ मिला दिया जाता ह। जब यह चौरस और निविड रूप से ठोस हो जाता ह तब इसका सामान्य धरातल रेशमी पाडु रग का होता ह, यह खुरदरा होता है किन्तु इसका विन्यास टसर की तरह होता है। किरमिज या नील द्वारा अपने स्थायी विषय की सीमा निर्धारित कर चित्रकार तूलिका से भीगी दीवाल पर काय आरम्भ कर देता है। इसके स्थान और आकृतियो को प्रत्यक्ष रीति से न्यास करते हुए वह सरचना की



कबीर और अनुयायी, दाहिने कोने मे ऊपर महाप्रभु वल्लभाचाय

रूपसेखा प्रस्तुत करता ह । यह प्रारम्भिक स्थापन कतिपय घण्टो मे ही वाष्पित हो कर अदश्य हो जाता ह और इसके उपरान्त ही शीघ्रता से रगा का काय आरम्भ हाता है । लगाने के वाद रग पारदशक हो जाते ह भले ही छूने मे घने और चिकने लगते हा केवल खनिज रगा का व्यवह र होता ह—जैसे हरमुजी हाजापत्थर, भगवा और काला नीले रग का सवथा अभाव उल्लेख योग्य ह । रेखाएँ और कूची की लकीरे सुधारी या सँवारी नही जा सकती ह, हालाकि गहरे रगो को तीव्र और घना करने के लिए पुन चित्रण की आवश्यकता पडती ह रग सम्पुटक के अ दर सूखते है और स्थायी हो जाते ह । बाद मे दीवाल की सतह बहुत सख्त होने के पहले, बोतल की रगड के महारे चमकायी जाती है । तकनीक, जैसा हम अवलोकन करते है माध्यम के द्रुत सौग दक्ष निर्वाह पर निभर करती है, इसमे मदु सूक्ष्माचार वर्जित है किन्तु स्पष्ट असदिग्ध निरूपण की अपेक्षा रहती ह । वस्तुत कलाकार को अपने अन्त करण मे सरचना करनी पडती ह उसके पास उसे आरोपित करने का ही समय रहता ह । यह शिल्प विधि, इसके वृहत आयोजन, वितरित स्वराकन और विस्तार लाघव सहित सम्भवत विनोद विहारी मुखर्जी की प्रतिभा के सवथा उपयुक्त और स्वाभाविक ह ।

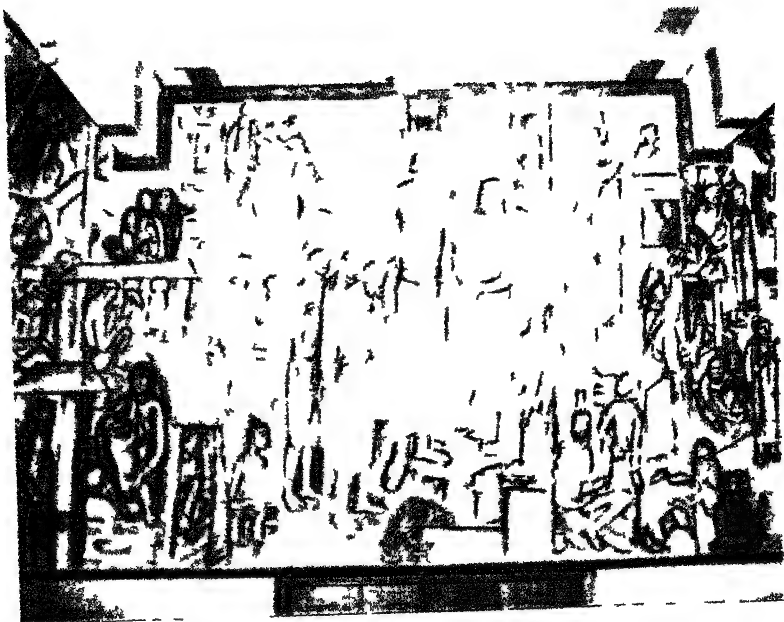
समग्र भित्ति चित्र एक अखण्ड दश्य होता ह, फिर भी इसका सबध सिफ आखो से नही होता, मन से भी होता है। मध्ययुगीन सन्तो के भव्य समारोह को सजीव करते समय यह, कलाकार के विचारो उसके उद्देश्यो और अभिरुचिया तथा उनकी सिद्धि को भी व्यक्त करता ह । यहा जो चीजे अकित की जाती ह, उनकी भावनाआ के प्रति एक दढ किन्तु मूलभूत विश्वास रहता ह । इसका विराधाभास ऐसा ह कि जब तक विषय कला तथा सवेदनात्मक अनुभूति के जगत के माध्यम से व्यक्त होता ह, 'सौन्दय' की बहुत ही कम छूट होती है । साधक की तरह कलाकार की अभिप्रेत जीवन विधि होती है । उसके सयोजन का रचनामूलक गठन बहुस्तरीय होता ह तथा कृति की तरह ही सवग्राही, इसके माध्यम से ही शाश्वत सौन्दय की तलाश जारी रहती है । मध्ययुगीन सन्तो का ध्येय और इस कला का लक्ष्य, समातर ह । उसके सदश, कलाकार जगत मे रह कर भी जगत का नही ह, यद्यपि मानवीय परिस्थिति के वशीभूत वह भूमा का रसानुभव करता ह ।

विनोद विहारी के भित्ति-चित्र, उसकी कला और दशन के समवेत भाष्य माने जा सकते है । यह एक कला ह, उस तीथयात्री की तरह, जो सत्य की खोज के लिए उद्विग्न है । अमूत्त मूलक सौन्दय के लिए वे वणन और भावावेश को अग्राह्य करते ह, जिस सयम के फल स्वरूप सौष्ठव और भावसाम्य की उपलब्धि हुई । जब हम विनाद विहारी के उद्योग का, उसके काल और परिवेश की पष्ठभूमि मे अध्ययन करते है, तो यह स्पष्ट हा जाता ह कि उनकी देन, बौद्धिक और रूपात्मक कला की ओर अधिक है । बगाल स्कूल की रागात्मकता को गुरु गम्भीरता से पण विश्लेपणात्मक कला की निकटता दिलवायी । उन्होने दैनदिन जीवन के विषयो को गरिमा और क्लासिकल लक्षणो की अपरिहायता प्रदान की । उनकी अतीत की पद्यात्मकता के विपरीत उनकी गद्यात्मकता ने नया आयाम दिया और उनकी विश्लेषणात्मक पद्धति ने, भविष्य के अमूर्त्तीकरण का सरलता से नेतत्व किया ।

हिन्दो भवन का भित्ति चित्र न केवल सौन्दयबोध परक ऊर्जा-कौशल क्रिया है, यह

अनेक शक्तियो का विराट् समन्वय ह, क्योकि यह भाव और रूप, विषय और अभिव्यक्ति, कला और परिवेश का—जो एक दूसरे मे अतर्लीन और निभरशील ह, एक साथ उपस्थापन ह। इन सबके ऊपर कलाकार विराग की भावना के साथ तादात्म्य सबध स्थापित कर लेता ह, जिसका यह स्वय भाष्यकार ह। हमारे युग के चित्रकार की भाषा मे यह हम लोगो के समक्ष स तो का सन्देश प्रस्तुत करता ह।





रामानद और उनके अनुयायी

यौधेयो का ऐतिहासिक अध्ययन

सुरेन्द्रनाथ चोपडा

मौर्यो के पतन से लेकर गुप्तो के उत्थान तक का काल हरियाणा के इतिहास मे एक अत्यन्त रोचक पव है। इस युग की प्रमुख विशेषता यौधेयो मे अदम्य शक्ति का आविभाव ह, जिन्होने यमुना और सतलज के मध्यवर्ती एव सीमावर्ती अचलो के राजनीतिक, धार्मिक एव सास्कृतिक जीवन मे महत्त्वपूण यागदान दिया ह।

अराजकता के कारण मौर्यो की सर्वोच्च सत्ता ई० पू० १८७ मे ढह गई और उत्तरी भारत का अधिकाश भू भाग विदेशी आक्रमणकारियो—हिन्दू ग्रीक, पाथव, शक एव यूह चियो के अधीन हो गया। यद्यपि उन्होने तीन शताब्दियो से अधिक काल तक क्रमानुसार शासन किया, फिर भी यहा की मिट्टी मे वे जड नही जमा सके, लोग उन्हे विदेशी ही समझते रहे। महान सम्राट कनिष्क ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी, किन्तु उसके उत्तराधिकारी उसे अधिक दिनो तक अक्षुण्ण न रख सके। जब उन्हे देश से निकाल बाहर करने के सकल्प से अनेक गणतत्र जातिया एव राजतन्त्र सघटित आन्दोलन मे प्रवत्त हुए तो राजनीतिक मच से कुषाण सदा के लिए अन्तर्धान हो गए। कुषाणो को जड से उखाड फेकने मे यौधेयो ने महत्त्वपूण भाग लिया और विजयोल्लास के उपलक्ष्य मे "यौधेय गण की जय हो" अकित कर मुद्राएँ चालू की। उन्होने न केवल देश को दासता से मुक्त किया, बल्कि कुषाण शक्ति के तिरोधान से उत्पन्न शून्यता को जनप्रिय तत्र की स्थापना द्वारा पूण कर राजनीतिक और आर्थिक दोनो दष्टियो से स्थायित्व प्रदान किया।

हरियाणा से यौधेयो का सम्बन्ध इतना गहरा और पुराना है कि यह सूत्र महाभारत[1]-काल तक चला जाता है। यौधेयो का उल्लेख हरिवश[2] पुराण मे भी मिलता है और साथ ही अन्य नौ पुराणो मे, यथा, वायु, विष्णु मत्स्य, भागवत, माकण्डेय, ब्रह्माण्ड, ब्रह्म, अग्नि और गरुड, इन सभी मे इनके सम्बन्ध मे एक ही प्रकार का विवरण उपलब्ध है। श्यामिलक[3] द्वारा प्रणीत सस्कृत नाटक 'पदतदितक', जिसकी रचना उत्तरकालीन गुप्त युग मे हुई थी, मे रोहतक के गवैयो द्वारा यौधेय देश के गीत गाने का वणन ह।

१ युधिष्ठिर के पुत्र के रूप मे यौधेय का उल्लेख हुआ ह—महाभारत, I ९५ ७६ (गोरखपुर सस्करण), तुलनीय वाकाटक गुप्त युग, पृ० ३९।

२ हरिवश पुराण मे तथापि यह वणन मिलता है कि यौधेय अनु वश के नृपति नग की सतति थी। तुलनीय पार्जिटर एनशेट हिस्टारिकल ट्रेडिशन, प० १०९। यौधेय राजपूतो के वशधर थे—केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, प० ४७६ और भी देखिए, जे० आर० ए० एस०, १८९७, प० ८८७।

३ पदतदितक, प० १६८ स० मोतीचन्द्र और वासुदेवशरण अग्रवाल।

महाभारत मे यौधेय और रोहितको[१] (आधुनिक रोहतक निवासियो) को अभिन्न समझा गया ह। महान ज्योतिर्विद वराहमिहिर ने, जो छठवी शताब्दी मे हुए थे, भारतीय भूगोल का वणन करते हुए यौधेयो के भारत के उत्तराखण्ड[२] मे बसने की बात लिखी है। रोहतक नगर के समीप खाखरकोट नामक स्तूप से यौधेयो[३] के सिक्का ढलाई के बहुत से साचे पाए गए है। इनमे 'यौधेयाना बहुधायक' आलेख उत्कीण है। अत यह निश्चित रूप से कहा जा सकता ह कि रोहतक के इद गिद का इलाका यौधेयो का राज्य बहुधा यक था, जो उस समय न केवल शासन का अधिष्ठान था बल्कि टकशाल नगर भी था। अतएव यह कहना युक्तिसगत होगा कि उस समय हरियाणा[४] का ही दूसरा नाम बहुधा यक था। बहुधायक नाम का अथ ही ऐसे प्रदेश से ह, जहा शस्य उत्पादन प्रचुर परिमाण मे होता हो एव इससे यह भी ध्वनित होता ह कि यौधेयो की आर्थिक समृद्धि की रीढ कृषि सम्पत्ति ही थी। यौधेय लोग महान योद्धा थे। वे जिस निपुणता के साथ तलवार चलाते थे उसी तरह हल भी। महाभारत काल से अपने पराक्रम और साहस के कार्यो के लिए वे विख्यात थे। उल्लेख मिलता ह कि भारत के उस महासमर मे वे कौरवो के समवर्गी थे, जिसमे उनके बडे बडे सूरमा युद्धक्षेत्र[५] मे खेत रहे। कई बार उनके योद्धाओ को अजुन, भीम और युधिष्ठिर[६] से जूझने का अवसर मिला था। महावैयाकरण पाणिनि ने उनके साहसिक कार्यो की पुनरावत्ति, ई० पू० पाचवी शताब्दी मे अपने विश्रुत ग्र थ 'अष्टाध्यायी' मे की है। पाणिनि ने उन्हे 'रणकुशल राजा'[७] ओर 'रणकुशल जाति'[८] के रूप मे स्मरण किया है। यौधेयो की सर्वाधिक विलक्षण विशेषता सम्भवत उनकी युद्धप्रियता थी। उन्होने इस प्राणशक्ति को धार्मिक जीवन मे भी पूणरूपेण सजीवित किया, यहा तक कि वे पौरुष और पराक्रम के प्रतीक देवता कात्तिकेय, जिनकी ख्याति युद्ध देवता के रूप मे ह, के महाभक्त थे। कार्तिकेय के प्रिय प्रदेश के रूप मे रोहितक का वणन महाभारत मे हुआ ह। अपने राज्य को महान युद्ध देवता के नाम समपण करते हुए, बर्छाधारी युद्ध सज्जा से सज्जित कार्तिकेय या कुमार के प्रतीक उनकी मुद्राओ[९] मे उत्कृष्ट रूप से उत्कीण है।

गणतत्रवादी शासन उनकी सभ्यता की मुख्य विशेषता थी। इस क्षेत्र मे गणराज्य के

१ महाभारत, II ४२, ४–६।
२ वहत सहिता—XIV २८।
३ तुलनीय बी० बी० साहनी दी टेक्नीक आफ कास्टिंग काएनस इन एनशेन्ट इण्डिया।
४ एस० चट्टोपाध्याय अरलि हिस्ट्री आफ नाथ इण्डिया, द० ५२।
५ महाभारत, VIII ५ ४७
६ वही, VII १९ १६, VII १६१ ५, VII १५७ ३०
७ IV १ १७८
८ V १ ११७
९ देखिए, एलन कै 'टॅलाग आफ दी काएँनस आफ एन' शेन्ट इडिया इन दी ब्रिटिश म्युजिअम, प० २७० से आगे। जे० एन० बनर्जी डेॅवलपमेॅन्ट ऑफ हिन्दू आइकनाग्राफि, पृ० १४२।

कायम होने का उल्लेख सव प्रथम पाणिनि[१] ने किया ह उन्होने इस प्रसग म वाहिक प्रदश, जिसकी व्याख्या नदिया का देश अथात पजाब[२] थी, के और भी कई एक गणतत्रा (सघा) का स्थान निधारित किया ह। सिकन्दर के इतिहासकारो ने भा यहा के लागा के सम्ब ध मे नामोल्लेख न करते हुए, अप्रत्यक्ष रूप से सकेत बिया है कि ये हाइफासिस अर्थात व्यास नदी के उस पार अत्य त उबर प्रदेश के रहने वाले थे। वहा के निवासी समृद्ध कृषक और युद्ध वीर थे। वे उत्कृष्ट आन्तरिक शासन प्रणाली मे वसते थे और शासक कुलीन नेता भी उन पर याय और मध्यम माग (नरमी)[३] से राज करते थे। मेगास्थनीज[४] ने सिफ उन गण राज्यो का विवरण दिया ह जो मौर्यो की केद्रीय शक्ति के अधीन थे। इस प्रकार के गणतत्रा की स्थिति से अच्छी तरह अवगत रहते हुए भी कौटिल्य ने अपने समय के गणतन्त्र के नामो का उल्लेख नही किया है। जिस नाम से वहा के लोग परिचित थे, उसका उल्लेख किए बिना वह उन्हे वार्त्ताशस्त्रोपजीविन[५] कहता ह। इन गणराज्यो के सम्ब घ मे अच्छी धारणा पोपण नही करने के कारण, उनके यथाशीघ्र उच्छेद के लिए वह राजा को परामश देता ह।

महान प्रतापी राजा नन्दो के पाटलिपुत्र के साथ, ग्रीक इतिहासकारा द्वारा वर्णित गणराज्य का सादश्य स्थापित नही किया जा सकता सिफ इसलिए कि उस समय वहा राज तन्त्रात्मक शासन प्रणाली का प्रचलन था। कौटिल्य के विवरण समेत इन उच्चकोटि (क्ला सिकल) के विवरणो मे प्रमाणो का अभाव ह जिससे यह सिद्ध किया जा सके कि पूर्वोक्त अज्ञातनामा गणराज्य यौधेय गणराज्य से भिन्न था। इसके विपरीत यदि हम व्यास नदी के उस पार बसने वाले लोगो के गुणो, स्थानीय शासन प्रणाली एव भौगोलिक परिपाश्व पर विचार करे तो यह मानना पडेगा कि ये वही लोग है जो यौधेय नाम से प्रसिद्ध थे।

मौर्यो के पतन से ले कर कुपाणो के अन्तिम रूप से श्रीहीन होने तक, जो १७६ ई०[६] के लगभग घटित हुआ, यौधेयो के अस्तित्व के लिए कठिन सघष का काल रहा है, इसमे उन्हे अपरिसीम बलिदान देना पडा। उनके इतिहास मे इसे अस्थिरता का युग कहा जायेगा, इस बीच उन्हे विदेशी घुमक्कड दलो से, जो इस इलाके मे शासन करते थे, लगातार सामना करना पडा। जब कभी उन्हे अवसर मिला, इन विदेशी शासको के विरुद्ध उन्होने सशस्त्र बगावत का

१ IV १ १६८

२ के० पी० जायसबाल हिन्दू पालिटि, परिच्छेद १४।

३ जे० डबल्यु० मैकक्रण्डल एनशेन्ट इडिया ऐज डिसक्राइब्ड बाइ मेगास्थनीज ऐन्ड एरियन प० ४३ २१२, दिओदरस-II ४१, एरियन—XII।

४ वही, इ वेसन आफ अलेक्जन्डर दी ग्रेट, प० १२१ फुट नोट एरियन—V २५ स्त्राबो (XV ३५) के अनुसार गणतन्त्र मे पाच हजार पाषद थे, प्रत्येक ने राज्य को एक एक हाथी भेट दिया।

५ इससे सकेत मिलता है कि प्रजा के हाथ मे उद्योग, व्यवसाय और युद्ध कम था।

६ भारतीय भूमि से प्राप्त सबसे अन्तिम मुद्राए, जो कनिष्क सवत ९८ की है, इससे मेल खाती है।

झडा खडा किया। वास्तव मे वह स्वतत्रता प्रिय जाति थी, तब तक उ हे शान्ति नही मिली जब तक उन्होने विदेशी सत्ता से अपने देश को मुक्त न किया।

इतिहास के विभि न कालो म शक्ति के लिए यौवेया ने जो सघप किया ह उनकी मुद्राओ के अध्ययन से यह पता चलता ह। यौवेया[1] द्वारा जारी की गइ तीन विशिष्ट प्रकार की मुद्राएँ, तीन विभि न कालो की द्योतक ह। प्रथम वग की मुद्राए जिनमे वृपभ और गज' के प्रतीक[2] अकित ह, ई० पू० द्वितीय ओर प्रथम शताब्दी के उत्तराद्ध की हो सकती ह। द्वितीय वग की अधिकाश मुद्राए जिनम छह सिरो वाले कार्त्तिकेय की अनुकृति है एव 'ब्रह्मण्य देवस्य भ'[3] या 'भागवत स्वामिनो ब्रह्मण्य (देव) यौधेय'[4] आलेख ह द्वितीय शताब्दी के उत्त राद्ध की हो सकती ह। ततीय वग की मुद्राए जिनमे यौधेय (योधेय) गणस्य जय'[5] आलेख ह, तीसरी और चौथी शताब्दी की ह।

प्रथम वग की मुद्राए पुष्यमित्र शुगोत्तरकालीन ह जब यौधेयो ने शुगो की छद्म मौय शक्ति से अपनी स्वतन्त्रता की घोपणा की। यह स्वतन्त्रता कि तु क्षणस्थायी रही और यौधेय लोग विदेशी आक्रमणकारियो—जसे, हिन्दू, ग्रीक, पाथव और शको द्वारा अवश्य ही पराजित किए गए होगे। द्वितीय वग की मुद्राए अल्पकालिक है, जब उनकी भाग्यलक्ष्मी ने करवट ली ओर थोडे समय के लिए उ होने आजादी हासिल की। जब ये मुद्राएँ चालू की गइ, खूब सम्भव ह, शको ने यौधेयो को कुछ हद तक आभ्यन्तरिक स्वायत्त शासन प्रदान किया होगा। कि तु इतिहास का सबसे अ धकारमय युग कुपाण शासनकाल है, जब मारी सत्ता केद्रित कर ली गई और वे सिक्के चलाने के अधिकार से वचित कर दिए गए। कि तु इस काल मे भी, पश्चिमी शक क्षत्रप राजा रुद्रदामन जो उत्तर भारत का विजयोत्सव मनाने के लिए आया था,

१ विस्तत विवरण के लिए देखिए—एलन पूव उदधत ग्रन्थ—CLii—iii

२ बी० ए० स्मिथ कैटॅलाग आफ दी काएँनस इन इडियन म्युजिअँम कलकत्ता, प० १८०, रैप्सन इडियन काएनस, प० १५

३ बी० ए० स्मिथ पूव उदधत ग्रन्थ, प० १८१, क्र० स० ८, फलक XXi १५

४ एलक पूव उदधत ग्र थ, प० ७८ फलक Vi ११

५ बी० ए० स्मिथ, (पूव उदधत ग्रन्थ प० १८२, क्र० स० २१, फलक XXi १८) मुद्रा के सम्ब ध मे इस प्रकार वणन करता ह सीधा—राजा या देवता की आकृति सामने की ओर मुँह किए खडी, जिसके दाहिने हाथ मे बर्छी है और बाया हाथ कटिप्रदेश पर बायी ओर बाये पैर के समीप मयूर ह। ब्राह्मी लिपि मे सु दर रूप से अकित है, यौधेय (योधेय) गणस्य जय यौधेय गण की जय हो।' उल्टा—कुषाण मुद्राओ पर उत्कीण मीरो की तरह, बायी ओर मुडती हुई वस्त्राच्छादित पुरुषाकृति, दाया हाथ फैला हुआ और हाथ कटिप्रदेश पर वि दुकित वत। यह युग मृण्मय मुहर या मन्नत फलको का भी है जो लुधियाना के समीप 'सुनेत' से पाए गए है (हानले, जनल एसियाटिक सोसाइटी बगाल, १८८४, पृ० १३८–४०), जिनमे लिखा है 'यौधयन जयन्त्र धरन। और भी देखिए—अल्तेकर प्रॅसीडिंगस आफ दी इण्डिया आरियेटेल कानफेरे स बनारस, १९४३, प० ५१३ से आगे।

के गिरनार के अभिलेखो[1] (१५० इ०) मे यौधेयो के भव्य पराक्रम की गाथा प्रोज्ज्वल है, जिसमे उन्हे 'स्वाभिमानी कहा गया ह एव जा अपनी उपावि सभी क्षत्रियो मे श्रेष्ठ घोषित करते है

तनीय वग की मुद्राएँ, जो क्रम मे अन्तिम है उस समय जारी की गइ थी जब यौधेय पौरुप के चरम सीमा पर थे और कुषाणो के साथ उनके कठोर युद्ध का अ त हो चुका था। इन सिक्को के प्रचलन के साथ गुप्ना के आधिपत्य स्थापना के पूव, एक ऐसे युग का सूत्रपात हुआ जिसमे करीब १५० वर्षो तक, हरियाणा और उसके निकटवर्ती[2] अचला मे यौधेय एक दुर्जेय शक्ति के रूप मे परिणत हो गए। विदेशी दासता से मुक्त करने के, स्वतन्त्रता के उस महासग्राम मे जिन स्वतन्त्रताप्रिय एव पराक्रमी यौधेयो ने अपने प्राणो की आहुति दी थी 'योद्धा या 'विजय' के प्रतीकात्मक ये मुद्राये उनके उपयुक्त स्मारक है। महत्ता और मात्रा की दष्टि से राजनीतिक क्षेत्र मे उनकी देन अद्वितीय है। कहने का तात्पर्य ह यदि च द्रगुप्त देश को यवनो की जजीरो से मुक्ति दिलाकर प्रसिद्ध हुए तो यौधेय कुपाणो के भीषण आक्रमणो से देश की रक्षा कर सूरमा बन गए।



१ अेपिग्राफिका इडिका, VIII प० ४२ से आगे— सव क्षत्राविष्कतवीर शब्दजातोत सेकावि धेयाना। तुलनीय एलन पूव उदधृत ग्र थ, प० २७६, काम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री आफ् इडिया, प० २५५

२ कनिंघम के अनुसार यौधेय लीग भवालपुर की सीमा पर जो जोहियावाड कहलाता है, सतलज के दोनो तटो पर बसते थे। (ए एस आर, खण्ड XIV तुलनीय—CII III प० २५१, जे आर ए एस १८९७, प० ८८७ से आगे)।

महाभारत एवं पुराणकालीन हरियाणा

विष्णुदत्त भरद्वाज

वेदिक साहित्य मे कुरुक्षेत्र (हरियाणा) का उल्लेख

हरियाणा वह प्रदेश ह जिसकी पावन भूमि पर भगवान कृष्ण ने अजुन को गीता का उपदेश दिया था। वदिक साहित्य मे अथात वेद[१] ब्राह्मण[२], आरण्यक[३], उपनिषद[4], सूत्र[५], मे हरियाणा क लिए कुरुक्षेत्र शब्द मिलता है। इसके अतिरिक्त अर्वाचीन, उपनिषद, महा भारत, पराण तथा ऐतिहासिक ग्रथा मे हरियाणा के लिए कुरुक्षेत्र और कुरुजागल शब्दो के प्रयोग मिलते है। ऋग्वेद मे कुरुक्षेत्र (हरियाणा) की सरस्वती नदी और उसकी सात सहायक नदियो का भी उल्लेख ह। यजुर्वेद मे कुरुक्षेत्र (हरियाणा) को इन्द्र, विष्णु और शिव की यज्ञभूमि कहा है।

महाभारत मे कुरुक्षेत्र का उल्लेख

महाभारत मे कुरुक्षेत्र का सविस्तार वणन मिलता ह। सूय कन्या तपती के गभ से सम्राट सवरण द्वारा उत्पन्त कुरु राजा थे। (आदि० ९४।४८) इनके द्वारा वाहिनी के गभ से अश्ववान, अभिष्यन्त, चैत्ररथ, मुनि एव जनमेजय का ज म हुआ। इनके नाम से कुरुक्षेत्र एव कुरुजागल प्रदेश की प्रसिद्धि हुई। इनकी तपस्या से कुरुक्षेत्र पवित्र हुआ। (आदि० ९४,५० ५१) कुरुक्षेत्र मे इनके यज्ञ करते समय सरस्वती नदी 'सुरेणु' नाम से प्रकट हुई थी।

कुरु का क्षेत्र कुरुक्षेत्र कहलाता है। यह सरस्वती एव दषद्वती नामक नदी का मध्यवर्ती क्षेत्र है। इसमे निवास का विशेष माहात्म्य है। (वन० ८३।४।२०४ २०५) कुरु ने तपस्या से इस क्षेत्र को पवित्र बनाया था। (आदि० ९४,५०)। वनयात्रा के समय पाण्डवो का यहा आगमन हुआ (वन० ५ १। कुरुक्षेत्र की सीमा मे मान्धाता यज्ञस्थल के

१ (क) ऋग्वेद ९।६५।२२ घ—ऋग्वेद ७ २।८
(ख) ऋग्वेद ९।११३।१ ङ—ऋग्वेद ७।३६।६
(ग) ऋग्वेद ८।७।२९ च—ऋग्वेद ७।९५।१ तथा ७।५६।१

२ शतपथब्राह्मण—"कुरुक्षेत्र व देवाना देवयजनमास '

३ तैत्तिरीय आरण्यक ५।१।१ (यहा कुरुक्षेत्र (हरियाणा) की सीमा का उल्लेख है।)

४ (क) छा दोग्योपनिपद १।१०।१
(ख) छागलेयोयनिषद ३।१
(ग) जाबालदर्शनोपनिषद ४।४१

५ (क) बौद्धायन श्रौ० १८।४५।
(ख) कात्यायन श्रौ० २६।६, ३०-३२।

अवशेष चुलकाणा ग्राम से निकट है ऐसी लोकप्रथा ह। मुदगल ऋषि कुरुक्षेत्र मे ही रहते थे (वन० २६०।३)। भीष्म और परशुराम का युद्ध कुरुक्षेत्र मे हुआ था (उद्योग १७८ २२)। कौरव और पाण्डव युद्ध के लिए कुरुक्षेत्र मे हो एकत्र हुए थे। और वही श्री कृष्ण के मुख से अजु न को गीता का उपदेश मिला था। भीष्म० २५ अ० से ४२ अ० तक) महा भारत युद्ध का मैदान कुरुक्षेत्र ही था (भीष्म पव से शल्य पव तक) इसी क्षेत्र मे भीष्मजी शर शय्या पर पडे थे (भीष्म १२९।९२) कुरुक्षेत्र मे सरस्वती नदी ओघवती के रूप मे प्रकट हुई थी (शल्य ३८।३४।) पहले कुरुक्षेत्र समन्तपचक क्षेत्र था।

महाराज कुरु के समय से इसका नाम कुरुक्षेत्र पडा। इसकी सीमा का निवारण और महिमा शल्य पव अ० ५३ मे दी हुई ह।

कुरुक्षेत्र की सीमा —रामपूवतापनि उपनिपद मे कुरुद्वयम का उल्लेख है। लोक परम्परा मे भी हरियाणा के दो भाग देववरती (देवधरित्री स०) तथा अडक (अटक स०) का प्रयोग मिलता है। लोक मे देववरती कुरुक्षेत्र भूमि को कहते ह। कुरुजागल के लिए लोक मे अडक शब्द प्रयुक्त होता ह।

हरियाणा के लिए हरियाणक और हरिवाणक का उल्लेख अवाचीन ग्रथो तथा शिला लेखो मे मिलता ह। अत हरियाणक और हरिवाणक कुरुक्षेत्र और कुरुजागल या दवधरती और अटक के पर्याय है। वामनपुराण से भी इसकी पुष्टि होती ह।[1] पृथूदक (पहेवा ग्राम) हरियाणा मे ह। कुरुक्षेत्र (हरियाणा) की सीमा का उल्लेख वामन पुराण २० ७० मे देखा जा सकता है। महाभारत के आरण्यक पव मे कुरुक्षेत्र सीमा का इस प्रकार वणन ह — 'तरन्तुकारान्तुकयोर्यदन्तर रामह्रदाना मचक्रूकस्य च एतत कुरुक्षेत्रसमन्तपचक पिता महस्योत्तरवेदिरुच्यते।[2]

हरियाणा का नामकरण —अब प्रश्न यह उठता है कि कुरुक्षेत्र का नाम हरियाणा कैसे पडा। इस विषय मे कुछ किंवदतिया प्रचलित है जा महाभारत कालीन कृष्ण परशुराम (जिन्हे हरि भी कहते है) से सम्बद्ध ह। वस्तुत हरियाणा महाभारतकालीन ही नही वह वैदिककालीन है। हरियाणा की सस्कृति, धम, तीथस्थान इत्यादि के सूक्ष्म अध्ययन के पश्चात मेरा यह विनम्र कथन है कि हरियाणा' या 'हरियाणक' शब्द हरि और यान से बना ह। हरि (विष्णु सूय) का पर्याय ह। हरियान = हरियाणा वदिक काल मे सूर्योपासक क्षेत्र रहा है और यह पौराणिककाल मे चतुभज विष्णु का उपासना-क्षत्र बन गया। अनतकाल से कुरुक्षेत्र मे जो मेला लगता है वह सूयग्रहण पर ही लगता ह। इसके अतिरिक्त कुरुक्षेत्र मे विभिन्न तीर्थो पर सूय कुण्डो की विद्यमानता इस बात की पुष्टि करती ह कि यह क्षेत्र सूर्योपासक क्षेत्र है। जनश्रुति के आधार पर यह क्षेत्र पक्षिराज गरुड की तपोभूमि ह। यहा पर चतुभुज विष्णु ने गरुड को हरियान पद प्रदान कर इस क्षेत्र को हरियाणक नाम मे अभिहित किया। पौरा णिक युग के पश्चात यहा शव सम्प्रदाय का बोलबाला हो गया। अत हरियाणा हरयाण (शिवोपासक) बन गया।

१ वामन १२।४५
२ आरण्यकपव ८३–१०८

महाभारत का हरियाणा—महाभारत मे कुरुवन एक प्रसिद्ध प्रदेश था। आधुनिक हरियाणा कुरुबन का वह भूभाग ह जो कौरवो ने पाण्डवो को दिया था। इस प्रदेश मे पाणिप्रस्थ (पानीपथ), श्रोणिप्रस्थ (सोनीपत) इत्यादि है। महाभारत काल मे हरियाणा मे एक अश्वमेघ यज्ञ किया गया था जिसमे उग्रसेन सम्मिलित हुए थे। यज्ञोपरा त यज्ञस्थल का अगराहो (अगरवा) नाम रखा गया। अगरोहा हिसार के समीप है। यहा से अग्रवाल वैश्य जाति की उत्पत्ति मानी जाती ह। अगरोहा का ध्वमावशेष 'थेह' कहलाता है। यहा राजा उग्रसेन के काल के सिक्के तथा प्राचीन नगर निर्माण योजना के ध्वस रूप मिलते है। हयहय वशी राजाओ का गढ हासी से २०-२५ मील दूर राखीगढी है। परशुराम ने जिस स्थल पर पिततपण किया था वह स्थल रामह्रद या रामश कहलाता ह।

महाभारत के बाद का हरियाणा —पाश्वनाथचरितपुराण के निम्नलिखित उद्धरण से ज्ञात होता है कि हरियाणा की प्रसिद्ध नगरी दिल्ली थी।

"हरियाणए देसे असख गाम गामियणा,
जणि अणवरभ काम परचक्क
विहट्टणु सिरि सघट्टणु जो सुखइणा
परिगणिय। रिउरुति रावट्टणु विउलु
पवट्टणु दिल्ली नामेण जिमिणिय।
जहि असिवर तोडिउ रिउ कपालु।
णरणाहु प्रसिद्ध अणग वालु,
णिरुदलवड्डिय हम्मीर वीरु
वहियणविद पवियण्य चीरू।"

(कवि श्रीधर रचित पाश्वनाथ चरितपुराण)

(असख्य गाववाले हरियापा देश मे दिल्ली नामक एक नगर था। वह सुदढ आकार वाले उच्च गोपुरो, आनन्ददायक मदिरो और सुन्दर उपवनो से अलकृत था। उसमे असख्य घोडे, हाथी और सैनिक थे। वह अनेक नाटको और प्रेक्षागृहो से सम्प न था। वहा उत्तम तलवारो से शत्रुकलापो को भग्न करने वाला, अगपाल नामक एक राजा था। उसने हमीर दल को बढाया था और बन्दीजनो को वस्त्र प्रदान किए थे।)

हिसार जिले का इतिहास (अमीनकृत) से ज्ञात होता ह कि अगपाल के पुत्र का नाम जाटू था। उसने जाटोहा साढा बसाया। और जाटू के भाई हरपाल ने राजली, गुराणा ग्रामो को हिसार जिले मे बसाया। हासी और हिसार भी पथ्वीराज की राजधानी रहे थे। इन नगरो का उल्लेख पथ्वीराज रासो मे मिलता है। जाटू की सतान ने बलियाली, मगाली, हाजमपुर, जमालपुर ग्राम हिसार जिले मे बसाए। जाटू की सतान मुसलमान हो गई थी। इसीलिए वे राघड (राजपूत मुसलमान) बन गए थे। १९४७ मे जाटू की सतान पाकिस्तान चली गयी। हासी मे एक सूफी फकीर की कब्र है जिसकी अब भी बडी मायता ह। सुलतान मुहम्मद बिन तुगलक के एक शिलालेख मे लिखा है—'देशोऽस्ति हरियानाख्य।' अयत्र हरियाणा के विषय मे निम्नलिखित श्लोक मिलते ह —

"अभोजितोमरैरादौ चौहाणैस्तदनतरम ।
हरिवाणभूरेषा शकेन्द्रै शास्यतेऽधुना ॥'
(अखण्ड प्रकाश, प० धरनीधर हासी)

"प्रालबग्रामपूर्वे तु कुशुभग्रामपश्चिमे ।
हरिवाण भूरेषा सवसस्याबर्द्धिनी ॥'

ऐतिहासिक तथ्यो के आधार पर कहा जा सकता है कि यह यौधेय वीरो का जनपद रहा ह । यौधेयो की प्रभूत बिभूति का वणन अपभ्र श कवि पुष्पदत ने किया ह । राहतक यौधेया की राजधानी रहा है । महाभारत मे नकुल दिग्विजय मे आता ह कि नकुल दिल्ली के पश्चिम की ओर बढा और वह रोहतक होता हुआ मेहम (महित्थम) और सिरसा (शौरीक) तक गया है ।

हरियाणा के वैदिक, महाभारत कालीन और अद्यतन रूप से परिचय प्राप्त करने के पश्चात् हम महाभारत, नारद और वामन पुराण मे दो हुई हरियाणा की तीथयात्राक्रम का परम्परा से चले आते तीथक्रम से मिलान कर इस निष्कप पर पहुचेगे कि हरियाणा के अधिकाश ग्राम महाभारतकालीन ग्रामा के अपभ्रश रूप ह ।

कुरुक्षेत्र की सीमा—कुरुक्षेत्र किसी नगर विशेष का ही नाम नही अपितु लगभग चालीस कोस के एक विशाल भूभाग की कुरुक्षेत्र कहते है जिसके ईषाण कोण मे पीपली (कुरुक्षेत्र) के निकट अरन्नुक यज्ञ (रतन या रन्तुक यज्ञ ह०), पूवदक्षिण कोण मे सीख ग्राम के निकट तरन्तुक यज्ञ (ररखू ह०), पश्चिम दक्षिण कोण मे रामहृद (रामश ह०) के पास कपिल यक्ष तथा उत्तर पश्चिम कोण मे बहर के पास मचक्रुक यक्ष ह । सत्ययुग मे कुरुक्षेत्र का नाम 'ब्रह्मावत' और त्रेता मे परशुराम तीथ या स्यमत पचक, द्वापर तथा कलि मे 'कुरुक्षेत्र' है । यह क्षेत्र दषद्वती और सरस्वती नदियो का मध्यवर्ती भाग है ।

कुरुवन की सीमा—हिसार जिले मे सिसार हासी भिवाणी, फतेहबाद, सरसा, डबवाली तथा टोहाणा तहसीले है । सरसा, हिसार तथा फतेहबाद की तहसीलो का अधिकाश 'बागड क्षेत्र की 'बागडी' कहलाती है । हासी भिवाणी और हिसार की तहसीला का 'बागर' या 'चकहरियाणा' कहते है बागर की बाली 'बागरू हरियाणी', 'जाटट्' 'देसवाली कहलाती ह । खादर मे जमुना नदी के समीप लगता हुआ सोनीपत, पानीपत तहसीलो का भूभाग ह । गोहाना और रोहतक तहसीला का अधिकाश भूभाग 'बागर' मे ह । जीद का समीपवर्ती क्षेत्र (गिरदा द०) जिसे बोली मे 'गधारवाल' कहते है बागर का भाग ह। पटियाला और नाभा का भी कुछ भाग 'बागर' कहलाता ह जिसे विनाण[1] कहते ह । विनाण मे बावन गाव है । कुरुक्षेत्र की भूमि नरदक, खादर बागर, बेट और ढेर नाम से बोली जाती है । राजोद

१ बिनाण के ग्राम—करमगढ, धरोदी, धमताण, लौन, अलगा, सुरत वाला, अमरगढा, दणौदा, लीताणी, सैथली, कालवा, खाल, विखाआला, सूरैंआला, गाज्जूआला, बिठमढा, महीरगढ ।
'हृ०' हरियाणी शब्द का द्योतक है ।

से फरल और करनाल से कुरुक्षेत्र के बीच के भूभाग को 'नरदक' कहते है । राजोद से फरल २५ मील ह और कुरुक्षेत्र से करनाल २५ मील ह । छातर, ठआ, अलेवा वरसौला, खटकड, कसूण, कुचराया, लोवार, मटोर, कलाथ, बालूबात्ता, सावण के पास के गाव और जीद के निकट के सफीदम, सीख, रामरा, पिण्डारा, ईक्कस, पाकेरीखेडी, बागर' मे सम्मिलित है। जिस क्षेत्र मे सरस्वती और घग्गर के नाले बहते ह उसे 'नाली' कहते हैं । नाली मे क्योडक, अरणाय, बाबालदाणा, मालखेडी आदि गाव ह । थानेश्वर के भूभाग को मारकण्डे बेट और लाडवे का ग्रेर कहते ह । थानेश्वर से शाहाबाद तक, थानेश्वर से पेहवा तक मुरताजपुर से इसलामाबाद तक के भूभाग को 'मारकन्डे का बेट कहते है । क्योकि बरसात मे मारकण्डा नदी इस भूभाग के खेतो को लहराती ह । मारकण्डे के बेट के उत्तर पश्चिम मे शाहाबाद, पश्चिम मे पेहबा, पश्चिन दक्षिण मे बीबीपुर उत्तरपश्चिम मे इसलामाबाद है । लाडवे के ढेर का पूवदक्षिण का पाया खुदन धरौना, पश्चिम दक्षिण का पाया उभरी, पूर्वोत्तर का पाया (सीमा) रादौर ओर उत्तरपश्चिम का पाया लण्डी हैं ।

कुरुक्षेत्र के तीथ स्थान—थानेश्वर नगर से ईषाण कोण मे दो कोस की दूरी पर (अरतुक यक्षा, स०) 'र नक[1] यक्ष' ह । इस यक्ष से उत्तर मे प्राची सरस्वती के तट पर 'कोटि तीथ' ह । कोटितीथ से दो कोस की दूरी पर गोवधनपुर मे 'मानसी गगा' ह । रतनक यक्ष से चार कोस 'अमीण' ग्राम ह जिसके पास महाभारत काल मे 'अदितिवन'[2] था । अमीण के ईशाण कोण मे 'अदितिकु ड ह । अदितिकुण्ड के दक्षिण मे 'वामनकुण्ड' ह । वन मालि ने वामनकुण्ड को यहा अप्रमाणित माना है । इस कुण्ड के दक्षिण 'भचकुक कुण्ड' ह । इससे दो कोस पर वडगल ग्राम ह । वडगल से चार कोस पर सोखडा ह । सोखडा अमीण से छ कोस पर 'सगा' ग्राम है, जिसके ईषाण कोण मे विष्णु का स्थान 'विमल'[3] है । यहा भगवान विष्णु से विमल ऋषि के निमित्त पैर मार कर जल निकाला था । यहा पर श्रीकृष्ण और बलदेव को एक आसन पर विराजमान देखकर मनुष्य समस्त पापो से मुक्त हो जाता है । सगा से दो कोस भलोलपुर (बहलोलपुर) ह जिसके ईषाण कोण मे 'परिप्लव तीथ'[४] है । यहा महर्षि पाराशर ने घोर तपस्या की थी । इस तीथ पर फाल्गुन शुक्ल एकादशी को बडा भारी मेला लगता है । भलोलपुर से दो कोस पर बालू ग्राम है । इस ग्राम के वायु कोण मे 'पृथिवी तीथ'[५] है जिसे लोक मे 'चामसर' कहते है । बालू से तीन कोस औगद (औगध) है । इसके दक्षिण 'आगप्रतीथ' ह । रामच द्र श्रीपाद ने यहा तीन तीथ प्रमाणित किये है— १—पुष्पकवास, २—दशरथ तीथ (जसरा), ३—अगम तीथ । ओगद से पाच कोस की दूरी पर 'दाचौर' ह । यहा चितग नदी मे दक्षेश्वर[६] तीथ ह । यहा दक्ष प्रजापति ने तप किया

१ नारदपुराण, २५, ४२ ।

२ वही, ४३, ४४ ।

३ वही, ४५, ४६, ४७ तथा महाभा० वन० तीथ ४३ वा अध्याय १०, ११ ।

१ नारद० ४८ तथा ४९ । एव महा० व० ती० ८३ अ० ११ १२ ।

२ नारद० ५०, ५१ । एव महा० व० ती० ८३ अ० १३ ।

३ नारद० ५२ ।

था। दाचर से तीन कोस पर 'लावला' मे 'लवतीथ है। लावला मे दो कोस पर 'कुन्लण' ग्राम मे 'कुशतीथ' ह। दाचार से लगभग आठ कोस पर सात्वण' ग्राम ह जहा 'शालूकिनी[1] तीथ ह। महाभारत मे यहा पर दशाश्वमेध तीथ का उल्लेख ह। यहा ब्रह्मा ने देवताओ के साथ दशाश्वमेधयज्ञ किया ह। सालवण से एक कोस पर रसालुवा के दक्षिण ब्रह्म तीथ (कच्चाजाहडा) ह। रसाल्वा से दो कास भामणवाद तथा भीमणवाद से एक कोस साहणपुर ह। साहनपुर से छह कास पर 'सफीदम' ह। सफीदम के दक्षिण मे सप्ततीथ[2] और पश्चिम मे आस्तिक मुनि का आश्रम ह। सफीदम मे राजा जनमेजय ने अपने पिता पराक्षित क डसने का बदला लेने की इच्छा से सपदमन यज्ञ किया था। सफीदम से पाच कोस सीख ग्राम ह। सीख गाव से आधा कास पर दक्षिण दिशा के आग्नेय कोण मे 'तर तुक यज्ञ[4] (तरावू) ह।

सीख से दो कोस पर हाट के वायव्यकोण पर 'पच नदी तीथ[5] (पचनीढाब, ह०) कोटितीथ तथा उत्तर मे हाटकेश्वर' तीथ ह। पचनद तीथ पर भगवान शकर ने असुरो को भयभीत करने के लिए पाच नाद किए थे। कोटितीथ[6] मे भगवान् शकर न करोड तीर्थों का एकत्रित किया था। यहा पर कोटीश्वर (बहत पिण्डी) महादेव ह। श्रावण शुक्ल पक्ष के अन्तिम रविवार को यहा भारी मेला लगता ह। हठकेश्वर पर अजुन ने अश्वत्थामा को मारने का हठ किया था पर श्रीकृष्ण और द्रापदी के कहने पर मणि निकाल कर छाड दिया। उसी समय से इस तीथ को 'हठकेश्वर' कहते ह। यही पर तीसरा तीथ 'वामन'[7] ह। यहा पर भगवान वामन का सभी देवो ने स्थापित किया था। हाट से साढे तीन कोस पर 'चौसठ योगिनी तीथ कलौती मे ह। कलौती से दो कोस कालवा के पूव म ययातिकुड ह। कालवा से आठ कोस पर आसण'[8] ग्राम के पश्चिम मे 'अश्विनीकुमार तीथ' ह। यहा अश्वि नीकुमार ने राजा शर्याती की पुत्री सुकन्या के पातिव्रत्य से प्रसन्न होकर उस के वद्धपति च्यवन को इस तीथ मे स्नान करवा कर वद्ध से युवा बनाया था। आसन से दो कास पर 'वराह'[9] ह, जिसके दक्षिण म वराहतीथ' ह। भगवान वराह यही पर अवतरित हुए थे, जिन्होने हिरण्याक्ष को मारकर पथ्वी का उद्धार किया। वराह से तीन कोस पर 'पिण्डारा के उत्तर मे 'पिंडारक' सोम तीथ[10] ह। महर्षि कण्व सत्ययुग मे सोमतीथ पर स्नान करने आये थे। सोम

१ नारद० ५३ एव महा० व० ती० ८३ प्र० १३ १४।
२ नारद० ५४ एव महा० ती० ८३ प्र० १५।
३ महा० व० ती० ८३ अ० १५।
४ नारद० ५६ ५७ एव महा० व० ती० ८३ अ० १६।
५ नारद० ५६। ५७। तथा महा० व० ती० ८३ अ० १६।
६ महा० व० ती० ८३ अ ५८, ५९, १७।
७ नारद० ६०।
८ नारद० ६१ तथा महा० व० ती० ८३ अ० १७।
९ नारद० ६२ तथा महा० व० ती० ८३ अ० १८ तथा १९।
१० नारद० ६३।

वती अमावस्या पर यहा बहुत बडा मेला लगता ह । पिडारक से तीन कोस पर जीद'[१] ह जिसके उत्तर मे 'सोमतीथ' (सोमेश्वर) ह, पूव म भतेश्वर तीथ, वायव्य काण मे ज्वालमालेश्वर, दक्षिण म बनखडी महादेव, अग्निकोण म शठारी (ठठारी), पश्चिम मे जय ती देवी मदिर ह । जीद से दो कोस पर 'इक्कस'[२] मे, दक्षिण दिशा म 'एक हस' तीथ ह जिसे 'ढ ुढ ' कहते ह । महाभारत युद्ध के अन्त मे भयभीत दुर्याधन इस तीथ म छिप गया था, ढूँढने पर वह यहा मिला । फिर यही पर युद्ध करता हुआ भीमसेन द्वारा मारा गया । ढुढू के निकट ही कृतशौच (पुन पुन) तीथ ह, जिसे 'नसिंह ढाव भी कहते ह । भगवान नृसिंह ने हिरण्यकशिपु को मार कर यहा रक्त पूण हाथ बारबार धोया था । कृत शौच के उत्तर मे 'मू जवट'[३] तीथ ह । यही पर महाग्राहिणी यक्षिणी ह्रद ह । यहा से लगभग दो कोस पोहकरखेडी ह, जिसके पश्चिम म 'पुष्कर तीथ[४] ह । पाकरखेडी से एक कोस की दूरी पर 'रामरा' ह । रामरा (रामह्रद)[५] के पूव मे 'यक्षकुण्ड कपिलयक्ष तथा उसकी पत्नी उलूखलमेखला ह । कपिल यक्ष के उत्तर म सन्निहित और रामह्रद तीथ ह ।

रामरा से पाच कोस पर बरसाला ग्राम ह जिसक दक्षिण म 'वशमूलतीथ'[६] ह । खटकड स दो कास कसूण' के पूव म कायशोधतीथ'[७] ह । कसूण से दो कोस घाघडिया ह । घाघडिया से तीन कोस कर सिंधु ह । करसिंधु से एक कोस 'अलीपुर ह । अलीपुर से ८ कोस पर 'लाहधार'[८] के उत्तर लाकोद्धार' तीथ ६ ह । लोहधार से एक कोस पर मटोर है जिसके पूव मृकण्डेश्वर (मुकटश्वर) तीथ ह । लोहधार से दो कोस 'कसाण' क उत्तर श्रीतीथ[९] और शालिग्रम ताथ ह । कसाण स तान कोस की दूरी पर 'कलायत'[१०] ह, जिसके दक्षिण कपिला ह्रद तीथ ह । कलायत से चार कोस बालू म 'बालखिल्य तीथ' ह । बालू से तान कास 'बाता' म 'मरुदगण' तोथ ह। कलायत से आठ कोस सजूमा[११] क पश्चिम सूयतीथ ह । सूयवन भी इसी ग्राम क निकट ह । सजूमा से दो कोस 'गुहणा' ह जिसके पश्चिमोत्तर मे 'गामवन[१२] तीथ ह । यहा भाद्रपद की चतुर्थी को गा मेला लगता है । गुहणा से दो कोस

१ महा० व० ती० ८३ अ० १९ तथा २० ओर नारद० ६४ ।

२ नारद० ६५ तथा महा० व० ता० ८३ अ० २०, २१ ।

३ नारद० ६६, ६७ तथा महा० व० ती० ८३ अ० २२ तथा २३ ।

४ नारद० ६८ तथा महा० व० ती० ८२ अ० २४,२५ ।

५ नारद० ७०,८० तथा महा० व० ती० ८३ अ० ७२,२६ ।

६ नारद० ७३ तथा महा० व० ती० ८३ अ० ४१,४२ ।

७ महा० व० ती० ८३ अ० ४२,४३ ।

८ नारद० ७४ तथा महा० व० ती० ८३ अ० ४४,४५ ।

९ नारद० ७५ तथा महा० व० ती० ८३ अ० ४६ ।

१० नारद० ७६,७७,४७ ।

११ नारद० ७८, तथा महा० व० ती० ८३ अ० ४८,४९ ।

१२ नारद० ७९ तथा महा० व० ती० ८३ अ० ५० ।

'साघण' के पूव 'शखिनो देवी तीथ'[१] ह तथा उत्तर 'ब्रह्मावत तीथ' ह। साघण से चार कोस पर बहर ग्राम के उत्तर सरस्वती के तट पर 'यक्षतीथ'[२] ह।

बहर से दो कोस पर बमरात ह जिसके वायुकोण मे ब्रह्मावता तीथ[३] ह। बमरौत से तीन कोस पर सोमथा के ईशाण कोण मे सुतीथ ह। सामथा से एक कास पर पोलडथा मे सरस्वती मे इक्षुमती और 'अशुमति सगम' ह, जहा भव नामक महादेव के पूजन का विधान है। पोलडथा से चार कीस 'कक्योर' मे कामेश्वर तीथ'[५] ह। कक्योर से चार कोस क्वारतन से पश्चिम म कायरत्न तीर्थ ह। क्वारनन से एक कास माडी के पूव सप्तमातकातीर्थ ह। 'रसूलपुर के पूब मातगया'[६] तीथ ह।

रसूलपुर से तीन कास की दूरी पर सीवण (सीतावन)[७] ह जिसके पश्चिमोत्तर मे स्वानुलोमा पहतीथ (साल्लोकी, लोक प्रसिद्ध नाम), के पूव केशाभ्य' और दक्षिण दशाश्वमेध तीर्थ है। सीवण के वायु काण मे ऋणमोचन तीथ' ह। सीवण से तीन कास माणस के पूव 'मानुष'[८] तीर्थ ह। मानस से दो कास गादली के पूव आपगा[९] नदी है। गादली से एक कोस शीलाखेडी के वायु कोण मे ब्रह्मादुम्बर तीथ'[१०] ह, वही डाभी मे सप्तर्षि कुण्ड[११] ह। सिल्होखेडी से एक कोस कैथल से आधे कोस पर किरमिच के उत्तर कुलपुनीत[१२] तीथ ह। (कुलोत्तारण तीर्थ)। किरमिच से तीन कोस पवणावा ग्राम के पूव पवनह्लद[१३] ह। पवणावा से दो कोस पर 'बदलाणा है जिसके दक्षिण म अमततीथ[१४] ह। बदलाणा से एक कोस पर कोल' की ईषाणाश्रित पूव दिशा मे कुलोत्तारण तीथ। (कलणहार ह०) ह। कौल से आठ कोस पर 'सारसा' के अग्निकोण म शालिहात्र तीथ[१५] ह। सारसा से एक कोस पर व्यासखेडी के ईषाण मे व्यासह्लद तीर्थ ह। यासखेटी के पश्चिम म 'पुनह' 'तापनतीर्थ' ह। व्यासखेडी स ढाई कोस पर सधोली ह जिससे चार कोस की दूरी पर गुमथला ह। गुमथला

१ महा० व० ती० ८३ अ० ५१।
२ नारद ८१।
३ महा० व० ती० ८३ अ० ५३।
४ महा० व० ती० ८३ अ० ५४,५५।
५ महा० व० ती० ८३ अ० ५७ तथा नारद० ८०।
६ महा० व० ती० ८३ अ० अ० ५८ तथा नारद० ८१।
७ महा० व० ती० ८३ अ० ५९–६४ तथा नारद० ८२–८३।
८ नारद० ८४ तथा महा० व० ती० ८३ अ० ६५,६६।
९ नारद० ८५ तथा ८६ एव महा० व० ती० ८३ अ० ६७–६९–७०
१० नारद० ८८।
११ महा० व० ती० ८३ अ०।
१२ कुलम्पुने नर स्नात्वा पुनाति स्वकुल तत।
१३ नारद० १२१ तथा महा० १०५।
१४ महा ८३ १०६।
१५ शालिहोत्रस्य राजर्षे।

के पश्चिम मे एक कोस पर 'मालखन खेडी' ह। मालखन खेडी के पूव 'दिगतापन तीर्थ' ह। मालखन खेडी से चार कोस पर 'यावच' (नीच) ह। यावच से डेढ कोस पर कक्योर ह। यहा कामेश्वर तीथ दक्षिणोत्तर तीर पर ह। यावच से डेढ कोस पर बाणपुर[1] (श्रीतीर्थ) ह। वानपुर मे श्रीकुजतीथ (कुजबिहारी) ह। वानपुर से लगभग चौथाई कोस की दूरी पर यावच (विहार तीर्थ) ह जिसके ईशान म नमिप तीथ ह। यावच से दो कोस पर 'वेलवती' ह जिसके नैऋत्य कोण म वेदतीथ (बिलाती ह०) ह। बिलौती से डेढ कोस पर स्थाणा[2] ग्राम के वायव्याश्रित पश्चिम दिशा मे ब्रह्मतीथ ह। थाणा से तीन कोस पर 'गुथकला' ह जिसके पूव सामतीर्थ[3] ह। गुमथला से दो कास पर 'मकण' (मागण, ह०) ग्राम है। मागण ग्राम म सप्तसारस्वत तीर्थ[4] ह। (वद्धकेदार शिव स०) विवक्यार'[5] तीर्थ है। कथल से एक कोस कलसी ढाबर ह, जिसमे कलसीतीथ[6] ह। कलसी से एक कोस शेरगड के उत्तर मे शरकतीथ[7] तथा पश्चिम मे भय कोटिहृद्रकूप (रुद्रकोटीश्वर) ह। कलसी के उत्तर मे[8] किंदान'[9] 'किंजप्य[10] तीर्थ ह। किंजप्य से एक कोस पर सगखेडी या डयोढ खेडी ह। डयोढखेडी के उत्तर मे एक कास पर धयज मा[11] तीर्थ है। डयोढ खेडी से लगभग दस कोस पर 'पण्ड्री' के ईशान मे पुण्डरीक तीर्थ[12] ह पुडरी से दो कोस पर मोहणा के ईशान मे मधुवन तीर्थ[13] ह। यहा दषदवती और कौशिकी का सगम है।

टयोठा से दो कोस पर 'साकरा' के पश्चिम मे शक्रवत तीर्थ[14] ह। साकरा से पाच कोस पर फलगू[15] (फलकी वन स०) ह। रसीणा से दो कोस बस्तली'[16] (व्यासस्थली

१ महा० ८३।१०८
२ नारद० १२४, तथा महा० ११२
३ नारद० १२४ तथा महा० ११४
४ नारद० १२५,१२६
५ नारद० ८९ तथा महा० व० ती० ८३ अ० ७३,७४
६ नारद० ९०
७ नारद० ९१ तथा महा० व० ती० ८३ अ० ७५।
८ महा० व० ती० ८३ अ०।७७
९ महा० व० ती० अ० ८३।७८ ७९
१० महा० व० ती० अ० ८३।७९
११ महा० व० ती० अ० ८३।९७,९८,८१।
१२ महा० व० ती० अ० ८३।८३
१३ नारद० १०९
१४ नारद० १०१
१५ नारद० १०३,१०५,८६,९०
१६ नारद० १११,११२

स०) है। वस्तली से तीन कोस 'नीशग' के पश्चिम 'मिश्रक तीर्थ'[1] है। नीशग से दो कोस 'बरास'[2] (व्यास वन) के पूव मनोजव तीर्थ[3] उत्तर मे कोटि तीर्थ, ईशान मे चम्पक तीर्थ, पूव मे तिलोत्तमा तीर्थ तथा दक्षिण मे श्रीपद तीर्थ मे लिंगमणिशद्र ह। वरास से दो कोस पर सीतामढी मे वेदीतीर्थ'[4] ह। तदनन्तर निगधू ग्राम मे आह्ल'[5] मुदित' तीर्थ है। निगधू से तीन कोस पर बरसाणा मे वामनक तीथ ह। निगधू से तीन कोम पर बौडस्याम (बरसाल) है जिसके दक्षिण ज्येष्ठाश्रम[6] तीर्थ ह। बोडश्याक मागणा (मकण) से दो कोस पर सतौडा ह। सतौडा के उत्तर 'औज्ञनस तीर्थ शुक्र तीर्थ, कपालमोचन तीर्थ ह। सतौडा से एक कोस पर गलेठवा गाव मे 'अग्नि तीर्थ' ह। गलेठवा से लगभग एक कोस पर पथदक (पिहोवा ह०) ह जिसके अतगत 'आर्ष्टिषेण तीर्थ 'देवापितीर्थ, 'कपालमोचन विश्वामित्र है। १ ब्रह्मयोनि २ अवाकीण ३ वहस्पति, ४ पापान्त, ५ घतश्रवा, ६ दुग्धश्रवा, ७ मधुश्रवा, ८ कुरुपावन तीर्थ, ९ विश्वामित्राश्रम, १० वाशिष्ठोपवाह, ११ क्रुदमकूप, १२ अरुणासगम, १३ समुद्र चतुष्टय, १४ शतसहस्र, १५ शातकतीर्थ, १६ सोमतीर्थ, १७ रेणुका तीर्थ, १८ प्रतिग्रमोचन तीर्थ १९ औजसर इसके अन्तगत है।[7]

चन्द्रसमुद्र, सूयसमुद्र नामक तीथ स्थान है। अरुणा से एक कोस 'सहसा' है। यहा (शुक्रजोहडी) शातिक तीथ है और शतसाहस्त्रिक तीथ सहसा के पश्चिम 'सोमतीथ'[8] है। यहा से साढे चार कोस 'रणायचा' के नैऋत्यकोण मे रेणुकाश्रम[9] है। रणायचा से चार कोस मुरतजापुर है। मुरतजापुर से डेढ कोस भूरिश्रवा (भोर) ह। भोर से दो कोस कमोधा ह जहा महाभारत काल मे काम्यकवन धाम था। कमोधा से तीन कोस 'जोसर' ह जिसके दक्षिण मे ज्योतिसर ह। ज्योतिसर से दो कोस थानेश्वर ह।

थानेश्वर[10]

कालका लाइन से दक्षिण और कैथल ब्राच के उत्तर मे स्थित ह। इस नगर के उत्तर मे स्थाणुतीथ है। स्थाण्वीश्वर महादेव के पश्चिम मे कुलेशगण है, कुलेश के दक्षिण रुद्रकर है, उत्तर की तरफ रावणेश्वर ह। रावणेश्वर के निकट ही कुमारेश्वर विभीषणेश्वर है। दक्षिण मे हरितेश्वर, ककालेश्वर, सिद्धेश्वर स्थानेश्वर महादेव के आस पास है। पूर्वोक्त लिंगो के

१ नारद० १०७, तथा महा० व० ती० ८३ अ० ९१ ९२
२ नारद० ९३
३ नारद० ९३
४ महा० व० ती० अ० ८३।९९,१०१ १०२
५ महा० व० ती० अ० ८३।१००
६ नारद० ११५ ११८,११९
७ इन तीर्थो के बिशेष विवरण के लिए नारद० १२८ १३७ द्रष्टव्य।
८ नारद० १३३।
९ नारद० १३४।
१० नारद० १३८-१४२।

दर्शन के पश्चात सन्निहित तीथ (सनेत) स्थान ह । फिर करवालारुद्रकूप स्थान ह । 'कपारुद्र ह्रद' 'वायुकुण्ड की प्रदक्षिणा के पश्चात पूव की तरफ दो कोस पर रत्नुकतीथ ह ।

कुरुक्षेत्र (हरियाणा) के वन—कुरुक्षेत्र म प्राचीन काल म सात वन[1] थे, जहा पर उ ही वनो के नाम से आज गाव बसे हुए ह । काम्यक वन (ग्राम) के स्थान पर 'कमोधा' ग्राम ह । यह ज्योतिसर से लगभग तीन मील दूर ह । अदितिवन की जगह 'अमीण' बसा हुआ ह । यह कुरुक्षेत्र से पाच मील दूर दिल्ली-अम्बाला रेलवे लाइन पर एक स्टेशन भी ह । व्यास वन के स्थान पर वरास ह जो करनाल से कथल जान वाली सडक पर ह । फलथीवन के स्थान पर 'फरल' ग्राम ह । यहा फल्गु का मेला लगता ह । सूयवन के पास सजूमा ग्राम ह । मधु वन के स्थान पर माहणा ग्राम ह । यह करनाल से कथल जाने वाली सडक पर स्थित ह । सीतावन स्यूण' ग्राम ह जो कथल तहसील मे है ।

कुरुक्षेत्र मे सात नदिया है । ये नदिया सरस्वती ओर दषद्वती के बीच वर्षाकाल मे बहती है । इन नदियो के नाम निम्नलिखित ह—सरस्वती, वैतरणी, गगामदाकिनी, मधुस्रवा, दष द्वती, कौशिकी और हरण्यवती ।

कुरुजागल (हरियाणा) प्रदेश के वन, नदी, पवत ओर नगर—हिसार का समीपवर्ती सघन वन 'बीड बबरान' के नाम से प्रसिद्ध ह । सुना जाता है कि यह बीड महाभारतकालीन बभ्रुवाहन के नाम से 'बबरान जाना जाता ह । हिसार दिल्ली से १०२ मील की दूरी पर स्थित ह । उत्तराध्ययन सूत्र के अनुमार कुरु जनपद मे इसुकार या इषुकार नामक समद्ध, सु दर और स्फीत नगर था । फतेहाबाद और सरसा के भूभाग मे 'घाघर' नदी बहती है । भिवाणी तहसील मे भिवानी से लगभग १५ मील की दूरी पर 'तोषाम' का पहाड है जिस पर सिद्ध 'मूगीपा' की समाधि ह तथा 'पचतीर्थी' तालाब है ।

जिस प्रकार हासी का पुराना नाम आसिका था (भडारकर के लेख की सूची, सस्या ३२९) उसी प्रकार हिसार का प्राचीन नाम 'ऐषुकारि' ज्ञात होता ह, यद्यपि कुछ लोग उसका सबध अरबी हिसार से लगाते ह 'दे० वासु० पा० प० ८६) । जनपदीय बोली मे हिसार को 'हँसार' और हासी को 'आस्शी' कहते है । हासी के चोपटा बाजार मे एक विष्णु प्रतिमा है जिसे चन्द्रवशी राजाओ मे सबधित बताया जाता है । सरसा का सस्कृत नाम शैरीषक है । नकुल दिग्विजय मे यह पडता ह । नकुल दिल्ली से पश्चिम दिशा मे बढा और रोहतक होता हुआ मेहम (स० महित्थम) और सिरसा (स० शैरीषक) तक गया ह । रोहतक (स० रोहितिक) दिल्ली से ४१ मील दूर ह । प्राचीन काल मे योधेयो ने रोहतक को अपनी राजधानी बनाया था । उस समय इस प्रदेश का नाम 'बहुधान्यक'[2] प्रसिद्ध था ।

सक्षेप मे हरियाणा अर्थात आर्यावत आय सस्कृति का केन्द्र रहा ह । महाभारत मे आए कुरुक्षेत्र के स्थानो के सस्कृत नाम कोष्ठक म दिए जा रहे ह—सालवण (शालूकिनी), सफीदो (सपदधि सपदमन) सोमतीथ (पिण्डतारक), पिण्डारा रामरा (रामह्रद), पुडरी (पुण्डरीक) फल्गू (फलकीवन), वस्तली (व्यासस्थली), पेहवा (पथूदक) सोनीपत

१ नारद० ३८

२ हरियाणी लो० प० ५३

(श्रोणिप्रस्थ), पानीपत (पाणिप्रस्थ), हिसार (इपुकार) हांमी (जामिका) मिरसा (शौरीपक), रोहतक (रोहितक), मेहम (महित्थम)। अत म महाभारत कालीन हरियाणा के स्थानो का ऐतिहासिक विवरण महाभारत के आधार पर दिया जा रहा हैं।

पिण्डतारका (पिण्डरा) हरियाणा मे एक तीथ स्थान ह। जा व्यक्ति पिण्डतारक तीथ मे स्नान करके वहा एक रात निवास करता ह वह प्रात लाल हाते ही पवित्र हो कर अग्निष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त कर लेता ह (अनुशासनपव २५-५७)। रामह्रद (रामरा) कुरुक्षेत्र (हरियाणा) की सीमानिधारक एक ह्रद ह (शाल्य० ५३ २५) इसमे काशिराज की कन्या अम्बा ने स्नान किया था (उद्योग पव १८६ २८) परशुरामजी ने पिततपण यही किया था।

पथूदका (पहवा) मे एक ऋषि रुपगु थे जिनके आश्रम पर आर्ष्टिषेण मुनि ने घोर तपस्या की थी और विश्वामित्र का यही ब्राह्मणत्व की प्राप्ति हुई थी। (शल्य० ३५/२३ ३४) रोहतक = रोहितक (रोहितकारण्य) पश्चिम दिग्विजय के समय नकुल यहा हो कर आगे गए थे (सभा० ३२/४ ५)। रोहतक का निकटवर्ती वन रोहितकारण्य ह जो कौरवो की विशाल सेना से भर गया था (उद्योग० १९/३० ३१)। लोमश ऋषि का आश्रम लुहार माजरा मे था। वे इन्द्र और अजुन का सदेश लेकर काम्यकवन (कमोधा) मे गए थे (वन० ९१/१० १४)।

व्यासस्थली (बसतली) हरियाणा का एक प्राचीन तीथ ह, जहा व्यास ने पुत्रशोक से सन्तप्त हो कर शरीर त्याग का विचार किया था। शखतीथ (साघण) सरस्वतीतटवर्ती एक प्राचीन तीथ ह इसका विशेष वणन (शल्य० ३७/१९ २६) मिलता है। सपतीथ (सफीदो) मे श्वेतकेतु ऋषि जनमेजय के सपसत्र के सदस्य बन थे (आदि० ५३/७)। ये उद्दालक के पुत्र है।

सप्तसारस्वत (मागणा) मे मकण ऋषि को सिद्धि प्राप्त हुई थी। यह सरस्वती तीथ मे सबसे श्रेष्ठ तीथ ह। समन्तपचक (रामरा, रामह्रद) मे ह। यहा परशुराम ने रक्त के पाच सरावर बनाए थे। और उ ही मे रक्ताजलि द्वारा अपने पितरो का तपण किया था (आदि० २/४ ५)। कौरवो और पाण्डवा का महाभारत युद्ध यही हुआ था। इसी क्षेत्र मे ट्टु (इक्कस) सरोवर म दुर्योधन का निधन हुआ (शल्य० ३९/४०) था।

हरियाणा मे सरस्वती नामक एक नदी ह। पाडवो ने वन यात्रा के समय इसे पार किया था (वन० ५/२)। काम्यवन (कमाधा) का भूभाग सरस्वती के तट पर है। दधीचि का आश्रम सरस्वती नदी के उस पार था (वन० १००/१३) हिरण्यवती कुरुक्षेत्र मे एक नदी है जहा पर कृष्ण ने पाडव सेना का पडाव डाला था।

पैल (पीलणी ग्राम) मे एक ऋषि थे, जो व्यास जी के शिष्य थे। द्वतवन (देवता) एक वन ओर सरोवर ह, जहा वनवास के समय पाडवा ने निवास किया (वन० २४/१३)। खाण्डववन यमुना के किनारे स्थित एक वन ह जिसे श्रीकृष्ण और अजु न की सहायता से अग्नि ने जलाया था।

महाभारत कालीन हरियाणा के स्थान भारतीय सभ्यता और सस्कृति के महत्त्वपूण केन्द्र रहे है। इन स्थानो के नामो का तुलनात्मक परिचय देना ही लेखक का विनम्र लघु प्रयास ह, जिसके लिए लेखक का लगभग छह माह तक हरियाणा के प्राचीन स्थान नामो के ध्रुवीकरण के लिए भागीरथ प्रयास करना पडा है।

हरियाणा मे पुरातात्त्विक अन्वेषण

मदनलाल वर्मा

पुराविदो का साहस दर्शनीय होता ह । वे अनेक दुगम बीहड स्थलो पर जाकर जब पुराने ध्वसावशेषो के उत्खनन का काय प्रारम्भ करते ह, तो उनके समक्ष अनेक कठिनाइया, बाधाए और विघ्न आ टपकते ह पर वे निरुत्साहित कदापि नही होते । कभी कभी तो ऐसा होता ह कि सतत परिश्रम करने पर भी उ हे कुछ विशेष तत्त्वो की उपलब्धि नही होती, पर कभी कभी कुछ विचित्र एव निरुपम कलात्मक वस्तुओ के मिलने पर उनकी बाछे खिल जाती है । वे उस विशिष्ट स्थल के तत्वा का अ वेषण कर अपना अहोभाग्य समझते है और यह सोच कर उ हे मानसिक तुष्टि का आन द अनुभव होता ह, कि उ होने मानवेतिहास मे एक नया अध्याय जोड दिया ह। अत 'पुरातत्व का अभिमानपूण दावा ह, कि उसने समस्त ससार मे मानव की प्रगति के इतिहास मे नये अध्याय जाडे है[1] ।

आधुनिकयुगीन भारत म पुरातत्त्वो के अ वेषण की प्रेरणा हमे वस्तुत पाश्चात्य विद्वानो के द्वारा ही मिली । इस देश की प्राचीन सस्कृति, कला आदि की अनेका विशेषताए इन्ही पुरातत्त्वो के फलस्वरूप प्रकाश मे आइ । परन्तु अभी इसके लिए हमारे देश मे अन्य देशो की अपेक्षा थोडा काय हुआ ह, क्योकि भारत के अनेक प्रा तो मे अभी भी पुरातत्त्व का काय उपेक्ष णीय पडा है ।

तीन चार वष पूव नवम्बर, १९६६ मे हरियाणा को एक पृथक प्रान्त के रूप मे घोषित किया गया । इस प्रा त मे अनेक ऐसे स्थल ह, जहा पुरातत्त्वीय उत्खनन की महती आवश्य कता है ।

यह प्रा त वीरो की धरनी है । इस धरती पर यौधेयो का राज्य हजारो वर्षो तक रहा है । अत इसको यौधेय भूमि भी कहा जाता ह । इसके निम्नलिखित स्थानो का पुरातत्त्वीय निरीक्षण अनिवाय है —

१ खोखरा कोट (रोहतक) ।
२ दौलत पुर (महम, जिला रोहतक) ।
३ अगरोहा (हिसार) ।
४ तौशाम (भिवानी, जिला हिसार) ।
५ गुडगाव ।
६ झज्जर (रोहतक) ।
७ हासी (हिसार) ।

१ सर लियोनाड वूले उत्खनित इतिहास (हिन्दी अनुवाद रमेश वर्मा), १९६९ सस्करण, आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली पष्ठ १० ।

८ अस्थलबौहर (रोहतक)।

९ कुरुक्षेत्र (करनाल)।

इनमे से पहले आठ स्थानो का सकेत श्री आर० एस० शर्मा ने भी अपनी एक पुस्तक मे किया ह[1]।

अधुनापयन्त हमारे ज्ञान के अनुसार हरियाणा के पुरात वो मे जो सामग्री उत्खनन द्वारा उपलब्ध हुई ह, उनमे विशेप रूप से परिगणनीय वस्तुओ के नाम निम्नलिखित है —

१ यौधेयगण की मुद्राए ।
२ यौधेयगण की मोहरे ।
३ शिलालेख ।
४ बतन ।
५ इटे ।
६ अस्थिपजर (ममीज)।
७ आटा पीसने की चक्किया ।
८ मूर्तिया चित्र आदि ।

इनमे से कुछ वस्तुओ का सग्रह हरियाणा प्रान्तीय-पुरातत्त्व सग्रहालय गुरुकुल झज्जर, जिला रोहतक, हरियाणा (भारत) मे श्री आचाय भगवान दव की अध्यक्षता म हुआ ह। इस सग्रहालय मे हजारा की सरया मे सिक्के (मुद्राए) पडे ह। सैकडा की सख्या मे बतन ह। अनका माहरे ह। इटे पनी ह। मोहरा को पेटिया है। कुछेक ममीज (अस्थिपजर) भी पडे है। इसी प्रकार अनेको अन्य वस्तुए पडी ह, जिनम उल्लेखनीय है—आटा पीसने की चक्किया।

अभी दो तीन वष पूव खोखरा कोट मे एक ऐसी मूर्ति मिली ह, जिसमे एक द्विमुखी सिंह ह, जिसके साथ एक देव और एक देवी भी ह। इसका सकेत श्री आर० एस्० शर्मा ने

१ दी फालोइग प्लेसिज आर इन नीड आफ आरक्यालोजिकल सर्वे इन हरयाणा (यहा प्रथम आठ स्थानो का नाम ह)।

देअर इज एवरी पासिबिलिटी दट रूइन्ज़ आफ एन्शियण्ट सिविलाइज़ैशन मे कम टू लाइट बाई दी एक्सकेवेशन आफ दीज़ प्लेसिज़।

मोरओवर दी एक्सकेवेशन आफ दी फालोइग प्लेसिज मे ब्रिंग टू लाइट मिडी वल सिविलाइजेशन —

१ पानीपत।
२ तरावडी।
३ सोनीपत।
४ फतेह बाद।

(हरयाणा डायरेक्टरी एण्ड हूज़ हू, १९६७ ६८। एडीटिड बाई आर० एस० शर्मा, पब्लिश्ड बाई इण्डियन बुक डिपो एजेन्सी, अम्बाला कैण्ट पेज १९३।

हरियाणा मे पुरातात्त्विक अन्वेषण

मदनलाल वर्मा

पुराविदो का साहस दर्शनीय होता है। वे अनेक दुर्गम बीहड स्थलो पर जाकर जब पुराने ध्वसावशेषो के उत्खनन का कार्य प्रारम्भ करते है, तो उनके समक्ष अनेक कठिनाइया, बाधाएँ और विघ्न आ टपकते है पर वे निरुत्साहित कदापि नही होते। कभी कभी तो ऐसा होता है कि सतत परिश्रम करने पर भी उन्हे कुछ विशेष तत्त्वो की उपलब्धि नही होती, पर कभी कभी कुछ विचित्र एव निरुपम कलात्मक वस्तुओ के मिलने पर उनकी बाछे खिल जाती है। वे उस विशिष्ट स्थल के तत्वो का अन्वेषण कर अपना अहोभाग्य समझते है और यह सोच कर उन्हे मानसिक तुष्टि का आनन्द अनुभव होता है कि उन्होने मानवेतिहास मे एक नया अध्याय जोड दिया है। अत 'पुरातत्व का अभिमानपूर्ण दावा है, कि उसने समस्त ससार मे मानव की प्रगति के इतिहास मे नये अध्याय जोडे है'[1]।

आधुनिकयुगीन भारत मे पुरातत्त्वो के अन्वेषण की प्रेरणा हमे वस्तुत पाश्चात्य विद्वानो के द्वारा ही मिली। इस देश की प्राचीन सस्कृति, कला आदि की अनेको विशेषताएँ इन्ही पुरातत्त्वो के फलस्वरूप प्रकाश मे आइ। परन्तु अभी इसके लिए हमारे देश मे अन्य देशो की अपेक्षा थोडा कार्य हुआ है, क्योकि भारत के अनेक प्रान्तो मे अभी भी पुरातत्त्व का कार्य उपेक्षणीय पडा है।

तीन चार वर्ष पूर्व नवम्बर, १९६६ मे हरियाणा को एक पृथक प्रान्त के रूप मे घोषित किया गया। इस प्रान्त मे अनेक ऐसे स्थल है, जहा पुरातत्त्वीय उत्खनन की महती आवश्यकता है।

यह प्रान्त वीरो की धरती है। इस धरती पर यौधेयो का राज्य हजारो वर्षो तक रहा है। अत इसको यौधेय भूमि भी कहा जाता है। इसके निम्नलिखित स्थानो का पुरातत्त्वीय निरीक्षण अनिवार्य है —

१ खोखरा कोट (रोहतक)।
२ दौलत पुर (महम, जिला रोहतक)।
३ अगरोहा (हिसार)।
४ तौशाम (भिवानी, जिला हिसार)।
५ गुडगाव।
६ झज्जर (रोहतक)।
७ हासी (हिसार)।

१ सर लियोनार्ड वूले उत्खनित इतिहास (हिन्दी अनुवाद रमेश वर्मा), १९६९ सस्करण, आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली पृष्ठ १०।

८ अस्थलबौहर (रोहतक)।

९ कुरुक्षेत्र (करनाल)।

इनमे से पहले आठ स्थानो का सकेत श्री आर० एस्० शर्मा ने भी अपनी एक पुस्तक मे किया है[1]।

अधुनापर्यन्त हमारे ज्ञान के अनुसार हरियाणा के पुरात वो मे जो सामग्री उत्खनन द्वारा उपलब्ध हुई ह उनमे विशेष रूप से परिगणनीय वस्तुओ के नाम निम्नलिखित हैं —

१ यौधेयगण की मुद्राएँ।
२ यौधेयगण की मोहरे।
३ शिलालेख।
४ बतन।
५ इटे।
६ अस्थिपजर (ममीज)।
७ आटा पीसने की चक्किया।
८ मूर्तिया चित्र आदि।

इनमे से कुछ वस्तुओ का सग्रह हरियाणा प्रा तीय-पुरातत्त्व सग्रहालय गुरुकुल यज्जर, जिला रोहतक, हरियाणा (भारत) मे श्री आचाय भगवान दव की अध्यक्षता म हुआ ह। इस सग्रहालय मे हजारो की सख्या मे सिक्के (मुद्राएँ) पडे ह। सैकडा की सख्या मे बतन ह। अनेका माहरे हैं। इटे प-ी हैं। मोहरो का पटिया हैं। कुछेक ममीज (अस्थिपजर) भी पडे है। इसी प्रकार अनेको अन्य वस्तुएँ पडी ह, जिनमे उल्लेखनीय ह—आटा पीसने की चक्किया।

अभी दो तीन वष पूव खोखरा कोट मे एक ऐसी मूर्ति मिली ह, जिसमे एक द्विमुखी सिंह ह, जिसके साथ एक देव और एक देवी भी है। इसका सकेत श्री आर० एस० शर्मा ने

१ दी फालोइग प्लेसिज आर इन नीड आफ आरक्यालोजिकल सर्वे इन हरयाणा (यहा प्रथम आठ स्थानो का नाम ह)।

देअर इज़ एवरी पासिबिलिटी दट रूइन्ज़ आफ एंशियण्ट सिविलाइज़शन मे कम टू लाइट बाई दी एक्सकेवेशन आफ दीज प्लेसिज।

मोरओवर दी एक्सकेवेशन आफ दी फालोइ ग प्लेसिज़ मे ब्रिंग टू लाइट मिडीवल सिविलाइजेशन —

१ पानीपत।
२ तरावडी।
३ सोनीपत।
४ फतेह बाद।

(हरयाणा डायरेक्टरी एण्ड हूज हू, १९६७ ६८। एडीटिड बाई आर० एस० शमा, पब्लिश्ड बाई इण्डियन बुक डिपो एजेन्सी, अम्बाला कैण्ट पेज १९३।

भी किया ह[1]।

इन सभी उपलब्ध पुरातत्त्वा ा विवरण यहा अ ित ह। अत अब यहा क्रमश इन का वणन अपन ज्ञान क अनुसार किया जाता ह।

१ योधेयगण की मुद्राए

(क) योधेयों की प्रथम प्रकार का मुद्राए —ये मुद्राए प्रिसप, थोमस और कनिघम आदि विदेशी इतिहासकारों का उपलब्ध हुई ह। उनम स छ मुद्राओ के चित्र तथा विवरण जाहन एलन न ब्रिटिश म्यूजियम क केटलाग विवरण पुस्तकों म दिए ह। उन सभी पर एक बाड वाले वृक्ष का चित्र अकित ह। तीन मुद्राओ पर उज्जनी के समान छोटा चि ह अकित ह। दो मुद्राओ पर एक विशिष्ट आयुध का चित्र भी ह। एक मुद्रा पर अ य आयुध का चित्र ह। उस आयुध का चित्र प्राय उन प्रथम प्रकार की योधेयो की मुद्राओ पर है जो हरियाणे के—रोहतक, हासी, हिसार आदि विभि न स्थानो से प्राप्त हुई ह। यह चि ह ऐसी सभी मुद्राओ पर ह[2]।

(ख) दूसरी प्रकार की मुद्राए —ये मुद्राएँ हरियाणा के राहतक, सुनेत, हिसार, हासी भिवानी दादरी भालाठ, भगवती पुर, अगरोहा और रया आदि स्थानो से उपलब्ध हुई है। इन पर एक आर शिवजी महाराज न दी के साथ खडे है। शिवजी का एक हाथ बैल की ककुद पर तथा दूसरा हाथ पीठ के पिछले भाग पर रखा दिखाया गया ह। दूसरी ओर योधेयगण के आयुध अथात शस्त्रो—त्रिशूल, वज्र, चक्र, परशु आदि के चित्र ह। एक चित्र जा प्राय इन सभी मुद्राओ पर अकित ह, उन सबकी आकृति एक जसी है[3]।

(ग) तीसरी प्रकार का प्रसिद्ध मुद्राएँ —इन मुद्राओ के ठप्पे साचे रोहतक के खोखराकोट की खुदाइ म स्वर्गीय डा० बीरबल साहनी द्वारा उपलब्ध हुए ह। ये मुद्राएँ हासी, हिसार, भिवासी, दादरी, बामला आदि से प्राप्त हुई है। आचाय भगवान देव के सग्रहालय मे ऐसी मुद्राएँ पाच सौ से अधिक सख्या मे है। इनके प्रथम पक्ष पर ब्राह्मी लिपि मे 'यौधेयानाम बहुधा यके' अकित ह। इन अक्षरो के बीच न दी बैल का चित्र ह। इन मुद्राओ मे यज्ञ के यूप का चि ह किसी किसी मुद्रा पर विपरीत ढग का भी मिलता है। इन मुद्राओ पर दूसरी ओर हाथी का चित्र है[4]।

(घ) चतुथ प्रकार की मुद्राएँ —ये मुद्राएँ कनिंघम आदि द्वारा प्राप्त हुई ताम्र और रजत धातुओ की है। इन पर एक ओर षण्मुख कार्तिकेय हाथ मे भाला (शक्ति) लिए खडा है। दूसरी ओर एक देवी ह, जिस के बाएँ भाग मे कमल का फूल ह। ताम्र मुद्राएँ

१ एन आइडल आफ ए डबल फेस्ड लायन विद ए गाड एण्ड गाडेस्स हज बिन डिस्कवड एट खोखरा कोट रोहतक रिसण्टली। (वही पुस्तक पष्ठ १९३)।

२ द्रष्टव्य आचाय भगवान देव वीरभूमि हरयाणा नाम ओर सीमा (प्रथम बार, १ माच, १९६५ ई०) हरयाणा साहित्य सस्थान, गुरुकुल झज्जर, जिला रोहतक पष्ठ १३२ १३३।

३ द्रष्टव्य वही पष्ठ १३४ १३५।

४ द्रष्टव्य वही पृष्ठ १३५ १३६।

भी ऐसी ही है। यौधेया की छोटी छोटी अनेक प्रकार की मुद्राएँ हरियाणा के एक प्राचीन दुग मे आचाय भगवान देव को उपलब्ध हुइ है। इनके अतिरिक्त अय कई बडी महत्त्वपूण मुद्राएँ झज्जर के सग्रहालय मे पडी ह[१]।

(ग) योधेयो की पाचवे प्रकार मुद्राएँ —इन मुद्राआ पर ब्राह्मी लिपि तथा सस्कृत भाषा मे यौधेयगणस्य जय लिखा ह। मध्य मे कार्त्तिकेय अपनी शक्ति लिए खडा है। एक वतुलाकार मुद्रा पर देबी के चारा आर वनी मणिया की माला यह व्यक्त करती है कि यह अमूल्य रत्नो तथा धन धा य से युक्त बहुधा यक अथात हरियाणा का मुद्रा ह। यह मुद्रा सुनेत करौधा, जटायल हासी हिसार, भिवानी, दादरी मल्हाणा आदि स्थानो मे आचाय भगवान देव का मिली ह और महम, सोनीपत, जयजयव ती आदि स्थाना पर भी कइ लागा को पयाप्त सख्या मे मिली ह[२]।

एक अ य मुद्रा जिला हिसार क यौधेय दुग के खण्डहर नोरगाबाद वामले मे प्राप्त हुई ह जिस पर हरियाणा जाति का ककुदवान बहुत रमणीक साड का चित्र दिया ह। साड के ऊपर ब्राह्मी लिपि मे— यौधेयाना जय मन्त्रधराणाम लेख चिह्नित ह[३]।

इन सभी उपलब्ध मुद्राआ के अतिरिक्त अभी सम्भावना की जाती ह कि भविष्य मे होने वाले उत्खनना मे हमे कुछ ओर भा मुद्राए प्राप्त हागी।

योधियगण की मोहरे

हरियाणा प्रा त के पुराने दुर्गो से कइ मिट्टी की माहरे उपलब्ध हुइ ह कुछ खण्डहर तो ऐसे है, जिनके उत्खनन से अत्यधिक महत्त्वपूण सामग्री प्राप्त हा सकता ह।

इन मोहरो मे विशेष उल्लेखनीय दा प्रकार की मोहरे है। य दोनो मृण्मयी है आर बहुत ही रोचक ह। एक मोहर की लम्बाई ३ इन्च और चौडाइ १ ८ इन्च ह। यह गोलाकार सो ह। इसे पकडने के लिए मूठ भी बनी हुई ह जो ऊपर से कुछ पतली ह। पूरी मोहर पर निर्माता का हस्तरखाएँ भी स्पष्ट दीख पडती है। इस पर चार पक्तियो का एक लेख ह। ऊपर की पक्ति मे एक विशेप चिह्न ह। लगता ह जैसे यह चिह न यज्ञीय यूप का हा। आगे इसी पक्ति मे ब्राह्मी अक्षरो मे 'रफ्त' लिखा ह। अक्षर कुछ कट से गए ह। दूसरी पक्ति मे "यौधेय जन ' यह लेख ह। तीसरी पक्ति के आरम्भ मे द' अक्षर ह। इसी पक्ति मे जो लेख ह यह 'प्रकृतानाक पढा जाता ह, जो प्राकृत भाषा म हैं। अ तिम और चौथी पक्ति मे नगर' पढा जाता ह।[४]

दूसरी मोहर की लम्बाइ १ ५ इच और चौडाई १ २ इ च है। यह चतुष्कोणीय है। इसके ऊपर भी पकडने के लिए मूठ बनी हुई ह जो ऊपर से पहली क विपरीत गोलाई पर

१ द्रष्टव्य वही पष्ठ १३८ १४०।

२ द्रष्टव्य वही पष्ठ १४० १४१।

३ आचाय भगवान देव हरयाणा की सस्कृति भाषा विभाग हरयाणा की वार्षिक गोष्ठी (१९६७—१९६८) पष्ठ १६।

४ विशेष द्रष्टव्य वीर भूमि हरयाणा वही पष्ठ १४३–१५१।

ह। इस पर ब्राह्मी अक्षरा मे और प्राकृत भाषा मे 'भत्ति निकाय' लिखा ह। वर्गाकार सी इस मोहर पर चार ऊपर के भाग मे और एक अ तिम 'य' अक्षर मोहर के बाए भाग मे उल्लिखित हैं। अक्षरो के नीचे एक विशेष चिन्ह ह, जो शायद किसी आयुध का प्रतीत होता ह। इसके मूल मे पहुँचने के लिए अभी पर्याप्त अन्वेषण की आवश्यकता है। इस तरह की अनेक महत्त्वपूण मोहरे हरयाणा प्रा तीय पुरातत्व सग्रहालय गुरुकुल झज्जर मे सुरक्षित ह[1]।

इनके अतिरिक्त कुछ अ य मोहरे भी उपलब्ध हुई ह, जिन पर सिंह का चित्र ह[2]।

(३) शिला लेख

हरियाणा प्रा त का सबसे प्राचीन उपलब्ध शिलालेख तोशाम (तहसील भिवानी, जिला हिसार) का ह। यह स्थान भिवानी से उत्तर पश्चिम मे लगभग चौदह मील की दूरी पर है। इस ग्राम के पश्चिम मे एक पहाडी ह जिसकी ऊँचाई लगभग ८०० फीट ह। इस पहाडी के पूर्वी भाग मे यह लेख चटटान पर खुदा हुआ ह। लिपि के आधार पर इसे ईस्वी सम्वत की चौथी या पाचवी शताब्दी का माना जा सकता ह[3]।

इस लेख के अन तर प्रतिहार वश के महाराजाधिराज भोज आदिवराह के राज्यकाल का एक प्रस्तर लेख पहवा गरीबनाथ के म दिर से उपलब्ध हुआ ह। इस लेख की तिथि २७६ हष सम्वत अर्थात ९३९ विक्रम सवत ह[4]।

ततीय शिलालेख भी पेहवा से उपलब्ध हुआ ह। यह प्रतिहारवशी महाराजाधिराज महे द्रपाल के गाज्यकाल का ह, जिसकी ज्ञात तिथिया विक्रम सवत ९५० से विक्रम सवत ९६४ तक है[5]।

चौथा शिलालेख जिला अम्बाला की तहसील जगाधरी के तोपरा नामक ग्राम मे स्था पित अशोक स्तम्भ पर उत्कीण किया गया था। इस स्तम्भ को तुगलकवशी बादशाह फीरोजशाह दिल्ली ले आया था और अब यह दिल्ली मे कोटला फीरोज़शाह नाम से प्रख्यात पुराने राजप्रासादो के खडहरा के मध्य एक भवन की दूसरी मजिल की छत पर परिस्थापित ह। इस स्तम्भ पर अशोक के सात स्तम्भ लेखो के अतिरिक्त एक लेख विक्रम सवत १२०० का है, जो कि बीसलदेव विग्रहराज चतुथ की प्रशस्ति है[6]।

पाचवा शिलालेख जिला हिसार के नगर हासी से उपलब्ध हुआ था। अब यह शिला ऐडनबरा (स्काटलैण्ड) के रायल स्कौटिश म्यूजियम मे सुरक्षित ह। यह लेख सम्राट पथ्वी राज द्वितीय के राज्यकाल का है। इसकी तिथि विक्रम १२२४ ह[7]।

१ द्रष्यव्य वही पष्ठ १५१–१५५।

२ द्रष्टव्य आचाय भगवान देव हरयाणा की सस्कृति वही पष्ठ २३।

३ प्रो० जगन्नाथ अग्रवाल हरियाणा के कुछ शिलालेख सप्तसिन्धु पत्रिका, (उप भाषा विशेषाक), १९६५–६६, हिन्दी विभाग, पजाब, पटियाला पृष्ठ ४४५।

४ वही पष्ठ ४४५।

५ वही लेख पष्ठ ४४६।

६ वही पष्ठ ४४६।

७ वही पष्ठ ४४७।

छठा लेख रोहतक नगर के समीप अस्थल बोहर नामक ग्राम से उपलब्ध हुआ है। इस लेख की तिथि विक्रम सवत १३३७ है। इस लेख मे हरियाणा शब्द का रूप हरियानक ह[1]।

इसके अनन्तर दिल्ली के लाल किले के सग्रहालय मे सुरक्षित विक्रम सवत १३८५ का एक शिलालेख वणनीय है, जिसमे लिखा ह, कि हरियाना नाम का एक देश ह, जो धरा पर स्वगसदश ह[2]।

इन शिलालेखो के अतिरिक्त महाक्षत्रप रुद्रदामा के गिरनार अभिलेख मे जो शक सवत ७२ मे लिखा गया, यौद्धा के पराक्रम को इन शब्दो में स्वीकार किया गया ह— "सवक्षत्राविष्कृतवीरशब्दजातोत्सेकविधेयाना यौधेयानाम[3]।" अत हरियाणा के वैशिष्टय मे इसका उल्लेख करना भी आवश्यक ह।

सम्भव ह, इस प्रान्त के अछूते खडहरो के उत्खनन से हमे कुछ और भी शिलालेख उपलब्ध हो, परन्तु अभी तक विशेष रूप से उपयुक्त शिलालेखो की उपलब्धि हुई है। वैसे अन्य कई छोटे मोटे शिलालेख भी सम्भवत किसी और को मिले हो। हमे उनका ज्ञान नही ह। सक्षेप मे इतना अवश्य कहा जा सकता ह, कि हरियाणा के शिलालेख बहुत अधिक पुराने नही है जिनसे सिन्धु घाटी सभ्यता के विषय मे कुछ और ज्ञान की अभिवद्धि हो सके।

(४) बर्तन

हरियाणा प्रान्त मे उत्खनन से प्राप्त होने वाले बतनो मे हमे जिनका पता लग सका है, उनमे सुराहिया विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन सुराहियो के चारो ओर चित्रकला का सौन्दय अवलोकनीय ह। इन पर अनेक प्रकार के बेल बूटे तथा क्रीडासक्त दम्पती के चित्र ही देखे जाने ह जिन्हे देख कर अजन्ता के चित्रो की की याद आ जाती है।

(५) ईटे

विभिन्न प्रकार की पुरानी ईटो का सग्रह हरयाणा प्रान्तीय पुरातत्त्व सग्रहालय गुरुकुल झज्जर मे सुरक्षित है। यद्यपि सास्कृतिक दष्टि से इनका इतना अधिक महत्त्व नही तथापि इनसे प्राचीन काल का निर्माण शक्ति की आधुनिक शक्ति से पथक्ता अवश्य बोधित होती है। अत पुरातात्त्विक अन्वेषण मे इनका उल्लेख करना अनुचित नही।

(६) अस्थिपजर (ममीज)

कुछ अस्थिपजर झज्जर के सग्रहालय मे सुरक्षित है। इनके अतिरिक्त आज से कुछ वष पूव कुरुक्षेत्र के गीता भवन के पास एक खडहर के उत्खनन से एक मानव का अस्थिपजर उपलब्ध हुआ था। यह अस्थिपजर मैने स्वय देखा था। उसे देख कर प्रतीत होता था, कि किसी तपस्यालीन साधु ने बैठे बैठे प्राणत्याग दिए हो। वैसे कुरुक्षेत्र सरोवर के

१ द्रष्टव्य जनरल आफ एशियाटिक सोसायटी आफ बगाल खण्ड ४३ (पुरातन क्रम सख्या) पष्ठ १०८।

२ द्रष्टव्य प्रो० जगन्नाथ का वही लेख पष्ठ ४४४।

३ उद्धृत गद्यसौरभम (सम्पादक दुर्गादत्त मेनन) प्रथम सस्करण, १९६७ पजाब यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन ब्यूरो, चण्डीगढ पृष्ठ २९।

ह। इस पर ब्राह्मी अक्षरो मे और प्राकृत भाषा मे 'भत्तिनिकाय लिखा है। वर्गाकार सी इस मोहर पर चार ऊपर के भाग मे और एक अंतिम 'य' अक्षर मोहर के बाएँ भाग मे उल्लिखित ह। अक्षरो के नीचे एक विशेष चिन्ह ह, जो शायद किसी आयुध का प्रतीत होता ह। इसके मूल मे पहुचने के लिए अभी पर्याप्त अन्वेषण की आवश्यकता है। इस तरह की अनेक महत्त्वपूण मोहरे हरयाणा प्रांतीय पुरातत्व सग्रहालय गुरुकुल झज्जर मे सुरक्षित ह[1]।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य मोहरे भी उपलब्ध हुई है, जिन पर सिंह का चित्र ह[2]।

(३) शिला लेख

हरियाणा प्रान्त का सबसे प्राचीन उपलब्ध शिलालेख तोशाम (तहसील भिवानी, जिला हिसार) का ह। यह स्थान भिवानी से उत्तर पश्चिम मे लगभग चौदह मील की दूरी पर है। इस ग्राम के पश्चिम मे एक पहाडी ह जिसकी ऊँचाई लगभग ८०० फीट ह। इस पहाडी के पूर्वी भाग मे यह लेख चटटान पर खुदा हुआ ह। लिपि के आधार पर इसे ईस्वी सम्वत की चौथी या पाचवी शताब्दी का माना जा सकता ह[3]।

इस लेख के अनन्तर प्रतिहार वश के महाराजाधिराज भोज आदिवराह के राज्यकाल का एक प्रस्तर लेख पहवा गरीबनाथ के मंदिर से उपलब्ध हुआ ह। इस लेख की तिथि २७६ हप सम्वत अर्थात ९३९ विक्रम सवत ह[4]।

ततीय शिलालेख भी पेहवा से उपलब्ध हुआ ह। यह प्रतिहारवशी महाराजाधिराज महेन्द्रपाल के गाज्यकाल का ह, जिसकी ज्ञात तिथिया विक्रम सवत ९५० से विक्रम सवत ९६४ तक है[5]।

चौथा शिलालेख जिला अम्बाला की तहसील जगाधरी के तोपरा नामक ग्राम मे स्थापित अशोक स्तम्भ पर उत्कीण किया गया था। इस स्तम्भ को तुगलकवशी बादशाह फीरोजशाह दिल्ली ले आया था और अब यह दिल्ली मे कोटला फीरोजशाह नाम से प्रख्यात पुराने राजप्रासादो के खडहरो के मध्य एक भवन की दूसरी मजिल की छत पर परिस्थापित ह। इस स्तम्भ पर अशोक के सात स्तम्भ लेखो के अतिरिक्त एक लेख विक्रम सवत १२०० का ह, जो कि बीसलदेव विग्रहराज चतुथ की प्रशस्ति है[6]।

पाचवा शिलालेख जिला हिसार के नगर हासी से उपलब्ध हुआ था। अब यह शिला ऐडनबरा (स्काटलैण्ड) के रायल स्कौटिश म्यूजियम मे सुरक्षित ह। यह लेख सम्राट पथ्वीराज द्वितीय के राज्यकाल का है। इसकी तिथि विक्रम १२२४ है[7]।

१ द्रष्यव्य वही पष्ठ १५१–१५५।

२ द्रष्टव्य आचाय भगवान देव हरयाणा को सस्कृति वही पष्ठ ९३।

३ प्रो० जगन्नाथ अग्रवाल हरियाणा के कुछ शिलालेख सप्तसिन्धु पत्रिका, (उप भाषा विशेषाक), १९६५–६६, हिन्दी विभाग, पजाब, पटियाला पष्ठ ४४५।

४ वही पष्ठ ४४५।

५ वही लेख पष्ठ ४४६।

६ वही पष्ठ ४४६।

७ वही पष्ठ ४४७।

छठा लेख रोहतक नगर के समीप अस्थल बोहर नामक ग्राम से उपलब्ध हुआ है। इस लेख की तिथि विक्रम सवत १३३७ है। इस लेख मे हरियाणा शब्द का रूप हरियानक ह[1]।

इसके अनन्तर दिल्ली के लाल किले के सग्रहालय मे सुरक्षित विक्रम सवत १३८५ का एक शिलालेख वणनीय है, जिसमे लिखा है, कि हरियाना नाम का एक देश ह, जो धरा पर स्वगसदश ह[2]।

इन शिलालेखो के अतिरिक्त महाक्षत्रप रुद्रदामा के गिरनार अभिलेख मे जो शक सवत ७२ मे लिखा गया, यौद्धा के पराक्रम को इन शब्दो में स्वीकार किया गया ह— "सवक्षत्राविष्कृतवीरशब्दजातोत्सेकविधेयाना यौधेयानाम[3]।" अत हरियाणा के वैशिष्ट्य मे इसका उल्लेख करना भी आवश्यक ह।

सम्भव है, इस प्रात के अछूते खडहरो के उत्खनन से हमे कुछ और भी शिलालेख उपलब्ध हो, परन्तु अभी तक विशेष रूप से उपयुक्त शिलालेखो की उपलब्धि हुई है। वैसे अय कई छोटे मोटे शिलालेख भी सम्भवत किसी और को मिले हो। हमे उनका ज्ञान नही ह। सक्षेप मे इतना अवश्य कहा जा सकता ह, कि हरियाणा के शिलालेख बहुत अधिक पुराने नही है जिनसे सिधु घाटी सभ्यता के विषय मे कुछ और ज्ञान की अभिवद्धि हो सके।

(४) बर्तन

हरियाणा प्रान्त मे उत्खनन से प्राप्त होने वाले बतनो मे हमे जिनका पता लग सका है, उनमे सुराहिया विशेष रूप से उल्लेखनाय है। इन सुराहियो के चारा ओर चित्रकला का सौन्दय अवलोकनीय ह। इन पर अनेक प्रकार के बेल बूटे तथा क्रीडासक्त दम्पती के चित्र ही देखे जाने ह, जिन्हे देख कर अजता के चित्रो की की याद आ जाती ह।

(५) ईंटे

विभिन्न प्रकार की पुरानी ईंटो का सग्रह हरयाणा प्रानीय पुरातत्त्व सग्रहालय गुरुकुल झज्जर मे सुरक्षित है। यद्यपि सास्कृतिक दष्टि से इनका इतना अधिक महत्त्व नही तथापि इनसे प्राचीन काल का निर्माण शक्ति की आधुनिक शक्ति से पृथक्ता अवश्य बोधित होती है। अत पुरातात्त्विक अवेषण मे इनका उल्लेख करना अनुचित नही।

(६) अस्थिपजर (ममीज)

कुछ अस्थिपजर झज्जर के सग्रहालय मे सुरक्षित है। इनके अतिरिक्त आज से कुछ वष पूव कुरुक्षेत्र के गीता भवन के पास एक खडहर के उत्खनन से एक मानव का अस्थिपजर उपलब्ध हुआ था। यह अस्थिपजर मैने स्वय देखा था। उसे देख कर प्रतीत होता था, कि किसी तपस्यालीन साधु ने बैठे बैठे प्राणत्याग दिए हो। वसे कुरुक्षेत्र सरोवर के

१ द्रष्टव्य जनरल आफ एशियाटिक सोसायटी आफ बगाल खण्ड ४३ (पुरातन क्रम सख्या) पृष्ठ १०८।

२ द्रष्टव्य प्रो० जगन्नाथ का वही लेख पष्ठ ४४४।

३ उद्धत गद्यसौरभम (सम्पादक दुर्गादत्त मेनन) प्रथम सस्करण, १९६७ पजाब यूनिर्वासिटी पब्लिकेशन ब्यूरो, चण्डीगढ पष्ठ २९।

पश्चिमी तट पर तथा नाभि कमल मंदिर के समीप जो काफी ऊंचे गडहर ह, मेरे विचार मे यदि उनका उत्खनन किया जाए, तो हम विभिन्न अस्थिपंजर तथा अन्य महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध हो सकती है। पर सबसे बडा प्रश्न तो यह ह, कि इस काय के लिए कौन अपना साहस प्रदर्शित करे।

(७) आटा पीसने की चक्किया

इस प्रकार की कुछ पुरानी चक्किया झज्जर के संग्रहालय मे पडी है, जो देखने योग्य ह ।

(८) मूर्तिया, चित्र आदि

यौधेयगण की मुद्राओ और मोहरो पर अंकित तथा बतनो पर अंकित अनेको चित्र दर्शनीय ह । उपलब्ध चित्रो म शिव, बल तथा आयुधो के चित्र अधिक संख्या मे है। मूर्तियो मे मृण्मूर्तिया तथा प्रस्तर मूर्तिया मिली ह ।

एक विशिष्ट मूर्ति का उल्लेख आवश्यक होगा। यह मृण्मूर्ति यौधेयो के एक प्राचीन दुग नौरङ्गाबाद से उपलब्ध हुई है। इस पर योधेय जाति का एक योद्धा या सेनापति सिंह के ऊपर आरूढ ह । इसके हाथ म वज्र ह । इस मूर्ति के दूसरी ओर शांति के द्योतक कमल पुष्प का अभिराम चित्र ह[१] ।

इनके अतिरिक्त मिलने वाली मूर्तियो और चित्रो मे उल्लेखनीय है—कुषाणकालीन सिंहनिहन्ता सैनिक, गणेश (ढालवाह), आठवी शती ई० की बुद्ध प्रतिमा, मध्ययुगीन वामन अवतार विष्णु, मध्यस्था नारी के आगे पीछे दो नर, कलायत के मन्दिर मे कपिल मुनि की प्राचीन मूर्ति इत्यादि ।

आचाय भगवान दव को भी सावी ग्राम से महात्मा बुद्ध की एक प्रस्तर मूर्ति मिली है[२] । एक शिवमूर्त्ति ऋषि जैमिनी कौशिक 'बरुआ' को मिली ह । यह मूर्ति जो सिरसा के थेड मे खोदी गई थी, ८ वी सदी की ह[३] ।

उपर्युक्त उपलब्ध सामग्री के अतिरिक्त पुरातत्त्वीय दृष्टि से कुछ अन्य उल्लेखनीय वस्तुओ के नाम निम्नलिखित है —

(१) यज्ञ की भस्म (राख)। इस भस्म के लिए आचाय भगवान देव ने लिखा है —जिला रोहतक मे बेरी से ५–६ मील की दूरी पर दूबलधन ग्राम मे महर्षि दुर्वासा रहते थे। यहा उन्होंने एक बृहदयज्ञ अनेक वर्षो तक किया था, उस स्थान पर उन्ही के नाम पर लोगो ने दुर्वासाश्रम बना रक्खा ह । यहा के ग्रामीण लोग जब आश्रम के लिए कुआ

—

१ द्रष्टव्य आचाय भगवान् दव हरियाणा की संस्कृति वही पृष्ठ १९ ।

२ द्रष्टव्य वही पृष्ठ ३१ ।

३ द्रष्टव्य जैमिनी कौशिक 'बरुआ' की पुस्तक तूय के नाद, शख का स्वर १९६६ संस्करण जैमिनी प्रकाशन, कमरा न० १२१, माधो भवन, ११६।१, महात्मा गाधी रोड, कलकत्ता—७ ।

खोदने लगे, तो ३५ हाथ नीचे तक हवन की भस्म राख ही निकलती चली गई। हो सकता है, वह बहदयज्ञ सत्र जिसे पौराणिक भाइ कहते ह कि ८० हजार वप तक महर्षि दुर्वासा यहा यज्ञ करते रहे वह स्थान यही हा आर ८० महस्र वप के स्थान पर ८० वप तक अथवा इससे अधिक लम्बा यह यज्ञ यहा चलता रहा हागा। खुदाई मे निकली हुइ यज्ञ की भस्म (राख) इसके लिए साक्षी है[1]।

(२) प्राचीन ध्वस्त मदिर —इन मे कुछ मदिरा के खण्डहर कुरुक्षेत्र तथा पहवा मे अवलोकनीय है।

(३) महम (रौहतक) की ऐतिहासिक बावली।

(४) कलायत मे दुगा का मदिर।

(५) भूतेश्वर जीद।

(६) चदन की लकडी का बनाया हुआ बादाम।

(७) प्रसिद्ध क्रातिकारी अमर शहीद श्री रामप्रसाद बिस्मिल का हवन कुण्ड।

(८) हरियाना की सवखाप पचायत का ताम्रपत्र।

(९) शिरस्त्राण इत्यादि।

इस वस्तुओ मे से अनेका के चित्र सप्तसिंधु मासिक हिदी पत्रिका के उपभाषा विशेषाक (१९६५–१९६६) मे निरूपणीय है।

उक्त विवेचन द्वारा अतत हम कह सकते है, कि पुरातन काल मे हरियाणा प्रदेश सभ्यता और सस्कृति के उच्च शिखर पर पहुँचा हुआ था। इस प्रात की प्राचीन कला सम्पूण भारत की कला ह क्याकि हमारी भारतीय रचनाओ मे ' बाह्य सौदय दिखाने की बजाय आतरिक भावो के अकन को बहुत महत्व दिया गया ह[2]"।

अत हमारी प्राचीन कला की मुख्यतम विशेषताए है—भावव्यजता की प्रधानता, धमत्व की मुख्यता तथा अनामता[3]। ये सब विशेषताएँ हमारे प्राचीन स्तूपो, स्तम्भो गुफाओ, राज प्रासादो, चित्रा तथा मूर्तियो आदि मे देखी जा सकती ह क्योकि– जातियो, की महत्ता का एक मानदण्ड कलाकृतिया भी है[4]' इस प्रकार पुरातत्त्वो के अन्वेषण से तथा उनकी ओर रुचि दिखाने मे किसी राष्ट्र की सस्कृति का एक विशिष्ट भाग प्रशस्त होता ह। हमे आशा करनी चाहिए कि भारत सरकार तथा हरियाणा सरकार इस काय की ओर उन्नत पग उठाने का अवश्य प्रयास करेगी।



---

१ वही आचाय भगवान देव की पुस्तक पष्ठ ११।

२ श्री हरिदत्त वेदालकार भारतीय सस्कृति का सक्षिप्त इतिहास १९५५ आत्माराम०

३ द्रष्टव्य वही।

४ वही पष्ठ १६२।

मध्यकालीन हरियाणा और दक्खिनी हिंदी के विकास मे हरियानी का योगदान

छविनाथ त्रिपाठी

वैदिक साहित्य से लेकर स्सतियो तथा पुराणो तक हरियाना के वर्तमान क्षेत्र की प्रचुर प्रशस्ति गाई गई ह । इस क्षेत्र के प्रतिष्ठापक हर (शिव या रुद्र) की महिमा के वणन से सारा श्वेताश्वतर उपनिषद भरा हुआ है । मनुस्मति मे सरस्वती और दषद्वती[1] के बीच के क्षेत्र को देव निर्मित देश ब्रह्मावत कहा गया है ।[2] दषद्वती को कुछ विद्वान वतमान घग्घर नदी कहते है । ब्रह्मावत मे प्रचलित आचार ही सदाचार माना गया ह ।[3] मनुस्मृति-काल मे जिन क्षेत्रो को ब्रह्मर्षि देश कहा गया है, उनमे कुरुक्षेत्र की गणना सवप्रथम की गई है । कुरुक्षेत्र के दक्षिण पश्चिमी क्षेत्र और ब्रह्मावत को मिलाकर ही वतमान हरियाना राज्य का निर्माण हुआ है । मनु स्मृति के अनुसार यह 'यज्ञिय' देश है क्योकि यहा कृष्ण सार मग स्वच्छन्द विचरण करते थे ।[5] वतमान हरयाणा और राजस्थान की सीमा से लगते क्षेत्र मे इन कृष्ण मृगो का दशन आज भी किया जा सकता ह ।

हरयाणा या हरियाना के सास्कृतिक इतिहास के अध्ययन के लिए वैदिक साहित्य, स्मृतिया, सूत्रग्र थ, महाभारत, हरिवश, स्कन्दपुराण तथा विष्णुपुराण आदि उतने ही महत्त्वपूण ह जितने यौधेय गणतन्त्र, गुप्त एव वधनवश मे सम्बद्ध इतिहास ग्र थ । पौराणिक युग के प्रारम्भ का हरियाना सतलज (शतद्रु) घाटी से लेकर कैलाश पवत तक फला हुआ था । कार्तिकेय और परशुराम की शक्ति परीक्षा तथा कार्तिकेय और तारकासुर के युद्ध का क्षेत्र यही था । अ धकवृष्णि युग मे श्रीकृष्ण के प्रभाव क्षेत्र के कारण ही हरयाणा हरियाणा भी कहा जाने लगा । आभीर युग मे इस प्रदेश का दक्षिणी भाग 'हरि' नाम से भी पुकारा जाता था ।

आठवी सदी के अपभ्रश महाकवि स्वयम्भू ने इस क्षेत्र के प्रदेशो के प्रचलित नामो का उल्लेख किया ह—

मरु कण्णाट लाट जालधर । टक्क-हीर कीर खस-बब्बर । पउम चरिउ ३०।२ ।

---

१ दषद्वती का उल्लेख ऋक ३।२३।४ और १०।५३।८ मे है ।

२ मनुस्मृति २।१७

३ वही २।१८

४ कुरुक्षेत्र च मत्स्याश्च पाचाला शूरसेनका ।
एव ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मवर्तादनतर ।। मनु० २।१९ ।।

५ कृष्णसारस्तु चरति मगो यत्र स्वाभावत ।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वत पर ।। मनु० २।२३ ।

सक सूर सेण मरु पत्थिवावि । पउम चरिउ ८२।६ ।

दसवी सदी के कवि पुष्पदन्त ने भी विविध प्रदेशा का उल्लेख किया ह । उन्होने 'हरि को 'आहीर' नाम दिया ह किन्तु एक स्थान पर प्राचीन प्रचलित नाम 'हरि कुरु' भी लिखा ह—

आहीर कीर गवार गउड णेवाल चाड ।

कोकण केरल कुरु कामरूव सिंहल पहूय । आदि पुराण पष्ठ २३० २३१

मागह जह भोट्ट णेवालवि । उडड पुड हरिकुरु-भगालवि । आदि पु० प० ८८

आठवी से दसवी शताब्दी तक वतमान हरियाणा के तीन प्रमुख क्षेत्र थे—आहीर (हीर) कीर और जट्ट, तथा समग्र रूप मे यह हरि कुरू' या यौधेय भूमि के नाम से पुकारा जाता था । महा कवि पुष्पदन्त ने इस यौधेय भूमि का विस्तत एव मनोरम वणन प्रस्तुत किया ह--

वित्थिणगए जबु दीवि भरहे । स्वर किरण करावलि भूरि भरहे ।
जाहेयउ णामि अत्थि देसु । ण नरणिए नरियउ दिव्व वेसु ।
जहि चलइँ जलाइ स विब्भमाइँ । ण महि कामिणि णव जा वणाइँ ।
गावाल–मुहालुखिय—फलाइँ । जहि महुरइ ण सुक यहो फलाइँ ।
मथर--रोमथण चलिय-गड । जहि सुहि णिसिण्ण गो महिसि सड ।
जँह उच्छु वणइँ रस दसिराइँ । ण पवण वसेउ पणच्चिराइ ।
जँह कण भर पणविय पक्क सालि । जहिँ दीसइ सयदलु सदलु सालि ।
जहिँ कणिसु-कीर रिछोलि चुणइ । गहवइ सुयाहि पठिवयणु भणइ ।
छोक्करण राव रजिम मणेण । पहि पउ ण दिण्ण पथिय जणेण ।
जहिँ दिष्णु कष्णु वणि मयउलेण । गोवाल गेय रजिय मणेण ।
जहि जण धण कण परिपुण्ण गाम । पुर-णयर सुसीमाराम साम ।

घत्ता राय उरु मणोहरू रयण चिय भरू, ताहिँ पुरवरु पवणुद्धयहि ।
चल चिधहि मिलियहिँ णहयलि घुलियहिँ, लिवइ व सग्गु सयभुयहि ॥

ज छण्णउ सरसहिं उववणेहिं । ण विद्धउँ वम्मह मग्गणेहिं ।
कय सद्दहि कण्ण सुहावएहिं । कण इ' व सुर हर पारावएहिं ।
गयवरदाणोल्लिय वाहियालि । जहि सोहइ चिरु पवसिय पियालि ।
सर हसईं जहिं णेउर खेण । मउ चिक्कमति जुवई पहेण ।
ज णिय भुयासि वर णिम्मलेण । अण्णुवि दुग्गउ परिहा जलेण ।
पडि खलिय वइरि-तोमर-झसेण । पडुर पायारिं ण जसेण ।
ण बेढिउ बहु सोहग्ग भारू । ण पुजीकय ससार सारू ।
जहिं विलुलिय मरगय तोरणाइँ । चउदारइ ण पउराणणाइँ ।
जहि धवल मगलुच्छव सराइँ । दु ति पच-सत्त भोमइ घराइँ ।
णव कुकुम रस छडयारुणाइँ । विक्खित्त दित्त मोत्तिय कणाइँ ।
गुरु देव पाय पकय बसाइँ । जहिँ सव्वइँ दिव्वइँ माणुसाइँ ।
सिरिमतइँ सतइँ सुत्थियाइँ । जहिँ कहि मिण दीसहि दुत्थियाइ ॥

जसहर चरिउ–पृ० ४१५

विस्तीण जम्बू द्वीप के भरत खड मे सूय की प्रचुर तीक्ष्ण किरणो से भरा हुआ यौधेय नाम का देश ह। वहा की धरती ने मानो दिव्य वेश धारण किया ह। जहा आवतयुक्त जल धारायें इस प्रकार चलती ह माना विभ्रम बिलास से युक्त कामिनी कुल हा। जहा भगो के घर कुकविता के समान फल हुए ह। जहा नील कमल सदश नत्रा की स्निग्धता ह जहा के फूले फल उपवनो मे भूमि रूपी कामिनी नव यौवन सम्पन्न हो गई ह। जहा के ग्वाले ऐसे फल चुनते ह माना वे मधुर पुण्य फल हा। जहा गाय भस और साड धीरे धीरे जुगाली करते ह जिससे उनके कपाल चचल दिखाई पडते ह। जहा के ईखो के वन म रस इस प्रकार भरा ह जैसे बासो के बन म पवन। जहा दाना से भरी हुई, पक धान की बालिया झुक गई है और उनके आस पास कमल खिले हुए ह। तातो की पक्तिया मजरिया चुनती ह और गृह-पतियो की कन्याएँ उ हे प्रतिवचन कहती ह। छोकडा (बच्चो) के समूह मन ही मन मग्न है। पथिक जन माग पर पग बढाते ह। जहा कण वन मृगो से भरे हुए है और गोपाल अनु राग भरे मन से गीत गाते ह। जहा के गाव जन धन और अन्न से परिपूण ह। पुर और नगरो की सीमाएँ बगीचो से श्यामल दिखाई पडती ह।

इस योधेय देश मे रत्न जटित मनोहर घरो से मुक्त 'राकनगर' ह। इस श्रेष्ठ नगर की पताकाएँ, पवन से हिलाई हुई, आकाश मे फहरा रही है, व मानो स्वग को छू रही हो। यह नगर चारा ओर से सरोवरा और उपवनो से घिरा हुआ ह, ऐसा लगता है मानो ये काम के बाण हा, जिनसे सारा नगर विध गया हो। यहा क दव मन्दिरो स आता हुआ पारावतो का कलरव काना को सुखदायी लग रहा ह। यहा मद प्रवाह करती गज पक्तिया ह जिन पर भ्रमर मडरा रहे ह। ऐसा प्रतित होता ह मानो चिर प्रवसित प्रिय से मिलन हो गया हो। नूपुर के सदश कलरव करते सरोवरो के हस, युवती के सौदय की आभा से सुशोभित माला के समान ही निमल ह।

दुग की परिखाएँ जल से भरी हुई ह। भुजाओ की शक्ति के समान ही उनका जल निमल ह। उनमे मछलिया ऐसी प्रतीत होती ह मानो शत्रु के गिरे हुए तोमर हो। उनके प्राकार यश के समान श्वत है। ये दुग प्राकार अत्यधिक सौभाग्य भार से अचल ह। ससार का सार मानो यही पूजीभूत हो गया हो। चचल एव हिलती हुई मरकत मणि के समान तारण है। नगर के चारा द्वार नगरवासिया के मुख के समान ही भव्य ह। जहा दो तीन, चार और पाच तथा सात मजिलो के घर ह। ये साक्षात मगलोत्सवो के समान श्वेत लगते है। नये बिखरे कुकुम रस की छटा सदश उनमे अरुणिमा है। उनम मुक्ता कणो की दीप्ति बिखर रही है। यहा के सभी मनुष्य दिव्य है तथा गुरु और देवता के चरण कमलो के वशी भूत ह। वे श्रीमत, सत, एव सुस्थित ह। कही भी दु स्थिति (अकाल आदि) नही दिखाई पडती।

मध्यकाल की हरियानी भाषा का स्वरूप

मध्यकाल की हरियानी भाषा की कृतिया उपलब्ध नही ह। इस क्षेत्र मे मध्यकाल की जो कृतिया मिलती है वे दो प्रकार की है। प्रथम प्रकार की वे रचनाएँ है जो अपभ्रश परपरा से अधिक प्रभावित है। ऐसी एक कृति बल्ह कवि रचित 'कूकडा मजारी चउपई'

श्री अगरच द नाहटा ने 'जन साहित्य'[1] मे प्रकाशित करवायी ह। इसकी हस्तलिखित प्रति १६०५ ई० की ह, अत इसका वास्तविक रचनाकाल इससे कुछ और पूव हो सकता ह। इसकी भाषा निश्चित रूप से अपभ्रश प्रभावित हरियानी ह। उदाहरण के लिए कुछ पक्तिया देखी जा सकती हैं—

भणइ मजारी निसुणि कूकुडा तिया काजि मनि बडा किज्जइ।
घरि आया आपणइ, उठि महत आदर दिज्जइ ॥ २२ ॥

भणइ, निसुणि, किज्जइ, आपणइ, दिज्जइ, अपभ्रश के पद ह। इस रचना के कुछ शब्द—सारद, विनाइक, कूकडा, मूरिख, स्याणा, मुकच आदि तथा परसग या विभक्तिया सवनाम एव योजक तत्कालीन हरियानी के ही ह—

जे परवति स्या आवहि भाइ ॥ २८ ॥
वयर विरोध करउ तुझ सेती। ३१।
मइ आनी मूसा कारना। ९।
अर पूजइ हर देव। ३२।

इसके क्रिया रूप मिश्रित है और ण के बहुल प्रयोग की प्रवृत्ति भी रचना मे दिखाई पडती ह। यह नीति परक रचना ह।

द्वितीय प्रकार की रचनाएँ नाथ पथ और सत सप्रदाय की है। इनकी भाषा हरियानी का रूप प्रस्तुत न कर तत्कालीन प्रचलित अवधी भाषा का स्वरूप ही प्रगट करती है—

'देखि भूमि उज्ज्वल सुवराई। वन जगल सोभा सुधराई ॥ मस्तनाथ चरित्र

हरियानी का लोक साहित्य समद्ध ह, पर उसकी भाषा मे निरतर परिवतन होता रहता है, अत उसके आधार पर किसी काल विशेष की हरियानी भाषा के स्वरूप का स्पष्टीकरण सभव नही ह।

हरियानी भाषा के मध्यकालीन स्वरूप की खोज मे दक्खिनी हि दी सर्वाधिक सहायक हो सकती ह। चौदहवी शताब्दी के पूर्वाध मे दिल्ली के सुलतानो ने दिल्ली हरियाना और कुरु प्रदेश के लोगो को ले जाकर दौलताबाद और उसके आस पास के क्षेत्र मे बसाया था। ये लोग अपने साथ अपनी भाषा भी ले गये और निरन्तर उसका प्रयोग करते रहे। इसमे कई कवि भी थे। दक्षिण मे गुलबर्गा, बीजापुर, गोलकुडा, बीदर और बरार नाम से पाच स्वतन्त्र राज्य बन, जहा उन कवियो को प्रश्रय मिला। औरगजेब द्वारा इन पाचो राज्यो को विनष्ट कर देने के बाद हदराबाद मे स्वतत्र निजाम राज्य की स्थापना १७२३ ई० मे हुई। यहा के कवि और लेखक अपनी भाषा को हि दी या हिन्दवी कहते आ रहे है। हि दी-साहित्य के इतिहासकारो ने इसे 'दखिनी हिन्दी' नाम दिया। इस दखिनी हि दी के प्राय सभी लेखक और कवि मुसलमान है, जिनका झुकाव अपनी रचना मे अरबी फारसी के शब्दो के समावेश की ओर अधिक रहा। यद्यपि इस प्रवत्ति के विरोध मे क्षीण स्वर भी सुनाई पडते है और कुछ ने अरबी फारसी के शब्दो को पथक रखने का प्रयत्न किया, पर यह प्रयत्न सफल न हुआ और अठारहवी शताब्दी के उत्तराध मे अरबी फारसी की पदावली से बोझिल, उदू

१ जन साहित्य—लोकसमास विशेषाक अक्तूबर-नवम्बर १९६५ पृ० ३६७ ३८०

ने साहित्य तथा प्रशासन म अपना सुदृढ स्थान बना लिया। इस क्रम मे चार सौ वष लगे। इन चार सौ वर्षो मे भाषा का जो रूप ढलता रहा उसका साचा तो उन्होने दिया था जो चौदहवी शताब्दी मे दिल्ली से जाकर दौलताबाद बसे थे।

उत्तरी भारत के अमीर खुसरो की पहेलिया और मुकरियो की भाषा खडी बोली हिदी कही जाती ह, पर उनक मौलिक रूप की उपलब्धि म स देह ह। इ शा अल्ला खा की 'हि दवी छुट' वाली 'रानी केतकी की कहानी' सन १७९८ और १८०३ ई० के मध्य लिखी गई। यही वह समय था जब हिन्दी और उदू ने अपना पथक पथक माग चुन लिया था। इससे पूव की हि दी रचनाआ के लिए दखिनी हि दी के साहित्य का महत्त्व बढ जाता है, जिसमे चार सौ वष पूव से ही हिन्दी की रचनाएँ मिलने लगती है। ये रचनाएँ गद्य और पद्य दोनो मे है।

मुस्लिम दरबारी वातावरण के कारण अरबी फारसी के शब्द इसमे आरम्भ से ही मिलते है, परन्तु इसकी आधारभूत बोली के कुछ उद्धरण अपने मौलिक रूप मे यहा उपलब्ध हो जाते है। इन्हे कौरवी कह कर भाषा वैज्ञानिको और हिदी साहित्य के इतिहासकारो ने छुट्टी पा ली है। उदू साहित्य मे उसे देहलवी बोली कहा जाता रहा है जिस पर उदू ने आकार प्राप्त किया। दिल्ली खडी बोली या कौरवी का क्षेत्र नही अपितु हरियानी का क्षेत्र ह। हरियानी के समीपस्थ मुजफ्फर नगर, सहारनपुर और मेरठ का कुछ क्षेत्र खडी बोली या कौरवी का ह, परन्तु कौरवि का शेष क्षेत्र हरियानी से सलग्न नही है। अत दखिनी हिदी की आधारभूत बोली हरियानी ही है। कुरु प्रदेश की बोली का भी यत्किचित योगदान हो सकता ह क्योकि दिल्ली और हरियाना के कुछ सलग्न क्षेत्रो मे वह बोली जाती है और उसका कुछ प्रभाव दखिनी हिन्दी पर दिखाई भी पडता ह। इस क्षेत्र के कुछ लोग भी दक्षिण गये होगे। दखिनी-हिदी की आधारभूत बोली मे हरियानी की खोज से यह निष्कष सहज ही निकल सकता है कि वतमान उच्च हि दी के निर्माण मे उसका उल्लेखनीय योगदान ह।

हरियानी और कौरवी की अधिकाश शब्दावली समान ह। वाक्य-रचना की प्रक्रिया भी समान है। इन दोनो के मौलिक अ तरो की खोज प्राथमिक आवश्यकता है, जिनके आधार पर कुछ महत्त्वपूण निणय किए जा सकते हैं। हरियानी और कौरवी के ध्वनिग्राम समान है। दखिनी हि दी को आधारभूत बोली की खोज मे एक कठिनाई यह भी ह कि उसकी सभी रच नाये फारसी लिपि मे प्रस्तुत की गई है, जिसमे द्वित्व वर्णो को भी एक ही वण द्वारा व्यक्त किया गया है जैसे 'आट्टा' का 'आटा'। पढते समय छन्द के आग्रह से सयुक्त ध्वनियो का आभास मिलता है। दखिनी हिदी मे 'ण के स्थान पर 'न' ही मिलता है, विकास और फारसी लिपि दोनो ही इसके लिए उत्तरदायी है। इन कठिनाइयो के होते हुए भी इन चार सौ वर्षों मे लिखी गई रचनाओ से कुछ उद्धरण दिये जा रहे है, जो तत्कालीन हरियानी के है और वतमान हरियानी के निकटतम या सदश है। मोटे टाइप के अश द्रष्टव्य है—

१ ख्वाजा बदा नवाज (१३२८ ई० १३८६ ई०) दिल्ली से दौलताबाद गये थे। इनकी 'मेराजनामा' एक गद्य-रचना है। इसकी कुछ पक्तिया इस प्रकार है—'अगर उसमे ते एक पर्दा उठ जावे तो उसकी आच ते मै जलूँ। होर एक बक्त ऐसा होता है, समझो

और देखो बेपर्वा अँधेरे के उजियाले के आरिफान[1] पर ह ।

२ शाह मीराजी (मत्यु १४८४ ई०) ने 'सबरस' गद्य मे लिखा । इसकी कुछ पक्तिया है—

इसका काम उस पर नही खुल्या, सो तुझपर क्या खीलेगा । तू क्या समझ कर भूल्या है ? बहुत सिखेगा तो इधर उधर किया दो चार हिकायता । इन हिकायता सो क्या हासिल ? ।

३ अशरफ ने १५०३ ई० मे अपना काव्य 'नौसिर हार' लिखा । नानक और सरदास के बीच के काल मे विद्यमान इस कवि ने अपनी काव्य भाषा को हिंदवी कहा ह—

नजम लिखूँ सब मौजू आन । यो मैं हिंदवी कर आसान । इस समय अरबी फारसी शब्दावली से बोझिल हिदी या हिंदवी कठिन समझी जाती होगी ।

४ फीरोज (१५६४ ई०) ने 'तौसीफनामा' मे कहा ह—

मेरा पीर मखदुम जी जग मने । मँगुँ न्यामता (मै सदा) उसबशे ।
वही फूल जिस फूल की बास तूँ । वही जीव जिस जीव की बास तूँ ।

५ साहबुरहानुद्दीन (जन्म १९४३ ई०, रचना काल १५८२ ई०) ने अपना भाषा का हिंदवी न कह कर हिदी कहा और उसकी प्रशसा की—

यह सब बोलू हिन्दी बोल । पन तूँ अनभौ सेनी खोल ।
ऐब न राखे हिदी बोल । माने तू चख देखे खोल ।
हिदी बोलो किया बखान । जेकर फसाद अथामुज ज्ञान ।
तूने देरया आप स आप । बे घड्या यह तुज पाप ॥

६ महाराष्ट्र के महात्मा एकनाथ (१५४८-१५९९ ई०) भी अपने गुरु जनादन स्वामी के पास बारह वष तक देवगिरि (दौलताबाद) रहे । उनकी हि दी की कुछ पक्तिया द्रष्टव्य है—

डख मारा बे डख मारा । सो बडे बडे कू नहो उतारा ।
ग्यानी कू ग्यान लगाऊँ । लोभे आधे कूँ उडाऊँ ॥

७ शाहअली (मत्यु १५६६ ई०) सूफी सन्त थे ।

हासिल सब कुरान का ह इतना जानो ।
वहम दुइ का दूर करो होर मुझे पछानो ।

८ वजही (१६०९ ई०) की 'कुतुब मुश्तरी' मे दो हजार शेर है । इनमे से कुछ तो विशुद्ध हरियानी के है । निम्नलिखित पक्तियो मे हरियानी के द्वित्व व्यजन छन्द के आग्रह से स्वय स्पष्ट हो जाते है —

जिता चोरी कर चोर अपे साव होय । दगाबाज उचक्के कू माने कीय ।
चुरा कर चुराता न कह जोर कोय । यो बॉता समझते सो है होर कोय ॥
जे कुच तुज कू होना सो हाजिर ह सब । उमासा जो भरता सो तूँ क्या सबब ।
दुनिया के सो लोगो मे वफा दीसता नै । धु व दीखे जफाबाज दिसता नही ॥

1 ज्ञानी लोग ।

वजही के गद्य काव्य 'सबरस' (समाप्तिकाल १६३५ ई०) को राहुलजी ने हिंदी का प्रथम गद्य काव्य माना है। तुलसीदास की मृत्यु के बारह वर्ष बाद इस ग्रंथ की समाप्ति हुई। इसकी सकर्मक गद्य पंक्तियां हरियानी की है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियां देखी जा सकती हैं—

यानी एक चोरी है, योबी एक हरामखोरी है ॥
वहां के लोगां कूं पूछ्या कि 'इस जागा कूं क्या कते (कत्ते = कहते) हैं ॥
क तुजे कुछ काम मुश्किल पडे, तो या बाल आग पर जाल ॥
या बोल बाल लट भौत लम्बी भौत बटी, वहां ते पेचा खाते खाते कमर पर चडी ॥
खुश्बोई की डौरी छुटी, चोगर बास की महकार उठी। दो चार प्याले शराब
कता हूं सुनो कान धर लोग हो। कहावत मने बात जा आये सो।
परख देके तूं काच होर पाव कूं। बराबर न कर दूद होर छाच कूं ॥
पिये, दुनिया मे जो कुछ करते सो गये ॥

९ मुहम्मद कुली कुतुब (१५८० १६१२ ई०) गोलकुडा का बादशाह था। इसके काव्य मे वर्ण्य विषयो की बहुविधता है। इसने लिखा है—

हरचा शीशा हरचा प्याला हरचा कसबत,[1] हरचा जोबन।
हरचा ज्वानी, हरचाली मे न या मोत्या के हारा कर ॥
तेरी बाता, तेरी धाता तेरी रीता अहै बहु घात ॥[2]
'सरया सब ग्वाही है ॥' 'कि पुतल्या म्याने दिस्ती है ॥' आदि।

१० अब्दुल (१६०३ ई०) ने चौदह विषयो का वर्णन किया है। वह अपनी भाषा को देहलवी कहता है—

जबा हिंदवी मुजसो होर देहलवी। न जानूँ अरब होर अजम मस्नवी[3] ॥

११ अमीन (१६२० ई०) मे 'बहराम हुस्नबानू' की कथा लिखी है। इसकी कुछ पंक्तियां है—

'सहेल्या जो थ्या तीन उसके सँगात।'
'बहु सुन शाह वा सेती आया बहार।

१२ गौवासी (१६२० ई०) दक्खिनी हिंदी के तीन प्रमुख महाकवियो मे से एक है। वह गोलकुडा का राज कवि था।

'जे कुच ख्वास्त तेरा है सब उस पे छोड'। दुन्या के इलाके ते तू दिलकू तोड।
'मुज हाल उस ठार पैदा हुआ।'
पिरोने लग्या बैस[4] आप हात सो। रँगा रँग हारा बहुत भाँत सो।'

१ परिधान, खिसक जाना
२ प्रकृति ढंग
३ फारसी
४ माला

पडया था अकेला दु खी बेकरार ।'

कमर मे ते वै अपने खजर कू काड । गया आपना पेट लेने कू फाड ।।'

'पिछाया कि साअद वफादार ह ।'

'हवा पर चल्या दौड पख मार मार । ररया मुजकू ल्याकर सो इस ठार उतारा।'

'यकेला अपे काड ल्याया अथा । सो मा बाप सा ल्या मिलाया अथ। ।

'बडा रन पडया सरव्त रगडा हुआ ।'

वुढा ढोढा था सो हुआ फिर जवान ।'

जधा ते जो तू लेव कर वो गया । तधा ते खलल बर तरफ हो गया ।'

'कह्या तू क्यो इस ठार आया कना।'[1]

१३ मुकीमी ने (१६२७ इ०) 'च द्रवदन-महियार' प्रेम कथा लिखी ह । इसकी एक पक्ति है—

'कया जा उसे ए दिवाने बशर ।[2] कहा सू तु आया चल्या है किधर ।'

१४ कुतुबी (१६३४ ई०) ने शेख युसुफ देहलवी की धार्मिक पुस्तक 'तोहफ्तुन्नमाहय का दक्खिनी हि दी मे पद्यबद्ध अनुवाद किया है—

यू पर जो बारी ज्वाब दे दायम रहे सर बाध कर ।

१५ सनअती (१६४५ ई०) के समय अरबी फारसी शब्दावली का इतना अधिक प्रयोग होने लगा था कि हरियानी और कौरवी की उपेक्षा हाने लगी । सनअती ने 'दखनी जबा' को आसान कहा—

जिसे फारसी का न कुल ज्ञान ह । सो दखनी जबा उनकू आसान ह ।'

यह 'दखनी जबा' हरियानी पर आश्रित ह—

'न तुज सारखा रग कोई रग सके ।'

पडेयक पे यक रन मे कै ठाट-ठाट । सु बोले सुटे ताड के झाड काट ।

१६ खुशनूद (१६४६ ई०) की पक्तिया है—

'दिस्या मुज एक ठार ओ ऊँट आया । वहा के शाख पात वो तोड खाया ।'

'जुगाल उसका पड्या था एक किनारे । बहुत पाता झडे थे उसमे सारे ।'

१७ रुस्तमी (१६४९ ई०) के 'खावरनामा' प्रेम कथा की एक पक्ति ह—

'न देरया किसी मद इस सात मे ।'

१८ निशानी (१६५६ ई०) की रचना 'फूल बन' मे अरबी फारसी शब्दा की भरमार है, परन्तु जो पक्ति ऐसी शब्दावली से मुक्त ह उसमे हरियानी की झलक देखी जा सकती ह—

'पिरित का थड होर बारा[3] लग्या सो ।

'है सात्रा सो पे दो बीस आर[4] (१७४४) बेता ।'

१ कहना

२ आदमी

३ वर्षा

४ चार (च्यार आर)

१९ नस्रती का स्थान सारे दक्खिनी कवियो मे ऊँचा ह। इनकी शब्दावली ह—

'साने मगे तो ग्ररम दुक ना तन मे उपरी ल्हो छिटक।'

'ऊनो क्या सख्या चूँकि सौ साथ थ्या। इनो के कने भी इसी घात थ्या।

'यो सब सच कतो हन को जान झूट।'

'तेरी सिफत सब थाकई बोल्या हुँ आपे जोड मे।'

'कता हू एता फौज देहली की बात। चौवेर ते या चिगिया उडिया।

यक्त ठार खातिर मे चल्या यक तरफ। वठ्या मिल के दोनो अग्रिक वर शरफ॥'

२० तवई (१६७० ई०) ने 'बहराना गुलनन्दाम' केवल चालीस दिना मे लिखा था जिसमे १३४० शेर है—

'कता हूँ सुनो कान वर लोग हौ। महावत मने बात हो आप यो।'

२१ इस्रनी (१६६२ ई०) बसरा मे पैदा हुए थे। १२ साल की उम्र मे बीजापुर आये और 'चित लगन' 'नेह दपन तथा 'दीपक पतग' की रचना उन्होने की।

'समज सच तु दो दिन के बिछडे का रोग। मु ज आशिक उपर जिन सुट्या प्यास भूक।'

'जलेव्या के निछल शीरी पे रख आख। झजरसे पट्टिया के शहद रहे झाक।'

२२ जईफी (१६८९ ई०) अपनी रचना 'हिदायत हिन्दी' का काल बतलाते है—

'सदी बारहवी का लग्या था बरस।'

२३ मुहम्मद अमीन (१६९७ ई०) मे 'यूसुफ जुलेखा' लिखा।

'इग्यारा सौ उपर जब नौ गुजरे।'

२४ वल्दी (१७०३ ई०) ने 'पछी वाचा' लिखा। उनकी पक्ति है—

के पडे है इस वजा गफलत मने। कुक्र ह जो मुल्क होर मिल्लत मने।'

२५ वली दकनी (१७०५ ई०) की भाषा ने पूणत उदू के निजी स्वरूप की विशेषताएँ स्थापित कर ली। वृन्द, लाल, घनान द, नागरीदास आदि हि दी कवि इनके सम कालिक है।

'ऐ यारे मन बहला हैगा। बीच उस्के बहुत जफा होगा।'

२६ वली के बाद भी हरियानी प्रभाव के दशन हाशिम अली (१७३७ ई०) की कविताओ मे होते है—

'क्योकर पिछानू मुझकूँ बता जाओ कुछ निशा।'

'ल्हो मरा क्यो तेरा चदरमुख ह।'

२७ बाकर आगाह (१७४५-१८०५ ई०) की सत्रह कृतिया है। वे दक्खिनी मे कहते है—

'थे बारा सो के ऊपर छ बरस जब।'

'मुसाफिर कु पौचाने जाता था वो।'

२८ तुराब दखिनी (१८४० ई०) ने अपनी रचना का नाम ही 'बारा बहार' रखा है। कुछ पक्तिया है—

'न समजी ओ हुआ सो देख बेहाल।'
'भौत आलम मे ह स्याने–दिवाने।'
तुम का गये थे खत लिखने की खातिर।'

ऊपर दिये गये उद्धरण[1] दक्खिनी हिदी के है। इस तथ्य का ध्यान मे रखते हुए कि ये सभी लेखक मुसलमान ह मुसलमानी दरबारो से सम्बधित ह तथा अरबी फारसी के साहित्यिक वातावरण से प्रभावित है इन उद्धरणो तथा इनकी कृतिया मे प्राप्त हरियानी के अय उद्धरणो का विश्लपण अधिक उपयुक्त हागा। भाषा म 'ण की प्रचुरता अपभ्रश काल से ही चली आ रही ह जिसका प्रचुर प्रयाग राजस्थानी और हरियानी मे अब भी हाना है और यह न का स्थानापन ह। उच्च हिन्दी म न का प्रयाग होता ह, जसे जाणा' क स्थान पर जाना'। भू धातु का हू म पारवतन पालि काल म ही हा चुका था। वतमान हरियानी म हू' ओर 'सू दोनो का प्रयाग प्रचलित ह। उच्च हिदी म सू का प्रयाग नही होता। ल का परिवतन हिदी की अन्य बालिया मे ड' र और 'स के रूप म उपलब्ध हाता ह। जस 'निकलना' का निकडना, निकरना, निकसना आदि, पर आदि न का 'ल म परिवतन हरियानी के कुछ शब्दो म मिलता ह, पर इनका प्रयाग कम हा गया ह जसे—लिकडना। हरियानी की न विभक्ति हिन्दी मे न' ही प्रयुक्त होती ह। हरियानी के उच्च हिदी मे परिवतन की इस प्रक्रिया मे ये तथ्य मोड की स्थिति के सूचक ह। हरियानी की शेष विशेषताओ के दशन ऊपर के उद्धरणो मे किये जा सकते ह।

परसग—

ऊपर के उद्धरणो मे कत्ता के परसग०, नै और ने मिल जाते है। कम क परसग०, कू, कु और नै, दिखाई पडते ह। कू' का प्रयोग 'को' के अथ मे कौरवी के भी सभी क्षेत्रो मे उपलब्ध नही होता। इसका प्रयोग जिला मुजफरनगर तथा मेरठ के मवाना तहसील के क्षेत्रो मे ही होता है, जो हरियाना के सलग्न क्षेत्र है। करण के–सा, ते, कने, सेत्ती और सेती मे अतिम दो हरियानी के विशेष परसग ह। सप्रदान के परसर्गो मे–की खातिर, की ल्या और 'की खात्तिर' के रूपातर 'की आसते (वास्ते)' दखिनी हिन्दी मे प्रयुक्त हुए है। अपादान मे—ते, सू, सो स, धोर ते—का प्रयोग मिलता ह। धार, धोरे, धोरे ते, का प्रयोग आज भी हरियानी मे अधिक मिलता ह। सम्बन्ध के—कर, का, किया (स्त्रीलिंग की), के, की, रा, रे, री—मे किया उल्लेखनीय ह। अधिकरण मे प्रयुक्त परसग है—मे, मै, म्याने मने, पर, पे, ऊपर आदि। इनमे मे, मै का परिर्वातत रूप है। सम्बोधन के लिए—ऐ, हो, रे, र, बे का प्रयोग हुआ है। हो और बे का प्रयोग वतमान हरियानी मे भी होता ह। शेष सम्बोधन उच्च हिदी मे भी मिलते हैं।

हरियानी मे दा कारको के परसर्गो का प्रयोग एक साथ बहुत दिखाई पडता ह, हिदी मे ऐसे प्रयोग केवल उन अव्ययो के साथ ही मिलते ह जो परसर्गो की भाति प्रयुक्त होते है। दक्खिनी हिदी मे हरियानी भाषा की प्रवत्ति के अनुसार ही–मे ते, पर सो, सात मे (साथ

१ देखिए—दखिनी हिदी काव्यधारा राहुल साकृत्यायन

म), के ऊपर, पास ते, उपराल, भीतर, बहार (बाहर) और थोरे क साथ अन्य परसग मिला कर प्रयुक्त हुए ह ।

सवनामो—म उत्तम पुरुष एक वचन क रूप–मै, मे मुज, मुजे, मुझे, मेरा तथा बहुवचन म 'हमन' मिलते ह । यह हरियानी के प्राचीन रूप म्हान ओर वतमान रूप 'हमन के लिए प्रयुक्त हुआ है । मध्यम पुरुष के—तुज, तुझ, तू , तू तुमन रूप मिलते ह । अ य पुरुष सवनाम के रूप हरियानी के अधिक समीप ह—उस, इस, सौ, यह, यो, वो (वह) ओ तथा बहुवचन रूप उन, इन, (स्त्री०) या—प्रयुक्त हुए है । तियकरूप अधिक महत्त्वपूण ह—हिन्दी इ होने, उ होने के स्थान पर इ न, उन्नै तथा इनन, उनन का प्रयाग हरियानी का ह । स्त्रीलिंग का उनो क्या भी हरियानी का ह । अ य प्रकार के सवनामो म—क्या, किस, जिस, जे, जेकर, जो, इतना, जिता (जिता) क, वा, जा, कौन, कुछ, कुच, कैसे क्योकर, काई, वै, तन (तिन) को एता (एत्ता), जिन, जेते, केतक, जँधा, तँधा, अब, कधी, कही, इधर उधर आसपास—आदि कुछ उच्च हिन्दी के, कुछ कौरवी और हरियानी दोना के और कुछ केवल हरियानी के ह ।

निषेध वाचको म—नही, न, न और ना है, जिनमे 'ना' का प्रयोग हरियानी म अधिक होता ह ।

विशेषणो मे—ऐसा, बडे बडे, बडी, लम्बी, थोडे, हरचा सभी हरियानी मे प्रयुक्त होते है पर हरचा (हरा) विशेष उल्लेखनीय है ।

सख्यावाची—एक, दो, तीन, चार, आर, छ, नौ, इग्यारा (ग्यारा), बार, बारा सत्रा, बीस, सो, सौ, हजार, दुई, दोनो, बारवी और बार सौ मे से कुछ ऊपर के उद्धरणो मे भी प्रयुक्त हुए हं । ये सभी वतमान हरियानी मे भी इसी रूप मे मिलते है ।

योजको मे—कै, तो, ज्यो त्यो, यो जिव (ज्यू), होर, ओर, बी (भी), कि आदि कुछ हिन्दी रूप ग्रहण कर चुके है, कुछ फारसी लिपि के कारण भिन्न प्रतीत होते हुए भी हरियानी के है जैसे—जिव (ज्यू) ।

क्रियापदो के रूप—कौरवी की अपेक्षा हरियानी के अधिक सदश है । वतमान रूपो मे मूल क्रिया के रूप हरियानी के ही है—

(क) जानू , मगू, मगु, बोलू , रखू , लगाऊ, पिछानू , जलू ।
(ख) जावे, माने, रहे, सके समजते ।
(ग) वार सूँ, हार सू , लग्या से ।
(घ) बोल्या हूँ, रया ह, कता हू, दिस्ती ह, दिसता, भरता (होना सहायक क्रिया से युक्त या रहित रूप) ।

इनमे से प्रथम तीन वग की क्रियाएँ हरियानी की है । चतुथ वग की क्रियाओ मे सहायक 'हू' धातु का रूप मात्र हिन्दी का ह ।

भूत काल के रूपो मे यह थोडा अन्तर भी दिखाई नही पडता । जैसे—किया, कह्या कया, कै (कहे), खुल्या, घडचा, चडी, चल्या, छुटी, झडे, जोडया, तोडया, देरया, दीखे

दिस्या, दिया, पडया, पाडया, पडे, पीये, पिछान्या पूछ्या, फुग्या बोले, बठ्या, बिछडे, भूल्या, मगे, मारा, मिले (मिल्ले), सोते (सोये पडे थे), रख्या, लग्या ल्यायी आदि।

भविष्य काल के रूपो मे भी खोलेगा, गया, जीवैगा, सिखेगा, हगो, आदि हरियानी के उपलब्ध होते है।

सभाव्य—करते, होता दिस, तथा आज्ञा रूप कर, करो, काट, काड, खोल, छोड जाओ, जानो, जाल, (डाल), तोड, देख, पछाना, पिछान, बोलो समज, सुनो और विध्यथ जाय, टाल्या जावे, देके (देखे) सभाले आदि रूप विशुद्ध हरियानी है।

वाक्य विन्यास और वाक्य रचना की प्रक्रिया हि दी, कौरवी और हरियानी मे एक समान है। कौरवी मे बहुवचन बनाने की रीति हिन्दी के समान ह। बहुवचन शब्द एकारा त या ओकारा त होते है। हरियानी के बहुवचन रूप आकारा त या आकारान्त होते है। दक्खिनी हिन्दी की प्रक्रिया हरियानी के सदश है कौरवी के सदश नही। निम्नलिखित शब्द द्रष्टव्य ह—आँख—आख्या, उसासा, चिंगिया, गोतिया, जलेब्या, दुनिया दुन्या, दावा, यामता नाजुकिया, पेचा, पुतली-पुत्ल्या, बाता, बिजल्या, बेता, बुस्ता, मोत्या, रीता, लोक लोग, लोका लोगा, स्वाद भरिया, सख्या, सहेल्या, हिकायता, हारा आदि।

लुप्त विभक्तिक पदो के प्रयोग भी हरियानी के सदृश है। जैसे—इसी साथ (इसी के साथ), किसी (किसी ने) आदि।

उपसर्गो—मे 'बे' का प्रयोग जितना हरियानी ने अपनाया है, उतना उच्च हि दी ने नही। दक्खिनी हिन्दी मे ता अरबी फारसी पदावली के कारण इसका प्रयोग अधिक हुआ ही ह।

हरियानी की महाप्राण ध्वनिया—रह, ल्ह, कह, ळह, व्ह, न्ह, ण्ह, म्ह—है। ल्ह और और रह का प्रचुर प्रयोग दक्खिनी हि दी मे मिलता है। दो से अधिक स्वरा के साथ-साथ पथक प्रयोग भी हरियानी और दक्खिनी हिन्दी मे समान ह, जैसे—आइया, पाइया, भरिया, उडाऊँ आदि।

शब्द भण्डार—की दष्टि से हरियानी और दक्खिनी हि दी मे प्रवत्ति भेद के कारण भिन्नता है। एक जनभाषा है और दूसरी का झुकाव अरबी-फारसी के शब्द चयन की ओर अधिक है, फिर भी ऐसे शब्दो की विस्तत सूची प्रस्तुत की जा सकती है जिनका प्रयोग दोनो में उपलब्ध हो जाता है—

अकास, अँधारे, आसान, अनभी, आधे, आशिक, आच, आग, अकल, अजब, अधिक, इलाके, इश्क उचक्के, ऊँट, एकट, ऐब, ऐश, औरत, कमर कोठरी, ख्याल, खियाल, ख्वास्त ग्यान, ग्यानी, ग्वाही, गफलत, चख, चोर, चोरी, चुरात्ता, चतुर, चौधर, चौधेर, चदरमुख, छाच, छबीला, जीव (जी), जोडा, जोड, जागा (जगह), जमाने, जीवा, जवा, ज्वान, ज्वाब, ज्वानी, जोबन, जफा, झाड, झूट, झजर, टुक, ठा, ठार ठार, ठाट-ठाट, थड, डख, डोरी, डूगर, तन, तख्त, तोता, ताड, धुद, घाता, दद, दीवा, दिवाने, नजर, नजीक, निपट, निबल, नवे, निछल, निशा, पर्वा, बेपर्वा, पर्दा फसाद, फज द, फिकर, पिरित, परान, बोल,

बाज, बाम, बाग, बगबर, बेटी बेट्टा, बुढा ढाढा, बारी, बुलबुल, बरस, भीत, भँवर, भात, भरी, मुश्किल, मद, मस्ती, मती, मा बाप, मुसाफिर, मू, यकायक, यरत, यकेला, यार, रगे रग, राज, बजा (बजह), बजे (भले), स्याने, मरत, सर, सारगा, मच, ससरी, सु ना (सोना), सुगउ, शौ (शौहर), नाग पान, हासिल, हाजिर, हात (हात) हग्याली, हाली, हाल, हरामखारी, हिन्दी आदि सज्ञार्थक प्रयुक्त क्रिया रूप—होना, खेलन, पतियाना, पोचाने, समान है। पूर्वकालिक क्रिया क रूप 'क' और कर' के साथ भी प्रयुक्त हुए ह और इनके बिना भी, जसे—जाकै, काड कर, दे बाली, आन, सुन, काड, मार मार, ढढती, ल्याकर आदि। ये प्रयोग हरियानी और दक्खिनी हि दी मे एक समान ह।

सयुक्त क्रियाओ के रूप मे सर्वाधिक साम्य ह—काड ल्याया था, ल्या मिलाया था, कना समाया (कहना पल्ले पडा), सो रह्या, पडया था, खोल देखन लग्या, तोढ खाया, पिरोने लग्या, दौढ चल्या, सभाल्या जाये आदि।

कानधर, दगदगे मे पाड, (स देह मे डालना), के पडे ह, ल्हा मरा, ढूढ काडू, चड बैठा हैं, प्यास भूक सुटया, आखे खोल देखे, दौड चल्या, रन पडया, रगडा हुआ, हँस वडया, छद बद, स्याने दिवाने—जसे हरियानी के लाक्षणिक प्रयोग भी दक्खिनी हि दी मे मिलते हैं।

ऊपर गद्य पद्य दोनो के उद्धरण दिये गये ह। पद्यात्मक उद्धरणो का अ वय करके या उ हे गद्य रूप दे कर पढने से वर्तमान हरियानी के साथ उनका सादृश्य और अधिक स्पष्ट हो जायेगा। जो अन्तर दिखाई पडते है, वे काल भेद के कारण प्रतीत होते हैं। और अधिक अनुसधान के लिए उद्धृत कवियो की रचनाओ का गम्भीर एव भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन अपेक्षित ह। हि दी के वर्तमान रूप के विशेषत दक्खिनी हि दी के निर्माण के आधार रूप मे हरियानी का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।



हरियाणा के आधुनिक संस्कृत साहित्यकार

सत्यव्रत शास्त्री

अनेक शताब्दियो से मौलिक सस्कृत साहित्य की सजना भारत मे हाती है। अनेक कवियो, लेखको व गवेषको ने इस पवित्र भूमि का अलकृत किया ह। हरियाणा की भूमि तो इस दिशा से और भी उवर रही है। इसी के परमपावन कुरुजागल प्रदेश एव सरस्वती और दषद्वती नदियो के बीच बमे ब्रह्मावत मे सृष्टि के प्रथम चरण म नाना ऋषियो की ऋचाएँ उच्चरित हुई है उनके आश्रमो मे ऋषिकण्ठा से उदगीत वेदम त्रो से दिशाए अनुनादित हुइ है, यज्ञकुण्डो से उदगत धूम ने नभोमण्डल को आच्छादित किया ह। न जाने कितने ऋपिया, महर्षियो, सन्तो, महात्माआ व समाज सुधारका की यह साधना भूमि रही है।

समय सदा एक सा नही रहता। साधना भूमि युद्ध भूमि मे परिणत हुई। तप प्रवत्ति मे विघ्न पडा, चिन्तन की गति अवरुद्ध हुई, मानस-म थन को भला अब अवकाश कहा! शस्त्र खनखनाए, घोडो की टापे गूँजी, योद्धाओ की ललकार सुनाई दी और दिनो, सप्ताहो और महीनो युद्ध चला। रक्त की नदी बह चली और उसी मे ही बह गई तप साधना और साहित्य सृष्टि।

समय फिर बदला। उसके बदलते ही तप साधना और साहित्य सष्टि पुन लौट आई। यही है सक्षेप मे हरियाणा की साहित्यिक गतिविधि का इतिहास--रुकता, ठिठकता, बल खाता इतिहास।

साहित्य सष्टि के लौटते ही इस देश की आदि भाषा सस्कृत मे भी ग्रन्थ रचना होने लगी। गत शताब्दी के अन्तिम अथवा वतमान के प्रथम चरण मे सस्कृत मे जो नवीन साहित्य धारा प्रवाहित होनी प्रारम्भ हुई सो अब तक चली आ रही ह। अनेक साहित्यस्रष्टाओ ने अपने साहित्य जल से इसे समृद्ध किया ह।

इन साहित्यस्रष्टाओ मे विशेष उल्लेखनीय है भिवानी के स्वर्गीय विद्यामातण्ड पण्डित सीताराम शास्त्री जिनका वैदुष्य दूर दूर तक विख्यात ह। इनकी सर्वाधिक महत्त्वपूण कृति ह यास्क कृत निरुक्त की सरल एव सुबोध शैली मे हिन्दी मे व्याख्या। यह व्याख्या तीन खण्डो मे प्रकाशित हुई ह। द्वितीय खण्ड के आदि मे विस्तत भूमिका भी है जिसमे निरुक्त सम्ब धी प्रश्नो पर गहन विचार किया गया है। पण्डितजी की निरुक्त की इस व्याख्या का विद्वत्समाज मे बहुत स्वागत हुआ है।

पण्डित जी ने हिन्दी मे श्रीमदभगवदगीता की एक भक्तिप्रधान व्याख्या भी लिखी है, जिसका शीषक उन्होने श्रीगीताभगवदभक्तिमीमासा दिया ह। ग्रन्थ की भूमिका मे उन्होने लिखा है—"इस सम्पूर्ण गीता शास्त्र मे सब स्थानो मे उस एक भक्ति-तत्त्व का ही प्राधान्य से उपदेश है। इससे हम यही निणय करते है कि यह गीता श्रीमदभगवदभक्तिगीता ही है।"

इन पक्तियो मे उन्होने अपना मत स्पष्ट कर दिया है। उनकी दृष्टि मे श्रीमदभगवदगीता श्रीमदभगवदभक्तिगीता ही है।

पण्डितजी ने साहित्यशास्त्र पर दो ग्रन्थ भी लिखे हैं। एक साहित्योद्देश नाम से सस्कृत मे प्रतिपादित सिद्धा तो की हिन्दी मे सविस्तर व्याख्या प्रस्तुत करता ह। साहित्योद्देश के निर्माण मे विद्यार्थियो को सरल से सरल उपाय द्वारा साहित्यशास्त्र का ज्ञान कराना पण्डितजी का प्रेरक रहा है। ग्र थ के प्रारम्भ मे दिये गये चार श्लोको म उन्होने इस अभिप्राय को स्पष्ट भी कर दिया ह। उन्होने कहा है—

त्वरया पारमिच्छूना गन्तु भिन्नाथभासिनाम।
शास्त्राब्धीनामनायास छात्राणा गृहगामिनाम॥
कीदडिनब धसडधाना निर्माण - कायमद्धये।
कालेऽन्तरायसङ्कीर्णे विदवदिभरुपकारिभि॥
तन्निदशनमेत मे पण्डिताना समहणम।

ग्र थ मे कतिपय मानचित्र भी दिये गये है जिनसे विद्यार्थी को विषय सुगमता से समझ मे आ सकता है और उसे स्मरण रखने मे भी सहायता मिल सकती है। शास्त्री जी ने साहित्य शास्त्रीय सिद्धान्तो का प्रतिपादन काव्यप्रकाश, साहित्यदपण एव दशरूपक इन सुप्र सिद्ध साहित्यशास्त्रीय ग्र थो के आधार पर किया ह। पण्डितजी ने इन सभी ग्र थो से सहायता ली है। इतने अश में उनके ग्रन्थो मे मौलिकता नही है। उनकी विशेष मौलिकता है विषयो के वर्गीकरण मे एवच मानचित्रादि के माध्यम से उनके स्पष्टीकरण मे। अपने ग्र थ (साहि त्योद्दे श) को पण्डित जी ने तीन भागो मे विभक्त किया है—प्रथम पदार्थोद्देश मे काव्य, शब्द, अथ, वत्ति आदि त्रयोदश काव्य शास्त्रीय पदार्थो का निरूपण है, द्वितीय काव्यभेद मे साहित्य दपण के षष्ठ परिच्छेद के अनुसार दश्य और श्रव्य काव्यो का बणन है, ततीय नाटयपदार्थाव भास मे दशरूपक के अनुसार नाटयपदार्थो का वणन है। ग्र थ के अ त मे कतिपय परिशिष्ट दिये गये है जिनसे इसकी उपयोगिता बहुत बढ गई ह।

पण्डित जी ने साख्यदशन की हिन्दी मे एक व्यारया भी लिखी ह जो कि विषय के स्पष्टीकरण की दष्टि से बेजोड है। पण्डितजी वेद के भी ममज्ञ विद्वान थे (यद्यपि इस दिशा मे लिखा उ होने विशेष नही है)। नाना विषयो मे उनकी गति थी। उनकी अगाध विद्वत्ता से अभिभूत हो कर ही महामहोपाध्याय पण्डित छज्जूराम शास्त्री ने उनके विषय मे कहा था—

'लोके प्रसिद्धनामा सीमाऽऽचारस्य वेदममज्ञ।
जयति भिवानीधामा सीतारामाभिघ शास्त्री॥'[1]

तहसील जीद के रिटोली ग्राम के उपरिनिर्दिष्ट महामहोपाध्याय पण्डित छज्जूराम शास्त्री विद्यासागर स्वय भी बहुत बडे सस्कृत साहित्यकार है। साहित्य की विभि न विधाओ मे इन्होने रचनाएँ लिखी ह। ये नयायिक भी है और कवि भी। अपने व्यक्तित्व मे इन दो विभि न तत्त्वो के सम्मिश्रण से उत्पन्न विलक्षणता के प्रति ये जागरूक है। दुर्गाभ्युदय नाटक मे अपनी यह विलक्षणता इन्होने इन शब्दो में व्यक्त की है—

१ साहित्यबिन्दु, ततीय बिन्दु, पष्ठ १००।

ककशे तकविषये कोमले काव्यवस्तुनि ।
सम लीलायते यस्य छज्जूरामस्य भारती ॥[1]

"जिस छज्जूराम की वाणी तक के ककश विषय मे एवच मनोहर काव्य रचना मे एक समान क्रीडा करती है ।"

पण्डित जी की सबसे पहली रचना पचसर्गात्मक सुलतानचरितम नामक एक काव्य थी जो कि पण्डित जी ने स्वय देहरादून से सवत १९६७ मे प्रकाशित की थी। इस काव्य मे चित्तौडगढ के राजा महेन्द्रपाल के पुत्र महीपाल की कथा वर्णित ह। महीपाल का एक दूसरा नाम सुरतान भी था। इसी सुरतान का उच्चारण ही बदलते बदलते सुलतान हो गया था। इस सुलतानचरितम् का सस्करण कभी का समाप्त हो चुका ह। अब यह ग्रन्थ दुलभ ग्रथो की कोटि मे है। इसके बाद की पण्डित जी की रचना ह सात अको का दुर्गाभ्युदय नाटक। इसमे भगवती दुर्गा के महिषासुर के साथ सग्राम एव उसके वध के पौराणिक कथानक का वणन ह। पण्डित जी ने छज्जूरामायणम् नामक एक अ य नाटक भी लिखा है जो कि अद्यावधि अप्रकाशित ह। शास्त्रीय ग्रन्था मे विशेष उल्लेखनीय है पडित जी का अलकार शास्त्र का ग्रथ साहित्यबिन्दु जिसका प्रमुख उद्देश्य ह छात्रो को सरल रीति से साहित्य शास्त्र का ज्ञान कराना, अलकारादि के भेद प्रभेदा की उलझन से बचाना, परिष्कृत सस्कृत द्वारा वाद-युग की प्राचीन पद्धति मे प्रवत्त कराना एवच साहित्य शास्त्र को प्रौढ विद्या न मानने वाले मत का निराकरण करते हुए उसे (साहित्य शास्त्र को) सब शास्त्रो का सार सिद्ध करना। इस ग्रन्थ की विशेषता को पण्डित जी के सुपुत्र श्री जीवनराम शास्त्री ने इन शब्दो मे व्यक्त किया है—"यद्यपि यह ग्रन्थ अल्पकाय है तथापि काव्यशास्त्रवत नाटकादि भेदो से विरहित नही, साहित्यदपणवत विषयविवेचनादरिद्र नही, प्रमेयाश को परिष्कृत करता हुआ भी रसगगाधरवत दुष्प्रधष्य नही, अलकारकौस्तुभवत अनुपयुक्त विस्तार-बहुल नही, च द्रालोकसाहित्यसारवत केवल पद्यबद्ध नही ।" इस ग्र थ की एक यह भी विशेषता है कि इसमे नव्वे प्रतिशत उदाहरण ग्र थकार के ही है। पण्डितजी के जो ग्र थ अद्यावधि अप्रकाशित है उनसे भी इसमे उदाहरण है। यथा मुनिविषयक प्रीति के उदाहरण के प्रसग मे छज्जूरामायण से निम्नलिखित श्लोक यहा उद्धत किया गया है—

श्रवणाञ्जलिपुटपय चक्रे रामायणाख्यममृत य ।
मुनिवय कविधुय व दे वाल्मीकिं भक्त्या ॥[2]

"मै कविशिरोमणि मुनिवर श्रीवाल्मीकि को भक्तिपूवक प्रणाम करता हूँ जि होने श्रोत्राञ्जलिपुट द्वारा पातव्य रामायण नाम के अमत की सृष्टि की थी ।"

इस प्रकार सुलतानचरित काव्य से जो सम्प्रति सुतरा दुलभ ह निम्नलिखित श्लोक विप्रलम्भ शृगार के उदाहरण के प्रसग मे प्रस्तुत ग्र थ म पाया जाता ह। इस श्लोक मे सुलतान की रानी निहालीदेवी उससे कहती है—

१ अङ्क १, श्लोक २, पष्ठ ३ ।
२ द्वितीय बि दु, पृष्ठ ८५

इन पक्तियो मे उन्होने अपना मत स्पष्ट कर दिया है। उनकी दष्टि मे श्रीमदभगवदगीता श्रीमदभगवदभक्तिगीता ही है।

पण्डितजी ने साहित्यशास्त्र पर दो ग्रन्थ भी लिखे हैं। एक साहित्योद्देश नाम से सस्कृत मे प्रतिपादित सिद्धातो की हिन्दी मे सविस्तर व्याख्या प्रस्तुत करता ह। साहित्योद्देश के निर्माण मे विद्यार्थियो को सरल से सरल उपाय द्वारा साहित्यशास्त्र का ज्ञान कराना पण्डितजी का प्रेरक रहा ह। ग्र थ के प्रारम्भ म दिये गये चार श्लोको मे उन्होने इस अभिप्राय को स्पष्ट भी कर दिया ह। उन्होने कहा ह—

त्वरया पारमिच्छूना गन्तु भिन्नाथभासिनाम।
शास्त्राब्धीनामनायास छात्राणा गृहगामिनाम॥
कीदडिनब धसडधाना निर्माण - कायमद्धये।
कालेऽन्तरायसङ्कीर्णे विद्वदिभरुपकारिभि॥
तन्निदशनमेत मे पण्डिताना समहृणम।

ग्र थ मे कतिपय मानचित्र भी दिये गये हैं जिनसे विद्यार्थी को विषय सुगमता से समझ मे आ सकता है और उसे स्मरण रखने मे भी सहायता मिल सकती है। शास्त्री जी ने साहित्य शास्त्रीय सिद्धान्तो का प्रतिपादन काव्यप्रकाश, साहित्यदपण एव दशरूपक इन सुप्र सिद्ध साहित्यशास्त्रीय ग्र थो के आधार पर किया ह। पण्डितजी ने इन सभी ग्र थो से सहायता ली हैं। इतने अश मे उनके ग्रन्थो मे मौलिकता नही है। उनकी विशेष मौलिकता है विषयो के वर्गीकरण में एवच मानचित्रादि के माध्यम से उनके स्पष्टीकरण मे। अपने ग्र थ (साहि त्योद्देश) को पण्डित जी ने तीन भागो मे विभक्त किया ह—प्रथम पदार्थोद्देश मे काव्य, शब्द, अथ, वृत्ति आदि त्रयोदश काव्य शास्त्रीय पदार्थो का निरूपण है, द्वितीय काव्यभेद मे साहित्य दपण के षष्ठ परिच्छेद के अनुसार दश्य और श्रव्य काव्यो का वणन है ततीय नाटयपदार्थवि भाग में दशरूपक के अनुसार नाटयपदार्थो का वणन है। ग्र थ के अ त मे कतिपय परिशिष्ट दिये गये हैं जिनसे इसकी उपयोगिता बहुत बढ गई ह।

पण्डित जी ने साख्यदशन की हिन्दी मे एक व्याख्या भी लिखी ह जो कि विषय के स्पष्टीकरण की दष्टि से बेजोड है। पण्डितजी वेद के भी ममज्ञ विद्वान थे (यद्यपि इस दिशा मे लिखा उन्होने विशेष नही है)। नाना विषयो मे उनकी गति थी। उनकी अगाध विद्वत्ता से अभिभूत हो कर ही महामहोपाध्याय पण्डित छज्जूराम शास्त्री ने उनके विषय मे कहा था—

'लोके प्रसिद्धनामा सीमाऽऽचारस्य वेदममज्ञ।
जयति भिवानीधामा सीतारामाभिध शास्त्री॥'[1]

तहसील जीद के रिटोली ग्राम के उपरिनिर्दिष्ट महामहोपाध्याय पण्डित छज्जूराम शास्त्री विद्यासागर स्वय भी बहुत बडे सस्कृत साहित्यकार है। साहित्य की विभि न विधाओ मे इहोने रचनाएँ लिखी हैं। ये नैयायिक भी है और कवि भी। अपने व्यक्तित्व मे इन दो विभि न तत्त्वो के सम्मिश्रण से उत्पन्न विलक्षणता के प्रति ये जागरूक है। दुर्गाभ्युदय नाटक मे अपनी यह विलक्षणता इन्होने इन शब्दो मे व्यक्त की है—

१ साहित्यबिन्दु, तृतीय बि दु, पष्ठ १००।

ककशे तकविषये कोमले काव्यवस्तुनि ।
सम लीलायते यस्य छज्जूरामस्य भारती ॥[1]

"जिस छज्जूराम की वाणी तक के ककश विषय मे एवच मनोहर काव्य रचना मे एक समान क्रीडा करती है ।"

पण्डित जी की सबसे पहली रचना पचसर्गात्मक सुलतानचरितम नामक एक काव्य थी जो कि पण्डित जी ने स्वय देहरादून से सवत १९६७ मे प्रकाशित की थी । इस काव्य मे चित्तौडगढ के राजा महेद्रपाल के पुत्र महीपाल की कथा वर्णित ह । महीपाल का एक दूसरा नाम सुरतान भी था । इसी सुरतान का उच्चारण ही बदलते बदलते सुलतान हो गया था । इस सुलतानचरितम् का सस्करण कभी का समाप्त हो चुका ह । अब यह ग्रन्थ दुलभ ग्रथो की कोटि मे है । इसके बाद की पण्डित जी की रचना है सात अको का दुर्गाभ्युदय नाटक । इसमे भगवती दुर्गा के महिषासुर के साथ सग्राम एव उसके वध के पौराणिक कथानक का वणन है । पण्डित जी ने छज्जूरामायणम् नामक एक अय नाटक भी लिखा है जो कि अद्यावधि अप्रकाशित ह । शास्त्रीय ग्रन्थो मे विशेष उल्लेखनीय है पडित जी का अलकार शास्त्र का ग्रथ साहित्यबिन्दु जिसका प्रमुख उद्देश्य ह छात्रो को सरल रीति से साहित्य शास्त्र का ज्ञान कराना, अलकारादि के भेद प्रभेदो की उलझन से बचाना, परिष्कृत सस्कृत द्वारा वाद-युग की प्राचीन पद्धति मे प्रवत्त कराना एवच साहित्य शास्त्र को प्रौढ विद्या न मानने वाले मत का निराकरण करते हुए उसे (साहित्य शास्त्र को) सब शास्त्रो का सार सिद्ध करना । इस ग्रन्थ की विशेषता को पण्डित जी के सुपुत्र श्री जीवनराम शास्त्री ने इन शब्दा मे व्यक्त किया ह— "यद्यपि यह ग्रन्थ अल्पकाय है तथापि काव्यशास्त्रवत नाटकादि भेदो से विरहित नही, साहित्यदपणवत विषयविवेचनादरिद्र नही प्रमेयाश को परिष्कृत करता हुआ भी रसगगाधरवत दुष्प्रधष्य नही, अलकारकौस्तुभवत अनुपयुक्त विस्तार बहुल नही, च द्रालोकसाहित्यसारवत केवल पद्यबद्ध नही ।" इस ग्र थ की एक यह भी विशेषता है कि इसमे नव्वे प्रतिशत उदाहरण ग्र थकार के ही है । पण्डितजी के जो ग्र थ अद्यावधि अप्रकाशित ह उनसे भी इसमे उदाहरण हैं । यथा मुनिविषयक प्रीति के उदाहरण के प्रसग मे छज्जूरामायण से निम्नलिखित श्लोक यहा उद्धत किया गया है—

श्रवणाञ्जलिपुटपय चक्रे रामायणाख्यममत य ।
मुनिवय कविधुय वन्दे वाल्मीकिं भक्त्या ॥[2]

'मै कविशिरोमणि मुनिवर श्रीवाल्मीकि को भक्तिपूवक प्रणाम करता हूँ जिहाने श्रोत्राञ्जलिपुट द्वारा पातव्य रामायण नाम के अमत की सृष्टि की थी ।"

इस प्रकार सुलतानचरित काव्य से जो सम्प्रति सुतरा दुलभ ह निम्नलिखित श्लोक विप्रलम्भ श्रृगार के उदाहरण के प्रसग मे प्रस्तुत ग्र थ म पाया जाता ह । इस श्लोक मे सुलतान की रानी निहालीदेवी उससे कहती ह—

१ अङ्क १, श्लोक २, पष्ठ ३ ।

२ द्वितीय बि दु, पृष्ट ८५

अभिनयनयने निमीलिताक्ष
कृतकसमाविरय तव प्रतीत ।
अलमलघुतयाऽत्र मामनङ्ग
ज्वरदवधु स्वत्रू कुरुष्व कण्ठे ।।[1]

'हे व्यय ह्टी नयनो को मीचे हाग भद्र पुरुप, यह तेरी कपटसमाधि ह यह मै जानती ह । दर मत करो । मुझ कामज्वरोपतप्त अपनी पत्नी को तुम गले लगाओ ।"

साहित्यबिन्दु विशेपत उल्लेखनीय इसलिये भी ह कि इसमे पण्डित जी ने एक विशेप प्रयोग किया ह । उन्होने सभी के सभी काव्य दोपा के उदाहरण अकेले श्रीहष कृत नपधीयचरित से ही दिखा दिये ह । इसमे उन्हे प्रेरणा उस किंवदन्ती से मिली ह जिसके अनुसार श्रीमम्मट ने श्रीहष के नपधीयचरित को अनेकदोपदूषित बताया था । उनका कहना है कि नैपध जिसे कि विद्वदौपध कहा गया ह, ही सवाधिक दोपयुक्त एवच गुणयुक्त काव्य सस्कृत वाङमय मे है—

काव्यस्य गुणदोपाणामाकर कथयते बुधै ।
नषध तत्र तेऽस्माभि प्रदश्य ते यथामति ।।[2]

पण्डित जी के कतिपय अन्य लघु ग्रन्थ भी ह जिनमे कुरुक्षेत्रमाहात्म्यम् और कर्मकाण्डपद्धति का उल्लेख किया जा सकता ह ।

पण्डित जी ने सस्कृत वाङमय के कतिपय प्रमुख ग्रन्थो पर टीकाएँ भी रची है जिसमें विशेष उल्लेखनाय है न्यायसिद्धान्तमुक्तावली पर मूलचन्द्रिका, न्यायदशन पर सरला, वेदान्त सार पर सारबोधिनी, महाभाष्य प्रथम आह्निकद्वय पर परीक्षा, निरुक्त के पाच अध्यायो पर सारबोधिनी, लघुसिद्धान्त कौमुदी पर साधना काव्यप्रकाश पर परीक्षा अथवा विद्यासागरी । कुछ समय पूव ही पण्डित जी की एक अन्य रचना प्रकाशित हुई ह—विबुधरत्नावली । श्लोको मे निबद्ध सस्कृत साहित्य का यह इदम्प्रथम इतिहास ह । पण्डित जी ने इसे आठ अध्यायो मे विभक्त किया है । विषय का अति सक्षेप मे इसम निरूपण ह । यद्यपि लेखक का कहना ह कि उन्होने वैदिक वाङमय के इतिहास का इसमे निरूपण किया ह तो भी इसे इतिहास तो नाममात्र मे ही कहा जा सकता है । बहुत अशो मे तो यह सस्कृत वाङ्मय के प्रमुख ग्रन्थो का सूचीपत्र मात्र ही है । उदाहरणाथ सस्कृत नाटको के इतिहास के प्रसग मे ग्रन्थकार ने कतिपय नाटको एव उनके लेखको के उल्लेख भर करने मे अपने कतव्य की इतिश्री समझ ली ह—

कुन्दमाला धीरनाग क्षेमेश चण्डकौशिकम् ।
व्यधुस्तथा शङखधर कविलटकमेलाकम ।।
बालरामायण बालभारत राजशेखर ।
विद्धशालभञ्जिका च कृतवान कविशेखर ।।[3]

१ द्वितीय बिन्दु, पष्ठ ६७
२ तृतीय बिन्दु पष्ठ ९१ (टीका)
३ अध्याय ६, श्लोक ४८–४९.

इस प्रकार एक ही श्लोक मे अनेक साहित्यकारो और उनका कृतिया का उल्लेख लेखक ने किया ह । प्रख्याततम साहित्यकारा के लिये उन्होने एक या कभी कभी दो श्लाको का भी उपयोग किया ह । उनमे पहिले मे कवि और उसकी कृतिया का उल्लेख ह जबकि दूसरे मे काव्यात्मक ढग से उसपर टिप्पणी ह जिसम भाषा सौष्ठव भी ह और यमकादि अलकार का पुट भी । उदाहरण के लिये सुप्रसिद्ध नाटककार श्रीहर्ष का उल्लेख करते हुए पण्डित जी कहते है—

नागानन्द हर्षदेव स्थाणवीश्वरमहीपति ।
रत्नावली च कृतवान तथैव प्रियदर्शिकाम ।।
कारण हि कवित्वस्य न ब्रह्मकुलसम्भव ।
क्षत्रिया अपि हर्षाद्या कस्य हर्षाय नाभवन ।।

यहा हर्षाद्या कस्य हर्षाय नाभवन म अवश्यमेव चमत्कार ह । इसी प्रकार का चमत्कार है पण्डित जी द्वारा बाण की वाणी के गैवाणी स्त्री कहने मे—

हर्षदेवसभारत्न गद्यकाव्यमहाकवि ।
बाण कादम्बरी चक्रे तथा हर्षचरित्रकम ।।
अलौकिक कविबाण सोऽपि काविदसत्तमा ।
गर्वाणी स्त्रीव यद्वाणी सवस्य हरते मन ।।

पण्डित जी ने प्रत्यक्षाज्यौतिषम् नाम से ज्योतिष पर भी एक ग्र थ लिखा है जो कि अद्यावधि अप्रकाशित है ।

काव्यो मे पण्डितजी की नूतनतम कृति ह—द्वादशसर्गात्मक परशुरामदिग्विजय महाकाव्य । भगवान के दशावतारो मे परशुराम षष्ठ अवतार ह । जबकि मत्स्य, कूर्मादि अ य अवतारो का पुराणादि म सविस्तर वणन ह, भगवान परशुराम का ब्रह्मववत, ब्रह्माण्डादि पुराणो मे अति सक्षिप्त वणन ह । उन सभी पुराणो से उपलब्ध सामग्री को एकत्रित कर पण्डित जी ने प्रस्तुत महाकाव्य मे उपस्थापित किया ह । भगवान परशुराम जी का समस्त वणन प्रामाणिक है, कल्पित नही ह । इसे ग्रन्थकार ने स्वय उदघोषित किया है—

यत किमप्यत्र वत्त तत्प्रमाणित न कल्पितम ।

पर यह ग्र थ केवल इतिवृत्त ही नही है महाकाव्य भी ह । इसलिये काव्य की आवश्यकताओ के अनुसार इसमे (परशुराम के कथानक मे) कही कही कुछ परिवतन करना भी आवश्यक हो गया—

पुराणवत्त सक्षिप्य परिवतय च किञ्चन ।
चरित परशुरामस्य लिखित कृतिना कृते ।।

पर इससे ग्र थ की शोभा बढी ही है, घटी नही—

यत्किञ्चिदपि नूत्नत्व भूषण तन्न दूषणम ।

ग्र थकार का यह चौदहवा ग्रन्थ है । इसीलिये प्रत्येक सग के अन्त के पद्य मे उसने इसे त्रयोदश प्रबन्धो का भ्राता कहा है—

त्रयोदशप्रब धाना भ्रातु चैतस्य काव्यस्य ।

समस्त महाकाव्य एक ही छ द, अनु ुभ मे लिखा गया ह यहा तक कि सर्गान्त मे भी छ द नही बदला ह । अनु ुभ पण्डित जी का परमप्रिय छन्द ह । काव्य के प्रारम्भ मे प्राक्कथन म पडित जी के सुपत्र श्री जीवनराम शास्त्री ने कविरत्न अखिलान द जी के एक पद्य को उद्ध त करते हुए पडित जी क अनुष्टुभ वत्त म नपुण्य का उल्लेख किया ह और कहा है कि अमर कवि कालिदास, कवि अभिनद और छज्जूराम अनुष्टुभ छन्द मे तो निपुण ह पर अ य छ दा म कृपण ह—

कविरमर कालिदास कविरमिन दश्च छज्जुरामश्च ।
वत्तेऽनुप्टुभि निपुणा कृपणा अ येषु वृत्तेषु ॥

समूचे काव्य मे कुल मिलाकर ६२१ पद्य हैं। शैली सरल एव सरस ह। मगलाचरण, ग्रन्थकार परिचयादि के बाद पचम श्लोक से काव्य-कथानक प्रारम्भ होता ह । इसी पचम श्लाक से हो काव्यच्छटा का आस्वादन होने लगता ह। माहिष्मती नगरी का वणन इसमे कवि ने किया है—

पुरन्दरपुरस्पर्धि यभवद भूमिभूषणम ।
माहिष्मतीति नगरो शमदानमदान्तिके ॥

'इन्द्र की नगरी की स्पर्धा करने वाली, पथ्वी की अलकारभूत माहिष्मती नाम की नगरी कल्याणदा नमदा नदी के किनारे स्थित थी ।'

इस मनोरम शली मे जो कथानक प्रारम्भ होता है तो अन्त तक इसी मे चलता जाता है। कवि की कोमलकान्त पदावली काव्य को चार चाद लगा देती।

इतने विशाल सस्कृत वाडमय के रचयिता पडित जी लेखनी के घनी है, यह कहने की आवश्यकता नही। सस्कृत भाषा पर आपका असाधारण अधिकार है। पदशय्या मनमोहक है। अनुप्रास एव यमक का पुट उसमे अनायास ही आ जाता ह। पडित जी अपनी रचना के इस गुण को पहचानते ह। इसीलिये इन्होने यह गर्वोक्ति की है—

अनुप्रासिनि सन्दर्भे छज्जूरामसमोऽद्य क ।
पुराप्यास न चेदासन् द्वित्रा एव कवीश्वरा ॥[1]

"अनुप्रासयुक्त रचना मे छज्जूराम के बराबर आज कौन ह ? पहिले भी शायद कोई कवि शिरोमणि रहे होगे और यदि रहे भी हो तो शायद दो तीन ही रहे होगे।"

पडित जी की रचना मे कही कही तो अनुप्रास की झडी सी लग जाती ह। उदाहरण के लिये दो स दभ नीचे उपस्थित किये जा रहे ह—

(क) अस्ति काचन सवजनतोषा अपरेव ।
सितपक्षदोषा स्त्रीमात्रकान्तिमोषा योषा ।[2]

(ख) भगवतीशुम्भयो सिंहनाद श्रुत्वा
समभितानेकमातडगकुरडगेहयक्षत्रक्ष

1 दुर्गाभ्युदय, अङ्क १, पष्ठ ४
2 वही, अङ्क ५, पष्ठ ४९

शृगालकोलकोलाहलाहूतपूतवेताल-
चक्रवालकठनालप्रकटीभवद्घोरचीत्कार
चमत्कारयुक्तेय समरभूमिरवलोक्यते ।
तयोरेव सक्रोधपादन्यासप्रभूतकम्पेन
च सालरसालप्रियालतमालहिन्तालसुर
दारकोविदारकर्णिकारनिम्बकदम्ब-
बकुलनिचुलकपूरबीजपुरमधूकव धूक
कपित्थाश्वत्थवृक्षा परिपतन्ति ।[१]

उत्प्रेक्षादि अर्थालकारो के प्रयोग मे भी उनकी असाधारण निपुणता है। मास के एक पक्ष मे चन्द्रमा बढता है और दूसरे मे घटता है, इस वैज्ञानिक तथ्य पर अपनी कल्पना शक्ति को आधारित करते हुए उन्होने कहा है—

इम कर्तु चन्द्रमस तद्वक्त्रसदश विधि ।
पक्षद्वितयभेदेन करोति विकराति च ॥[२]

"विधाता इस चन्द्रमा को उसके (देवी के) मुख के सदश बनाना चाहते थे। इस लिए कभी उसे बनाते है, कभी बिगाडते है, एक पक्ष मे बनाते है और (फिर जब पाते है कि वह अच्छा नही बना) तो दूसरे पक्ष मे उसे मिटाते है। इसी प्रकार उसे बनाते और मिटाते रहते है।" (पर कभी वह वैसा बन पाया है क्या ?)

पण्डित जी ने अपनी कृतियो के पद्यो के बारे मे ठीक ही कहा है—

छज्जूरामकृतौ नक स श्लोक परिदश्यते ।
अल्पानल्पाथवा काचिद्यत्र नैव चमत्कृति ॥[3]

"छज्जूराम की रचनाओ मे एक भी ऐसा श्लोक नही है जिसमे थोडा बहुत चमत्कार नही है।"

कवि अपने बारे मे अनेक बार गर्वोक्ति करते है। ऊपर उनकी दो एक गर्वोक्तिया उद्धृत भी की जा चुकी है। सम्भवत इस दिशा मे वे मध्ययुगीन सुप्रसिद्ध कवि एव साहित्य शास्त्री पण्डितराज जगन्नाथ से प्रभावित हुए है। साहित्यबिन्दु के उपान्त्य श्लोक मे तो उन्होने कविता को सम्बोधित करते हुए उनका उल्लेख भी किया है। वे कविता से कहते है कि हे कविते! क्या तू पण्डितराज जगन्नाथ के स्वर्ग सिधार जाने पर व्याकुल है, तुझे कुछ सूना सूना सा लगता है क्या ? अरी इस ग्रथकार को देख, कुछ सन्तोष का अनुभव कर, वही तो इसकी प्रतिभा है, वही सूक्तियो मे रस है, वही नवीनता है, वही भव्यता है—

श्रीमत्पण्डितराजपण्डितजगन्नाथे प्रयाते दिव
किं शून्याऽसि किमाकुलासि कविते साहित्यवाग्देवते ।

१ वही, अङ्क ७, पृष्ठ ६७
२ वही, अङ्क ५, पृष्ठ ४९
३ वही, अङ्क १, पृष्ठ ३

समस्त महाकाव्य एक ही छ द, अनुष्टुभ मे लिखा गया ह यहा तक कि सर्गान्त मे भी छ द नही बदला ह । अनुष्टुभ पण्डित जी का परमप्रिय छन्द ह । काव्य के प्रारम्भ मे प्राक्कथन म पडित जी क सुपत्र श्री जोवनराम शास्त्री ने कविरत्न अखिलान द जी के एक पद्य को उद्ध त करते हुए पडित जी क अनुष्टुभ वत्त म नपुण्य का उल्लेख किया ह और कहा है कि अमर कवि कालिदास, कवि अभिनद और छज्जूराम अनुष्टुभ छन्द म तो निपुण ह पर अ य छ दो मे कृपण ह—

कविरमर कालिदास कविरमिन दश्च छज्जुरामश्च ।
वत्तेऽनुष्टुभि निपुणा कृपणा अ येषु वृत्तेषु ॥

समूचे काव्य मे कुल मिलाकर ६२१ पद्य हैं। शली सरल एव सरस है। मगलाचरण, ग्रन्थकार परिचयादि के बाद पचम श्लोक से काव्य-कथानक प्रारम्भ होता ह । इसी पचम श्लोक से हा काव्यच्छटा का आस्वादन होने लगता ह । माहिष्मती नगरी का वणन इसमे कवि ने किया ह—

पुरन्दरपुरस्पर्धि यभवद भूमिभूषणम ।
माहिष्मतीति नगरी शमदानमदान्तिके ॥

'इन्द्र की नगरी की स्पर्धा करने वाली, पथ्वी की अलकारभूत माहिष्मती नाम की नगरी कल्याणदा नमदा नदी के किनारे स्थित थी ।'

इस मनोरम शली मे जो कथानक प्रारम्भ होता है तो अन्त तक इसी मे चलता जाता है। कवि की कोमलकान्त पदावली काव्य को चार चाद लगा देती।

इतने विशाल सस्कृत वाडमय के रचयिता पडित जी लेखनी के धनी हैं, यह कहने की आवश्यकता नही। सस्कृत भाषा पर आपका असाधारण अधिकार है। पदशय्या मनमोहक हैं। अनुप्रास एव यमक का पुट उसमे अनायास ही आ जाता ह । पडित जी अपनी रचना के इस गुण को पहचानते ह । इसीलिये इन्होने यह गर्वोक्ति की ह—

अनुप्रासिनि स दर्भे छज्जूरामसमोऽद्य क ।
पुराप्यासन्न चेदासन द्वित्रा एव कवीश्वरा ॥[1]

"अनुप्रासयुक्त रचना मे छज्जूराम के बराबर आज कौन ह ? पहिले भी शायद कोई कवि शिरोमणि रहे होगे और यदि रहे भी हो तो शायद दो तीन ही रहे होगे।"

पडित जी की रचना मे कही कही तो अनुप्रास की झडी सी लग जाती ह । उदाहरण के लिये दो स दभ नीचे उपस्थित किये जा रहे ह—

(क) अस्ति काचन सवजनतोषा अपरेव ।
सितपक्षदोषा स्त्रीमात्रकान्तिमोषा योषा ।[2]

(ख) भगवतीशुम्भयो सिंहनाद श्रुत्वा
समागतानेकमातङ्गकुरङ्गहयक्षऋक्ष

१ दुर्गाभ्युदय, अङ्क १, पष्ठ ४
२ वही, अङ्क ५, पष्ठ ४९

शृगालकोलकोलाहलाहूतपूतवेताल-
चक्रवालकठनालप्रकटीभवद्घोरचीत्कार
चमत्कारयुक्तेय समरभूमिरवलोक्यते ।
तयोरेव सक्रोधपादन्यासप्रभूतकम्पेन
च सालरसालप्रियालतमालहिंतालसुर
दारकोविदारकर्णिकारनिम्बकदम्ब
बकुलनिचुलकपूरबीजपुरमधूकव वृक
कपित्थाश्वत्थवृक्षा परिपतति ।[1]

उत्प्रेक्षादि अर्थालकारो के प्रयोग मे भी उनकी असाधारण निपुणता है। मास के एक पक्ष मे चन्द्रमा बढता है और दूसरे मे घटता ह, इस वैज्ञानिक तथ्य पर अपनी कल्पना शक्ति को आधारित करते हुए उन्होने कहा ह—

इम कत्तु चन्द्रमस तद्वक्त्रसदश विधि ।
पक्षद्वितयभेदेन करोति विकरोति च ॥[2]

"विधाता इस चन्द्रमा को उसके (देवी के) मुख के सदश बनाना चाहते थे। इस लिए कभी उसे बनाते हैं, कभी बिगाडते है, एक पक्ष मे बनाते ह और (फिर जब पाते है कि वह अच्छा नही बना) तो दूसरे पक्ष मे उसे मिटाते ह । इसी प्रकार उसे बनाते और मिटाते रहते है।" (पर कभी वह वैसा बन पाया ह क्या ?)

पण्डित जी ने अपनी कृतियो के पद्यो के बारे मे ठीक ही कहा है—

छज्जूरामकृतौ नैक स श्लोक परिदश्यते ।
अल्पानल्पाथवा काचिद्यत्र नैव चमत्कृति ॥[3]

"छज्जूराम की रचनाओ मे एक भी ऐसा श्लोक नही है जिसमे थोडा बहुत चमत्कार नही हैं।"

कवि अपने बारे मे अनेक बार गर्वोक्ति करते है। ऊपर उनकी दो एक गर्वोक्तिया उद्धृत भी की जा चुकी है। सम्भवत इस दिशा मे वे मध्ययुगीन सुप्रसिद्ध कवि एव साहित्य-शास्त्री पण्डितराज जगन्नाथ से प्रभावित हुए ह। साहित्यबिन्दु के उपान्त्य श्लोक मे तो उन्होने कविता को सम्बोधित करते हुए उनका उल्लेख भी किया है। वे कविता से कहते है कि हे कविते! क्या तू पण्डितराज जगन्नाथ के स्वग सिधार जाने पर व्याकुल है, तुझे कुछ सूना सूना सा लगता है क्या ? अरी इस ग्रथकार को देख, कुछ सन्तोष का अनुभव कर, वही तो इसकी प्रतिभा ह, वही सूक्तियो मे रस ह, वही नवीनता ह, वही भव्यता है—

श्रीमत्पण्डितराजपण्डितजगन्नाथे प्रयाते दिव
किं शून्याऽसि किमाकुलासि कविते साहित्यवाग्देवते ।

१ वही, अङ्क ७, पष्ठ ६७
२ वही, अङ्क ५, पृष्ठ ४९
३ वही, अङ्क १, पृष्ठ ३

एत ग्र यक्त निभाल्य क्रमपि प्रासादमासादय[१]
सैवाऽस्य प्रतिभा स सूक्तिगु रस सा नव्यता भव्यता ॥[२]

एवमेव इसी साहित्यबि दु मे पण्डित्यवीर के उदाहरण मे उ होने निम्नलिखित स्वर चित श्लोक उपस्थित किया ह—

मयि कुवति शास्त्राथ चार्वाकस्तु भवत्यवाक ।
जैन श्रयति मौनत्व[3] बौद्धो बुद्धि विगुञ्चति ॥[४]

'जब मैं शास्त्राथ करता हू तो चार्वाक की बालती ब द हो जाती ह, जन चुप पड जाता ह और बोद्ध बुद्धिहीन हो जाता ह ।"

उनकी नवीनतम काव्यकृति परशुरामदिग्विजय मे भी एक गर्वोक्ति पाई जाती ह जो कि पण्डितराज जग नाथ की गर्वोक्तियो को भी मात दे सकती हैं । पण्डित जी कहते हैं कि कुरुक्षेत्र से बढकर पवित्र तीथ और काई नही ह सप्तसमुद्रवेष्टित पथ्वी का दान करनेवाले परशुराम से बढकर काई दानी नही रहा ह । छज्जूराम के समान कोई और समस्त विषयो का ज्ञाता नही ह—

नान्यत्पुण्यतम समस्तजगति क्षेत्र कुरुक्षेत्रतो
नासीत्सप्तसमुद्रमुद्रितमहीदाता च रामात्पर ।
छज्जूरामसदक समस्तविषयज्ञाताऽस्ति नान्य सुधी-
रित्येषा जयतात त्रयी स्वयशसा यावत क्षितौ जाह्नवी ॥[५]

पडित जी भिन्न भिन्न विद्वानो द्वारा उनके बारे मे कहे गये स्तुति वचनो को भी यत्र तत्र उद्ध त करते ह । साहित्यबिन्दु मे ही कम से कम दो विद्वानो के इस प्रकार के वचन पाये जाते हैं । प्रथम सहोक्ति के उदाहरण के प्रसग मे श्री दुर्गादत्त कवि का है—

शब्दे न्याये च साहित्ये कवित्वे दशनेषु च ।
सम लीलायते वाणी छज्जूरामस्य मदगुरो ॥[६]

(स्पष्ट ही यह श्लोक पूर्वोद्धृत पडित छज्जूराम कृत पद्य 'ककशे तकविषये कोमले काव्यवस्तुनि सम लीलायये यस्य छज्जूरामस्य भारती का छाया मात्र है) । दूसरा छेकानुप्रास और वत्यनुप्रास के उदाहरणो के प्रसग मे कविरत्न अखिलानन्द सरस्वती का ह—

दार्शनिकी यत्प्रतिभा प्रतिभासम्पन्नचेतसा पुसाम ।
रमयति मानसमाराच्छज्जूराम स विश्रुत शास्त्री ॥

१ छ दोऽनुरोधात पडितजी महाप्रसाद के स्थान पर प्रासाद का प्रयोग कर गय ह—अपि-माष मष कुर्याच्छ दोभङ्गं त्यजेदिगरम ।

२ पष्ठ २३०

३ मौनत्वम मे तव प्रत्यय अनथक ह ।

४ द्वितीय बि दु पष्ठ ७४

५ श्लोक १०८, पृष्ठ ११२

६ पञ्चम बिन्दु, पृष्ठ १८७

यन्मुखपद्मविनिःसृतकाव्यकलाप प्रतिक्षण लोके ।
काव्यकलारसिकाना मनासि सद्य प्रमोदयति ॥[1]

पडित जी की अभिनवतम कृति ह महर्षि पतञ्जलि कृत योग दशन पर योगमञ्जरी नामक हिन्दी वत्ति । योगदशन पर व्यास भाष्य भोजवत्ति माठरवृत्ति आदि अनेक प्राचीन व्याख्याएँ है । उन सभी का सार ग्रहण कर पडितजी ने यह अभिनव हिन्दी वत्ति रची ह । इसकी सहायता से योगसूत्रो का अन्वयपूवक मूलाथ बहुत अच्छी तरह जाना जा सक्ता ह । यही इसकी विशेषता ह । श्रुति स्मति के प्रमाणा से भरपूर होने से यह विद्वाना और विद्यार्थियो दोनो के लिये एक समान उपयोगी ह ।

जिला करनाल की कैथल तहसील के कौल ग्राम के शास्त्राथमहारथी प० माधवाचाय शास्त्री की अर्वाचीन सस्कृत साहित्य को देन भी सुतरा प्रशसनीय ह । अब तक इनके तीन काव्य टुडेस्मृति, कबीरचरितम् एव कथाशतकम् प्रकाशित हो चुके हैं । टुडेस्मृति एक छोटी सी हास्य कृति ह । इसमे भारत मे बढती आधुनिकता की प्रवत्ति पर गहरी चाट ह । बीच बीच मे अग्रेजी और हिन्दी शब्दो के प्रयोग से कथ्य विषय का प्रभाव और भी बढ गया है । उदाहरण के लिये खद्दरधारी काग्रेसियो पर चुटकी लेते हुए लेखक कहते ह—

ये श्वेतखद्दरधरा नोकीली कपधारिण ।
मुण्डितश्मश्रुकूर्चा ये टमाटर-निभानना ॥[2]

जिस प्रकार गीता-पुराणादि मे भगवान अपनी विभूतिया का वणन करते है इसी प्रकार प्रस्तुत पुस्तक मे कलियुग भी अपनी विभूतियो का वणन करते है । प्रस्तुत पद्यो को पढते ही हँसी फूट निकलती है । कलि कहते है—

शिरोम्बराणा कैपोऽस्मि हैटोऽस्मि रौबवाससाम ।
चायोऽस्मि पेयद्रव्याणा भोज्याना बिस्कुटोऽस्म्यहम ॥
रोटीना डबलरोटी घतानामस्मि डालडा ।
टमाटराऽस्मि शाकाना रस्याना लशुन तथा ॥[3]

शास्त्राथमहारथी जी के कबीरचरितम् मे सुप्रसिद्ध सन्त कबीर के चरित का सरल सरस शैली मे वणन है । प्रस्तावना का श्लोक ही लीजिये । कितनी प्राजल सुबोध भाषा हे इसकी । सामान्य सस्कृत जानने वाला व्यक्ति भी इसे आसानी से समझ सकता हैं—

वाराणसीतीर्थनिवासभूमौ
रहस्यवादी कविसार्वभौम ।
हिन्दीमहात्मा यवनस्य पीर
आसीत्पुरा भक्तवर कबीर ॥[4]

१ पञ्चम बिन्दु, पष्ठ १४८
२ श्लोक ५१, पष्ठ १६ ।
३ श्लोक ६२ ६३, पष्ठ १९ ।
४ श्लोक २, पष्ठ ९ ।

हिंदू-मुस्लिम समन्वय संत कबीर के जीवन का परम ध्येय था। अपनी वाणी मे उन्होने अनेक स्थानो पर कहा है कि राम और रहीम, कृष्ण और करीम एक ही हे—

य एव राम स मतो रहीमो
य एव कृष्ण स मत करीम ।[1]

कही कही ता शास्त्राथमहारथी जी ने कबीर के दोहो को ही सस्कृत रूपा तर प्रदान कर दिया ह। कबीर का सुप्रसिद्ध दोहा ह—

पाथर पजे हरि मिले तो मै पूजूँ पहार।
चक्की क्यो नही पूजिये पिसा खाय ससार ॥

इसी को सस्कृत मे शास्त्राथ महारथी जी ने इन शब्दो मे कहा है—

चेल्लभ्यते प्रस्तरपूजया हरि—
रभ्यचये पवतम वह न्वहम ।
ततोऽधिका पूज्यतमाऽस्ति चक्रिका
यत पिष्टमश्नन मनुजोऽत्र जीवति ॥[2]

इसी प्रकार कबीर के दोहे—

ककर पत्थर जोड कर मसजिद लई बनाय।
ता चढि मुल्ला बाग दे क्या बहरा हुआ खुदाय ॥

को शास्त्राथमहारथी जी सस्कृत मे इन शब्दो मे प्रस्तुत करते है—

लोष्टानि चित्वा रचिता नु मस्जिद
तद यूपमारुह्य विरौति मुल्ला
स सवग सवगुणप्रसूति
स दूरवर्ती बधिर खुदा किम ॥[3]

शास्त्राथ महारथी जी का **कथाशतकम्** अपने ढग का एक अनूठा ही ग्रन्थ है। इसमे भारत के पौराणिक एवञ्च मीरा, धना, रविदास आदि ऐतिहासिक महापुरुषो के जीवन चरित्र से सम्बद्ध सौ कथाओ का ललित एव मनोहर शैली मे वणन है।

शास्त्रार्थ महारथी जी का अ तिम उल्लेखनीय ग्रन्थ ह पचविंशति पष्ठात्मक **परतत्त्व दिग्दशनम्**। यह षड्दशनो की सूत्र शलो मे लिखा गया है। इसका भाष्य स्वय उन्होने ही लिखा है। कुल मिलाकर इसमे २७ सूत्र है जो अर्वाचीन होते हुए भी प्राचीनता का आभास देते है। दिगदशनाथ चार पाच सूच नीचे उपस्थित किये जा रहे है—

गुणातीत सवगुणनिलयो हि पर पुमान (सूत्र १७)।
एकैकगुणानुरोधेन स एव ब्रह्मविष्णुरुद्राख्या भजते (सूत्र १८)।
नामसु प्रणवस्य मुख्यता सवशास्त्रसिद्धा (सूत्र २०)।

१ श्लोक १९४ पष्ठ ५९।
२ श्लोक १३४, पष्ठ ६२।
३ श्लोक १३५, पृष्ठ ६३।

हरिहरौ विशिष्य परस्परात्मानौ परस्परनुतिप्रियौ वरदौ मोक्षदौ च (सूत्र २४)।
ईशस्यापि नटवत लीलाभिनयो भक्तानुग्रहाथ (सूत्र २५)।

सूत्रभाष्य मे शास्त्राथ महारथी जी ने सूत्र प्रतिपादित विषय की पुष्टि मे महाभारत पुराणादि से अनेकानेक उद्धरण प्रस्तुत किये हैं जिससे ग्रन्थ की उपयोगिता और भी बढ गई है। शास्त्राथ महारथी जी ने सूत्रो और सूत्रभाष्य मे यही सिद्ध किया ह कि परतत्त्व, ससार की नियामिका सर्वोच्च शक्ति, एक ह। वेदपुराणादि शास्त्रो का मथिताथ ही, जैसाकि उन्होने ग्रन्थ के मुख पष्ट पर ही लिखा ह, प्रस्तुत पुस्तक मे उपस्थापित किया गया ह।

शास्त्राथ महारथी जी के बाद विशेष उल्लेखनीय नाम ह—जिला करनाल की पानीपत तहशील के सुझाना गाव के पण्डित विद्यानिधि शास्त्री का, जोकि नाना विषयो के आचाय भी है और सुमधुर कवि भी। दुर्भाग्य से इनकी बहुत कम रचनाएँ प्रकाशित हो पाइ है। प्रकाशित ग्रन्थो मे इनके चार ग्रन्थ है—(१) व्यवहारभानु (जोकि महर्षि दयानन्दकृत हिन्दी भाषोपनिबद्ध व्यवहारभानु का सस्कृत पद्यानुवाद ह), (२) मैत्रायणीसूक्तिसङ्ग्रह, (३) सक्षिप्त रामायणम्, (४) सक्षिप्त महाभारतम। इनमे सिवाय प्रथम के शेष तीन सङ्ग्रहात्मक या सक्षेपात्मक है। प्रथम यद्यपि अनुवाद है तथापि रुचिर पद्य रचना के कारण स्वतन्त्र ग्रन्थ की ही प्रतीति देता है। भाषा मे इतनी उदात्तता है कि ऐसा लगता है कि मानो कोई प्राचीन कवि लिख रहा हो। लाल बुझक्कड की कहानी मे जब एक बालक खम्भे को पकड लेता ह और छोडता नही तो उसके माता पिता रोने बिलखने लगते है, वे समझते है कि उनके पुत्र को खम्भे ने पकड लिया है। पडोसी भी आसपास से आ जाते ह। उन्हे रोते देख वे भी रोने लगते है। चारो ओर कुहराम मच जाता है। इस दश्य का कितना सुन्दर वणन कवि ने किया है—

अन्येऽपि प्रतिवेशिन समुदिता ह्याकण्य तत्क्रन्दित
द्राक प्राक्रसत रोदितु प्रतिगह साराविण बह्वभूत।
स्तम्भो डिम्भममु न मुञ्चति करग्राह निगह्णनसौ
हा हतेति समन्तत सविधुर ग्राम्या गिर प्रावृतन।[1]

स्थान-स्थान पर भाषा की प्राजलता और गरिमा बरबस ध्यान आकर्षित कर लेती है। शिक्षा क्या है ? इसका लक्षण क्या ह ? (का शिक्षेत्युच्यते स्पष्ट लक्षणेनाभिधीयताम) इस पर पडित जी कहते है—

दोषानविद्याप्रमुखान् विहाय
यया पर सौख्यमुपति लोक।
षुण्याश्च विद्यादिगुणानधीते
सा नाम शिक्षेत्यवबोधनीयम॥[2]

"अविद्यादि दोषो का परिहार कर जिससे लोग परम सुख प्राप्त करते है और पवित्र विद्यादि गुणो का अध्ययन करते है उसे शिक्षा समझना चाहिए।'

१ श्लोक २२१, पष्ठ ९९
२ श्लोक ६९, पष्ठ १६

इस प्रकार के श्लोका की परे ग्र थ मे भरमार है। ग्र थकार ने ग्र थ को चार खडो म विभक्त किया ह जिहे कि उसने मयख (=किरण) सज्ञा दी ह जो कि ग्रथ के भानु (=सूय) होने के कारण उचित ही थी। मल ग्रथ की प्रश्नोत्तर शली को रूपा तर म भी तदवस्थ रखा गया ह। ग्र थ म सामा य अनुष्टुप इ द्रवज्रा, उपे द्रवज्रा, उपजाति आदि छ दा के साथ साथ क्लिष्ट वतालीय, पुष्पिताग्रा, शालिना, शिखरिणी, भुजगप्रयात, रथोद्धता आदि छ दा का भी पयाग किया गया ह। कइ वद और उपनिपदवाक्यो का श्लाको मे और वह भी क्लिष्ट छ दा म लिखे गये श्लोका म सग्रथित करने का अभिन दनीय प्रयास भा किया गया ह। यथा पुष्पिताग्रा छ द मे यजुर्वेद का 'इदमहमनृतात्सत्यमुपमि वचन लगभग उसी रूप मे रख दिया गया ह—

इदमहमनतादुपैमि सत्य
वचनमिद यजुप प्रमाणमत्र[1]।

कभी कभी वेद के अथवा उपनिपद के समूचे मन्त्र का शब्दा तर मे उपस्थापित कर दिया गया ह। यथा मुण्डकोपनिपद के म त्र।

सत्यमेव जयति नानत सत्येन प था विततो देवयान ।
येनाऽऽक्रम त्यषयो ह्याप्तकामा यत्र तत सत्यस्य परम निधानम ॥

को ग्र थकार ने इन शब्दा मे उपस्थापित किया ह—

सत्य जये नानतमाशुलभ्य
सत्येन पन्था विततो देवयान ।
क्राम्यन्ति येन प्रतिपन्नकामा
ब्रह्मषयस्तत्परम निधानम ॥[2]

ग्रन्थकार वैयाकरण है इसलिये स्थान-स्थान पर क्लिष्ट प्रयोग भी करते है जिन्हे वे पादटिप्पणियों मे समझा भी देते है। उनका कोष ज्ञान भी बहुत विस्तत है। अनेक स्थानो पर वे अप्रसिद्ध शब्दो का प्रयोग भी करते ह। यथा—भाग्यहीन के लिये दौर्भागिनेय, कामुक के अनुक, प्रत्युपकार के लिये प्रतिशोषक, कूपपतन के लिये कौपीन, हाथी के लिये पद्मी आदि।

व्यवहारभानु के अतिरिक्त पण्डित जी ने अनेक कविताए भी लिखी है जोकि समय समय पर पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित होती रहती ह। १०० से ऊपर उनकी सस्कृत और हिन्दी कविताएँ अप्रकाशित पडी हे। उनकी दो का य कृतिया महर्षिदयानन्दचरितम् और भक्तफूलसिंहचरितम् सम्प्रति मुद्रणय त्रस्थ है।

काव्य कृतियो के अतिरिक्त पडित जी ने सामवेद का हिन्दी पद्यानुवाद भी किया ह जोकि अजमेर की पत्रिका 'सविता' मे क्रमश प्रकाशित होता रहा है। अब तक वहा इसके ३५० पद्य प्रकाशित हो चुके है। वैसे स्वत त्र रूप से भी यह प्रकाशित हो रहा ह।

अनुप्रास एव यमकछटा पडित जी की कविता का विशेष गुण रहा ह। उदाहरणाथ

१ श्लोक २३५, पष्ठ १०४।
२ श्लोक २३७, पृष्ठ १०४।

महात्मा गाधी शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित हुई उनकी कविता श्रीगान्धिमहोदयजन्माभिनन्दनम के निम्नलिखित पद्य उपस्थित किये जा सकते है—

रुचिर कृदिमि कृतिभि कृतिभि
स महान् नषु गान्धिवर प्रथित ।
हृदये स्मृतिभि स्थिरता गमित
स्तुतिसत्कुसुमाञ्जलिभिग्रथित ॥
अचकात्स चमत्कृतिभाक परित
स्वयश सुयशा विविध विबुध ।
स्पृहणीयचरित्रतयाऽत्र जग-
त्यविगीतनिपीतसुनीतिसुध ॥[1]

आज से लगभग दो वष पूव पडित जी की एक कविता आर्यसमाजमहोत्सवगीति भारतोदय[2] गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर) मे प्रकाशित हुई थी । वह भी पूव निर्दिष्ट कविता के समान ताटक छद मे ही है । लय एव थिरकन इसका अपना विशेष गुण है । कविता मे ११ पद्य ह । प्रत्येक के अ त मे महयाम्यहमार्यसमाजमहम आता ह । अनुप्रास एव यमक की झकार यहा भी है—

ऋषिणाऽद्यदयालुतया पिहिता
सुधियाऽभ्युदय पदवीयमिता ।
उदिता मुदिता सुखिता सखिता
महयाम्यहमार्यसमाजमहम ॥
उपमारहिताऽपि न मा रहिता
नियमावलिरस्य कुमारहिता ।
भुवि वृद्धिमुपैतु सदा सुखदा
महयाम्यहमार्यसमाजमहम ॥

पण्डितजी की नूतनतम कृति श्रीगान्धिचरितामृतम् नामक महाकाव्य ह जो कि पूर्वोक्त भारतोदय[3] मे ही क्रमश प्रकाशित हो रही है । अब तक इसके दो अश प्रकाशित हुए है जिसमे प्रथम सर्ग भी अभी पूण नही हुआ है । पडित जी का श्रीगान्धिचरितामृतम् अपने आध्यात्मिक गुरु पडित चारुदेव शास्त्रीजी की गद्य कृति श्रीगान्धिचरितम्[4] से सुतरा प्रभावित है । अब तक के प्रकाशित अश से ऐसा लगता ह कि पडित विद्यानिधि का श्रीगान्धिचरितामृतम् पण्डित चारुदेव शास्त्री के श्रीगान्धिचरितम् का रूपान्तर ही ह । शास्त्रीजी ने अपनी गद्य कृति की पूवपीठिका के रूप मे दस श्लोक दिये ह जिनमे प्रत्येक के अन्त मे 'स वाचा विषयोऽस्ति न ' आता ह । पण्डितजी ने भी इसी प्रकार के ग्यारह श्लोक दिये है जिनमे

१ गुरुकुल पत्रिका, गुरुकुल कागडी ।
२ माच १९६९ ।
३ जनवरी फरवरी, १९७० और जुलाई, १९७०
४ लाहौर, सवत १९८७

प्रत्येक के अन्त मे 'स एव वाचा विषया ममास्ते' आता ह जो कि 'स वाचा विषयोऽस्ति न' का ही रूपान्तर ह । इसी प्रकार का साम्य प्रत्येक श्लोक मे देखा जाता ह । उदाहरणार्थ—

श्री गान्धि चरितम का पद्य

महितो यश्च लोकस्य महतोऽमहतोऽपि च ।
आकुमार यशो यस्य स वाचा विपयाऽस्ति न ॥

एवच श्रीगान्धिचरितामतम् का पद्य—

य पूजनीयो महता जनाना
लोके बभूवामहतामपीह ।
यशोऽस्ति यस्यार्जितमाकुमार
स एव वाचा विषयो ममास्ते ॥

अथवा श्रीगान्धिचरितम् का पद्य—

ब्रह्मक्षत्रे विशश्शूद्रा अन्त्यजा श्वपचा अपि ।
आत्मैवाभू मुनेरस्य स वाचा विषयोऽस्ति न ॥

एवच श्रीगान्धिचरितामतम् का पद्य—

क्षत्र तथा ब्रह्मविशश्च शूद्रा
स-त्य त्यजा ये श्वपचा विगर्ह्या ।
अभू मुनेयस्य समे स्व आत्मा
स एव वाचा विषयो ममास्ते ॥

शब्दो के हेरफेर से एक ही है । न केवल पद्यो की ही, गद्य की भी यही स्थिति है । शास्त्रीजी का गद्य वाक्य ह—

अस्ति सुराष्ट्रदेशे पोरबन्दरमिति ख्यातमपथुल
सामिस्वायत्त राज्यम । एतद्धि हनुमद्वशीया बाहुजा प्रशासति ।

इसी को ही पद्य रूप प्रदान करते हुए पण्डितजी ने लिखा है—

सुराष्ट्रदेशे किल पोरब दर
चकास्ति राज्य प्रियकीर्तिसु दरम ।
प्रशासन यत्र पुरा प्रचक्रिरे
हनूमतो वशभवा हि बाहुजा ॥

सम्भवत पण्डितजी ने शास्त्रीजी के श्रीगान्धिचरितम् को आदश ग्रन्थ के रूप मे सामने रख लिया ह और उसके आधार पर अपनी काव्यरचना प्रारम्भ की है ।

सिरसा खेडी (जिला जी द) के निवासी महामहोपाध्याय पडित विद्याधर शास्त्री वेदाचाय का वेद विषयक साहित्य सुतरा ख्यात ह । इ होने कात्यायनश्रौतसूत्रवत्ति, शुल्ब सूत्रवत्ति एव पारस्करगृह्यसूत्रवृत्ति नामक तीन ग्रन्थ लिखे है जिनमे पद पदे उनकी विद्वत्ता का पता चलता है । इ ही के सुपुत्र श्री वेणीराम गौड वेदाचाय ने कमकाण्डमीमासा नामक ग्रन्थ लिखा है जिसमे वैदिक कर्मकाड का सविस्तार निरूपण ह । श्री वेणीरामजी सम्प्रति काशी मे काय कर रहे है ।

परीक्षोपयोगी ग्र थ लेखक के रूप मे जुलाना मडी के पडित हरिपुष्प न्यायरत्न का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनके तीन परीक्षोपयोगी ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध है—न्यायमुक्ता-वल्यादश, निरुक्तलतिका एव काव्यप्रकाशसार ।

भिवानी के पडित सत्यदेव वासिष्ठ की सस्कृत मे तीन रचनाएँ है—सत्याग्रहनीति काव्यम् शीषक से एक का य, चार भागो मे विभक्त विष्णुसहस्रनाम पर सत्यभाष्यम् नाम से एक भाष्य एव नाडीतत्त्वदशनम् नाम से आयुर्वेद का एक ग्र थ। सत्याग्रहनीतिकाव्यम् प० रुद्रदेव त्रिपाठी कृत हि दी अनुवाद सहित प्रकाशित हुआ है। ग्र थकार ने इस पर सक्षिप्त टिप्पण भी लिखा है जिसका नाम उसने अनन्तवृत्ति दिया ह। ग्रथ के आदि म लेखक ने आत्मनिवेदन रूप १२ श्लोक दिये है। तत्पश्चात प० रुद्रदेव त्रिपाठी की सस्कृत मे विस्तत भूमिका ह। तदन तर का य प्रारम्भ होता ह। यहा भी पहिले ११ श्लोको मे काव्यहेतु का निरूपण किया ह। इसमे उन्होने सत्य की महिमा का गान किया ह—

त्व पापनाशक सत्य भववारिधितारकम ।
पाहि मा भवभीष्माब्धेस्तत्रैवाग्रहमागतम ।।

"हे सत्य तू ही पापनाशक है, तू ही भवसागर से पार करने वाला ह। ससाररूपी इस घोर सनुद्र मे गिरा हुआ मैं तेरे ही आग्रह शरण मे आया हूँ।"

एतदनन्तर काव्य का प्रारम्भ होता है। सम्पूण काव्य को पडितजी ने चार चार पादो के पाच अध्याया मे विभक्त किया ह। प्रत्येक पाद का उ होने शीषक दिया है। ये शीषक इस प्रकार ह—दुजनगर्हा, सुजन-प्रशसा, क्षुत्क्षामीय, अहिंसाव्रतमाहात्मीय, राष्ट्रपतनो त्थानीय, त्रिविधराजभेदीय, स्वराज्यमहिमवणनीय, सदैवमृद्धीय, वारिपटुनीय, आदशकमवणनीय उद्बोधनीय, षडतुवणनीय, नानावषगणीय, समित्रमात्रश्रयीय, आसविद्यीय, धम, सत्यविभूति परमायुषीय, ऋतुचर्या, स्वात त्र्यीय। ग्रथ मे कुल मिलाकर ७०७ श्लोक है। पडितजी की रचना बहुत प्राञ्जल एव मार्मिक है। अपने हृदय की गहराइयो मे से उन्होने इसे लिखा है, स्वानुभूति को उन्होने मूतरूप दिया है। पडित जी स्वय सत्याग्रही रहे है। सत्याग्रही के धैय को वे पहिचानते है। कितने भी कष्ट आये, कितनी भी पीडा हो, सत्याग्रही कभी भी पाव पीछे नही हटाता—

प्रपीडितैर्नैकविधैर्विधातै
पद न पश्चात् कुरुते मनस्वी ।
विवर्धित कि मृगराड बलिष्ठ
विलोक्य नाग प्रतियाति पृष्ठे ।।
कुत्सेयु कुशला स्तुव तु बहु वा प्राणा प्रणश्यन्तु वा
न्यायाथ समरे प्रदत्तकरणो धीरो न पश्चाद व्रजेत ।
निर्दोष परिषद व्यवस्यति तु य त कतुमातिष्ठते
विच्छेद्योत्पथग जल तरणकृदयात्येव लभ्या भुवम ।।[1]

[1] अध्याय ३, पाद ३, श्लोक ३६–३७, पृ० ८५

सत्याग्रहियो को किस किस प्रकार की यातना दो जाती थी, इसका नग्न चित्र कवि ने इन श्लोका म उपस्थित किया ह—

रुग्ण वष्मणि भ्रिलाहनिगम्न नानाविध प्राह्यत
ताम्रवेंतसयष्टिकादिकक्रतर्वातमुहुश्चोद्यते ।
यूथ कीटकुलाविव चरनिशा तस्थ समुत्थाप्यते
प्राय पेपणिकाऽपि भोजनकृते चूर्णाय सञ्चाल्यते ॥
कोष्ठे चैव तमोमयेऽतिरजसाऽऽच्छन्ने कुतोऽप्युष्यते
जीर्णेना नचयेन नीरसमयेनैवोदर पुष्यते ।
शाणीयेन वपुश्छदेन कथमप्येतद वपुर्भूष्यते
हा हा तद्यपि धमशत्रुभिरल रक्त [1] सता चूष्यते ॥[2]

"सत्याग्रही के रुग्ण शरीर पर लोहे की हथकडी और बेडियाँ जकड दी जाती है। फिर हण्टर और बेतो से उन्हे पीटा जाता है, मामूली राज-चरो के घर का मल उठवाया जाता है, कदियो के खाने के लिये या राजचरो के भोजनाथ सत्याग्रहियो से चक्कियाँ चलवाई जाती है, अन्धेरे और गन्दे कमरो मे उन्हे रखा जाता ह, खाने लिये उन्हे सडा गला और सत्त्वहीन अन्न दिया जाता हैं, केवल टाट के दो एक टुकडे तन ढँकने के लिये उन्हे दिये जाते हैं। बडे दुख की बात है कि इतनी दुदशा करने पर भी उन धमशत्रुओ द्वारा उनका खून चूसा जाता है।

पर कोई कितना भी कष्ट क्यो न दे, कितना भी क्यो न सताये, सत्याग्रहियो ने जो माग एक बार अपना लिया उस पर वे अडिग रहते हैं—

नो यान्ति सत्यनिभते पथि दण्डभीता
गत्वाऽपि विघ्नविहता प्रतियान्ति मध्या ।
दण्डैरनेकविधकै प्रतिहन्यमाना
गन्तव्यमार्यपुरुषा न परित्यजन्ति ॥[3]

काव्य की भाषा प्राय सरल है पर यदाकदा कवि अपनी व्याकरणनैपुणीप्रदर्शनाथ इसमे कठिन शब्दो का प्रयोग भी करते हैं। उदाहरणाथ निम्न श्लोक उपस्थित किया जा सकता है——

जञ्जमीति च मा मृत्युजरीहर्ति च काञ्चनम ।
दरीदर्श्मि च सत्य त्वा दिक्षु सर्वासु रक्षकम ॥

"हे सत्य मृत्यु मुझे बार-बार भोज्य बना रहा है मेरे पास जो भी जमा पूँजी है, उसका अपहरण कर रहा ह। किन्तु फिर भी सवदिशाओ मे एकमात्र तुझे ही मै अपना रक्षक देख पा रहा हू।"

१ नपुसकलिङ्ग रक्त का पुलिङग मे यहा प्रयोग चिन्त्य ह।

२ अध्याय १, पाद ३, श्लोक ९–१०, पष्ठ ३९–४०।

३ अध्याय १, पाद २, श्लोक ४५, पष्ठ ३५

कही कही यमक और अनुप्रास की अपूव छटा भी ध्यान बरबस आकर्षित कर लेती है। ततीयाध्याय के चतुथ पाद के प्रथम श्लोक मे वसन्त का वणन करते हुए कवि कहते है-

वीरुद्वक्षवरप्रतानविभवा पुष्य त्यहो माधवे
हृद्य कोकिलकण्ठज मधुरुत वायु पुनानो दिश ।
नानाभावविभावभावितनणा भावा विकासो मुखा
सोल्लास सहकारमञ्जरिरपि[1] स्वागन्तुमातिष्ठते ॥

"वसन्त ऋतु के आगमन पर लता और सु दर वृक्षो का विस्तत वैभव विकसित होता है। मनोहर कोकिलकण्ठ कूजन तथा दिशाओ को पवित्र करता हुआ पवन विकास की और अग्रसर होने वाले विविध विचारो से परिपूण मनुष्यो के भाव एव फूटती हुई आम्र मञ्जरिया उल्लासपूवक वसन्त का स्वागत करने को उपस्थित है।"

विष्णुसहस्रनाम के भाष्य मे पण्डित जी का वैदुष्य पदे पदे अवभासित होता है। एक एक नाम की उन्होने विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है। सबसे पहिले व्याकरणप्रक्रिया से रूप सिद्धि प्रदर्शित की है। तदनन्तर वेद से मन्त्रलिङ्ग उपस्थित किया ह। सबसे अन्त में स्वरचित श्लोक द्वारा नाम विशेष का विशेष अभिप्राय स्पष्ट किया ह। उदाहरण के लिये स्थालीपुलाक याय से भगवान के ६२५वे नाम सवतश्चक्षु की व्याख्या उपस्थित की जा सकती है—

सवत इति सर्वशब्दात 'आद्यादिभ्य उपसङख्यानम' इति पा० ५।४।४४ सूत्रस्थवार्तिकेन सीवविभक्तिकस्तसि प्रत्यय ।

चक्षु —चक्षिङ व्यक्ताया वाचि धातुदशनेऽपि, अत्र च दशनाथक एव। इदितोऽप्यस्य नुम न। अ ते दि इति व्याख्यानात (द० क्षीरतरङिगणी २।८) चक्षे शिच्च इत्युणादिना (२।११९) उसिप्रत्ययस्तस्य च शिद्वदतिदेश, सेन शित्वात तिङशित सार्वधातुकम (पा० ३।४।११३), सूत्रेण सावधातुकत्वात् ख्यात्रादेशाभाव, चक्षुरिति। सवत पश्यतीति सवतश्चक्षु ।

अत्र म त्रलिङग—
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुख (ऋक १०।८१।३)
यजु (१७।१९)
विश्वतश्चषणिरुत विश्वतोमुख (अथव १३।२।२६)

भवति चात्रास्माकम—

स सवतश्चक्षुरिहास्ति विष्णु
स विश्वत पश्यति विश्वमेतत ।
स विश्वबाहु स च विश्वतस्थात
तमेव गायन्ति नमन्ति धीरा ॥

1 स्वागत व्याहतुम् अथवा स्वागत कतुम के स्थान पर स्वागन्तुम प्रयोग अव्यावहारिक है। इसका अथ होगा अच्छी तरह आने के लिये जोकि कवि को अभीष्ट नही है। दीर्घान्त मञ्जरी शब्द का ह्रस्वान्त मञ्जरि रूप में प्रयोग भी अनुचित है।

३३० पृष्ठ का नाडीतत्त्वदर्शनम् पण्डित जी का नाडीतत्त्व पर अपूर्व समीक्षात्मक ग्रन्थ है। पण्डित जी आयुर्वेद के ममज्ञ विद्वान हैं उनकी इस विद्वत्ता का परिचय प्रस्तुत ग्रन्थ से चलता है। आयुर्वेद के अध्येताओं और अध्यापकों के लिये यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी है।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य सर्जना में पुरानी पीढी का ही केवल योगदान नहीं है। युवा पीढी भी इस दिशा में प्रयत्नशील है। भिवानी (हिसार) के श्री विश्वनारायण शास्त्री (प्राध्यापक संस्कृत विभाग, किरोडीमल कालेज, दिल्ली) इसी प्रकार के युवा पीढी के साहित्यकार हैं। शास्त्रीय विषयो पर संस्कृत मे इनके अनेक लेख विश्वसंस्कृतम् आदि पत्रिकाओ में प्रकाशित होते रहते हैं। ये बहुत परिमार्जित और प्राजल संस्कृत लिखते हैं। हिन्दी में भी संस्कृत सम्बन्धी अनेक विषयो पर इन्होने लिखा है। अभी हाल ही मे इनकी कृति निरुक्तमीमांसा प्रकाशित हुई है जिसकी विद्वानो ने भूरि भूरि प्रशंसा की है।

पूर्वोल्लिखित विद्वान शास्त्रार्थ महारथी पण्डित माधवाचार्य जी के सुपुत्र पंडित प्रेमाचार्य शास्त्री भी इसी युवा पीढी के संस्कृत साहित्यकार हैं। शास्त्रार्थमहारथी जी के ग्रन्थ परतत्त्वदिग्दर्शनम् के अन्त मे नाना छन्दो मे विरचित १११ श्लोको का परतत्त्वविषयकभ्रान्तिनिरसनात्मक एक परिशिष्ट दिया हुआ है जो कि प्रेमाचार्यजी का लिखा है। भाषा मे इनकी बहुत प्रौढि हैं, पदशय्या मे एक उदात्तता है जो प्राचीन संस्कृत का स्मरण दिला देती है। परिशिष्ट के प्रथम तीन श्लोक मंगलाचरण के हैं। उन्ही मे से एक नीचे उद्धृत किया जा रहा है। इससे पता चल सकता है कि श्री प्रेमाचार्यजी का संस्कृत पर कितना अधिकार है। इस श्लोक मे श्लेष भी है, सभी विशेषण विष्णु, शिव, और लेखक के पिता माधवाचार्य इन तीनो के पक्ष में समान रूप से घटते हैं—

> यस्त्रय्यागविभूषितान्धककुल ख्यातो यशोदानतो
> य प्राहुर्विबुधा महारथमिति प्रेक्ष्य स्थित संगरे।
> नीतो येन विपञ्चता स्वमहसाऽनङ्गो विदग्ध क्षणात
> सत्याश्लेषरसप्लुतो विजयतेऽसौ सर्वदो माधव ॥

सर्वदो माधव का तीन प्रकार के अर्थ किया जा सकता। सर्वद + माधव —सब कुछ देने वाले विष्णु, सर्वदा + उमाधव —शिव जी सदैव। सर्वद + माधव—सभी को देने वाले माधव (माधवाचार्य)।

विष्णु के पक्ष मे श्लोकार्थ—वेदवाणी मे जिसकी यह ख्याति है कि इसने अन्धक वंश को सुशोभित किया है, जो अपनी माता यशोदा को प्रणाम करता है। युद्ध मे स्थित जिसे देख विद्वान् महारथी कहते है, जिसने अपने तेज से दग्ध अनंग (कामदेव) को क्षण मे ही सशरीर बना दिया (अनंग ने ही प्रद्युम्न नामक उनके पुत्र के रूप मे जन्म लिया था, यह पुराणो मे प्रसिद्ध है), सत्या अर्थात पत्नी सत्यभामा के आलिंगन रस से आनन्दित उस सब कुछ देनेवाले विष्णु की जय हो।

शिव के पक्ष मे श्लोकार्थ—जिसने अन्धकासुर के कुल को धराशायी (भूमिशायी, भू + उषित + अन्धककुल) बना दिया, यश एवंच दान देने के कारण (यश + दानत) जिसकी वेदवाणी मे प्रसिद्धि है, युद्ध मे स्थित जिसे देख देवता (रथक्षोणीयन्ता इत्यादि स्तुतियो

के माध्यम से) महारथी कहते है, जिसने अनग को अपने तेज से क्षण भर मे जलाकर शरीर हीन कर दिया, अपनी पत्नी सती के आलिंगन रस से आनन्दित (सती+आश्लेषरसप्लुत) उस शिव की (सवदा+उमाधव) जय हो।

माधवाचाय के पक्ष मे श्लोकाथ—वैदिक विषयो मे जिसने अन्धकुकुल स्वामी दयानन्द के गुरु जन्मान्ध (अन्धक) स्वामी विरजानन्द के कुल आयसमाज नामक सस्था को धराशायी (भू + उषित) कर दिया, जो (स्वसस्था सनातनधम को) यशस्वी बनाने के कारण (यशोदानत) सुप्रसिद्ध ह, युद्ध अर्थात वाग्युद्ध (शास्त्राथ) मे स्थित जिसे देख विद्वान महारथी की उपाधि देते ह (पण्डित जी शास्त्राथमहारथी नाम से विख्यात है) जिसने अनङ्ग अर्थात अण्णाङ्गराचाय को स्वपक्षसाधक पचावयव वाक्यशून्य बना दिया (दक्षिण के पण्डित अण्णङ्गराचाय से शास्त्राथ महारथी जी का वादविवाद बहुत देर तक चला था। उसमे शास्त्राथ महारथी जी ने उसे निरुत्तर कर दिया था), इस प्रकार के सभी को कुछ न कुछ देनेवाले सत्य के आश्रयण द्वारा (सत्य + आश्रयण) रसात्मक ब्रह्म मे समासक्त माधवाचाय की जय हो।

मङ्गलाचरण के पश्चात ६ श्लोकका प्रसङ्गावतार है। तदनन्तर ६ श्लोको मे परिशिष्टकार ने अपनी कुल परम्परा का परिचय दिया ह। तत्पश्चात प्रकृतविषय का निरूपण किया है। शास्त्राथ महारथी जी ने हिन्दी मे 'क्यो' नामक एक विशाल ग्रन्थ की रचना की थी—

आलम्ब्य सस्कृतसमन्वयपद्धतिं ता
ग्रन्थाश्च तातचरणैबहव प्रणीता ।
तेष्वेव बिस्तृततम श्रुतिसारहृद्य
'क्यो' नामकोऽखिलसुविज्ञमत प्रबन्ध ॥[1]

उसमे शास्त्राथमहारथी जी ने समन्वय पक्ष को प्रतिपादित किया था। उन्होने कहा था कि शैव वैष्णवो से भिन्न नही है और वैष्णव शैवो से भिन्न नही है—

वैष्णवाश्चापि नाशैवाश्शाङ्करा नाप्यवैष्णवा ।
राद्धान्त एव बहुभि प्रमाणैस्तत्र साधित ॥[2]

यह शास्त्राथ महारथी जी की दढ मान्यता थी। बरेली के प० राघवाचार्य ने श्रीवैष्णव-सम्मेलन नामक अपनी पत्रिका मे इस मान्यता की आलोचना की। विवाद दक्षिण भारत तक भी पहुचा। काञ्चीनिवासी पडित सम्पतकुमाराचाय जी ने वैदिक मनोहरा पत्रिका मे शास्त्राथ महारथी जी के मत के विरोध मे एक विस्तत लेख लिखा जिसका उत्तर उन्होने (शास्त्राथ महारथी जी ने) अपनी पत्रिका लोकालोक के माध्यम से दिया। इस पर सम्पतकुमाराचायजी तो चुप हो गये पर उनके श्वसुर जगदाचाय स्वामी अण्णङ्गराचाय ने एक कठोर चोट शास्त्राथ महारथी जी पर की। विनीत पुत्र प्रेमाचाय से यह न सहा गया, उसने उस चोट का उत्तर इन १११ श्लोको के माध्यम से दिया। शास्त्राथ महारथी जी के समन्वयवाद के राघवाचार्य कृत्त प्रतिवाद को दही से भरे पात्र पर ढेला मारने के समान कहा है—चक्रे दधिभरित महा

१ श्लोक १६, पृष्ठ २९।
२ श्लोक १७, पृ० २९।

भाजने लोष्टपातम । दाक्षिणात्यो ने उनके पिता पर चोट की थी इसलिये।उन पर उनका रोष स्वाभाविक ही था । दक्षिणात्यो का उन्होने उच्चासन के मत्कुण (= खटमल) कहा ह उनके मत में उत्तर के लाग ही शास्त्र के वचन का पालन करते हैं—

पा ग्यन्युत्तरस्थास्तु चैतच्छास्त्रानुशासनम ।
दाक्षिणात्यास्तु दृश्य ते उत्तुङ्गासनमत्कुणा ॥[1]

उन पर और गहरी चोट करते हुए वे कहते ह कि यह आवश्यक नही कि जो ऊँचे हो उसकी पूजा हो हो, गाय, गगा, पीपल का पेड ये सब भूमि पर होने पर भी पूजे जाते है जबकि धुआँ, कौव्वा, और राहु ऊँचे होने पर भी नही पूजे जाते—

भूमिस्था अपि पूज्यन्ते गोगङ्गाश्वत्थपादपा ।
उत्तुङ्गा अपि नेज्यन्ते धूमध्वाङक्षविधुन्तुदा ॥[2]

कही कही तो यह रोष बहुत उग्र रूप धारण कर लेता हैं—

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्वा जीवनादपि ।
यैर्विज्ञैर्यावदायुष्यं स्वधर्मो नोज्झितो मनाक ॥
तान हि काकणिकालुब्धान लिखता 'भवता' कर ।
न कम्पितो न रुद्धो वा ह्येषोऽस्ति महिमा कले ॥[3]

"जिन विद्वानो ने काम, भय, लोभ, और प्राणो की रक्षा के कारण भी जीवन भर तनिक भी स्वयम नही छोडा, उनको कौडियो के लोभी लिखते हुए आप लोगो का हाथ कापा या रुका नही । यही है कलि युग की महिमा ।"

श्री प्रेमाचाय जी को तनिक भी सन्देह नही है कि माधव और उमाधव दोनो एक ही हैं । श्रुति ने भी इसी तथ्य को प्रतिपादित किया—

माधवोमाधवाभ्या या वतते श्रुतिसम्मता ।
तादात्म्यरूपता नात्र विचिकित्साऽलवाणिमा ॥[4]

श्री प्रेमाचार्य की वाणी से अपार आत्मविश्वास टपकता है । पितृभक्त पुत्र बीर घोषणा करते हुए कहते हैं—

शास्त्रार्थो न विभीषिका पितृकुले नोद्वेजको वाऽप्यसौ
वादेष्वेव हि बद्धकक्षवपुषा यात वयो नोऽखिलम् ।
कि त्वद्यावधि वेदधमरिपव समर्दिता प्रायशो
हहो सम्प्रति सम्प्रदायगुरवोऽभ्यर्च्या विपक्षाऽऽश्रिता ॥[5]

"मेरे पिताश्री के लिये शास्त्राथ कोई विभीषिका नही है, न ही उससे उन्हे उद्वेग होता

१ श्लोक ४९, पृष्ठ ३३ ।
२ श्लोक ५०, पृष्ठ ३३ ।
३ श्लोक ८४–८५, पष्ठ ३५ ।
४ श्लोक १०५, पृष्ठ ३८ ।
५ श्लोक ९३, पृष्ठ ३६ ।

है। हमने तो कमर कस रखी ह। हमारी तो सारी आयु ही शास्त्राथ मे बीती है। किन्तु अब तक प्राय हमने वेदधम के विरोधियो का ही मदन किया है पर वाह रे! आज प्रतिपक्षी बने सम्प्रदायाचार्यो की भी हमे 'पूजा' करनी होगी।

श्री अण्णङ्गराचाय के नाम को सस्कृत मे अनगारि रूप मे रखते हुए श्री प्रेमाचाय ने बहुत ही साहित्यिक ढग से उन पर चुटकी ली है। उन्होने कहा है कि आपके रग-ढग से आपकी वैष्णवता प्रकट नही होती, आप तो अनगारि शिव लगते है, कालकूट के कारण शिव नीलकठ है, आशीष उनका शरीर सर्पो से भरा ह, मस्तक पर अनग को भस्म करने के लिये निकली हुई अग्नि की ज्वाला है, सो आपका कण्ठ भी शिवद्वेषी वचनो के कारण मलिन (नील) ह। दुदप रूप सर्पो से आपका शरीर भी भरा है। दुर्दाम मात्सय रूपी अग्नि की ज्वाला आपके सिर पर भी घू घू कर जला रही ह—

शवद्वेषवचोगरेण मलिना कण्ठोपकण्ठप्रभा
[1]आचूड कवलीकृता तनुरहो दुदपकुम्भीनसै ।
मौलौ दुधरमत्सरानलशिला यावत्समुज्जृम्भते
तावद्वैष्णवता न किन्तु भवता जागत्यनगारिता ।

यद्यपि हरियाणा एक बहुत छोटा सा राज्य है तो भी जैसा कि प्रस्तुत सक्षिप्त परिचय से स्पष्ट है, अर्वाचीन सस्कृत साहित्य की इसकी देन सुतरा अभिनन्दनोय है। हरियाणा का सस्कृत साहित्यकार अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक है। अनेक विषम परिस्थितियो मे भी वह साहित्य सजना मे जुटा है। यह शुभ लक्षण है और उज्ज्वलतर भविष्य का परिचायक है।



१ कण्ठोपकण्ठप्रभा एव आचूडम मे स ध्यभाव चिन्त्य है।

हरियाणवी

कैलाश चन्द्र भाटिया

यद्यपि राजनतिक दष्टि से भारतवष के मानचित्र पर हिदी भापा भापी राज्यो मे 'हरियाणा राज्य की स्थापना अभी कुछ वप पूव ही हुई है, पर सास्कृतिक एव भाषिक दष्टि से 'हरियाणा' का महत्त्व अत्यन्त प्राचीन ह। हरियाणा का सीधा सवध प्राचीन 'कुरु' जनपद से है। डा० धीरेद्र वर्मा[1] ने प्राचीन जनपद के आधार पर इस प्रकार सम्बध स्थापित किया ह

प्राचीन जनपद	महाभारत के आधार पर	कुरु
महाजनपद	बुद्ध भगवान के समय मे मध्यदेश	कुरु
मध्यकाल के राज्य	मुख्य चीनी यात्री ह्वानसाग के आधार पर	स्थानेश्वर
सूबे और राज्य	मुसलमान काल मे। अकबर।	दिल्ली
वतमान बोलिया	वतमान स्थिति मे	खडीबोली तथा बाँगरू[2]

हरियाणवी का क्षेत्र वहुत विस्तीण ह। प्राचीनकाल का कुरुक्षेत्र ही आज इसकी सीमाएँ बनाता है। ग्रियसन[3] के अनुसार यमुना के पश्चिम की ओर दिल्ली के उत्तर तथा पश्चिम के क्षेत्र और दक्षिण पूर्वी पजाब[4] मे यह बोली प्रयुक्त होती ह। ऊपरी दोआब की यह स्थानीय हिन्दोस्तानी है जिसमे पजाबी और राजस्थानी का अधिक मिश्रण है। खडीबोली, अहीरवाटी मारवाडी तथा पजाबी से घिरा हुआ यह क्षेत्र पटियाला, नाभा, जीद से चलकर करनाल रोहतक होता हुआ दिल्ली तक फैला हुआ है। जिला रोहतक केन्द्र माना गया है जिसके पूव म खाददर, दक्षिण मे अहीरवाटी, दक्षिण पश्चिम मे शेखावटी, पश्चिम उत्तर में पछादधा और उत्तर तथा पूव में बागर क्षेत्र ह। जैसा कहा जा चुका है यमुना नदी इसकी पूर्वी सीमा बनाती है यही कारण है कि वादली और नरेला तक वस्तुत हरियाणवी ही है यद्यपि ये क्षेत्र हरियाणा राज्य मे नही है यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'हलवासिया' जी का जन्म स्थान 'भिवाणी' (भिवानी) 'हरियाणबी' की सीमा पर स्थित है जिसके पूव मे हरियाणवी है तो पश्चिम मे शेखावटी।

यमुना के साथ-साथ वाले प्रदेश को खाददर (खादर) कहते है, समीपवर्ती बरसाती जल से भरा हुआ भूमि खड 'डाबबर' कहा जाता ह। करनाल के समीप भूमि ऊँची-नीची है

१ डा० धीरेद्र वर्मा हिदी की बोलिया तथा प्राचीन जनपद, विचारधारा, १९५६ पष्ठ २५।

२ 'बागरू' हरियाणवी का ही उपरूप है और कुछ भाषाविद इसका पर्याय मानते है।

३ भारतका भाषा सर्वेक्षण, ग्रियर्सन, भाग ९, पष्ठ १४९।

४ आजकल पथक 'हरियाणा' राज्य है।

और यही क्षेत्र 'बागर' कहलाता है, बागर विशेप प्रकार की कुछ ऊँची भूमि को कहा जाता है जो बरसात मे नदी की बाढ मे भी न डूबे। इसके अनुसार यह स्थान 'बागर कहलाया जिसके आधार पर ही यहा की भाषा बागरू कहलायी। डा० अम्बा प्रसाद सुमन[१] के अनुसार 'जो भूमि बैगन की भाति ऊँची उठी हुई मालूम पडती थी, उसे 'वागड नाम मिल गया होगा, क्योकि देशज शब्द वग' का अथ बैगन ही ह। देशीनाममाला (७।२९) मे लिखा हुआ ह— वग वन्ताकम यही 'वग' शब्द स्वाथ ड' प्रत्यय के योग से 'वगड' हुआ और फिर बगड बागड बागर रूप मे विकसित हुआ। अत उस बागर प्रदेश की बोली 'बागरू' कहलाई।'

करनाल तथा निखन (पटियाला) के आस पास के स्थान इसके प्रमुख क्षेत्र है। पजाबी का विशेष प्रभाव ह जिसके फलस्वरूप अम्बाला[२] की बोली भिन्न हो जाती ह। जाटो की बोली होने के कारण 'जाटू'[३] नाम से भी अभिहित की जाती ह। हरियाणवी' नाम हरियाणा के आधार पर पडा ह। 'हरियाना' को हरियान', 'हरिण्यारण्य', हयरण्य (हरावन), हरया (उद्दण्ड पशु) से व्युत्पन्न किया जाता ह लेकिन डा० बाहरी[४] के मत से इसका विकास 'अहीर' से जिसे इस बोली म 'हीर' कहते ह, हुआ ह। आना का अथ स्थान या प्रदेश है जसे राजपूताना, तलिंगाना है। 'हीराना' अहीरो का प्रदश से हरियाना सिद्ध होता ह। अहीर या जाट इस प्रदेश मे है भी सबसे अधिक।'

यह बात भी नही भुला देनी चाहिए कि किसी राज्य की सीमाओ के साथ आवश्यक नही है कि तत्सबधी किसी भाषा की भी सीमा वही हो। वस्तुत ब्रज तथा राजस्थान के उत्तर मे छछरौली, अम्बाला, माडवी के दक्षिण की ओर जो लम्बा और चौडा समतल मैदान ही 'हरियाणा'[५] ह जिसको पश्चिम मे सतलज और पूव मे यमुना घेरे हुए है।

यह भी उल्लेख है कि खडीबोली (कौरवी) हरियाणवी की सीमावर्ती बोली ह। दोनो बोलिया पश्चिमी हिदी की उपभाषाएँ है, जाटो का बाहुल्य दोनो क्षेत्रो मे ह अतएव

१ हिदी और उसकी उपभाषाओ का स्वरूप, पृष्ठ ११९।

२ अम्बाला की बोली पथक हो जाने के कारण 'अम्बालबी' नाम से अभिहित की गई है। जनसख्या की दष्टि से 'बागरू के बाद इसका ही नम्बर आता है। यह पश्चिम मे पजाबी, उत्तर से पहाडी, पूव मे सहारनपुर की खडी तथा दक्षिण मे बागरू से घिरा हुआ क्षेत्र है। अम्बाला तथा पटियाला जिलो मे घग्गर नदी के पूव मे तथा करनाल की थानेसर तहसील मे बोली जाती है। इस बोली के विशेष अध्ययन के लिए डा० कृष्ण स्वामी का 'शोध प्रवव अम्बालवी', पजाब वि० वि० द्रष्टव्य है।

३ ई० जोजेफ की पुस्तक 'जाटू', बीइग सम ग्रैमेटिकल नोटस एड ए ग्लोसरी अव द लैग्वेज अव द रोहतक जाट्स का उल्लेख ग्रियसन ने किया ह।

४ ग्रामीण हिन्दी बोलिया, सन १९६६, पृष्ठ ५८।

५ "हरियाणा" राज्य घोषित किये जाने पर उसको कुछ राजनतिक सीमाओ मे बाधा गया है पर इधर चडीगढ को लेकर पुन उग्र विवाद खडा हुआ और तत्सबधी निणय से चडीगढ के स्थान पर पजाब का कुछ भू-भाग हरियाणा को प्राप्त हुआ है।

दोना भापाओ की 'सीमावर्त्ती बाली'[1] म जहा एक ओर हरियाणवी का रूप विद्यमान ह, वहा खडी का भी ह ।

प्रो० स्थाणुदत्त शमा न हरियाणवी बाली का विस्तार हरियाणा प्रदश की सीमाओ से पर भी इस प्रकार स्वीकार किया ह "पूव की आर यह यमुना नदी का पार करके मेरठ जिले मे अपना स्थान बना चुकी ह । वहा पर विशेप रूप स जाटा क परिवारा मे, हमे शुद्ध हरियाणई सुनन को मिलती ह । इस भापा का जितना घनिष्ठ सम्बन्ध हरियाण प्रदेश से ह सभवत उतना ही जाट लोगो से भी । यदि इस भापा का परिचय यो दिया जाय कि जिला रोहतक तथा उसके आसपास क जाटा की भापा को हरियाणई कहते ह तो सभवत ठीक मान लिया जाएगा । दिल्ली स दक्षिण पश्चिम की ओर नागलोइ, मे तथा इससे भी और आगे तक रहनेवाले जाट लोगो मे बठने पर शुद्ध हरियाणई सुनने को मिलेगी । पश्चिम दिशा मे ताशाम की पहाडी तक तथा इससे भी आगे तक एव उत्तर की ओर जिला करनाल के अतगत अरोड लोगो के ग्रामो तक यही भापा सुनने का मिलती ह ।"

इस प्रकार हरियाणवी का केन्द्र बिन्दु 'रोहतक' ही ठहरता ह । यह सयोग ही ह, कि अब तक किये गये कार्यो मे सबसे उल्लेखनीय काय कुरुक्षेत्र वि० विद्यालय के भाषा शास्त्र विभाग के अध्यक्ष डा० जगदेव सिंह का 'कागरू'[3] पर किया गया काय ह । प्रो० जगदेवसिह का सम्बन्ध भगवतीपुर से (रोहतक) ह । लेखक ने अपनी भापा को ही आदश भापा मानकर शोधकाय पूरा किया है ।

हरियाणवी का इतना प्राचीन सास्कृतिक महत्त्व होते हुए इस भापा मे साहित्य रचना नही की गई । जो कुछ भी लोक साहित्य मिलता है उसका कोई सग्रह नही किया गया ह । थोडे बहुत जो छोटे छोटे गीत सग्रह मिलते भी ह तो उनकी भाषा का स्वरूप ही बदल दिया गया है । आवश्यकता इस बात की है कि हरियाणवी मे प्राप्त साधु स तो की वाणियो तथा स्त्रियो के विविध प्रकार के गीत—जच्चा चैंतो, गणपत, सुहाग, जकडी, बनडा, खोडिया' सठजे आदि तथा साग-सगीतो को सग्रहीत किया जाय ।

ध्वनिग्रामीय दष्टि से 'हरियाणवी' की कुछ विशेषताए है । सामान्य बातो की ओर यहाँ ध्यान नही दिया जा रहा है ।

खडीबोली के दीघ स्वर—आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, के दो रूप हरियाणवी मे

१ अभी तक सीमावर्ती क्षेत्र का सर्वेक्षण तथा शोधकाय नही हुआ ह । इस प्रकार के सर्वेक्षण महत्त्वपूण होते है साथ मे रोचक भी । ब्रज तथा खडीबोली के सीमावर्ती क्षेत्र का सर्वेक्षण डा० मनोहरलाल गौड ने किया ह और अवधी तथा भोजपरी क्षेत्र का डा० अमरबहादुर सिंह ने किया ह ।

२ हरियाणे की भाषा, सप्तसिंधु, १९६५ ६६, पष्ट ११३ ।

३ डा० जगदेवसिंह ने यह काय सयुक्त राज अमेरिका मे रहकर सम्पन्न किया ह और पी–एच० डी० को उपाधि मिली ह । इसके कुछ अश (अनुवादित) सप्तसिंधु के कुछ अको मे प्रकाशित हो चुके है ।

मिलते है—दीर्घ तथा किंचित दीघ। सामा यत स्वत त्र रूप से इन स्वरो का उच्चारण दीघ है, पर सयुक्त व्यजनो से पूव कम दीघ रह जाता ह

आददर,
बेँस्सकणा, भैँसा
कोँटठा, गोँबबर,

यहा यह उल्लेखनीय ह कि कुछ क्षेत्रो मे द्वित्व तथा दो व्यजनो के युग्म से पूव स्वर ह्रस्व हो जाते ह, अट्टा, अदवा, भुक्का, भित्तर, गडडी, पुच्छा, आदि, पर हरियाणवी मे ये स्वर ह्रस्व तथा दीघ के मध्य बने रहते है। हरियाणवी की इस विशेषता पर यान्त्रिक प्रणाली से काय होना चाहिए। तब ह्रस्व दीघ तथा दीघतर रूप स्थिर हो सकेगे, साथ मे भौगोलिक सीमाएँ भी स्थिर करनी होगी। किस क्षेत्र मे किस प्रकार का उच्चारण मा य समझा जाता ह इसके भाषिक भूगोल के आधार पर मानचित्रो का निर्माण करना होगा।

ह्रस्व स्वरो के भी ह्रस्व तथा ह्रस्वतर भेद हो सकते है क्योकि द्वित्व से पूव स्वर और अधिक ह्रस्व हो जाते है, जैसे इँक्का कुँप्पा, आदि।

द्वितीय अक्षर पर बलाघात के कारण पर शब्द की आदि स्थिति मे ह्रस्व स्वरो का लोप भी हो जाता ह।

व्यजनो मे मूद्धन्य ळ' विशिष्ट व्यजन है जैसे, बादल, काला, पीळा, फल, फलटा बाळटी, चाळीस, ताळा, आदि। इस विशिष्ट ध्वनि के अथभेदक युग्म भी मिलने है।

खाल = चमडा
खाळ = बडी खाई
ळाली = रक्तिमा
ळाळी = भूसी
गाल = मुँह का दाया बाया भाग
गाळ = गाली

प्रो० स्थाणदत्त शमा[1] ने 'हाहँ ल गाहँ ल, मे हँ ल' एक विशिष्ट ध्वनि की ओर भी सकेत किया है।

'ण' का प्रयोग व्यापक रूप मे होता ह जैसे, मण, माणी, कूण, छालाणी, सोणा उठणा, बैठणा आदि। 'ड' 'ढ' के साथ 'ड' 'ढ' भी प्रयुक्त होते है पर खडीबोली से भि न रूप मे। सभी व्यजनो के महाप्राण रूप मिलते है रह ल्ह, लह व्ह, न्ह म्ह, यह आदि।

अल्पप्राणीकरण की प्रवत्ति भी पायी जाती ह, जैसे लोब। लोभ।

'ड' से पूव 'र' का आगम भी कुछ शब्दो मे मिलता है, जैसे, भिरड। भिड। रसडक। सडक।

१ प्रो० शर्मा ने इन विशिष्ट ध्वनियो के कारण ही 'हरियाणवी' के लिए भिन्न लिपि की जोरदार माग उठायी ह। भिन्न लिपि के स्थान पर आवश्यकतानुसार हरियाणवी की विशिष्ट ध्वनिया को नागरी लिपि मे ही जोडा जा सकता ह। 'ळ' तो जुड भी चुका है।

'ह ध्वनि के भिन्न उच्चारण विभि न क्षेत्रा नथा स्थितियो मे मिलते है। अक्षर के आदि मे तो यह व्यजन है, कि तु मध्य तथा अन्य स्थिति म उच्चारराही सुर मात्र ह, जसे ग्याह रा, चौह था। डा० जगदेवसिंह ने इसके घोप तथा अ गोप दो उपरूप स्वीकार किये है। उनके अनुसार पद के आदि मे स्वर के पत्र तथा धाप वर्णा के बीच 'गोप' रूप आता ह, अन्यत्र अघोप, जैसे

हार, राही—घोप
गोह पत्होर—अघोप

प्रो० स्थाणगुप्त शर्मा ने इसके क्षेत्रीय उच्चारणा की ओर भी ध्यान दिया ह। उनके मतानुसार,

'हरियाणे के सबसे उत्तरीय तथा सबसे दक्षिणीय भागो मे इसकी आवाज कुछ नुकीली सी एव सवृत कठ से निकलती हुई प्रतीत होती है। फिर ज्यो ज्यो केन्द्रीय हरियाणे की ओर आते जाते है, त्यो त्यो उसका नुकीलापन कम होता जाता है और साथ ही कठ भी सवत से शनै शनै विवत होता चला जाता है। एक बार अम्बाला, राजपुरा के पास वाले देहात का उच्चारण सुनिये, फिर कथेल, नरवाणे के आसपास का उच्चारण सुनिये और उसके अनन्तर रोहतक, महस, हासी, के समीप पहुचिये तब यह भेद स्पष्ट रूपसे प्रतीत हो जाएगा। इसी प्रकार रेवाडी से दादरी और फिर हामी, हिसार की ओर आने पर यह भेद देखा जा सकेगा। केद्रीय हरियाणे मे पहुचने पर 'कहदो' 'हली' आदि शब्दो के हकार की ध्वनि कम होते होते 'कहॅ दी' 'सहॅ ली' जैसी रह जाती है। इसीको हमने औरस्य ध्वनि कहा है।"

हरियाणवी के लोक साहित्य का अध्ययन किया जा चुका है। हरियाणवी की सास्कृतिक शब्दावली पर भी शोध प्रब ध स्वीकृत हो चुका है। आवश्यकता इस बात की है कि 'लोक साहित्य' का टेप पर सकलन किया जाय और उसे साहित्य को उच्चारणगत विशेषताओ को ध्यान मे रखते हुए विभिन्न चिन्हो की सहायता से लिपिबद्ध किया जाय। हरियाणा बहुत प्राचीन जनपद से सम्बद्ध है अतएव यहा की विशिष्ट लोक सास्कृतिक शब्दावली का एक सचित्र कोश तैयार किया जाय। ये सब काय अब सम्भव है क्याकि हरियाणा को पथक राज्य का स्थान प्राप्त हो चुका है।



१ डा० शकर लाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, हि० एकेडेमी, इलाहाबाद।

हरियाणवी कवियो की हिन्दी साहित्य को देन

देवेन्द्र सिंह 'विद्यार्थी'

हि दी साहित्य के विकास तथा सवधन मे हरियाणा का जो अमित योगदान रहा है उसका सामयिक अवलोकन अभी तक उपेक्षित सा रहा है। इस लेख के माध्यम से मैं इस योगदान की महत्ता एव व्यापकता का सक्षिप्त सा परिचय प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास कर रहा हूँ।

१ जैन कवि

यह सव विदित ह कि आदि कालीन हि दी काव्य का उदगम अपभ्र श के माध्यम से हुआ। अपभ्रश काव्य मे जैनधर्मा कवियो की गति विशेष थी। अत हम नि सकोच यह कह सकते है कि हरियाणा के प्राचीनतम कवि जि होंने हि दी साहित्य को समु नत किया वे जैनधर्मा थे।

इतिहास ग्रथो मे जिन आदिकालीन कवियो का उल्लेख हुआ है। उनमे कवि पुष्प या पुष्पदत का नाम आता है। जैन मतावलम्बी कवि पुष्पदत रोहतक के किसी निकट वर्ती गाव मैं पैदा हुए थे। इन की अब तक तीन रचनाएँ प्रकाश मे आ चुकी ह। 'तिसठि महा पुरिस गुणालकार'' बम्बई से श्री पी० एल० वैद्य द्वारा सम्पादित होकर ''श्रीमाणिकच द दिगम्बर जैन ग्रथमाला'' मे छप चुकी है। इसी ग्रथमाला मे इनकी दूसरी रचना ''जसहर चरिउ'' भी छपी ह। तीसरी रचना ''नाथ कुमार चरिउ'' का सम्पादन श्री हीरालाल जी ने करके इसे ''देवे द्र जैन ग्रथमाला'' मे प्रकाशित किया ह।

कवि पुष्प की गणना राज्याश्रयी कवियो के अतगत की जाती है। ।कन्तु यह चाटुकार बिल्कुल नही थे। इसके विपरीत इनकी ख्याति ''अभिमान मेरू'' के रूप मे पाई जाती है। स्वाभाविक है कि हरियाणावासी होने के नाते कुछ अधिक आत्मसम्मानावलम्बी हो। जीविका के दामो के बदले अपनी स्वतत्रता बेचना इन्हे न रुचा होगा और इनके ससम्मान जीवन को देखकर दूसरे राज्याश्रयी कवियो ने इन्हे अभिमानी मान लिया होगा।

कवि पुष्प की रचना मे ललित तत्त्व की प्रचुरता बताई गई है। यह उनके स्वभाव की सहृदयता का प्रमाण है। उनकी रचना में विरह का वणन अतिसु दर हुआ है, ऐसा आलोचको का मत ह। इस से उनके कवि चित्त की सूक्ष्मान्वीक्षणता तथा आद्र एव व्यापक सम्वेदना का पता चलता है। यह गुण उन्हे महाकवियो की श्रेणी मे ला खडा करता है।

कवि पुष्प का रचना काल ९९५ ९७२ ई० माना गया है। यह राष्ट्रकूट कृष्ण के सम कालीन कहे जाते है। शुक्ल जी ने इन्हे सम्वत १०२९ मे उपस्थित माना ह।

कवि पुष्प के बाद जिन कवियो का हमे पता चल पाया ह उनमे हरियाणा के कवि

बूचराज काफी प्रसिद्ध थे। डा० प्रेम सागर जैन ने अपने ग्रन्थ "हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि" में बूचराज की रचनाओं का विवरण इस प्रकार दिया है

१ "मयणा जुझ" में कामदेव और श्री ऋषभदेव का युद्ध वर्णन किया गया है। ऋषभदेव आत्म संयम से उसका मकाबला करते हैं। अन्त में जीत संयमी ऋषभदेव की होती है।

२ दूसरी रचना है "संतोष जय तिलक"। इस ग्रन्थ की रचना १५५१ के चौमासा में हिसार नगर में की गई थी इस तथ्य का उल्लेख ग्रन्थ में किया गया है।

"सतोषह जय तिलउ पभिउ हिसार नयर मझ मे" ।। १२० ।।

३ तीसरी रचना है "चेतन पुदगल ढमाल"। इस रचना में १३६ पद है। इस रचना द्वारा चेतन को विविध प्रकार से सावधान कर पुदगल की संगति से हटा कर चिदानन्द की भक्ति की प्रेरणा दी गई है।

४ चौथी रचना है 'टाडाणा गीत"। यह बणजारा जाति के लोक गीतो के ढग की रचना है।

५ पाचवी रचना है "नेमि नाथ वसतु" जिन मे श्री नेमिनाथ के अकस्मात वैराग्य लेने पर, प्रथम वसन्त आगमन के समय उनकी विरहिनी पत्नी राजोमती की मनोदशा का वर्णन है। इसी ग्रन्थ मे लिखा है कि कवि बूचराज मूल सघ के भट्टारक पदमनन्द की परम्परा में हुए थे।

६, छठी रचना का नाम है "नेमीश्वर का बारह मासा'। यह राजोमती की विरहावस्था का वर्णन है।

७ सातवी और अतिम रचना कवि के स्फुट पदो का सग्रह है।

कवि बूचराज के समान ही एक और जैन कवि है रूप चन्द पाण्डे। कवि रूप चन्द का समय १६८० से १६९४ तक रचना काल के रूप मे दिया गया है। यह कुरु प्रदेश मे सलेमपुर नाम के गाँव में उत्पन्न हुए थे, ऐसा इनकी रचनाओ मे उपलब्ध अन्त साक्ष्य से सिद्ध होता है। इनके पिता का नाम भगवान दास बताया गया है। यह जाति के अग्रवाल बनिया थे।

इनकी रचनाओ के निर्माण काल का सुस्पष्ट उल्लेख उपलब्ध प्रतिया के आधार पर निश्चित कर सकना सम्भव नही। इन्होने अपने जीवन वृत्त के विषय मे भी कुछ अधिक सूचना नही दी।

उपलब्ध रचनाओ के नाम इस प्रकार दिये गये है —

परमार्थी दोहा शतक (अन्य नाम रूप चन्द शतक), गीत परमार्थी मगल गीत प्रबन्ध, नेमिनाथ रासा, लघु, मगल, खटोलना का गीत, सोलह स्वप्न फल, जिन स्तुति।

इसी शताब्दी के एक कवि आनन्दघन का भी उल्लेख मिला है। कवि आनन्दघन का दूसरा नाम लाभानन्द भी बताया गया है। इनका जीवन वृत्त सुलभ नही। किन्तु यह १६८० से १७४५ सम्वत तक विद्यमान रहे ऐसा इनकी रचना के आधार पर अनुमान किया

गया है। यह सिरसा के आसपास पास किसी गाव के थे। यह भी अग्रवाल जानि के वनिया ही थे।

कवि लाभान्द अथवा आनन्दघन न जन तीथङ्करा के स्नवन म एक ग्र थ 'आन्द घन बहत्तरी स्तवावली" लिखा था।

बूडिया के बासल गोत्रीय अग्रवाल कवि भगवतो दास ने २५ का थ ग्र थ रचे थे। यह भट्टारक महेन्द्र सेन के शिष्य थे।

मुनि हेम विजय रचित "पद नेमि नाथ के तथा भट्टारक रत्नकीर्ति के भी फुटकर पदो के सग्रह मिल जाते है। यह भी इसी प्रदेश के सुपुत्र कहे जाते है। मुनि आत्माराम, कवि नत्थमल्ल तथा कवि डेढराज भी जैन कवि परम्परा से ही सम्बन्धित कहे जाते है।

२ सूफी कवि

हरियाणा मे बहुत से सूफी कवि भी हुए ह। उन म सब से पहले १३वी शताब्दी के प्रमुख सूफी कवि फरीद का नाम सामने आता ह। फरीद साधारणत पजाबी की उपभाषा लहदा के कवि माने जाते ह किन्तु उन्होंने हिन्दी को भी अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप मे अपनाया था। शेख फरीद के दीक्षा गुरु दिल्ली क ख्वाजा कुतुबुद्दीन कहे जाते है। ख्वाजा साहब ने शेख फरीद को कुछ समय के लिए सिरसा हासी की पीरी की वलायत पर नियुक्त किया था। ख्वाजा साहब का वसाल जिस समय हुआ था शेख फरीद उस समय हासी मे ही उपस्थित थे। यही के लोगो की अपने मे अधिक अनुरक्ति देख कर, इस भय से कि कही उपासको की अतिरजित रागात्मक भावना उन्हे अहम यता का शिकार न कर दे आप पाकपटन आ गये थे।

शेख जी की हिन्दी रचनाएँ सम्भवत उनके सिरसा, हासी और दिल्ली वास के दिनो की ही कृतिया है। गुरु ग्रथ साहब म शेख फरीद के दा पद भी है। जहा फरीद जी के श्लोक लहदा भाषा मे हैं वहा पदो की भाषा पर हिन्दी की छाप स्पष्ट ह। कुछ अन्य सग्रहो मे फरीद की हिन्दी प्रधान कृतिया भी मिलता है। किन्तु इन रचनाओ की प्रामाणिकता अभी सदेह का विषय ह और स्वतन्त्रान्वीक्षण की अपेक्षा रखता ह।

शेख फरीद के बाद हरियाणा के सूफी फकीरा मे दूसरा पमुख नाम शेख शरफुद्दीन पानीपती का ह। यह हजरत शेख बू अली शाह कलन्दर के लकब से प्रसिद्ध थे। शेख शरफुद्दीन बू अली शाह कलन्दर के पूवज ईरान से आकर पानीपत म बसे थे। इनके घराने की भाषा फारसी थी। भारत के जन्म जात हाने से शेख जी का नित्य प्रनि के प्रयाग हिन्दी भाषा का व्यावहारिक ज्ञान हो गया था अत फारसी के साथ साथ आप हिन्दी मे भी कविता करते थे।

लोक मे इनके अनेक दाहे प्रसिद्ध ह। किन्तु अभी तक आप का रचा कोई ग्रथ देखने मे नही आया और न ही आप के दोहा का कोई सग्रह ही मिल पाया है। इनकी रचना का लिखित सूत्र तथा मौखिक स्रोत द्वारा सककित यदि कोई सकलन प्रस्तुत किया जा सके तो तत्कालीन भाषा विकास तथा भावा के ऐतिहासिक स्वरूप का अध्ययन करने वालो के लिए

बन्‍े महत्त्व की वस्तु सिद्ध होगा। दिल्ली के बादशाह गयासुद्दीन तुगलक को आप पर बहुत श्रद्धा थी। उसने अपने पुत्र शाहजादा मबारक को शिक्षा दीक्षा पाने के लिए इनकी सेवा मे भेजा था।

शेख ब अली शाह कलन्दर के पीछे इसी इलाके म बसन वाले एक दूसरे मुसलमान फकीर शेख जमालुद्दीन हासवी थ। यह भी नसल स ईरानी थ। शेख जमाल अपनी रचना मे उस प्रकार हि दी का रचा नही पाए जिस प्रकार कि शेख बू अली कलन्दर। सम्भवत इनका ज म और लालन पालन भारत म नही हुआ था अत हि दी इ होने मा के दूध साथ नही प्राप्त की थी। इनकी रचना मे हिन्दी और फारसी की शब्दावली अलग अलग एक ही छ द के एक ही चरण मे क धा से क धा जुटा कर चलती दिखाई देती ह। तुक का पहला आधा हिस्सा तो फारसी म मिलता ह और अ त का आधा अश हिन्दी मे। तुकात का अनु प्रास तो सवत्र हि दी म प्रयोग किया मिलता ह। यह ढग भारतीय मुसलमान लेखको को अमीर खुसरो की देन समझा जाता ह।

शेख जमालुद्दीन अपनी काव्य छाप 'जमाली' करते थे। इनका रचा काई ग्रथ अथवा काई सपादित सग्रह नही मिला ह। जहा तहा पुराने घराना म सग्रहीत सूफी कवियो की वाणी के साथ साथ इनक भी कतिपय छन्द मिल जाते हैं। इनकी रचना का छ द विधान गजल की परम्परा के अनुसार ह। शेख जमाली बादशाह हुमायुँ के समकालीन बताये जाते हैं।

इनके बाद कवि मुहम्मद अफजल कादरी का नाम आता है। अफजल कादरी ने दक्खन के किसी मीरा शाह मारूफ से सम्पक किया और सूफी पथ मे आ गए। यह मीरा शाह मारूग की ही महीउद्दीन कादरी के बेटे या खलीफे थे और इन्होने मुहम्मद अफजल की सपुदगी अपने एक खलीफा मुहम्मद सुलतान को सौपी थी। यह समाचार हमको मुहम्मद अफजल की दक्खिनी मे लिखी रचना 'महीउद्दीन नामा' से प्राप्त होते हैं। 'महीउद्दीन नामा की एक प्रति हदराबाद के अदारा ए-अदबियाते उदू के सग्रह मे सुलभ है। उनकी रचना 'बिकट कहानी' (१७२० ई०) की एक प्रति जो ११०३ हिजरी की लिखी है एडनबरा विश्वविद्यालय के सग्रहालय मे ह तथा दूसरी प्रति फारसी लिपी मे लिखी हुई हैदराबाद के पूर्वोक्त सग्रहालय मे ह। 'महीउद्दीन नामा' का पता पहली बार यूरूप मे ही मिला था। ब्रिटिश म्यूजियम तथा इण्डिया आफिस मे इस रचना की प्रतिया सुरक्षित है। बलूमहाट की सूची मे पहली बार इस रचना का उल्लेख हुआ था। अफजल रचित मर्सियो का पता 'यूरोप मे दक्खिनी मखतूतात" नाम की रचना मे दज ह।

इनके अतिरिक्त हरियाणा मे सूफी कवियो की एक खासी अच्छी परम्परा चली आयी है। किन्तु इन लोगों की न तो रचनाएँ ही सुलभ ह और न इनके जीवन वत्त ही मिलते है। तो भी इनका कुछ न कुछ उल्लेख कतिपय ग्रन्थो मे मिल ही जाता है। ऐसे एक कवि है शेख बहाउद्दीन चिश्ती। वे ऐसे बजुर्गो मे से थे जो जीवन भर कही एक जगह के होकर नही रहते बल्कि घूम फिर कर मानवता का शुभ स देश सब तक पहुँचाना अपना आदश रखते है। यह सरहि द, हासी, हिसार, रोहतक पानीपत आदि शहरो मे वर्षो रह कर एकता तथा

सौन्दर्योपासना का प्रचार करते रहे थे। रोहतक के मुल्ला अनवर तथा पानीपत के शेख अल्ला दाद इनके गुरु थे। शेख बहाउद्दीन कुछ दिन उत्तर प्रदेश, बिहार, गुजरात तथा दक्खिन मे भी रहे थे। इ हे रागविद्या से प्रेम था। कव्वाली की महफिले, यह जहा भी जाते, जमती ही रहती थी। आप भी भारतीय सगीत विद्या मे निपुण थे। इनकी रचना राग-रागनी के ही पदो के अ तगत मिलती ह।

राहतक के शेख गुलाम कादर जीलानी इस पीढी के अन्तिम प्रसिद्ध सूफी कवियो मे थे जिनकी लडी शेख फरीद तथा शेख बू अली कल दर से आरम्भ हुई थी। बचपन इनका अपने मामा के यहा बीता जो कि धार्मिक प्रवत्तियो क बजुग थे। अत बालक गुलाम कादर के मन पर उनके साधु स्वभाव की गहरी छाप पडी। युवावस्था मे, कुछ दिन जीवन यापन की दष्टि से गुलाम कादर ने शाही फौज मे नौकरी कर ली थी किन्तु नौकरी का ब धन उस से बहुत दिनो निभाया न गया और वह फकीर हो गया।

फकीर हो कर गुलाम कादर जीलानी फिरके म दीक्षित हुआ। फकीरी मे इ होने घोर तपस्या का माग अपनाया। अल्पाहार की साधना मे अपना दैनिक आहार केवल ११ तोले भर अनाज तक घटा लिया था। लोगो मे इनके नाम के साथ अनेक सिद्धिया जुडी हुई ह। कि तु ये करामात दिखाना पसद नही करते थे। इनके प्रभाव मे आकर बहुत लोगो ने इसलाम ग्रहण किया था तो भी यह गैरमुसलिमो को किसी प्रकार हेय या सकीण दष्टि से नही देखते थे। इ होने दो बार हज यात्रा की थी।

इन की रचना का कोई ग्रन्थ विशेष देखने मे नही आया, न कोई अच्छा सग्रह ही मिलता है। जहा तहा लोगो के घरो मे मिलने वाले फुटकर सकलनो मे इन के रचे छन्द भी मिल जाते है। इनके छन्दो को लोग चौपाइयाँ कहते है कि तु छन्द की दष्टि से उन्हे किसी प्रकार भी चौपाई छ द मे नही गिना जा सकता।

शेख मूसा, शेख नसीरुलहक्क आदि इस परम्परा की अ तिम कडिया कही जा सकती है। इनके बाद सूफी कवियो की हिन्दी रचना कट्टरता की मरुभूमि मे खा गई।

३ सतनामी कवि

सूफी कवियो के अतिरिक्त सतनामी कवियो ने भी हि दी साहित्य को महत्त्वपूण योग दान दिया है। सतनामियो ने १६७२ ई० मे औरगज़ेब की कट्टरपथी नीति के विरोध मे सशस्त्र टक्कर ली थी। रणक्षेत्र मे इनके २,००० वीर खेत रहे थे।

सतनामी विचारधारा मे न तो मूर्तिप्जा को स्थान है और न जातिगत भेद भाव का ही चलन है। सभी सतनामी आपस मे भाई भाई का सा व्यवहार करते है। सभी एक साथ खान पान कर सकते है और बिना किसी भेद भाव के रिश्ते नाते बना सकते है। ये लोग सिर पर बाल या चोटी आदि बिल्कुल नही धारण करते अत इस कारण मुडिया भी कहे जाते है। जात-पात छोड इनके यहाँ हिन्दु-मुसलिम का भी कोई अन्तर नही किया जाता।

सतनामी पथ के केन्द्र दिल्ली, रोहतक, आगरा, फरुखाबाद, जयपुर और मिर्जापुर में है। इस पथ के आदि प्रवर्तक वीरभान तथा दूसरे जगजीवनदास तथा दूलनदास माने जाते हैं।

इस पंथ के प्रवर्तक श्री बीरभान का जन्म नारनौल के बिजेसर ग्राम मे, सम्वत १६०० मे हुआ था। ये दादू के समकालीन थे और [illegible] की परम्परा मे ऊधोदास के शिष्य थे। [illegible] थे। इनकी वाणी पंथ की धर्म पुस्तक "पोथी" मे संग्रहीत है। पोथी को सतनामियो के मन्दिरो मे सिक्खो के गुरु ग्रन्थ साहब के समान ही पूर्ण सत्कार के साथ रखा जाता है। चौकी पर से ही इसे पढ़ा जाता है। इस पोथी की अनेक शिक्षाओ मे १२ हुक्म प्रधान है जिन्हे "आदि उपदेश" की संज्ञा दी जाती है।

बीरभान जी के सहोदर जगजीवनराम भी उत्तम कवि थे। उनकी वाणी भी पोथी मे शामिल मानी जाती है। इनका नाम कुछ लोग जोगीदास भी बताते है।

४ सन्त कवि

सत कवियो मे सबसे प्रसिद्ध सत निश्चल दास हुए है। ये जिला हिसार के कूँगड ग्राम मे एक जाट के घर पैदा हुये थे। बचपन मे ही इनके मन मे लालसा हुई कि वह सस्कृत सीख कर धर्म ग्रथो का अध्ययन करे। कि तु जाट का बेटा था इसलिए ब्राह्मणो ने इन्हे पढानेसे इनकार कर दिया। बाह्य स्वरूप मे अब्राह्मण नही दीखता था अत उसने काशी जाकर अपने को ब्राह्मण का बेटा बता कर सस्कृत की शिक्षा प्राप्त की। और वह भी इस हद तक कि वह स्वय अभिमान से कह उठा—

> सारय याय मे श्रम कियो पढि व्याकरण अशेप।
> पढे ग्रथ अद्वैत के रह्यो न एकौ शेप।
> कठिन जो और निबन्ध है जिनमे मत के भेद।
> श्रम ते अवगाहन कियो निश्चल दास सवेद॥

कहते है कि इनकी बुद्धिमता से प्रसन्न होकर एक ब्राह्मण ने इन्हे अपनी पुत्री का दान करना चाहा परन्तु निश्चल दास ने अपना रहस्य खोल दिया। ब्राह्मण देवता ने नाराज होकर शाप दिया कि तुम्हारी दो शादियाँ होगी।

गृहस्थी से कब और किस की प्रेरणा से यह दादू के पथ मे प्रविष्ट हुए, इसका सप्रमाण कोई उल्लेख नही मिलता। अपने गाव मे ही रहकर यह वेदान्त का उपदेश देने लगे। बूँदी नरेश रामसिंह जी इनसे दीक्षित हुए थे।

इनकी रचनाएँ 'विचार सागर', 'वृत्तिप्रभाकर' तथा 'मुक्ति प्रकाश है। "विचार सागर" मराठी, बगला तथा अग्रेजी मे अनूदित मिलता है। स्वामी विवेकानन्द ने विचार सागर' के विषय मे कहा था कि यह भारत के अन्तगत गत तीन शताब्दियो मे लिखे गये किसी भी भाषा के ग्रन्थ से अधिक प्रभावशाली है।'

इनका जन्म १७६० मे तथा निधन १८२० मे हुआ बताया जाता है। स्वर्गवास के समय आप किहडौली गाव मे थे।

रोहतक जिले के छुडानी गाव के साधारण जाट घराने मे सम्वत १७७४, बैशाख सुदी १५, को जन्मे गरीबदास भी प्रसिद्ध कवि हुए है। उनकी शिक्षा दीक्षा औपचारिक ढग से कभी नही हुई। छोटी अवस्था मे गाव के अन्य समवयस्क बालको के समान यह भी ढोर चराने जाया करते थे। जहा कोई साधु सन्त मिलता यह बालक तन मन से उनकी सेवा

करता था। कहते ह कि ऐसे ही उसे एक दिन भक्त कबीर ने साक्षात दगन दे कर अपना शिष्य बना लिया। अपनी वाणी मे गरीबदास कबीर को ही अपना गुरु मानते हैं।

"दास गरीब कबीर का चेरा, सत्तलोक अमरापुर डेरा।"

कि तु शारीरिक रूप से तो कबीर का मिलन सम्भव नही हो सकता था अवश्य यह भावना का मिलन होगा।

इनका रचना का नाम 'हिवर बोध' ह। इसमे २४ ००० पद कहे जाते थे किन्तु आज कल ७ ००० से अधिक नही मिलते। उपलब्ध वाणी मे साखी सवया रेखना झूलना अरिल्ल, बैंत, रमैनी, आरती और अनेक प्रकार के राग ह। कबीर की रचना के ढग पर ही गरीबदास की रचना भी बहुमुखी ह। भाषा के विपय मे भी इनके प्रयोग बहुरूपी ह। अरबी फारसी, पजाबी, राजस्थानी बागरू आदि के शब्द उमुक्त भाव से प्रयुक्त हुए हैं। अध्यात्म वाद की दष्टि से भी गरीबदास की वाणी कबीर की वाणी के बहुत निकट आ जाती ह। 'सदगुरु' और 'स्मरण' पर गरीबदास की वाणी मे बहुत जोर दिया गया ह।

गरीबदास सुखदेव मिश्र के शिष्य चरणदास के समकालीन थे। यह घर ही माहि उदास" की विचारधारा के पक्षधर थे। इन्होने अपने गाव ही मे घर गहस्थी का जीवन विताते हुए अपने सिद्धान्तो का उपदेश दिया था। १८३५ मे छुडाणी गाव म ही जीवन लीला समाप्न की। इनके जूते, लोटा, कटोरा तथा पलग आदि अभी तक मठ मे सुरक्षित है। प्रति वष इनकी स्मति मे मेला लगता है।

ऐसे ही एक सन्त सन्तदास जी के शिष्य सन्त चतुरदास हा गए ह, जिन्होने अपने गुरु की आज्ञा से श्रीमद भागवदगीता के ग्यारहवे अध्याय तथा श्रीमदभागवत के दशमस्कन्ध का भाषानुवाद किया था। यह अनुवाद सम्वत १६५२ मे हुआ था।

५ निमला सत कवि

कुरुक्षेत्र निमला सन्तो का अच्छा खासा केन्द्र रहा है। इसी जगह पर एक माननीय सन्त मानसिंह थे। इनके शिष्य गुलाबसिंह का इस क्षेत्र के साहित्यिक तथा सास्कृतिक विकास मे पर्याप्त योगदान रहा ह।

सन्त गुलाबसिंह का जन्म तो पजाब के सेखो नाम के गाव मे हुआ था, किन्तु इनका कायस्थल कुरुक्षेत्र ही रहा, जहा इनके गुरु सन्त मानसिंह जी का निवास था। सन्त गुलाब सिंह की माता का नाम गौरी तथा पिता का नाम राईया था यह उनके अपन ग्रन्था के अन्त साक्ष्य से सिद्ध होता ह। सन्त गुलाब सिंह विद्या अध्ययन के लिए काशी भी गए थे।

इनकी रचनाओ की सख्या २५ के ऊपर कही जाती ह, किन्तु अभी तक केवल 'भावरसामृत', 'मोखपन्थ प्रकाश' 'प्रबोध चन्द्र, स्वप्न अध्यायी, 'रामगीता' तथा 'रामहृदय, ही मिली ह। इनकी भाषा प्रौढ तथा रचना प्राजल ह।

सन्त आत्मासिंह थानेसर के सन्त रामसिंह जी के शिष्य थे। इनका जन्म कहा हुआ था तथा माता पिता का नाम क्या था, इसका कुछ भी पता नही मिलता। किसी ग्रन्थ सूची तथा किसी साहित्य के इतिहास ग्रन्थ मे भी इनके बारे मे कोई सूचना प्राप्त नही होती।

केवल इनका रचा एक ग्रन्थ 'वेदा त प्रश्नोत्तर माला' हमारे निजी सग्रह मे है। परे ग्र थ मे कुल २६८ छन्द है, जिनम वेदान्त के विषय मे प्रश्नोत्तर पद्धति से चर्चा की गई है।

स त आत्मा सिंह कविता म अपना नाम 'जि द मृगेश' और 'जीवमृगेन्द' भी रखते थे।

कुरुक्षेत्र के निकट एक गाँव है ढट्टी। इस गाँव म गुरु तेगबहादुर जी की पुण्य स्मृति मे एक गुरुद्वारा है। और इस गुरुद्वारा के पुजारी थे निमला स त भाई उज्जवल सिंह। इनकी दो रचनाएँ मिलती है। पहली रचना ह श्री गुरु नानक नारायण ध्यान' ओर दूसरी का नाम है, 'आत्मा अनात्मा विवेक। श्री गुरु नानक नारायण ध्यान मौलिक रचना ह और सम्वत १९१० मे लिखी गई थी। 'आत्म अनात्म विवेक' सस्कृत से अनुवाद की गई ह और १९११ मे अनूदित हुई थी।

६ दरबारी कवि

हरियाणा मे कुछ दरबारी कवि भी हुए है। उनमे सब से पहले कैथल वासी राजा जुगल किशोर भट्ट का नाम आता है। यह दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह रगीले के बडे मुसाहबों मे से थे। बादशाह ने इन्हे राजा की उपाधि से विभूषित किया था तथा काफी जागीर भी दी थी। इनके अपने कथनानुसार इनकी सभा मे चार कवि जन रहा करते थे। अपने आश्रित कवियो के नाम राजा जुगलकिशोर ने इस प्रकार गिनाए है।

१ रुद्रमणि ३ सुखलाल ३ सन्तजीव और ४ गुमान कवि।

इनका रचा अभी तक केवल एक ग्रन्थ 'अलकार निधि' मिला है। इस ग्र थ की रचना १८०५ मे हुई थी।

इस ग्रन्थ मे ९६ अलकार उदाहरण समेत वणन किए गए है। कवि ने अपने वश के बिषय मे भी सूचना दी है

ब्रह्म भटट ही जाती को निपट अधीन नदान।
राजा पद मो को दियो महमद शाह सुजान ।१।
कैथल जन्म स्थान है दिल्ली है सुखवास।
जा में विविध प्रकार है रस को अधिक विलास।५।

बावल नगर के कवि मुकुन्ददास महाराजा कर्मसिंह पटियाला नरेश के आश्रित थे। इनका रचा एक ग्र थ 'रस शिरोमणि' अथवा 'रसिक शिरोमणि' तथा दूसरा 'सव सग्रह' मिला है। इसमे से 'रस शिरोमणि' ग्रन्थ के आरम्भ में कवि ने अपना परिचय दिया है—

आदि गौड द्विज वस मे मुद्गिल गीत सुजान।
कवि मुकद इहि नाम निज बावल नगर सुथान।२१।
ग्रन्थ की रचना राजा कम सिंह के आदेश पर १८४९ वि० मे हुई थी।

कैथल नगर मे ही महाकवि भाई सतोषसिंह रहते थे। उन्होने एक लाख से भी अधिक छद रचे है। यह कैथल अधिपति राजा उदयसिंह के आश्रित थे। और यही इन्हे तीन गाव, जागीर मे, राजा ने दिये थे। यह जागीर उनके स्वगवास तक रही। कवि

सतोषसिंह का जन्म १७८८ सम्वत मे अमतसर के निकट एक गाव 'सराए नूर दीन' में हुआ था। इनके पिता का नाम देवासिंह तथा माता का नाम राजो था।

सम्वत १८२१ मे आपने 'अमर कोष' का भाषा-अनुवाद प्रस्तुत किया और १८२३ मे 'नानक प्रकाश' की रचना कर ली। 'नानक प्रकाश' शीघ्र ही लोक प्रिय हो गया था। इनके काव्य गुण तथा पाण्डित्य की चचा सुन पटियाला के काव्य मर्मी राजा कर्मसिह इन्हे सादर अपने यहा लिवा ले गए। किन्तु पटियाला का वातावरण इ हे बहुत देर बाध नही पाया। पटियाला मे रह कर इन्होने 'आत्मपुराण' का भाषानुवाद किया था।

सम्वत १८२१ मे कैथल नरेश राजा उदयसिह महाराजा पटियाला से मिलने आए तो जाते समय कवि सतोषसिह जो भी साथ लिवा ले गए। कैथल मे कवि का मन रम गया फिर वह जीवन पयन्त वहा से उठ कर कही और नही गये।

इन्होने १८२९ मे 'जपुजी' पर 'गवगजनी नाम से टीका १८३१ ३३ मे 'बाल्मीकीय रामायण' का भाषानुवाद नथा १८०५ मे अपनी महान् कृति 'गुरु प्रताप सूय' की रचना की। 'गुरु प्रताप सूय' समाप्त होने के थोडे ही समय पीछे आप की इहलोक लीला भी समाप्त हो गई।

लाडवा भी मैणद्वाब की एक छोटी सी रियासत थी। इन रियासतो को अग्रेज़ी अमल दारी ने अधिकार च्युत कर दिया था और यह मामूली जागीरदार मात्र रह गए थे। यहा के एक रईस थे टीका निहाल सिंह जी। इनके आश्रय मे रह कर कवि बठासिह, तथा कवि उज्ज वल सिंह ने 'राम कथा' तथा 'कृष्ण चरित्र' आदि स्वागो की रचना की। स्वागो की यह रचना रासमडी वालो के स्वागो के अनुकरण पर हुई है। स्वाग के ढाचे मे लोक-गीतकारो की रचना रीति सफल हो सकती है, यहा उत्कृष्ट साहित्यिक भाषा और रचना शैली के लिए गुजायश नही। अत रचनाओ का स्तर साधारण ही कहा जा सकेगा, फिर भी कलात्मक गुण से सवथा शून्य नही। राम कथा पर तो स्वाग रचना का यह इस क्षेत्र मे पहला ही प्रयास देखने मे आया ह। कवि वग्गासिह अपना काव्य उपनाम 'सफेद केहरी' रखते हैं। और कवि उज्ज्वल सिंह की काव्य छाप कवि 'ओ हरि' है। कवि उज्ज्वल सिंह ने अपने गुरु का नाम सन्त वीरसिह लिखा है। कवि बग्गासिह राम कथा का स्वाग रचने वाले है और कवि उज्ज्वलसिह ने दो स्वाग रचे है एक कृष्ण कथा परक ह तो दूसरा ज्ञान गुटका' नाम से वेदा त पर आधारित है। इन रचनाओ का रचना सवत् १८८९ बताया जाता है। अपनी किसम की एक मात्र रचनाऍं होने से राम कथा तथा ज्ञान गुटका का एक विशिष्ट स्थान है। इन रचनाओ का अध्ययन लोक काव्य तथा नागरिक काव्य के बीच का अन्तर समझने समझाने मे बहुत सहायक हो सकता ह।

दादरी के शम्भुदयाल जीद दरबार के आश्रित थे। यह जाति के गौड ब्राह्मण थे और महाराजा रणबीर सिंह जीद-पति के साथ शतरज खेलने पर नियुक्त थे। इनको कविता करने का भी चसका था और रागविद्या से भी प्रेम था अत यह राग रागनी के पदो में रचना करते थे। इन्होने १९५९ सम्वत मे रुक्मणी मगल की रचना की थी। इनके एक मित्र ने, जिनका नाम यह मूलचरण लिखते ह, इनकी इस रचना को इनके अपने शहर दादरी मे ही कथा के

रूप मे बाचा भी था। यह कवि के लोकप्रिय होने की दलील है। ग्रन्थ एक बार लीथो पर सं० १९६७ मे दिल्ली मे छपा भी था। हमने उसकी छपी हुई प्रति [illegible] डिस्ट्रिक्ट लायब्रेरी मे देखी थी। छपाई अच्छी नही होने से अत आरम्भ के दोनो [illegible] ही नही जाते।

दादरी के ही कवि मनमोहन भी राजा रणबीरसिंह के आश्रित थे। वस्तुत मनमोहन जी सितारिया थे और महाराज को सितार सिखाने पर नियुक्त थे। समय समय पर कभी कभी छन्द रचना भी कर लेते थे। इनका रचा केवल एक ग्रन्थ बताया गया है। रचना का नाम 'रणबीर प्रकाश' है और इसमे महाराजा के यश के ही छन्द है, कुछेक स्फुट छन्द भी है।

७ कुछ अन्य कवि

महाकवि तुलसीदास जी के शिष्य कवि आनद राय कोक विद्या पर लिखने वाले हरियाणवी हिन्दी कवियो म अग्रणी थे। उनके रचे 'कोक मजरी' तथा 'आसन मजरी' ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध रहे है। इन्द्रजाल तथा सामुद्रिक शास्त्र पर भी आपने 'बचन विनाद' नाम का एक ग्रथ रचा था। एक ग्रन्थ आपका काव्य दूषणादि के विषय मे भी मिलता है।

अपने विषय की इन्हे पर्याप्त जानकारी थी। अपनी रचना 'कोक मजरी' मे इन्होने लिखा है

"कायथ कुल आनन्द कवि वासी कोट हिसार।
कोक कला इति रुचि करन जिन यह कियो विचार।"

और अपने ग्रन्थ "बचन विनोद' मे आपने गुरु के विषय मे सूचना दी है —

"नमो कमल दल जमल पग श्री तुलसी गुरु नाम।
प्रगट जगत जानत सकल जह तुलसी तह राम ॥२॥"

इस उद्धरण को देख कर कोई सन्देह नही रह जाता कि कवि आनन्दराम के गुरु रामचरित मानस के रचयिता तुलसी ही थे कोई अन्य तुलसी दास नही।

कोकमजरी ग्रन्थ मे रचना सम्वत का उल्लेख करते समय लिखा है —

"ऋतु बसन्त सम्वत सरस सोरह सौ अरु साठ
'कोक मजरी' यह करी धम कर्म कर पाठ ॥

'कोक मजरी' की रचना कवि के प्रकाशित सम्वत उल्लेख के अनुसार १६६० मे थी। हुई 'वचन विनोद का प्रतिलिपिकाल १६७९ है और शिव सिंह सेगर ने इन्हे १७११ म उपस्थित कहा है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि कोकमजरी कवि आनन्द राय की युवा अवस्था की रचना है। कवि का जीवन वत्त ज्ञात नही। कोकमजरी की रचना के समय यदि उनकी आयु के बीस पच्चीस साल हुए हो तो उनका जन्म १६३५ ४० के लगभग माना जा सकता है। और अगर वे १७१५ तक भी जीवित रहे मान लिए जाएँ तो उनकी आयु ८० वष के करीब बैठती है, जो अनुचित नही।

घरौडा के कवि हृदय राम मिश्र, कवि भानु दत्त कृत 'रस तरगिणी के भाषानुवाद के लिए विख्यात है। 'सुदामा चरित्र' तथा 'धम समाध' नाम की इनकी दो रचनाएँ और कही

जाती है। 'रस तरगिणी' के इनके द्वारा किये गए अनुवाद का नाम ग्र थ मे ही 'रस रत्नाकर' भी लिखा ह। इस ग्र थ का रचना काल १७३१ वि० बताया गया ह। 'रस रत्नाकर' के आरम्भ मे ही कवि ने अपना परिचय दिया ह —

गौड दस ते आने के बसे सब कुरुखेत,
विप्र गौड हरियानिया कहै जगत इह हेत ॥

'रस रत्नाकर' की रचना कवि के कथनानुसार कृष्णदत्त के पठनाथ हुई थी —

'भानुदत्त कृत सस्कृत रस तरगिनी भाई
कृष्ण दास के पढन का पोथी करी बनाई' ॥६०॥

यह कृष्ण सम्भवत इनत्र पुत्र थे अ यथा कोई प्रिय शिष्य। इन कृष्णदास का एक ग्रन्थ भागवत दशम स्क ध' भाषा मे मिलता ह जिसका एक प्रति का लिपी काल १८२३ वि० दिया हुआ ह।

विनोद मे जिला हिसार के एक माधौदास कायस्थ नागौरा का उल्लख मिलता ह। माधोदास का कविता काल १८३७ वि० अनुमानित ह। इनके पाच ग्रन्थ, १ करुणाबतीसी, २ नारायण लीला, ३ दधिलीला, ४ अवतारगीता तथा ५ मुहूत चिंतामणि नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा की गई हि दी हस्त लिखित ग्र था की खोज मे मिले ह। इनका अधिक वृत्त कही नही मिला।

गार्सिन दि तास्सी ने १८६७ मे वर्त्तमान एक कवि हरि बखश मुशी का भी उल्लेख किया ह। १८६७ से इनका रचा एक भक्तमाल ग्र थ सोहना—-गुडगाव, के एक छापापाना मे छप रहा था। जिस मे मेरठ के 'अखबारे आल्म के मुताबिक ९०० पष्ठ होने की सम्भावना थी।

सम्वत १८७६ मे कुरुक्षेत्र के कवि धमसिह ने द्वादशस्कन्ध भाषा की रचना का। इनकी और रचना कथा राजे भरथरी की भी मिलती ह। दूसरी रचना का रचना काल नही दिया हुआ। पिछले दिनो कवि धमसिह रचित एक बहद ग्रन्थ सिख इतिहास के विषय मे आगरा की क हया लाल माणिक लाल मुशी इस्टीटयूट के सग्रह मे भी दखा गया था।

द्वादश स्क ध' भाषा ग्र थ मे कवि ने राजा गोपी च द के योगी होने का वृत्ता त पौराणिक ढग से कहा है। इसी ग्रन्थ म कवि ने कुछ सूचना अपने विषय मे भी दी है —

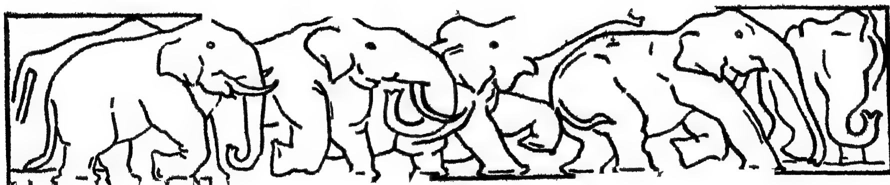
'सत्य तनय मगराज तनुज नाहर सिह जानो,
कुरुखेत्तर मै बास जाति रघुबसी माना ॥१२०॥"

सम्वत १९२४ मे कुरुक्षेत्रवासी कवि रास सिंह ने 'लघु रामायण नाम से सक्षिप्त राम चरित्र की रचना की थी।

पण्डित जगद्धर शर्मा गुलेरी द्वारा सम्पादित "ए सच रिपोट फार हि दी मैन्यूस्क्रिप्टस

इन पजाब'' मे नारनौल के एक कवि रामदत्त का उल्लेख ह जिसने श्री कृष्ण के भक्ति-भाव के पद रचे थ। गुलेरा जी न ही नारनौल क एक दूसरे कवि श्रीधर का भी पता दिया ह जो जाति का गौड ब्राह्मण था और वद्य शास्त्री बताया गया ह। कवि श्रीधर ने सम्वत १९७७ मे एक उदो बद्ध नाटक 'दया कुमार' की रचना की थी।

ऊपर हरियाणा निवासी पचास से ऊपर कविया का सक्षिप्त सा परिचय प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया ह। यह अपनी किस्म का सम्भवत प्रथम प्रयास ह। इस सूची मे केवल उन ही कवियो का नामोल्लेख किया गया ह जिनके बारे मे अन्त साक्ष्य स या बहिर्साक्ष्य से यह सिद्ध ह कि वे हरियाणा के थे। इनके अतिरिक्त शताधिक कवि ऐसे रहे है जिनके बारे मे पर्याप्त गजायश ह कि उनको हरियाणवी माना जा सके किन्तु स्पष्ट साक्षी न होने से इस सूची मे उन्ह शामिल नही किया जा सका।



हरियाणा लोक-कथा · शिल्प और संस्कृति

भीमसिंह मलिक

यद्यपि लोक–कहानियो की सष्टि लोकमानस की अदभुत देन ह तथापि हम लोकमानस पर होने वाली प्रभाव–प्रतिक्रिया तथा लोक परम्परा के माध्यम से समुत्पन्न उन तत्त्वो तक पहुच सके ह जो लोककथाओ का धूप छाह का निर्माण करने मे सहायक रहते आये है। लोक कहानी तथा लिखित कहानी मे पहला अ तर तो यही ह कि एक लोकमुख की उपज है तो दूसरी लेखनी मुख की। एक सजीव अग से उदभूत है ता दूसरी जड धातु से। लोक कथा मे कथक जीवित प्राणी ह तो साहित्यिक कहानी का लेखक दूर तथा पाठक से अपरिचित रहता ह। लोक कहानी मे से ही साहित्यिक कहानी पैदा हुई ह अत लाक कहानी का प्रभाव साहित्यिक कहानी पर भी देखा जाता ह। बहत्कथा से लेकर जातक तथा जन-कथाओ की लिखित सामग्री का आधार लोक परम्परा है तथा इस रूप मे समस्त भारतीय कथा साहित्य लोक कथाओ से प्रभावित एव सम्पुष्ट होता रहा ह।

प्राकृत तथा पश्चिमी अपभ्रश भाषाओ के साहित्य मे लोक जीवन के स्वतत्र छिटपुट प्रसगो तथा लोक प्रचलित कथानको का उल्लेख प्रचुर मात्रा मे है। इस सदभ मे आचाय द्विवेदी की यह सम्मति भी विचारणीय है कि ' हाल की सतसई मे जीवन की छाटी-मोटी घटनाओ के साथ एक ऐसा निकट सम्ब ध पाया जाता ह जो ईसा के पूववर्ती सस्कृत साहित्य मे बहुत कम मिलता है। प्रेम और करुणा के भाव, प्रेमियो की रसमयी क्रीडाएँ और उनका घात-प्रतिघात इस ग्रथ मे अतिशय जीवित रूप मे प्रस्फुटित हुआ है। अहीर और अहीरिनो की प्रेमगाथाए, ग्राम वधूटियो की शृगार–चेष्टाए, चक्की पीसती हुई या पौधो को सीचती हुई सु दरियो के ममस्पर्शी चित्रण, विभिन्न ऋतुओ का भावोत्तेजन आदि बाते इतनी जीवित, इतनी हृदयस्पर्शी हैं कि पाठक बरबस इस सरस काव्य की ओर आकृष्ट होता है। [१]

पडितो ने प्राकृत और सस्कृत की इन ऐहिकता-परक रचनाओ का कारण आभीर जाति के ससग को माना है और आभीर जाति ग्रामों के स्वाभाविक वातावरण मे निवास करती थी। वे नगरो की शिष्टता से दूर रहकर गोपालन के व्यवसाय मे निरत थे। नगरो की सख्या तत्कालीन स्थिति से सवथा नगण्य थी और वह लोक जीवन पर अपनी छाप अकित करने मे भी पूणत असमथ थी। अत ये फुटकर कविताएँ, अहीरो की प्रेमकथाएँ और उनके गृहचरित्र लोक साहित्य मे अत्यधिक लोकप्रिय हो गये थे और इनकी सरसता पडितो से छिपी नही रही।"[२]

१ हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० १२१।

१ वही, पष्ठ १२२।

आगे चलकर साहित्य में लोक तत्त्व के माध्यम और उसकी विशिष्टता की ओर संकेत करते हुए आचार्य द्विवेदी की यह धारणा है कि (१) ऐहिकतापरक फुटकर पद्य और (२) लोक प्रचलित कहानियों के गीतरूप, ये दो प्रकार की रचनाएँ विश्व के समस्त लोक साहित्य में मिलती हैं। जाति की संस्कृति और धर्ममत के अनुसार इनके ऊपरी आकार-प्रकार में विशेष महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसमें आमुष्मिकता की चिंता बहुत कम थी।[1]

यद्यपि लोक प्रचलित कथाओं के गीतरूप का संग्रह बहुत कम और वह भी पर्याप्त परिवर्तित रूप में प्राप्त है तथापि उनमें भारतीय लोक कथानकों की एक यह स्थायी विशेषता दृष्टिगोचर होती है कि वे सदा किसी ऐतिहासिक व्यक्ति को आश्रय बनाकर रचित होते हैं, परन्तु ऐतिहासिक घटना परम्परा का उनमें नितान्त अभाव रहता है। इस कथन की संगत व्याख्या में यही कथनीय प्रतीत होता है कि भारतीय मस्तिष्क की प्रधान विशेषता है उसकी कल्पनाशीलता, जो कि लोक कथाओं एवं साहित्यिक कथाओं का अविस्मृत अंग है। उदाहरणतः उस युग के प्रख्यात काव्यों—पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो, पद्मावत आदि में बहुत सी लोक प्रचलित गाथाएँ भिन्न भिन्न ऐतिहासिक व्यक्तियों के साथ संयुक्त कर दी गई हैं। अकेले पद्मावत के साक्ष्य पर यह विदित होता है कि उस युग में सपनावती, मुगधावती, मिरगावती, मधुमालती, प्रेमावती, उषा अनिरूद्ध आदि की कथाएँ लिखित अथवा मौखिक किसी न-किसी रूप में लोगों में प्रचलित थीं।[2] और इन लोक कथाओं के द्वारा लोगों का मनोरंजन होता था। यह क्षेत्र पूर्णतः जनसाधारण का था जहाँ धर्म का हस्तक्षेप न्यूनातिन्यून होता है और जो अपभ्रंश साहित्य की पश्चिमी परम्परा से लगभग चौदहवीं पन्द्रहवीं शतियों तक तथा कई शताब्दियों बाद तक प्रत्यक्षतः ग्रामों की बैठकों में कथानक और गान रूप से चलता आ रहा था। पौराणिक धर्म ने इन लोककथानकों का प्रवाह किंचित् मंद करने की चेष्टा की थी और यह उपेक्षित भी होने लगा था (किन्तु सूफी साधकों ने पुनः पौराणिक कथानकों के स्थान पर इन लोक प्रचलित कथानकों का आश्रय लेकर अपने धर्म-प्रचार के कार्य को नवीन मोड़ प्रदान किया। और तब से लेकर आज तक इन लोक कथानकों में अनेक प्रकार के परिवर्धन संशोधन अनेक कारणों से होते आ रहे हैं किंतु इनकी सातत्यता लोक और साहित्य में मात्रा काल-भेदानुसार निरन्तर अखंड गति से वर्तमान रहती आई है।

लोक-कथाओं के मूल में शिल्प की दृष्टि से दो तत्त्व सबसे अधिक मौलिक और मुख्य माने जा सकते हैं। इनमें (१) वस्तु तथा (२) कथन का ढंग। वस्तु के अनुसार पात्र खोजे जाते हैं और वातावरण पैदा किया जाता है। कथन शैली हमें संवादों तथा वर्णनों में से ले जाकर कथन-फल की उपलब्धि कराती है। प्रत्येक लोक कहानी फलमूला होती है और कथक हमें अपने व्यक्तित्व तथा वर्णन के चक्र में डाल कर फलागम तक ले जाता है। अंग्रेजी ढर्रे पर लिखी गई आज की कहानियों में इसे उद्देश्य कहते हैं।

वस्तु अथवा कथा पट की रचना में कथक लोक जीवन की जानीमानी अनुभूतियों तथा घटना शृंखलाओं का आश्रय लोक रुचि तथा विश्वास उत्पन्न करने के लिए लेता है।

१ वही, वही पृष्ठ।

२ सं० वासुदेवशरण अग्रवाल, कडवक २३३

दूसरी और उसे अपनी कहानी मे कुछ विचित्र रग भी भरने पडते है जिससे कि वह आकषण तथा कुतूहल का भ्रम अथवा रहस्य श्रोताओ के भीतर बुन सके । जीवन से ऊबे हुए प्राणियो को कल्पना के मनोरम क्षणो मे जीना बहुत सरस तथा मधुर लगता है । अत भारतीय लोक-कथा की भूमि मे दो सामा य तत्त्व सवत्र दष्टिगोचर होते ह एक लौकिक जीवन से सम्बद्ध तथा दूसरा अलौकिक विश्वासो एव धारणाआ पर आधारित । यही कारण ह कि भारत विदेशियो के लिए रहस्य, जादू तथा रोमास की भूमि रहता आया ह क्योकि यहा की लोक कथाओ मे विचित्र तत्त्व का दैनिक जीवन के परिधि तत्त्व के साथ अनोखा सयोग प्राप्य ह । यहा की परिया भी अपने सौदय शरीर तथा काम मानस की दष्टि से मानवी जादूगरनिया दिखाई देती है । भारत तथा ईरान की लोक वार्ताओ मे अयथाथ का धुँधलापन सा है । अफ्रीका की ज तु कथाओ तथा ग्रिम कहानियो की भाति इनमे भी पशु पक्षी मनुष्यो की तरह बोलते है । खास खास कहानियो में जादुई चमत्कारो का वणन पाया जाता है । इनमे दानव परी तथा नागरानियो जैसे पात्र मिलते ह । जीव तथा वस्तुए कभी लघु रूप तो कभी बहद रूप धारण करती है । हवा मे उडना, रूप परिवतन अदश्य होना आदि घटनाये द्रुत गति से निरन्तर घटती रहती है । इन तत्त्वो की पष्ठभूमि मे पुराणो की धमगाथाओ, प्राचीन विश्वासो के अवशेषो तथा स्थानीय देवताओ और आस्थाओ के मूल ह । कुछ विद्वानो के मत मे पारलौकिक भावनाएँ भी इन कथा भूमियो मे कायशील रही हैं । किन्तु जहा दानव तथा मनुष्य साथ साथ रहे, जहा वस्तुओ के रूप वदले मनुष्य जल पर चले, वहा पारलौकिक तत्त्व शू य ही दिखाई देता ह । पात्रो का अ तर्धान, विषद्वारा प्रदत्त आरोग्य, प्राकृतिक नियमो की प्रति-कूलता, आग की ठडक, मुर्दो का सजीवन जादू के धात प्रतिघात इन कथाओ मे पदे पदे सुलभ हो जाते है ।[१] यहाँ तक कि एक कहानी मे गाय का गोबर भी सोने का बताया गया है ।

लौकिक तत्त्व को व्यक्त करने वाले उपकग्णो मे दूध दही की चर्चा, सोने तथा रत्नाभरणो, किसान-व्यापारीवग, सराय धमशाला, जल-सकट, अकाल, राजाओ के ऐश्वय' प्रजा की पोडा, सौतेली माताओ के दुव्यहार, रमते जोगियो के तपोबल, चोर सिपाहियो की आँख मिचौनी, तीथ स्नान, यात्रा, सामुद्रिक जहाज, विमान, पदमिनी नारी आदि वस्तुओ, व्यक्तियो तथा सस्थाओ का पुन पुन दिग्दशन होता रहता है । इन कहानी-सूत्रो मे हमे अधम की जीत तथा धम की हार भी कई बार देखनी पडती ह और वह भी हृदय कडा करके । साधारण क याओ का विवाह राजकुलो मे हो जाता है । रक को सिंहासन पर आसीन तथा मूर्खो को सम्पत्ति मे लोट पोट होते देख हम भाग्य के विधान पर मुग्ध से हो जाते है । इन परिचित तत्त्वो के सूत्र भारोपीय सस्कृति की सामा य धारा के अतीत मे भी खोजे जा सकते है ।

हरियाणा की कथाओ के मुख्य वत्त विवाह तथा प्रेम की समस्याओ से उत्पन्न होते है । विवाह को लोग वरदान समझते थे तथा सौदय की खोज मे नागलोक, अप्सरालोक तथा भूलोक का कोना कोना छान डालते थे । सशत विवाह प्रचलित थे । रूप-गुण तथा धनसम्पन्न

१ स्टैंडड डिक्शनरी अँव् फाक लोर, माइथोलोजी एण्ड लीजैंड, जिल्द एक, ए–I, १९४-६, पूयाक E पृष्ट—५१६–१७ ।

कुबेर कयाण और गिरवयणात्री राजकुमार तथा श्रेष्ठिपत्र विवाह से पहले शर्तें लगाते थे।' 'वातरय नार' म लडकी ने शर्त लगाई ह तथा 'उरवसी अर राजकुमार' मे गधी की बेटी उवशी ने। विवाह सर्वथा व्यक्ति के अधीन नही था। बिरादरी के नियमो द्वारा अनुशासित था। अपहरण की घटनाएँ एसी स्थिति म स्वाभाविक हो जाती ह। प्रेम की साधना के लिए लोग योगी हो जाते थे। नारी के सतीत्व की परीक्षाए भी घटनाक्रम को कथा विस्तार की ओर ले जाती है। पदमिनी नारी भी कथाओ को जन्म देती ह। तोता मैना परम्परा की समस्त कथाएँ स्त्रिया के अवगुणो तथा पुरुषो के अविश्वास पर आधारित है। सामान्य वैवाहिक सुविधानो के अभाव म सामाजिक जीवन मे सशयालुता बढ जाती है। ऐसी कहानियो मे अवचेतन मन की गहनता दशनीय है।

कुपात्र को दान देने से पैदा हुई घटनाएँ, धम सकट की जीवन स्थिति, आपसी अविश्वास, युक्ति कौशल द्वारा काय सिद्धि, भाग्यवाद, धार्मिकता तथा लोक रीतियो का पालन ऐसी दैनिक घटनाए है जिन से साधारण रूप मे तथा यत्र-तत्र अपवाद रूप मे भी कथाए शुरू होती है और बढती जाती हे। घटनाओ की अधिकता इन कथाओ के रचनाविधान का अटल नियम है। परिस्थितिया तथा पात्र घटना केद्रित है। घटनाओ मे असभाव्य का अश भी सभाव्य की तरह आया ह। कल्पना का यहा प्रभुत्व है। कपोल कल्पना इनकी खूबी ह। दीन दुखी जब बहुत अधिक तग होते तो कुएँ की कोटी पर सो जाते थे। मृत्यु की घटनाएँ और आत्महत्या की ये चेष्टाएँ भी तो कहानियो को गति प्रदान करती हैं। कभी घटना मे से घटनाएँ निकलती है तो कभी घटना के ऊपर घटनाओ की श्रृ खला चली चलती है।

कहानियो मे पात्रो की सख्या भी अधिक है। छोटी से छोटी कहानी मे भी तीन से कम पात्र नही मिलते और बडी कहानियो मे तो यह सख्या दस से पन्द्रह तक पहुँच जाती हैं। राजा, रक, धनी-व्यापारी किसान, पुरोहित, देव दानव, नर नारी, भटियारिन और जादुगरनी योगी, भोगी डोम-डोमनी, जल्लाद, सैनिक, मत्री तथा गुरु शिष्य आदि सभी पात्र कहानियो मे अपनी लीलाएँ दिखाते हैं। बडी कहानियो मे नायक-नायिकाओ के साथ खलनायक भी आये हैं। पशु पक्षी भी मनुष्यो के साथ काय मे जुटे रहते ह। हस तथा शेर के बच्चे भी कृतज्ञता दिखाते है। वे भी मानवी विश्व के प्राणी माने गये है। इन कहानियो मे चरित्र चित्रण नही के तुल्य है। हा, कही कही प्रधान पात्रो का चरित्राकन थोडा बहुत अवश्य हो जाता ह जैसे 'काणो ब्राह्मण' मे ब्राह्मण का तथा 'उरवसी अर राजकवार' मे दोनो के चरित्र की हल्की सी झलक मिल जाती है। कारण कि इन कहानियो का लक्ष्य समष्टिगत प्रभाव का ह, चरित्र की रगरेखा के उभार का नही।

सवाद लोककथाओ मे मिलते तो है पर उनका अश अति न्यून ह। महादेव पावती की वार्ता भी कहानियो मे सुनी जाती ह पर उसमे एकरसता ह, विविधता नही है। एकाध स्थान पर सवाद कहानी मे बाधा डालकर नई परिस्थिति को जन्म भी दे देते है, यथा, वातर्‌य नार 'मे जब पत्नी ने पति को जूता मारने से रोका तो उसने व्यापार करने की ठानी। 'चिडिया और मूसी' की कहानी मे बाल सुलभ चचलता तथा रोचकता से पूण सवाद मिलते है। 'जाड्डा बालू मा' मे आदि से अन्त तक दो शेरो का और बाद मे शेरो तथा हिरन का

सवाद चलता ह । 'सपने मे हनुमान' तथा 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' उक्तिमूलक हास्य कहानियो मे सवाद बडे चुटीले तथा व्यग्यपूण है । हास्य व्यग्य तथा बाल कथाआ के सवाद सजीव तथा सुदर है ।

वातावरण का रग लोक कहानियो की अपूव शोभा है । लौकिक तथा अलौकिक वातावरण का ऐसा काट कम्बल इन मे छाया रहता है कि कहानी से बाहर के विश्व की प्रकाश रेखाए दिल और दिमाग की खिडकी मे झाक भी क्या लेगी ? जादू का रहस्यमय तथा योग धूनी का साधनात्मक और चमत्कारपूण वातावरण भी मिलेगा और राजमहला मे द्वेष-विद्रोह तथा शकुलता की अग्नि भी धधकती मिलेगी । अधिकाश कहानियो में ग्रामीण समाज का प्रसार देशकाल के भीतर दिखाई देता ह । राजाआ तथा सेठो के भव्य भवनो मे भी ग्रामीण रीति नीति तथा आचार व्यवहार का क्रम मिलता है । राजकुमार मजदूरा की भाति काय करते है । राजकुमारिया महलो की छतो पर केश सुखाती तथा झरोखो से गली मे झाकती है और सेठ का लडका तेली के यहा छ रोटी पर नौकरी करने लगता ह । चौपड सार का खेल राजभवनो तथा भटियारिन आदि सब के यहा चलता था । पडित जी राज पुरोहित है तथा धानक बकरी चराने वाला ह और दोनो एक ही माग से क्रमश अपने अपने स्थान पर जाते ह । राजा सुल्तान और निहालदे वन मे उसी प्रकार सोते हे जैसे कि खाती सुनार और दरजी के पुत्र । ये कहानिया कृत्रिम वातावरण तथा अभिजात चेतना से बिल्कुल शूय है । ऊँच नीच का भेदभाव भी इनके अन्तगत नही है ।

लोक प्रथाओ के सुस्पष्ट चित्र इन मे अकित किये गये है । यात्रा तथा यात्रा विश्राम का दश्य देखिये

'राह मे चालते चालते रुखा की एक बगीची दिखाई दी । आछे गोल गोल छतरिया के अर खूब ऊँचे ऊँचे पेडडे खडे थे । साथै एक कूआ अर धरमशाला । कूँए पै जा कै पाणी खीचा, हाथ धोये अर चूरमे की पोटली खोल कै खाण लाग ग्या । धोरे एक कुत्ता बी पूँछ हिलाता जा जीभ काढ क राल टपका रा जा । अर तू जाण बालक बी रोटटी खाते धौरे आ ए जाया करै ।'

वधू के गह प्रवेश की झाकी भी कम आकषक नही । लोकमर्यादा तथा गौरव का पूरा पूरा ध्यान रखा गया है 'चल्लाक लडका' कहानी मे "छोरा बहू मैं गोरै जाल तलै छोडच, अपणीमा पै भाज्या भाज्या गया अर बोल्या, मा । तेरी बहू गोरै बैठची से, जा क उसनै लीया । मा नै झट गाल की लुगाइया ताही बहावा दिया, सारी कटठी हो कै गीत गाती गोरै तै बहू मैं धरा ल्याई । मा को छाती बहू नै देख कै सीली हो ग्यी ।

पव बने तथा चौपाल मे बठे लडके का हुलिया एक ही पक्ति मे स्पष्ट कर दिया गया है

'परस (चौपाल) मैं मूढा पै बैठचो हुक्को पीवण लाग्य रह्यो से ।'

सेठानी द्वारा ब्राह्मण से दान का सक प छुडाने का का वणन देखिए

'सिठाणी नै हाथ पै हाथ धर लियो, ब्राह्मण न उसकी चलू मैं पाणी गेरयो अर मतर पढ दियो ।'

सवाद प्राय लोक-कहानिया मे कथन पक्ष को सुन्दढ करते है। वस्तुत लोक कथाओ की शैली सत्रसाधारण के अनुकूल तथा आडम्बरहीन होती ह। कथन के उत्साह और अनुभव के साथ शैली मे अन्तर अवश्य आ जाता ह। अधिकाश कथाओ की शैली गद्यात्मक होती ह। गद्य मे भी लय की अनुध्वनि कई स्थाना पर मिल जाती ह। सीधे सीधरे ढग से कहानी कही जाती ह। बनावट और अतिरजना यहा लेशमात्र भी नही हाती। हा, अतिशयोक्तिपूण कथन अवश्य उपलब्ध होते है।

कुछ कहानियो के मध्य अथवा अन्त मे पद्य भी मिलते है। गद्य पद्य मिश्रित शली से कहानी म चमत्कार सा आ जाता ह, जसे दीपक मे तेल डालने से लौ की चमक बढ जाती ह। 'पदमनी' कहानी मे नीति की व्यजना करने वाला दोहा देखिए

गञ्जा काणा कोतरा ओछी गरदन होय।
इन च्यारा तै तब बोलिए जब हाथ मे लीत्तर होय॥

'बैयया अर बा दर' तथा 'रानी महकावली' की कहानियो मे भी चम्पू शैली के दशन होते है।

मुझे एक कहानी गीत-शैली मे भी मिली है। हरियाणा का लोकसाहित्य छानते छानते मेरा समागम जिस कहानो से हुआ, वह इस प्रकार ह किसी महाराजा के दो लडके थे। वे दोनो मृगया के लिये जाया करते। बडा विवाहित तथा छोटा कुमार था। कुमार ने एक दिन मृगया मे अपने बडे भाई का बध करके बन मे डाल दिया। वह अपनी भाभी को हथियाना चाहता था। राजधानी मे लौटने पर भाभी ने अपने पति के विषय पूछा कि वह कहा है ? देवर ने कहा कि उन्होने वन मे धूम मचा रखी है। इससे औरत को सशय हुआ और वह बन मे गई। एक लाश को देखकर बोली कि चलो इसे देखते है देवर ने कहा कि ये तो कोई गीदड या कुत्ता मरा पडा है। भाभी ने जब देखा तो वही उसके पति का शव था। उसने अपने देवर को बहुत भला बुरा कहा अन्त मे देवर को आत्मग्लानि हो गई। गीति कथा इस प्रकार है —

'अपने छज्जै पै खडी ए केश सुखाऊँ,
देवर आण्य कै घर बडया मेरे राम।
और दिना देवर दोनो आवते,
आज एकला क्यो आया मेरे राम।
म्हारा बीरा छत्तरधारी बडडा खिलाडी
बण मे धूम मचाई मेरे राम।

× × ×

एक बण चाल्ले दो बण चाल्ले,
तीजे मे चील मडराई मेरेराम।

× × ×

कै गादड कै कुत्ता ए मरया से,
तुम्हनै बास आवेगी मेरे राम।

पल्ला उपाडय कै देखण लाग्यी
यो मेरी नणदी का बीरा मेरे राम।
अच्छा हो देवर च दण कटाई ए,
चिता बनाइये मेरे राम
भस्मी बनाइये फूल ढुवाइये
इस नै गगा मे पौहचाइए मेरे राम।
तेरे हो देवर कीडे हो पडियो।
भाइ का बसा बसाया उजाडा मेरे राम।
बीरा मारया सितम गुजारिया,
तो बी मेरी ना होई मेरे राम।[1]

कहानी का आदि तया अ त भी कथा शैली की दष्टि से महत्त्वपूण होता है। कई बार तो कहानी दो पात्रो के सवाद द्वारा आरम्भ की जाती ह जसे च्यार ढाल का वेकूप डोम-डोमनी के सवाद से शुरु होती ह। कभी बात मे हुकारा और फौज मे नगारा' वाक्य से ही कहानी फूट पडती ह। कई बार कथक नाटकीय शैली के द्वारा कथा आरम्भ करने के लिए उत्साहित होता है। अहीर कालेज रिवाडी की पत्रिका मे छपी कहानी 'राजा भोज मुसलचद इन पक्तियो से शुरु होती है।

बात की बात, बात की खुराफात,
कीडी का धक्का, मच्छर की लात,
राम बनावे तो बचे नही तो बचने को नही आस।
और एक बैल का सीग माढे सत्तरा हाथ।
अब सुनो हमारी बात।
एक राजा थो, उह को नाम भोज थो।

'महकावली' कहानी के आदि मे एक पद्य-प्रस्तावना प्रकृति तथा जीवन के भावाभाव की ओर सकेत करती हुई प्रस्तुत की ओर मुड जाती है,

ससी बिन सूनि रैन, ज्ञान बिन हृदो सूनो।
घर सूनो बिन पूत, पात बिन तरुवर सूनो।
गज सूनो बिन दत, हस बिन सागर सूनो
घटा सूनी सावनी बिन चमकै दामिनी
राजा कहे बेताल सुनो भई घर सूनो बिन कामनी।

बात मे हुकारा अर फौज मे नगारा राजा कै सात छोरा थे। छ ब्याहा था अर एक कुआरा'।[1]———

१ नादान हरियाणवी हरियाणा लोकगीत सग्रह, पृ० १२९-१३१, १९६२, दिल्ली।
१ डा० शकर लाल यादव हरियाना प्रदेश का लोक साहि य, पृ० ३६९, शीषक—लोक कथा से उद्धत।

सवाद प्राय लोक कहानिया मे कथन पक्ष को सुन्ढ करते है। वस्तुत लाक कथाओ की शैली सवसाधारण के अनुरूल तथा आडम्बरहीन होती ह। कथन के उत्साह और अनुभव के साथ शैली मे अन्तर अवश्य आ जाता ह। अधिकाश कथाओ की शैली गद्यात्मक होती है। गद्य मे भी लय की अनुध्वनि कई स्थानो पर मिल जाती ह। सीधे सीधरे ढग से कहानी कही जाती ह। बनावट और अतिरजना यहा लेशमात्र भी नही होती। हा, अतिशयोक्तिपूण कथन अवश्य उपलब्ध होते है।

कुछ कहानियो के मध्य अथवा अन्त मे पद्य भी मिलते है। गद्य पद्य मिश्रित शैली से कहानी मे चमत्कार सा आ जाता है, जसे दीपक मे तेल डालने से लौ की चमक बढ जाती है। 'पदमनी' कहानी म नीति की व्यजना करने वाला दोहा देखिए

गज्जा काणा कोतरा ओछी गरदन होय।
इन च्यारा तै तब बोलिए जब हाथ मे लीत्तर होय॥

बैयया अर बान्दर' तथा 'रानी महकावली' की कहानिया मे भी चम्पू शैली के दशन होते है।

मुझे एक कहानी गीत-शैली मे भी मिली है। हरियाणा का लोकसाहित्य छानते छानते मेरा समागम जिस कहानो से हुआ, वह इस प्रकार ह किसी महाराजा के दो लडके थे। वे दोनो मृगया के लिये जाया करते। बडा विवाहित तथा छोटा कुमार था। कुमार ने एक दिन मृगया मे अपने बडे भाई का बध करके बन मे डाल दिया। वह अपनी भाभी को हथियाना चाहता था। राजधानी मे लौटने पर भाभी ने अपने पति के विषय पूछा कि वह कहा है? देवर ने कहा कि उन्होने वन मे धूम मचा रखी है। इससे औरत को सशय हुआ और वह बन मे गई। एक लाश को देखकर बोली कि चलो इसे देखते है देवर ने कहा कि ये तो कोई गीदड या कुत्ता मरा पडा है। भाभी ने जब देखा तो वही उसके पति का शव था। उसने अपने देवर को बहुत भला बुरा कहा अन्त मे देवर को आत्मग्लानि हो गई। गीति कथा इस प्रकार ह —

'अपने छज्जै पै खडी ए केश सुखाऊँ,
देवर आण्य कै घर बडया मेरे राम।
और दिना देवर दोनो आवते,
आज एकला क्यो आया मेरे राम।
म्हारा बीरा छत्तरधारी बडडा खिलाडी
बण मे धूम मचाई मेरे राम।

× × ×

एक बण चाल्ले दो बण चाल्ले,
तीजे मे चील मडराई मेरेराम।

× × ×

कै गादड कै कुत्ता ए मरया से,
तुम्हनै बास आवेगी मेरे राम।

पल्ला उपाडय कै देखण लाग्यी
यो मेरी नणदी का बीरा मेरे राम।
अच्छा हो देवर च दण कटाई ए,
चिता बनाइये मेरे राम
भस्मी बनाइये फूल ढुवाइये
इस नै गगा मे पौहचाइए मेरे राम।
तेरे हो देवर कीडे हो पडियो।
भाई का बसा बसाया उजाडा मेरे राम।
बीरा मारया सितम गुजारिया,
तो बी मेरी ना होई मेरे राम।[1]

कहानी का आदि तथा अ त भी कथा शैली की दष्टि से महत्त्वपूण होता है। कई बार तो कहानी दो पात्रो के सवाद द्वारा आरम्भ की जाती ह जैसे च्यार ढाल का वेकूप डोम डोमनी के सवाद से शुरु होती ह। कभी बात मे हुकारा और फौज मे नगारा' वाक्य से ही कहानी फूट पडती ह। कई बार कथक नाटकीय शैली के द्वारा कथा आरम्भ करने के लिए उत्साहित होता है। अहीर कालेज रिवाडी की पत्रिका मे छपी कहानी 'राजा भोज मुसलचद इन पक्तियो से शुरु होती ह।

बात की बात, बात की खुराफात,
कीडी का धक्का, मच्छर की लात,
राम बनावे तो बचे नही तो बचने को नही आस।
और एक बैल का सीग माढे सत्तरा हाथ।
अब सुनो हमारी बात।
एक राजा थो, उह को नाम भोज थो।

'महकावली' कहानी के आदि मे एक पद्य-प्रस्तावना प्रकृति तथा जीवन के भावाभाव की ओर सकेत करती हुई प्रस्तुत की ओर मुड जाती है,

ससी बिन सूनि रैन, ज्ञान बिन हृदो सूनो।
घर सूनो बिन पूत, पात बिन तरुवर सूनो।
गज सूनो बिन दत, हस बिन सागर सूनो
घटा सूनी सावनी बिन चमकै दामिनी
राजा कहे बेताल सुनो भई घर सूनो बिन कामनी।

बात मे हुकारा अर फौज मे नगारा राजा कै सात छोरा थे। छ ब्याहा था अर एक कुआरा'।[1]———

१ नादान हरियाणवी हरियाणा लोकगीत सग्रह, पृ० १२९-१३१, १९६२, दिल्ली।
१ डा० शकर लाल यादव हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, पृ० ३६९, शीषक—लोक कथा से उद्धत।

कहानिया के अ त मे भी पद्य कथन की रीति पाई जाती ह । कथा मे सरसता, सजी वता तथा तारतम्य की दृष्टि से अतिम प्रभाव के छींटे को विस्मत नही किया जा सकता। बालकथाओ म तो कहानी की समाप्ति पर बच्चा की दृष्टि और ध्यान को इधर उधर करना और भी आवश्यक है। कारण कि इससे न केवल उनका उनम कूतूहलोदय होता ह बल्कि उनके और कहानी सुनाने के आग्रह का भी टालना सम्भव हो जाता ह । बुढिया कथा के अत मे दो चार जकन्यिा फेक देती है

'दम्मा दाणी, खतम कहाणी
दम्म पुराणा, हरिया काणा
दा विलाइया नै कुआ जोडया
काग नाक्का नोड ग्या
विलाई रुक्का दे स———।
मूसा कि तै टाग टूट गया
चवनियाँ गुड दे सै——— ।''

अधिकाश कहानियाँ सुखान्त है। एकाध कहानी दुखान्त भी मिलती है। जैसे, 'जो राही तै डिगैगो ओही पडैगो' मे राजा ने दतक पुत्र के बध की योजना बनाई पर मारा गया उममे हमारी सहानुभूति राजा के बेटे के साथ रहती है अत दुख भी होता है। 'चल्लाक लडका' की कहानी का अन्त न दुखान्त है, न सुखान्त बल्कि युक्ति चमत्कार मे होता है। बुद्धि-कौशल की प्रखर ज्योति हमे चकाचौध कर देती है। 'दाने की कहानी' का अन्त आकस्मिक तथा नाटकीय है जो कुछ खटकता सा है, 'अच्छा, छोडडू सू, अर यू' कह कै नाडय तोडय दी तोत्ता की। दान्ना भर गया। सब अपणो घरा आग्या अर सुख ते रहण लाग्या।

लोक कहानी की सीधी-सादी अनलकृत शैली का ठेठ ठाठ तो देखिए—

''ओह हिन्दू उसनै अपणै घरी ले ग्यो,
दरवाज्जा मै प्यलग बिछवा दियो, न्हाण नै
तात्तो पाणी मगवा दियो अर रसोई दई चढवा।''

—आतिथ्य का वणन।

इन्द्र के अखाडे की अप्सराओ का वणन भी आया ह। नत्यगान करने के बाद इन्द्र की आज्ञा से वे 'उडण खटोला' मे बैठ कर स्नान करने गई। विश्राति गह का वणन देखिए

''उन नै देख्या क्ये! अक सातवा का न्यारा न्यारा सात कमरा सै। सभ मै लटटू लाग्य रह्या सै। बात क्ये सै वै जोर-जुलम जगमगा रह्या सै। व उत न्हाई ओह बी न्हायो।''

एकाथक शब्दो के स्थान पर भिन्न भिन्न पर्यायवाची शब्दो की योजना भी लोक-शैली का एक मनोहर अग है। यथा,

''आधी रात्य कै बखत, चाद उगमण कै समै, राणी
कै छोहरो हुयो, धा नै उसको नाम धरयो चन्दरहास।''
वा ''तू मेरी मा कोनी।'' लडका गुस्सा मे था अर वा भी किरोध मैं थी।

इन कहानियो मे कही कही प्रतीक योजना का भी आभास होता है। 'हस अर धोबी' मे हस सज्जनता का तथा धोबी दुजनता का प्रतीक बन कर उपस्थित हुआ है। 'काणो ब्राह्मण' मे हस हसणी में देव पुरुषो तथा इन्द्रपुरी मे विमान द्वारा जाने मे माक्ष की प्रतीति होती ह। घन शोषण का कमफल लीद का ढेर तथा दान सकल्प पूर्ति का फल बिल्लोरी पत्थर की पौडिया, भी प्रतीकाथ का बिम्ब मकेत प्रदान करते हैं। निष्कष रूप मे यही कहना है कि लोक कथा की कोई शैली नही होती। शैली तो व्यक्ति की होती है। उदाहरणत डा० रणसिह शर्मा ने मातनहेल ग्राम के दो कथको द्वारा सुनाई गई कहानी 'व्याग ढाल का बेहुद्दा' टेप-रिकाड की ह। कथक हैं प० प्रेमसुख तथा रामनिवास। किन्तु कहानी का परिवेश भी भिन्न ह और शैली भी अलग ह। अत्यन्त सक्षेप म कहानी कह देना हरियाणा लोक-कथा की प्रौढता का अश ह।

लोक कथा एक समष्टिगत प्रयोग ह। अत इनमे सामूहिक मनोरजन की भावना पाई जाती ह। सबके लिए और बहुजन हिताय म ही लोक कहानी का ज म हुआ ह। मनारजन की मात्रा बालकथाओ तथा हास्य व्यग्य कहानियो मे काफी ज्यादा ह। धार्मिक कथाए धम-भावना को जगातो ह। शेष कहानिया लोकनीति की शिक्षा प्रदान करती ह। लोक व्यवहार, लोकाचार तथा लोकानुभूति को व्यक्त करना इन कथाओ का मुख्य उद्देश्य है। लोक जीवन तथा मानस की सूक्ष्म व्यजनाएँ जिस परिमाण मे लोक-कहानियो द्वारा प्रस्फुटित होती हैं उस परिमाण मे अन्यत्र कहा? एक लडका की चल्लाकी कहानी मे लोगो की अन्तवत्ति तथा कथक की समीक्षा-दृष्टि की तीव्रता तो देखिए

१ मलगरीब गुरबा का वालक नै कूण ब्याहवै सै।
२ तू जाणै, बालक की आदृत्य होए सै वो रोट्टी
खाता धोरै आ ए जायो करै। वो बोल्यो—
टाब्बर की एक दो बर की हो सैं,
हट हट कै टूक मागणो आच्छो नही।
३ लोभ लाग्यो बाणीयो, चूटटै लाग्यी गा।
बहावडै तो महावड, ना चाल्यो ए जा॥
४ तू जाणै सै, गाडडी नै देख कै लाडडी का पा फूल जायो करै सै।
५ जिस को काम चाल्य जा, तू जाणै, उस तै भाई-बध जलण लाग्य ज्या स।
६ मल सुणी सुणाई बाता पै वो अकीन नही करतो।
७ मरतो आदमी की बात नै पुगगावण की कोशिश सब्भै करयो करै सै।

'काणो बाह्मण' कहानी मे भी कुछ सवमान्य तथ्य तथा विश्वास अति सुन्दर ढग से प्रकट हुए हैं—

१ इतणी सुण्य कै बाह्मण को कित थ्यावस (सतोष) थो।
२ करणी का भोग ता भागेणा ए पडै सै।
अन्य कहानियो के कुछ तथ्य यहा दिये जाते हैं—
१ पाच आदमी कहैं उस बात नै मान ले, ओह बी एक छोट्टा मोटा राज्जा हो सै।

२ फाम्मी ग्रण त पहल्यम ब्रयी ग करै जक
रिगै न मिरुण नै जी करता हा र कुछ
ग्राण र मग करना ा ता नता ।
३ मरण नै उर ाा न उसनै स्या न नीद आरै थी ।
४ मुपना री बाता पै जरीर कर स, आच्छी बातरी म ।
५ दिना न जाती क्ये वार लाग्ग स, वा दिन बी आयो ।
६ चा (चाव) मैं माणस न काम करती क्ये वार लाग्गै सै ।
७ महाद वाल्या—जाण बी द, दुनिया सै,
दस मे काये दुखी सै तै काये सुखी सै,
काये रोवै सै कोये हसै सै । तू बीर की जात्य,
क्यो टटा मै पडयो करै, कह कह को भलो करैगी ।
८ जित खाण-पीण की चीज हू स, उत तू जाणै मुसटो को पेसगार होए जायो करै।
९ चहे राज्जा हो चहे परज्जा । भगवान की माया उसकै आग्ग क्ये, बस चालल सै।

लाक जीवन के स्वरूप की कितनी निष्कपट अभिव्यक्ति इन सूक्तियो मे मिलती ह "मानव की अन्त प्रकृति के सूक्ष्म कणा की इनमे कमी नही है। लोक रीति तथा चरित्र की झलकियाँ भी स्वत मुखर हो उठी हैं। लोकसस्कृति का अत्यन्त स्पष्ट रूप लोक कहानी मे अनायास ही छलक उठता है। लोकनीति की शिक्षा का इससे बडा साधन और हो नही सकता। जटिल जीवन की घुडियो (Coplexities) का प्रत्यक्ष दशन यहा होते देर नही लगती। मानो जीवन का सर्वांश और सत्त्व, लोहा तथा सोना, खरा-खोटा और उभार उतार खुले शब्दो मे निचोड दिया गया हो। अत लोक कथाएँ लोकमानस के प्रेय श्रेय की सच्ची तथा सही तस्वीर खीचने के दिशा-सकेत प्रदान करने मे पूणरूपेण सक्षम हैं।

कथानक रूढियाँ जीवन-विश्वासो तथा मानस दृष्टि के चित्र

सामान्यतया रूढि और अभिप्राय का प्रयोग एक दूसरे के पर्याय के रूप मे किया जाता है। अभिप्राय, जिसे अग्रेजी मे 'मोटिव' कहते है, उस शब्द अथवा एक-साचे मे ढले हुए उस विचार को कहते है जो समाज की परिस्थितियो मे अथवा समान मन स्थिति और समान प्रभाव उत्पन्न करने के लिए किसी एक कृति अथवा एक ही जाति की विभिन्न कृतियो मे बार-बार आता है।[1] प्रत्येक देश के साहित्य मे अनुकरण तथा अत्यधिक प्रयोग के कारण कुछ साहित्य सम्ब धी रूढिया बन जाती है और यात्रिक ढग से इनका प्रयोग होने लगता है। इनको रूढतन्तु भी कहा जाता है। हरियाणा की लोक कथाओ मे लोक विश्वास पर आधारित कुछेक रूढिया निम्न लिखित है—

१ सख्यावाचक रूढियो मे चार, सात, नौ तथा बारह की सख्याएँ आई हं। च्यार अणमोल बात, सात समुद्र, बेटा बेटी रानी, दिन तथा वष। नौ लखा हार, नौ किरोडी लाल, बारह धूने इत्यादि।

१ हिन्दी साहित्य कोश, पृ० १८५ ८६, शीषक कथानक रूढ़ि।

२ दानवो का अपने महल मे प्रवेश करते ही 'सू सा माणस की गध आवै सै' कहना, दाववो द्वारा अपनी योनि तथा परयोनि परिवतन। आदमी को मत्र मार कर मेढा मक्खी तथा पत्थर बना देना। दानव की जान सात समुद्र पार के कुएँ के भीतर पिंजडे मे तोते के भीतर होना। नर भक्षी डायन का वणन। दानव का मनुष्य को देख कर एक बार हसना तथा एक बार रोना और हास्य रुदन का कारण बताना।

३ पशु पक्षियो का मनुष्यो के साथ रहना तथा बातचीत करना।

४ राज प्रकोप का वणन, "चूच्ची बच्चो को कोल्हू मे पलना" वा भूगर्भस्थ करा के कुत्ते छोडना।

५ रानियो का किसी वस्तु की प्राप्ति हेतु आसण पात्ती (अनशन पाटी) लेकर पड जाना।

६ अपनी प्रजा के कष्टो को जानने के लिए राजाओ का वेश परिवतन कर रात्रि मे घूमना।

७ पुत्रहीन सौतो द्वारा पुत्रजन्मा रानी के पुत्र को उठाकर काठ की सदूक मे बद कर नदी मे बहा देना तथा रानी की शय्या पर पर पत्थर रख देना।

८ माता के दूध की धार का बच्चे के मुँह मे जाना—मात वात्सल्य की पहचान।

९ भले आदमियो के लिए साप का लाल (माणिक्य) बनना तथा लालची सेठ के लाल का साप बनना।

१० आपत्ति को टालने के लिए तिल अथवा जौ की बाड लगाना।

११ जादू की रस्सी, सोटे तथा करणी का वरदान।

१२ साधुओ, योगियो तथा विशेषत महादेव पावती द्वारा सकट ग्रस्त मनुष्यो का उद्धार।

१३ अपराधियो द्वारा जल्लादो को रत्न तथा द्रव्य देकर प्राण रक्षा।

१४ सदाव्रत द्वारा बिछुडे हुए प्रेमियो का मिलन।

१५ अमरफल का वणन और चिर-यौवन की साधना।

१६ जादू की टिकली बिन्दी द्वारा अदश्यता की प्राप्ति। सारगीवादन द्वारा अप्स-राओ का आगमन।

१७ आत्महत्या की चेष्टा मे कुएँ की कोठी पर सोना।

१८ पारिवारिक जनो का कटाक्ष सुनकर कठिन काय की प्रतिज्ञा लेकर घर छोड देना।

१९ धन को पीपल नीम की जडो के नीचे दबा देना।

२० राजकुमारियो का महल पर खडी होकर केश सुखाना।

राजा की शत पूरी करने पर आधा राज और लडकी का डोला भेट करना।

कहानियो की विशेषताएँ

जिस प्रकार भारतीय सस्कृति की विविधता मे भी एकता का तत्त्व छिपा हुआ है इसी प्रकार पजाब से बगाल और उडीसा तक की लोक कथाओ मे स्थानीय-भिन्नता से परे

कुछेक सामान्य-तत्त्वो का विकास पाया जाता है। सम्पूर्ण उत्तर-पत्र की इन कथाओ मे निम्न लिखित विशेषताएँ देखी गई है —

(क) सर्वमंगल की भावना।

(ख) मानव की मूल प्रवृत्तियो का चित्रण।

उदाहरणत 'एक लडका की चतुराई' मे धोबी के लाभ, गापाल के वस्त्र मोह, अश्वारोही की सरलता, और बुढिया के पुत्री प्रेम का निरूपण।

(ग) प्रेम का अभिन्न पुट तथा अश्लीलता का अभाव।

(घ) सयोग तथा सुख म कथा की समाप्ति।

(ङ) रहस्य, रोमाच, अलौकिकता तथा युक्ति चमत्कार का समिश्रण।

(च) धार्मिक तथा दाशनिक हिन्दू दष्टिकोण की अभिव्यक्ति। आस्तिकता, कमफल तथा पुनजन्म आदि मान्यताओ पर बल।

हरियाणा की लोक-कहानियो मे जातीय विशेपताओ का विवरण तो ह किन्तु जाति भेद और साम्प्रदायिक कटुता की ध्वनि रचमात्र भी सुनाई नही पडती।

सात्त्विक जीवन की कामना से सभी कथाएँ अनुप्राणित है। मद्य मास के सेवन का जिक्र तक नही आता। पचायत, चौपाल, योगियो तथा सन्यासियो के प्रति सम्मान का भाव, अतिथि सत्कार और शरणागत की रक्षा परम धम मानी गई है। नारी के प्रति सशक दष्टि पाई जाती है। लोगो की दरिद्रता, अन्न-जल सकट तथा चोरी-डकैती के प्रसग लोक कहानियो मे पगडडियो की तरह फैले हुए हैं। इस प्रकार जीवन के यथाथ की भीषणता तथा उसकी स्पष्ट व्यजना करना इन कथाओ का पहला काय रहा है। वणन की स्वाभाविकता इस बात की साक्षी है कि यहा जीवन के रस को सद्य और सुरक्षित रखा गया है। ग्रामीण सस्कृति का चित्रण हरियाणा की लोक कथाओ मे किसी न किसी रूप मे अवश्य उभरा है क्योकि प्रकृति की गोद ने बसा हरियाणा ग्राम्य सुषमा का अप्रतिम नमूना ह। ग्राम गण की इस विवृति का अधिकाश श्रेय, यहा की मुहावरे में ढली भाषा को दिया जाना चाहिए। हरियाणा की कहानियाँ स्थानीय मुहावरो तथा लोकोक्तियो की मिठास मे पगी है। मुहावरा हमारी जीवनानुभूति तथा कार्याभ्यास का सबसे खरा चित्रण होता ह। लोक जीवन की सच्चाई को इतनी स्वाभाविकता तथा सक्षिप्त प्रखरता द्वारा व्यक्त कर देना मुहावरो के ही वश की बात ह। इनके माध्यम से हम लोगो के जीवन दशन का सहज ही अनुमान लगा सकते हैं। मुहावरा हरियाणा के जीवन तथा साहित्य की समरूपता का अभिन्न लक्षण प्रतीत होता ह। कुछेक मुहावरे यहाँ दिये जाते हैं

१ वो ताड ग्यो थो मल वो तो जाण-बावलो बण्य-ग्यो थो। उसका मन महँ त लाइडू सा फूटै 'क बण्य ग्यो काम। अर घोडो आलो रह ग्यो हाथ मसलतो।

२ बुढिया की अक्कल मारण खात्तर यो साग भरयो थो।

३ आपणो छोरा मैं देख कै मा हरी हो गई। आइए, मिरा वाद।

४ इतणी सुण्य कै राज्जा के आग्य लाग्य गई, राज्जा सिर पीट्टण लाग ग्यो। ज्यब बुडा हलवाई ना बण्वा सक्यौ, तै तेरी क्ये गूदडी सै। हम ने छोड्य दे, हम तेरी कालो गा।

हरियाणवी एवं प्रतिवेशिनी उपभाषाएँ

शिवप्रसाद शुक्ल

हरियाना हिन्दी भाषी नव निर्मित प्रान्त है। हरियाणा मे कई उपभाषाएँ बोली जाती है, इनमे से एक का नाम हरियाणवी है। इसको बागरू या जाटू नाम से भी पुकारा जाता है। दिल्ली करनाल हिसार रोहतक नारनौल जींद आदि क्षेत्रो मे इसका प्रसार है। विद्वानो के अनुसार यह खडी बोली का ही एक रूप है।

डा० ग्रियसन के आधार पर बागरू पश्चिमी हिन्दी की उपभाषा है। जिस प्रकार पजाब की बोली जानेवाली भाषा पजाबी और राजस्थान मे बोली जानेवाली राजस्थानी है उसी प्रकार हरियाना प्रान्त मे बोली जानेवाली भाषा का नाम हरियाणवी है। डा० उदय नारायण तिवारी ने लिखा है कि बागरू के कई स्थानीय नाम है हरिआना के पडोस मे यह हरियानी, देसवाली अथवा देसडी कहलाती है। रोहतक तथा दिल्ली के आस पास जाटो की अधिक आबादी के कारण इसे जाटू तथा दिल्ली के चमारो की आबादी के कारण इसे चमरवा बोली भी कहते है। अन्य स्थानो मे इसे बागरू नाम से ही अभिहित किया जाता है। नामो मे स्थानीय भेद रहते हुए भी वास्तव मे बोली मे भेद नही है।

वर्तमान हिन्दी भाषा की जन्म भूमि दिल्ली है, वही ब्रजभाषा से यह उत्पन्न हुई। बाबू बालमुकुन्द गुप्त का मत है कि फारसी मे ही कुछ ब्रज और बागरू की टेक लगा बोली को खडा कर दिया गया और उसका नाम पड गया खडी बोली।

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने हिन्दी के उद्भव का मूल रूप बताते हुए लिखा है कि हिन्दी का उद्भव भी अन्य प्रादेशिक भाषाओ के साथ-साथ हुआ और विकास भी साथ साथ।। हमारी केन्द्रीय सरकार की राजधानी देहली है। जिसे लोग दिल्ली कहते है। वह सचमुच देहली है। उसके इधर उत्तर की ओर देखो तो कुरुजनपद है मेरठ सभाग या डिवीजन उत्तर प्रदेश का। यहा की भाषा कौरवी या मेरठी का नाम खडी बोली है—'मीठा पाणी लात्ता है। यो 'मिट्ठा' और लात्ता' के अन्त मे जो खडी पाई दिखाई देती है लाठी की तरह उसीसे इसका नाम 'खडी बोली।' 'कौरवी भाषा' का दो धाराएँ है—एक ही भाषा की दो प्रमुख बोलिया है—१ खडी बोली मेरठी २ बागरू या हरियानवी। दिल्ली से लेकर देहरादून तक (और उधर मुरादाबाद तक) का प्रदेश कुरुजनपद है और दिल्ली से उधर अम्बाला तक तथा इधर सहारनपुर से अम्बाला तक 'बागर' जिसका पुराना नाम 'कुरुजागल' है। कोरवी के ये दो रूप ऐसे ही है जैसे राजस्थानी के 'जयपुरी' और 'जोधपुरी'। खडी बोली मेरठी है। इस खडी बोली का ही एक साहित्यिक रूप उर्दू है और दूसरा है 'हिन्दी'। दक्षिण मे दक्खिनी की प्रकृति 'बागरू' जान पडती है। देहली से उधर मथुरा क्षेत्र सटा हुआ है, वहा की वह भाषा है जिसका साहित्यिक रूप सूरदास आदि के काव्यो मे आप को प्राप्त है। उसी देहली से छोटी लाइन की गाडी पर चलो, तो थोडा ही चलकर 'रेवाडी' का स्टेशन आ जाएगा जहा

राजस्थानी भाषा का क्षेत्र शुरू होता ह। उसी देहली से पश्चिम की ओर पाव रखो तो 'कुरु जागल' ह जिसे बागर भी कहते है। यहा की भाषा या बोली 'बागरू' ह कौरवी का ही रूपान्तर। देहली से पूरब चलो तो पूर्वाभिमुखी भाषाएँ मिल जाती ह। और देहली ह सबकी। फिर भी मेरठी या कौरवी से ही उसका निकटतम सम्पर्क ह। देहली से मेरठ ह ही कितनी दूर। देहली हिन्दी का केन्द्र ह, पर है और सब भाषाओ की यह देहली ह। दिल्ली हिन्द का केन्द्र हिन्दी का केन्द्र।

यह सब लिखने का तात्पय यह है कि हरियाना का भाग रेवाड़ी भी ह और गुडगाव भी, अम्बाला हिसार भी। चडीगढ पजाब को दे देने पर फाजल्का तहसील का हिस्सा भी। इस प्रकार हरियाना की सीमा का निर्धारण किया गया है।

हरियानवी भाषा के अतिरिक्त हरियाना मे और भी कई बोलिया बोली जात्ती ह। जिनमे निम्न प्रमुख है —

मेवाती

इस बोली पर अब तक अनुसधान नही के बराबर ही हुआ ह। इस बोली का नाम करण मेवात प्रदेश के आधार पर हुआ है। मेवात इस समय किसी एक राज्य के किसी क्षेत्र विशेष का नाम न होकर तीन चार राज्यो के सीमावर्ती स्थानो के उस मिले जुले प्रदेश का नाम ह जहाँ मेव जाति के लोगो का निवास है। 'मेव' एक देशज शब्द ह जिसकी व्याख्या हिन्दी शब्दसागर मे कोशकारो ने एक 'लुटेरा जाति' के रूप मे की ह। कहा जाता है कि यह पहले एक राजपूत जाति थी जिसे मुगल शासन काल मे मुसलमान बना लिया गया। इस समय मेव एक मुस्लिम जाति के पर्याय रूप मे ही जाने जाते है। गुर्जर जाति के नाम पर जिस प्रकार गुजरात प्रख्यात हुआ, उसी प्रकार मेव जाति के आधार पर इस प्रदेश का नाम मेवात प्रचलित ह। इसी प्रदेश की बोली 'मेवाती' कहलाती ह। डा० बिकल ने ठीक ही लिखा है कि मेवाती बोली का क्षेत्र केवल मेवात प्रदेश तक ही सीमित न होकर उसके आस पास के विभिन्न स्थानो तक भी फैला हुआ है। मेवात कभी राजपूताना के अ तगत एक प्रदेश का नाम था। बाद मे अग्रेजो ने इसे कुछ खण्डो मे विभाजित किया अब भरपुर अलवर तथा हरियाना के जिला गुडगाव की तहसील नूँह फिरोजपुर झिरका और बावल का कुछ भाग ही मेवात के नाम से जाना जाता है। कि तु मेवाती का विस्तार इस समय राजस्थान म भरतपुर के पश्चिमी प्रदेश और सम्पूण अलवर तथा हरियाणा के जिला गुडगावा दक्षिण पश्चिमी, पश्चिम पूर्वी प्रदेश और जिला रोहतक के दक्षिणी भाग तक है। स्पष्टत मेवाती का पर्याप्त क्षेत्र हरियाणा के अन्तगत आता है। इसका पूरा विवरण 'भाषा सर्वेक्षण' मे इस प्रकार है —

१ जिला गुडगाँवा तहसील गुडगाँवा एक चौथाई भाग २ तहसील रिवाडी का एक तिहाई भाग ३ तहसील बावल का आधा भाग ४ तहसील पटौदी एक तिहाई भाग ५ तहसील फिरोजपुर झिरका सम्पूण भाग ६ तहसील नूँह दो तिहाई भाग ७ जिला रोहतक तहसील झज्झर एक तिहाई भाग।

इस प्रकार हरियाणा का एक हजार वगमील से भी अधिक भाग क्षेत्र मेवाती बोली

का ह । और लगभग पन्द्रह लाख मेवाती भाषी लोगा मे प्राय पाच लाख हरियाना के दक्षिणी क्षेत्र के निवासी है ।

डा० मेनारिया के राजस्थानी भाषा एव साहित्य के आधार पर हरियाणा (गुडगावा) की मेवाती का उदाहरण—"वाडो ! न तो हीन नहिर घर न बोजडी ई ह । हीन तो लाव चरस जोता हा अर खेतण मै पानी देवा हा । वाडी ! सरकार रुपिया देती बताई कुआ बन वाण लू अर रहिट लगाण लू ।"

दूसरी भाषा है अहीरवाटी

श्रीशैल गौतम के अनुसार इसे प्राय हीरवाटी या अहीरवाल (या अहीर प्रदेश) की भाषा भी कहा जाता ह । यह गुडगाव जिले के पश्चिमी प्रदेश मे बोली जाती ह । यह बोली नजफगढ के आसपास देहली जिला के डाबर क्षेत्र मे भी पाई जाती ह, कि तु इसे यहा 'मेवाती' नाम दे दिया जाता है । यह क्षेत्र भौगोलिक दष्टि से गुडगाव प्रदेश का ही विस्तार मात्र सम झना चाहिए । उसी ओर यह क्षेत्र रोहतक जिले के दक्षिण मे झज्झर तहसील अथात पाल्हावास तक फैला हुआ है । इसके उत्तर की ओर पश्चिमी हिदी की बागरु बाली पाई जाती ह । अहीरवाटी को मेवाती का एक रूपमात्र समझना चाहिए । पश्चिमी गुडगाव मे रेवाडी को अहीरवाटी का केन्द्र माना जा सकता ह, इसके अतिरिक्त नारनौल का अधिकाश भाग इसकी सीमा परिधि मे आ जाता है । यहा दादरी इसकी अतिम सीमा मानी जा सकती है । जहा एक ओर हरियानी (बागरू) का आधिपत्य आरम्भ हो जाता ह । और दूसरी आर बागडी मिलने लगती ह । दादरी को मुख्यत बागडी के अन्तगत रखा जाता ह । अहीरवाटी की पश्चिमी सीमा पर शेखावटी राजस्थानी की एक बोली ह । अत यह स्पष्ट ह कि अहीर-वाटी बोली बागरु, बागडी और शेखावटी बोलियो के बीच की कडी का काम करती है ।

गुड गावा की अहीरवाटी का नमूना—"एक सकस के दो बेटा था । उन माह तै छोटनो बाप तै बोल्यो अक बाबा जी माल को बट जो मूने दीणू होय सो दे दो । जब अने वो माल को बट जिस तरह कह्यो थे उसी तरह बाट दियो ।"

रामेश्वर दयाल शास्त्री ने लिखा ह कि अहीरवाटी वस्तुत मेवाती और हरियाणी का सम्मिश्रण ह । इसके शब्द प्राय हरियाणवी के है । किन्तु मेवाती व्रजभाषा और राजस्थानी भाषाओ के समीपस्थ भू भाग की बोली होने के कारण इस पर उपयुक्त तीनो भाषाओ का ध्वनि प्रभाव है । इसका उच्चारण हरियाणवी की अपेक्षा किञ्चिदमदु ह । हरियाणवीमे 'कडै' राजस्थानी मे 'कठै' मेवाती मे 'कित' और अहीरवाटी मे इसका कठे' उच्चारण किया जाता है । हरियाणवी मे जहा उच्चारण विवत मुख होता है वहा अहीरवाटी मे शब्दो का कुछ चबा कर उच्चारण किया जाता ह ।

घग्गर नदी के आस पास की भाषाएँ

इस क्षेत्र मे अम्बाला जिले का कुछ भाग हिसार करनाल रोहतक और फिरोजपुर का कुछ अश सम्मिलित किया जा सकता है । इसके पूव की ओर पश्चिम उत्तर प्रदेश तथा दक्षिण की ओर राजस्थान लगता है । इन साथ लगते क्षेत्रो का इस क्षेत्र की उपभाषाओ पर काफी प्रभाव है । इस क्षेत्र की उपभाषाओ को निम्न भागो मे बाटा जा सकता है । १—पुआधी

राजस्थानी भाषा का क्षेत्र शुरू होता है। उसी देहली से पश्चिम की ओर पाव रखो तो 'कुरु बागड़' जिसे बागर भी कहते हैं। यहां की भाषा या बोली 'बागरू' है कौरवी का ही रूपान्तर। देहली से पूरब चला तो पूर्वाभिमुखी भाषाएं मिल जाती हैं। और देहली है मेरठी। फिर भी मेरठी या कौरवी से ही उसका निकटतम सम्पर्क है। देहली से मेरठ है ही कितनी दूर। देहली हिन्दी का केन्द्र है, पर है और सब भाषाओं की यह देहली है। दिल्ली हिन्द का केन्द्र हिन्दी का केन्द्र।

यह सब लिखने का तात्पर्य यह है कि हरियाना का भाग रेवाड़ी भी है और गुडगाव भी, अम्बाला हिसार भी। चडीगढ पजाब को दे देने पर फाजल्का तहसील का हिस्सा भी। इस प्रकार हरियाना की सीमा का निर्धारण किया गया है।

हरियानवी भाषा के अतिरिक्त हरियाना मे और भी कई बोलिया बोली जात्ती है। जिनमे निम्न प्रमुख है —

मेवाती

इस बोली पर अब तक अनुसधान नही के बराबर ही हुआ है। इस बोली का नामकरण मेवात प्रदेश के आधार पर हुआ है। मेवात इस समय किसी एक राज्य के किसी क्षेत्र विशेष का नाम न होकर तीन चार राज्यो के सीमावर्ती स्थानो के उस मिले जुले प्रदेश का नाम है जहाँ मेव जाति के लोगो का निवास है। 'मेव' एक देशज शब्द है जिसकी व्याख्या हिन्दी शब्दसागर मे कोशकारो ने एक 'लुटेरा जाति' के रूप मे की है। कहा जाता है कि यह पहले एक राजपूत जाति थी जिसे मुगल शासन काल मे मुसलमान बना लिया गया। इस समय मेव एक मुस्लिम जाति के पर्याय रूप मे ही जाने जाते है। गुर्जर जाति के नाम पर जिस प्रकार गुजरात प्रख्यात हुआ, उसी प्रकार मेव जाति के आधार पर इस प्रदेश का नाम मेवात प्रचलित है। इसी प्रदेश की बोली 'मेवाती' कहलाती है। डॉ० बिकल ने ठीक ही लिखा है कि मेवाती बोली का क्षेत्र केवल मेवात प्रदेश तक ही सीमित न होकर उसके आस पास के विभिन्न स्थानो तक भी फैला हुआ है। मेवात कभी राजपूताना के अन्तर्गत एक प्रदेश का नाम था। बाद मे अग्रेजो ने इसे कुछ खण्डो मे विभाजित किया अब भरपुर अलवर तथा हरियाना के जिला गुडगाव की तहसील नूह फिरोजपुर झिरका और बावल का कुछ भाग ही मेवात के नाम से जाना जाता है। किन्तु मेवाती का विस्तार इस समय राजस्थान मे भरतपुर के पश्चिमी प्रदेश और सम्पूर्ण अलवर तथा हरियाणा के जिला गुडगावा दक्षिण पश्चिमी, पश्चिम पूर्वी प्रदेश और जिला रोहतक के दक्षिणी भाग तक है। स्पष्टतः मेवाती का पर्याप्त क्षेत्र हरियाणा के अन्तर्गत आता है। इसका पूरा विवरण 'भाषा सर्वेक्षण' मे इस प्रकार है —

१ जिला गुडगाँवा तहसील गुडगाँवा एक चौथाई भाग २ तहसील रिवाडी का एक तिहाई भाग ३ तहसील बावल का आधा भाग ४ तहसील पटौदी एक तिहाई भाग ५ तहसील फिरोजपुर झिरका सम्पूण भाग ६ तहसील नूँह दो तिहाई भाग ७ जिला रोहतक तहसील झज्झर एक तिहाई भाग।

इस प्रकार हरियाणा का एक हजार वर्गमील से भी अधिक भाग क्षेत्र मेवाती बोली

का है । और लगभग पन्द्रह लाख मेवाती भाषी लोगो मे प्राय पाच लाख हरियाना के दक्षिणी क्षेत्र के निवासी है ।

डा० मेनारिया के राजस्थानी भाषा एव साहित्य के आधार पर हरियाणा (गुडगावा) की मेवाती का उदाहरण—"वाडी ! न तो हीन नहिर घर न बीजडी ई ह । हीन तो लाव चरस जोता हा अर खेतण मैं पानी देवा हा । वाडी ! सरकार रुपिया देती बताई कुआ बन वाण लू अर रहिट लगाण लू ।"

दूसरी भाषा है अहीरवाटी

श्रीशैल गौतम के अनुसार इसे प्राय हीरवाटी या अहीरवाल (या अहीर प्रदेश) की भाषा भी कहा जाता ह । यह गुडगाव जिले के पश्चिमी प्रदेश मे बोली जाती ह । यह बोली नजफगढ के आसपास देहली जिला के डाबर क्षेत्र मे भी पाई जाती ह, किन्तु इसे यहा मेवाती' नाम दे दिया जाता है । यह क्षेत्र भौगोलिक दष्टि से गुडगाव प्रदेश का ही विस्तार मात्र समझना चाहिए । उसी ओर यह क्षेत्र रोहतक जिले के दक्षिण मे झज्झर तहसील अथात पाल्हावास तक फैला हुआ है । इसके उत्तर की ओर पश्चिमी हिन्दी की बागरु बोली पाइ जाती ह । अहीरवाटी को मेवाती का एक रूपमात्र समझना चाहिए । पश्चिमी गुडगाव मे रेवाडी को अहीरवाटी का केन्द्र माना जा सकता ह, इसके अतिरिक्त नारवौल का अधिकाश भाग इसकी सीमा परिधि मे आ जाता है । यहा दादरी इसकी अन्तिम सीमा मानी जा सकती है । जहा एक ओर हरियानी (बागरू) का आधिपत्य आरम्भ हो जाता ह । और दूसरी ओर बागडी मिलने लगती ह । दादरी को मुख्यत बागडी के अन्तगत रखा जाता ह । अहीरवाटी की पश्चिमी सीमा पर शेखावटी राजस्थानी की एक बोली ह । अत यह स्पष्ट ह कि अहीर-वाटी बोली बागरु, बागडी और शेखावटी बोलियो के बीच की कडी का काम करती ह ।

गुड गावा की अहीरवाटी का नमूना—"एक सकस के दो बेटा था । उन माह तै छोटनो बाप त बोल्यो अक बाबा जी माल को बट जो मूने दीणू होय सो दे दो । जब अने वो माल को बट जिस तरह कह्यो थे उसी तरह बाट दियो ।"

रामेश्वर दयाल शास्त्री ने लिखा ह कि अहीरवाटी वस्तुत मेवाती और हरियाणी का सम्मिश्रण ह । इसके शब्द प्राय हरियाणवी के है । किन्तु मेवाती व्रजभाषा और राजस्थानी भाषाओ के समीपस्थ भू भाग की बोली होने के कारण इस पर उपयुक्त तीनो भाषाओ का ध्वनि प्रभाव है । इसका उच्चारण हरियाणवी की अपेक्षा किञ्चिदमदु है । हरियाणवीमे 'कडै' राजस्थानी मे 'कठै' मेवाती मे 'कित' और अहीरवाटी मे इसका कठे' उच्चारण किया जाता है । हरियाणवी मे जहा उच्चारण विवत मुख होता है वहा अहीरवाटी मे शब्दो का कुछ चबा कर उच्चारण किया जाता है ।

घग्गर नदी के आस पास की भाषाएँ

इस क्षेत्र मे अम्बाला जिले का कुछ भाग हिसार करनाल रोहतक और फिरोजपुर का कुछ अश सम्मिलित किया जा सकता है । इसके पूव की ओर पश्चिम उत्तर प्रदेश तथा दक्षिण को ओर राजस्थान लगता है । इन साथ लगते क्षेत्रो का इस क्षेत्र की उपभाषाओ पर काफी प्रभाव है । इस क्षेत्र की उपभाषाओ को निम्न भागो मे बाटा जा सकता है । १—पुआधी

२—हरियाणा की भाषाएँ जिनमे राठी, भटियानी, और बागडी शामिल है। पुआधी केन्द्रीय टकसाली पंजाबी से भिन्न है और पश्चिमी उत्तर प्रदेश का प्रभाव है। पूर्व की ओर यह भाग हिन्दी मे मिलती है। जिला हिसार मे घग्घर नदी के साथ साथ चाली जाने वाली भाषा को पंजाबी भाषा कहते हैं। यहा के राठ इसको बोलते हैं। राठी से मिलती उपभाषा भटियानी है। बागडी उपभाषा भी राठी और भटियानी का मिश्रित रूप है।

डा० शङ्करलाल यादव ने हरियाणा प्रदेश के क्षेत्र के बारे मे लिखा है कि अत हमारी स्थापना जो इस इलाके के परिभ्रमण पर आधारित है वह है कि हरियाणे की पूर्वी सीमा पश्चिम नजफगढ बहादुरगढ और दिल्ली को छूती है फिर वही रेखा दुजाना को छुती हुइ दादरी पहुचती है। वही से सांभी भिवानी हासी हिसार होकर सिरसा की ओर आगे बढकर जगराहा होती हुई टोहाना पहुच जाती है। वहा से कथल करनाल पानीपत होकर दिल्ली आ मिलती है।

बागडी बोली का क्षेत्र डा० ग्रियसन ने राजपूताने का बीकानेर हिसार (सिरसा तहसील का दक्षिण भाग तथा शेष हिसार जिले का वह भाग जो बीकानेर की पूर्व सीमा के साथ लगता है) लोहारू और जीद राज्य की दादरी निजामत के पश्चिमी भाग को माना है। हरियाणवी आकारान्त प्रधान है और बागडी मे ओकारान्त रूप हैं। जसे 'दलिया, मेवा, राणा, के बागडी म 'दलियो मेवो' 'राणो' रूप होते है।

पुआधी और हरियानवी बोली म भी बहुत साम्य है। हरियानवी की सीमाएँ हिसार रोहतक जीद के भूभाग को अन्तभूत करती है और पुआध का विस्तार हिसार अम्बाला पटियाला और जीद तक है। हरियाणवी और पुआधी मे से एक बोली वस्तुत कहा पर समाप्त होती है और दूसरी कहाँ से प्रारम्भ होती है यह कहना कठिन है। किसी किसी गाँव मे तो दोनों ही विभाषाओ के बोलने वाले मिलते हैं—या एक ही व्यक्ति दोनो ही बोलिया बोलता है श्रीराम गोपाल कौडा के आधार पर दोनो मे बहुत समानता है। जैसे —

हरियाणवी	पुआधी
जाण (जाना क्रिया)	जाण
जाण (जानना क्रिया)	जाण
पराणो (चाबुक)	पराणी
अपणे (अपने)	अपणे
दाल (दाल)	दाल

डा० ग्रियसन ने अम्बालवी बोली को भी अलग महत्त्व दिया है। यह बोली पर्याप्त क्षेत्र मे बोली जाती है।

हरियाना मे पलवल होडल भी सम्मिलित है। कहा जाता है कि पलवल को प्रलम्ब नाम के असुर ने बसाया था। महापडित राहुल जी का मत है कि 'पल्वल सरासि' अर्थात 'पल्वल' पोखर को कहते हैं। पलवल ऊँचे स्थान पर बसा है और इसके आस पास चारो ओर 'भवन कुड' आदि नाम के पोखर हैं भी। एक विद्वान 'पौण्ड्रवन' से 'पलवल' बना ऐसा मानते है, उनका मत है कि सस्कृत मे 'ड' और 'न' को ल बन जाता है, 'डलोरलोर' से।

मथुरा के द्वारकाधीश जी के मदिर म प्रलम्ब राक्षस का चित्र बना हुआ है। पलवल क्षेत्र की बोली उत्तर प्रदेश की ब्रज भूमि म मिलती जुलती ह। मथुरा समीप होने के कारण व्रज चौरासी कोस' के आधार पर यहा की भूमि ब्रज भाषी भूमि म ही आती ह।

इस प्रकार हरियाना म हिन्दी की कई उपभाषाए बोली जाती है। यहाँ की राजकाज की भाषा हिन्दी ह। उपरोक्त उप भाषाओ का कोई प्राचीन साहित्य लिखा गया था या नही इस की कोई समुचित खोज नही हो पायी। प्राचीन साहित्य के मिलने की सभावना अवश्य ह। इस प्रदेश की जनता धार्मिक विचारो से ओत प्रोत ह। यहा मठ मदिर शिवालय अधिक सख्या मे पाये जाते है। धार्मिक नेताओ ने अवश्य ही अपनी बोली मे प्रवचन दिए होगे। इन सबका सम्भवत सकलन भी किया गया होगा। लोक प्रिय साहित्य की रचना भी होती रही होगी। खोज करने पर ग्र थ प्राप्ति की सभावना अवश्य है। यहा लोक साहित्य प्रचुर माला मे प्राप्त है अधिकतर वह छन्दोबद्ध और दवनागरी लिपि में मुद्रित है। लोक गीत लोककथाएँ मौखिक रूप में प्रचलित हैं। उनका कोई सग्रह वैज्ञानिक पद्धति से सग्रहीत नही किया गया। हरियाणा के भाषा विभाग के साथ साथ विद्वान राजनीतिज्ञ समाज सुधारक एव यहाँ की जनता हरियाना की हरियाली बढाने मे लगी हुई ह। अन्त मे हरियाने की ठेठ बोली मे स्व गुप्तजी के एक पत्र की पक्तिया उद्धत करते है, जिसे उन्होने प० माधव प्रसाद मिश्र को लिखा था—दोनो ही विद्वान हरियाणवी थे—पत्र का प्रारम्भ—पा लागा हो दादा ' तेरे पोते का व्याह सै।—तौ चाल म्हारै खेतमा देख कै बहार सै' यह है हरियानवी बोली का सरस आनन्द।



२—हरियाणा की भाषाएं जिनमें राठी, भटियानी और बागडी शामिल ह। पुआधी केन्द्रीय टकसाली पंजाबी से भिन्न है और पश्चिमी उत्तर प्रदेश का प्रभाव है। पूर्व की ओर यह भाग [illegible] से मिलती है। जिला हिसार से घग्घर नदी के साथ साथ बोली जाने वाली भाषा को पछाधी भाषा कहते ह। यहाँ के राठ इसको बोलते हैं। राठी से मिलती उपभाषा भटियानी ह। बागडी उपभाषा भी राठी और भटियानी का मिश्रित रूप है।

डा० शंकरलाल यादव ने हरियाणा प्रदेश के क्षेत्र के बारे मे लिखा ह कि अत हमारी स्थापना जो इस इलाके के परिभ्रमण पर आधारित ह, वह है कि हरियाणे की पूर्वी सीमा पश्चिम झज्जर बहादुरगढ और दिल्ली को छूती ह फिर वही रेखा दुजाना को छूती हुई दादरी पहुचती ह। वहां से सांवा भिवानी हांसी हिसार होकर सिरसा की ओर आगे बढकर जगराहा होती हुई टोहाना पहुच जाती ह। वहा से कथल करनाल पानीपत होकर दिल्ली जा मिलती ह।

बागडी बोली का क्षेत्र डा० ग्रियसन ने राजपूताने का बीकानेर हिसार (सिरसा तहसील का दक्षिण भाग तथा शेष हिसार जिले का वह भाग जो बीकानेर की पूर्व सीमा के साथ लगता ह) लोहारू और जींद राज्य की दादरी निजामत के पश्चिमी भाग को माना ह। हरियाणवी आकारान्त प्रधान ह और बागडी म ओकारान्त रूप हैं। जसे 'दलिया, मेवा, राणा, के बागडी म 'दलियो मेवो 'राणो' रूप होते हैं।

पुआधी और हरियानवी बोली मे भी बहुत साम्य ह। हरियानवी की सीमाएँ हिसार रोहतक जींद के भू भाग को अन्तभूत करती है और पुआध का विस्तार हिसार अम्बाला परिमाला और जींद तक ह। हरियाणवी और पुआधी मे से एक बोली वस्तुत कहाँ पर समाप्त होती ह और दूसरी कहा से प्रारम्भ होती है यह कहना कठिन है। किसी किसी गाँव मे तो दोनों ही विभाषाओ के बोलने वाले मिलते है—या एक ही व्यक्ति दोनो ही बोलियाँ बोलता है श्रीराम गोपाल कौडा के आधार पर दोनो मे बहुत समानता हैं। जैसे —

हरियाणवी	पुआधी
जाण (जाना क्रिया)	जाण
जाण (जानना क्रिया)	जाण
पराणो (चाबुक)	पराणी
अपणे (अपने)	अपणे
दाल (दाल)	दाल

डा० ग्रियसन ने अम्बालवी बोली को भी अलग महत्त्व दिया ह। यह बोली पर्याप्त क्षेत्र मे बोली जाती है।

हरियाना मे पलवल-होडल भी सम्मिलित ह। कहा जाता है कि पलवल को प्रलम्ब नाम के असुर ने बसाया था। महापडित राहुल जी का मत है कि 'पल्वल सरासि' अर्थात 'पल्वल' पोखर को कहते है। पलवल ऊँचे स्थान पर बसा ह और इसके आस पास चारो ओर 'भवन कुंड' आदि नाम के पोखर है भी। एक विद्वान 'पौण्ड्रवन' से 'पलवल' बना ऐसा मानते है, उनका मत है कि सस्कृत मे 'ड' और 'न' को ल बन जाता है, 'डलोरलोर' से।

मथुरा के द्वारकाधीश जी के मदिर म प्रकृष्ट रासरग का चित्र बना हुआ ह। पलवल क्षेत्र की बोली उत्तर प्रदश की ब्रज भूमि स बिल्कुल मिलती जुलती है। मथुरा समीप होने के कारण 'ब्रज चौरासी कोस' के आधार पर यहा की भूमि ब्रज भाषी भूमि म ही आती ह।

इस प्रकार हरियाना म हिन्दी की कई उपभाषाए बोली जाती है। यहाँ की राजकाज की भाषा हिन्दी ह। उपरोक्त उप भाषाओ का कोई प्राचीन साहित्य लिखा गया था या नही इस की कोई समुचित खोज नही हो पायी। प्राचीन साहित्य के मिलने की सभावना अवश्य ह। इस प्रदेश की जनता धार्मिक विचारो से ओत प्रोत ह। यहा मठ मदिर शिवालय अधिक सख्या मे पाये जाते ह। धार्मिक नेताओ ने अवश्य ही अपनी बोली मे प्रवचन दिए होगे। इन सबका सम्भवत सकलन भी किया गया होगा। लोक प्रिय साहित्य की रचना भी होती रही होगी। खोज करने पर ग्र थ प्राप्ति की सभावना अवश्य है। यहा लोक साहित्य प्रचुर माला मे प्राप्त है अधिकतर वह छदोबद्ध और दवनागरी लिपि मे मुद्रित है। लोक गीत लोककथाएँ मौखिक रूप मे प्रचलित है। उनका कोई सग्रह वैज्ञानिक पद्धति से सग्रहीत नही किया गया। हरियाणा के भाषा विभाग के साथ साथ विद्वान राजनीतिज्ञ समाज सुधारक एव यहाँ की जनता हरियाना की हरियाली बढाने मे लगी हुई ह। अन्त मे हरियाने की ठेठ बोली मे स्व गुप्तजी के एक पत्र की पक्तियाँ उद्धत करते है, जिसे उन्होने प० माधव प्रसाद मिश्र को लिखा था—दोनो ही विद्वान् हरियाणवी थे—पत्र का प्रारम्भ—पा लागा हो दादा! तेरे पोते का व्याह सै।—तौ चाल म्हारै खेतमा देख कै बहार सै' यह है हरियानवी बोली का सरस आनन्द।



भवाणी (भिवानी) नामकरण एवं विस्तार

राजाराम शास्त्री

हिसार जि० का [illegible] रेल द्वारा हिसार जाते समय मार्ग में एक भव्य स्टेशन देखने को उपलब्ध होता है जिस पर मोटे अक्षरों में लिखा रहता है 'भिवानी'।

भिवानी जिला हिसार की एक तहसील है और छोटी दिल्ली के नाम से प्रसिद्ध रही है। कारण स्पष्ट है 'गेट आफ राजपूताना' कहलाने वाली भिवानी से ही पुरातन काल से राजपूताना में ऊंटों द्वारा जीवन यापन का समस्त सामान जाता रहा है अतः व्यापार का प्रमुख केन्द्र होने के कारण छोटी दिल्ली के नाम से इसका प्रसिद्ध होना स्वाभाविक है।

'भिवानी बालकों ने तुड़वाई' यह कहावत इतिहास से सम्बन्ध रखती है। सन १८०९ में जनरल हार्ग साहब हरियाणा भर में विजय प्राप्त करते और अंग्रेजी राज्य की स्थापना करते भिवानी की ओर बढ़ रहे थे। ऐसी स्थिति में भिवानी वासियों का चिंतित होना स्वाभाविक था। गोष्ठी हुई। पंचायत बैठी। वृद्धों ने अधीनता स्वीकार करने की सम्मति दी। युवकों को बात पसन्द न आयी। अंग्रेजों से भिड़न्त हुई।

नवाब झज्जर की नौकरी में वीर ठाकुर पेमा सिंह थे। शहर पर आपत्ति का समाचार सुन घोड़े पर सवार हो चल दिये। युद्ध क्षेत्र में उतरे। अंग्रेज कमाण्डर ने बाला साहब के हाथी पर घोड़ा झोंका और सपाट से बाला साहब का सिर धड़ से अलग कर दिया। बाला साहब की भिवानी में समाधि उस वीर ठाकुर पेमा सिंह की वीरता की आज भी साक्षी स्वरूप विद्यमान है।

यह सब होते हुए भी भिवानी का भाग्य विपरीत था। अंग्रेज विजयी हुए। वृद्धों ने दुःख पूर्ण स्वर में युवकों को भर्त्सना करते हुए व्यंग किया 'भिवानी बालकों ने तुड़वायी'। वास्तव में युवा वर्ग वृद्धों की दृष्टि में बालक ही था। अस्तु।

दक्षिण से लौट कर बन्दा वैरागी ने अपनी पंजाब की विजय यात्रा इसी भिवानी से आरम्भ की थी। उसी की कड़ी में उसका दूसरा आक्रमण टोहाना जिला हिसार के किले पर हुआ था।

भिवानी निवासियों की धार्मिकता, गो पूजा आदि की प्रतीक रूप उक्ति है 'भिवानी नन्दा की'।

भारत के प्रथम स्वातन्त्र्य युद्ध का समारम्भ हुआ। लुटेरों को हाथ रंगने का अवसर हाथ लगा। वे भिवानी को लूटने चले। नगर निवासियों ने मिलकर सुरक्षात्मक उपाय किये फिर भी पर्याप्त लूट मार हुई। तत्कालीन सेठ नन्द राम जी ने अनेक राजपूतों को भिवानी की रक्षार्थ अपने कटले में रखा। भय था कि इस अराजकता का लाभ उठा कर कोई अन्य शक्ति शहर पर आक्रमण न कर बैठे।

हिसार और रोहतक से अनेक अंग्रेज परिवार सुरक्षार्थ भिवानी पहुँचे। सेठ नन्द

राम ने उन्हे शरण दी और उ हे तब तक अपने पास सुरक्षित रखा जब तक अराजकता समाप्त न हो गई ।

अराजकता के शान्त होते न होते रिगट साहब लुटेरा को पकडते, उनका सफाया करते ओर आतक फैलाते भिवानी पहुचे । भिवानी के लुटेरो की सूची मागी गयी । सेठ न द राम ने रात्रि के समय गुप्त गोष्ठी का आयोजन कर लुटेरा को कहला दिया 'कुशल चाहते हो तो लूट का समस्त माल रातो रात कटले मे छोड जाये' और वसा ही हुआ । सबका सामान वापिस लौटा दिया गया और रिगट साहब को कहलवा दिया गया 'भिवानी म कोई लूटमार नही हुई । तब रिगट साहब ने बाहर से अपने साथ पकड कर लाए गए लुटेरो को मिस फेरर हस्पताल के निकट एक शीशम के पेड के तले फासी दे दी । इस दश्य से भिवानी वालो पर अग्रेजो का पुन आतक छा गया ।

अग्रेजो की सुरक्षा के कारण सेठ नन्दराम को मु ह मागा पारितोषिक देने की बात कही गई । तब सेठ न द राम ने दो मागे अग्रेज सरकार के सामने रख कर अपनी धार्मिक वत्ति का परिचय दिया । प्रथम माग थी भिवानी म गो वध पर पाब दी । द्वितीय थी भिवानी की सीमा मे शिकार पर पाब दी । ओर दोना माग सरकार द्वारा स्वीकृत कर ली गई । इस घटना के कारण 'न दा की भिवानी' प्रसिद्ध हुई कि तु खेद का विषय ह कि उन्ही सेठ न द राम की मृत्यु किसी अग्रेज के हाथ की गोली से हुई ।

भिवानी मे सोलह पा ने चार बाजार एव बाजार एव बारह दरवाजे हैं । हालु और लोहड दो भागो मे भिवानी को बाटती हुई स्टेशन से सीधी बापोडा गाव तक सडक चली गई ह । यही बिचले बाजार की सडक कहलाती ह । सडक के दक्षिण और हालु और वाम ओर लोहड बसा ह ।

भिवानी अथवा भ्याणी (लोक भाषा में) का वास्तविक नाम है भानी । भानी वतमान भिवानी से लगभग चार मील दूर स्थित उमरावत गाव की जाट जाति की स्त्री थी । उसी के नाम पर वीर राजपूत नीम सिह ने इस शहर की नीम रखी । बिचला बाजार मे जहा आज इलेक्ट्रिक हाउस बना ह उसके पीछे जण्डी का वक्ष ह उसी स्थान पर सवत १४३३ चैत्र कृष्णा पचमी शुक्रवार को इस नगर का मुहूत किया गया था ।

वास्तव मे नीम सिह के दादा जाटु सिह अपने पिता से रुष्ट होकर सिरसा जि० हिसार मे चले आए थे । यहा ये कँवर पाल शोदा के यहा आकर ठहरे । शोदा के तीन लडकिया थी—काछल देवी बाछल देवी और पातल देवी । बडी दोनो लडकिया काछल और बाछल पुरेरा के राजपूतो मे ब्याही गई । इन्ही के यहा प्रसिद्ध वीर गूगासिह चौहान उपनाम 'गूगा पीर' का ज म हुआ जिसकी समाधि बीकानेर राज्यान्तगत 'गूगा मैडी' के स्थान पर वतमान ह और जहा गूगा नवमी के दिन आज भी भारी मेला लगता ह ।

तीसरी बहिन पातल देवी का विवाह जाटुसिह के साथ हुआ और उ हे घर का जमाई रख लिया गया । जाटु सिह के दो पुत्र हुए साढ सिह और हरपाल सिह । जिन दिनो यवनो के भारत पर आक्रमण हो रहे थे तब इन दोनो वीर पुत्रो ने हासी के आस-पास ऊजड पडे गाव पुन बसाए और इस प्रकार कतव्य परायणता, निपुणता आदि द्वारा १४४० गॉव अपने

अधीन कर लिये। इन्ही में से गंगा सिंह के पुत्र का नाम नीम सिंह था जिन्होने आगे चल कर भिवानी की स्थापना की।

नीम सिंह भी [illegible] समाप्त [illegible] हिसार [illegible] उमरात में आ कर रहे। [illegible] भानी [illegible] जाट शासक थे [illegible] जाटों पर अपना [illegible] जमाने में सफल [illegible] कारण [illegible] भीतर ही भीतर नीम सिंह से [illegible] करने लगे और अवसर पाने पर उनके [illegible] रचने लगे।

भानी नाम की जाटनी नीमसिंह की वीरता, चातुर्य और सम्मानोचित गुणों के कारण उन पर आसक्त थी अत [illegible] उसने षड्यन्त्र की सूचना नीम सिंह को दे दी। नीम सिंह होशियार हो गए। समय आने पर परस्पर लड़ाई में जाटों को नीचा देखना पड़ा।

नीम सिंह की विजय तो हुई पर उसे वे निरापद न बना सके। वे चाहते थे कि किसी अन्य स्थान पर रहने लगे और भानी की कृपा से प्राप्त विजय स्थायी हो जाए।

वे इसी चिन्ता में एक दिन चले जा रहे थे कि उन्होंने देखा एक भैंसा कही से पानी पीकर मस्त चला आ रहा है। नीम सिंह जी ने समझ लिया कि निकट ही कही जलाशय ह और वही स्थान निवास के लिये उपयुक्त रह सकता ह। वे भैंस की विपरीत दिशा मे कुछ ही दूर गए थे कि उन्हे बहुत सुन्दर जलाशय दिखाई पडा। उसे देख नीम सिंह जी बाछे खिल गई और वही रहने का निश्चय कर नगर का मुहूत कर दिया। इस मुहूत के पुरोहित थे बुवानी निवासी प० किशोरी लाल लाटा।

नीम सिंह ने मान एव प्राणो की रक्षा करने वाली भानी की कृतज्ञता प्रकट की नगर का नाम भानी रख कर। भानी से भ्याणी और भ्याणी से बिगड कर आज यह नगर भिवानी के नाम से सवत्र प्रसिद्ध ह।

नीम सिंह ने इतने मे ही अपनी कृतज्ञता की इतिश्री नही कर दी अपितु भानी के पुत्र मीता सिंह के नाम पर गाव 'मीता थल' बसाया और अपने नाम पर भिवानी के निकट नीमड बसाया। आज भी भिवानी मे राजपूतो की जितनी चौपाल हैं उनमे नीम का पेड देखने को उपलब्ध होगा। वे नाम का साम्य होने के कारण नीम को पवित्र वृक्ष मानते हैं और उसकी टहनी और पत्तो तक की क्षति पहुँचाना पाप समझते ह।

नीमसिंह के पुत्र का नाम था बाच्छु सिंह। बाच्छु सिंह के दो पुत्र हुए लोहड सिंह और जोनपाल सिंह। वतमान लोहड बाजार इ ही वीर लोहड सिह के नाम से बसा। ये अत मे वीर हो गए थे।

जोनपाल सिंह के चार पुत्र थे—हालु सिंह, वीरम सिह, नर सिंह और जयत सिह। वतमान हालु बाजार इ ही हालु सिंह के नाम से बसा। शेप तीन भाइयो के नाम पर तीन पाने बसे। वीरम सिंह के नाम से वीरवाण पाना, नरसिंह के नाम से नरसाण पान्ना और जयत सिंह के नाम से जीतूवाला तालाब बना। आगे चलकर जोनपालजी के वश मे आसु सिंह और मानु सिंह हुए जिनके नाम पर आसिया पान्ना और मानाण पाना बसे हुए हैं।

लोहड सिंह के पाच पुत्र हुए—छाजु सिंह, उदा सिह, बलवीर सिंह झाम सिंह और मुण्डू सिंह। इनमे बडे तीनो भाई नि स तान रहे। झाम सिह के दो पुत्र थे। मुण्डू सिंह

अपने पिता के साथ यवन हो गए थे। इस प्रकार लोहड बाजार मे झाम सिह के वशज राज पूत ही निवास करते है।

झाम सिह के दो पुत्र हुए मोघा सिंह ओर मेघा। इन दोनो के नाम पर लोहड बाजार मे दो पान्ने बसे हुए है मोघाण ओर मेघाण। इन दोनो मे भी एक एक मे चार चार पान्ने वसे हुए ह। मोघाण मे सोलाण, भणसी, टाह्या, खोखराण। मेघाण मे राजान, काथान, पुथान, दासान। ये पा ने इन की स ताना के नाम पर बसे ह। वास्तव मे लोहड मे दो ही पान्ने ह इनकी चार चार अवा तर शाखाएँ ह। इस प्रकार आठ पान्ने लोहड मे ह।

जैसा कि ऊपर बताया हालु म चार पा ने प्रसिद्ध ह—बीरवाण, नरसाण, आसिया और माणान। पा ना नरसाण मे तीन शाखाएँ ह, लेखवाण, हि दवाण, भीखाण। माणान पा ने की एक शाखा है कीताण। इस प्रकार १६ पा नो, चार बाजार और बाहर दरवाजो से युक्त भानी के नाम पर कृतज्ञता प्रकट करने के लिये बसाइ 'भ्याणी' नीम सिह की आज भी यशोगाथा सुना रही है। सस्कृत भाषा के प्रचार मे अग्रणी रहने के कारण इसे छोटी काशी भी कहा जाता है।[1]



१ स्व० विश्वेश्वरलालजी हलवासिया भिवानी के निवासी थे। भिवानी का विशेष परिचय इस लेख मे दिया गया है।

"देसां मां देस हरियाना"

देवेन्द्र सत्यार्थी

"दसा मा देम हरियाना,
जित दूध दही का खाना।"

हरियाना प्रवास के पहले रोज ही एक ग्राम म मुझे यह लाकोक्ति प्राप्त हुई। और मैंने हरियाने की गाय देखी उसके स्वास्थ्यका, उसकी अधिक से-अधिक दूध दे सकने की सामर्थ्य का बखान सुना, तो मनने इसे दूध दही की धरती' मान लिया। यहा किम्वदन्ती ह कि एक बार स्वय गोपालकृष्ण इधर आ निकले थे और तभी स यह हरियाना—हरि (कृष्ण) की भूमि कहलाया ह। कृष्ण ने यहा के दूध की प्रशसा की थी यहा के दही को सर्वोत्तम बतलाया था, पर वह ब्रज का छोडकर सदा के लिए इधर न बस सके थे, इधर गोपिया न थी, न राधा उनके साथ इधर आने का तैयार थी। कृष्ण की मुरली का गूँज अब भी बाकी ह, और गाय के कान उसे पूणमासी की खामोश रात म कभी कभी अब भी सुन लिया करते हैं। लोक कथा तो यह भी बतलाती है कि तब गाय मुँह ऊपर करके वेदनामय आवाज निकालती ह, जैसे वह उस गोपाल को फिर से बुला रही हो, जैसे वह उसे अपनी वतमान रक्षाहीनता पर चार अश्रु गिराने को कह रही हो। और मैंने हरियाने के लोकगीत की विषाद-रेखा मे गाय की करुण पुकार का कुछ अश देखा भी ह।

हरियाना—गुडगाव, हिसार, रोहतक, कर्नाल का प्रदेश—बागर, नहरांपुर और खाद्दर, तीन भागो मे बाँटा जा सकता है। बाँगरे के खेत हमेशा बादलो का आसरा ताकते हैं, जब नहर नही निकली थी, नहरापुर का भी प्राय यही हाल था, खाद्दर वह भाग है, जो जमुना के साथ-साथ चला गया है, जमुना की कछार से इसका जन्म हुआ था। बाँगर का किसान गरीबी का सामना करता आया है, उसकी वेदना उसके गीत मे, उसकी पष्ठभूमि मे मिलती गई है। नहर के पानी ने नहराँपुर को हरियाला जरूर बना दिया, पर यह न समझना चाहिए कि वहाँ गरीबी रही ही नही। कभी कभी तो मालियाना भी पूरा नही निकलता और किसान का गीत बासी फूल की भाति मुरझाता हुआ एकदम मरियल प्रतीत होता है। अभी तक किसान के गीत ने नहर के पानी को अघ्य नही दिया ह। खाद्दर का किसान घाटे मे नही रहता, तभी उसका गीत भी उसके जीवन की भाँति ही अधिक स्वप्निल होता ह। उसका गीत वहा से आरम्भ होता ह, जहा जीवन हँसता है, जहा बेफिकरी के फौरन बाद ही आलस्य का भी आगमन हो जाता है। और खाद्दरा निवासियो पर लोक कथा ने कई बार व्यग्य कसा है, और उस किसान की बात, जिसने अपने पेटपर से मक्खी उडा देने के लिए दूर से अपनी पत्नी को पुकारा था, लोकोक्ति मे समाया चाहती ह। यो हरियाने मे हिन्दू, मुसलमान, छोटे-बडे, धनी-गरीब, सभी बसते ह, पर मुख्यतया यह जाट-भूमि ही है।

अपनी मातभाषा को, जिसे जाटू या बागरू का नाम मिल गया है, जाट ने काफी बल दिया है। जिस शब्द को भी वह अपनी वाणी मे स्थान देता ह, उसे एक अपना ही उच्चारण भी प्रदान करता है। साधारण हिन्दी शब्द भी जाट के होठो पर जाकर उच्चारण के एक खास जोर और घुमाव से एक नवीन रूप रेखा या अथ लेता ह। समस्त हरियाने की भाषा एक ही नही ह। जिन्हे शिक्षा मिली ह, या जो ग्रामो मे नही रहते, प्राय ऐसी भाषा बोलते हैं, जो हिन्दी के पीछे चलती ह, पर वे लोग जो जाट के पडोस मे धरती के नजदीक के धन्धो से रोटी कमाते हैं, जाट भाषा बोलते ह, यह दूसरी बात ह कि इनके उच्चारण मे जाटका सा बल नही आ पाता। भाषा के भेदने लोकगीत को भी बाट दिया ह। जाट भाषा का रूप भी सब जगह एक सा नही है, इसमे भी भेद है। जहाँ' के अथ मे कही 'जिते' कहते है, कही 'जडै', 'तेरे' और 'थारे', 'मेरे' और 'म्हारे', एक ही अथ मे, थोडे थोडे फासले पर एक साथ चलते ह। राजस्थानी का प्रभाव स्पष्ट ह, पजाबी रग भी आता ह। शतदल मे जैसे मकर द होता ह, सीपी मे जैसे स्वाति बूँद मोती को ज म देती ह, लोक भाषा के साधारण शब्दो मे गायक की स्वर लहरी एक नई ही आत्मा डालती चलती ह। वशी-रव की सी कोमलता जाट गीत के भाग्य मे नही बदी। उधार लिये शब्दो मे भी जाटा गीत एक अपनापन ले आया ह, और जब कवि गीत को ज म देता है तो वह शब्द चयन और वाक्या के घुमाव मे एक स्वतन्त्र पुरुष की भाति एक निजी रूप रेखा को सामने रखता ह। यो हरियाने की हर-एक जाति ने लोक गीत की सष्टि मे भाग लिया ह। और जब भी कोई गहरा और विस्तृत अध्ययन हरियाने के लोकगीत को प्रकाश मे लायेगा, तो हम इसे दो अध्यायो म बँटा पायँगे—(१) जाट गात, (२) अन्य जातियो का गीत।[1]

जाट लोकगीत खेत के पास पास पला है। गीत के विकास मे खेत की कोख धय हुई है। बाजरे के लिट्टे, मकई के भुट्टे या गेहूँ की बाले देखकर फिर जाट का गीत सुनिये। जाट की कविता को आप एक दुलहिन के रूप मे पायँगे और दुलहिन भी वह जिसका सिंगार खेत मे उगी हुई वस्तुओ से हुआ है। शायद आप उसकी किसी लट मे गेहूँ की कोई बाल देख पायँ, या शायद वह बाजरे का लिट्टा या मकई का भुट्टा लिये मचलती हुई आ रही हो, खेत की मेड के ऊपर-ऊपर अपने कान पर मूँग की फली लगाये। और जब मधु रजनी का मिलन गान पख लगाकर उडता है, दुलहिन की आखो मे आप ही आप लज्जा आ समाती ह। परिश्रमी किसान के लिए जीवन एक सुख स्वप्न ही तो बन जाता है, तब वह गरीब नही रहता, मधुमिश्रित सोम नशा लाता है जसे स्वग एकदम उसके घर मे ही आ गया हो।

'जाट जात गगा,' हरियाना की एक लोकोक्ति है। गगा मे जितनी ग्रहणशीलता है, इधर उधर से आई धाराओ को अपने मे समाकर गगा रूप दे सकने की जो सामथ है वही

१ रोहतक मे दो देवियो ने, जो ननद भावज है इस ओर प्रयत्न किया है। उनके नाम है सीतादेवी प्रभाकर और लीला भूषण। उनकी पुस्तक प्रकाशन की राह देख रही है। —ले०

जाट लोकगीत में भी है। जाट का भी अपनी ही एक नीति है, कोई उसे यो ही ठग नही सकता। [illegible] उसकी [illegible] नाम है। 'अनपढ्या जाट पढ्या बराबर, पढ्या जाट राम बराबर' में उसकी [illegible] की अमर [illegible] है। 'जाट मरया जब जाणिए जब तरहवी (बरसी) हो जाए'। जाट वीर होता है और उसकी मृत्यु यो ही नही हो सकती। [illegible] की एक [illegible] में यही गुण खानाबदोशो की झोली में डाला गया है 'खानाबदोश के शरीर के दस भाग करने से क्या उसे खत्म कर दिया गया है? नही, आपने एक से दस खानाबदोश बना दिये है।' जाट के ये सभी गुण उसके गीत में भी आ गये है।

जाट गीत को परे रखकर हरियाने की कल्पना करना ऐसा ही ह, जैसे मधुमक्खियो के बिना मधुकोश पा सकने का व्यर्थ प्रयत्न। विवाह गान का अचल पडोसी प्रान्तो के विवाह गान से जुड गया ह। बालक जन्म के गान का तथा कुछ अन्य के गीतो का भी यही हाल हुआ ह। इसमे क्या? जाट को अपने हृदय मन्थन के लिए विस्तृत समय मिला है। उसका गीत फसल के साथ साथ पकता ह। चौडे कन्धोवाला, सूर्य के प्रकाश मे तप हुए मखवाला यह धरती का बेटा अपनी रूप रेखा मे समस्त जाट जाति को पेश करता ह। जब वह हँसता ह आप भी अपने हृदय मे हसी की लहर उठता पाते है, जब वह गाता ह, समस्त जाट जाति के दिल की धडकन सुनी जा सकती ह। जाट की जीवन कथा उसके गान से कही अधिक लम्बी है।

जाट का कौमी गायक सागी जब मारगी पर गान करता ह, जाट-हृदय उधर आकर्पित हुए बिना नही रहता। यह जरूरी नही कि सागी स्वय जाट-जाति मे से हो। और जब वह गाता है, उसका कथानक नाटकीय रूप मे होकर बहता है। प्रेम और यौवन का इतिहास जाग्रत होकर बोलता है। जूही और रजनीगधा वहा नही तो क्या हुआ, दिल तो ह, और दिल की दुनिया मे प्रेम और यौवन सदा फूल बनकर खिलते ह। सागी का गीत प्रेम और यौवन से ऊपर नही उठता, जैसे गाने योग्य केवल मात्र यही एक भूमि हो। वह अपना एक एक शब्द श्रोतामण्डली पर प्रभावमय वातावरण म फैलाता ह, और जनता एक शरीर और सैकडा सिरो के साथ कोहरे मे से झाकती ऊषा का आवाहन करती है। सागी का गीत समस्त लोक जीवन मे गूँज उठता ह —

तेरे (सौदर्य) से घायल होकर
मै वन के मोर की तरह रोता हू।
पाजेब तेरे पैरो मे ऐसे बजती ह,
जैसे सन के बीज झकार करते ह।
अरी ओ थोडा सा जल पिला दो मुझे,
दूर का (पथिक) हूँ मै, प्यास से व्याकुल।[1]

१ तेरा मारिया ऐसे रोऊँ जिसा झरता मोर बनीका,
तेरे पाइया मा पायल बाजे जिसा बाजे बीज सणीका,
थोडा-सा नीर पला दै, प्यासा मरता दूर घणीका।

ससार की बहुत सारी कविता किसी प्यास का गान है। पथिक की आवाज़ क्या यो ही हारकर रह जाती ह ? यह घायल करनेवाला सोदय आखिर क्या अथ रखता है ? सन के बीजो की पायल पहने मुग्धा पनिहारी पथिक को क्या समझती होगी ? शायद वह स्वय किसी प्यासे पथिक की प्रतीक्षा मे थी। और सागी का यह गान आदम और हव्वा का गान हो उठता ह। उसकी उँगलियो मे फुरती आ जाती ह और कठ मे बल और वेग ही नही आते, मदुलता भी आती है। सौदय मे इतनी हिलोर क्यो रहती ह ? और यह स्वच्छन्द पुष्प कुएँ के समीप कब से खिलता आया है ? सौदय हमेशा से ही एक नई दिशा क्यो बताता आया है ? पुरुष सदा से नारी को इसी रूप मे देखना आया है। नारी कहनी ह—"मै ता यहा उगी हुई हरी दूब हूँ।"[२]

लम्बा कथागीत सागी का प्रिय सखा है। वह 'साग' (स्वाग) कहलाता ह। किसी समय यह गीत जो वित नाटय रूप लिए रहा होगा। जीवन रस की कमीने इसकी पहली शान बर करार नही रहने दी। गीति नाट्य मे यदि जीवन के चिर सत्य की प्रतिष्ठा न की जाय, तो वह अधिक नही जी पाता। जब लोकजीवन मे धरती सी अटूट सादगी थी और गेहूँ की रोटी की सी पुष्टि थी, सागी दुनिया भर को अपने गीत मे समेट लेने की शक्ति रखता था। लोक जीवन की पूण रूप रेखा ही बस सागी की दुनिया होती थी, यह बात नही परी देश का अचल तथा देवताओ की कहानी का ताना बाना भी सारगी के तारो का छू जाते थे। एक दिन लास्य और ताण्डव दोनो ने ही इसे अपना अपना स्पश प्रदान किया था। एक छोटा गीत, 'कडा, भी लोकप्रिय हुआ है। रागनी, एक दूसरा छोटा गीत जिसका प्रत्येक भाग 'कली' कहलाता है, जाटगान का एक उज्वल अग ह। इन्द्रधनुष के सभी रग इसके हिस्से आये है। नारी के गीत ने विभिन्न छद प्रवाह धारण किये है। खेत और घर गहस्थी की बहु मुखी कायप्रणाली के पीछे जो एक ताल रहता ह, उसीके उनार चढाव के कई रूप उसके गीत की पष्टभूमि मे समा गये ह।

सागीने अनेक बार 'साग' के अलावा दूसरे गान को अपनाया है। प्यासे पथिक का गीत सारगी से बहुत मेल खाता है —

मैं जाट पिता का लाडला पुत्र हूँ।
मुझे प्यास लगी है।
लगी आग पानी पिये बिना नही बुझती !
रास्ते मे पक्का कुआ बना है,
किस पापी ने यह जुल्म किया कि इस पर डोल नही रखा ?[३]

२ मैं हरी हरी दूब खडी सेओ !

३ जाटका मै लाडला तिरखा लगी सरीर,
अगन लगी बुझती नइ, बिना पिये जल-नीर,
बिन पिये जल नीर,—रस्ते मे कुया चुनाया,
किस पापी ने यै जुल्म कमाया ? उसपै डोल नै पाया !

[illegible] पानी पीते देखते हैं—

[illegible]

[illegible]

[illegible] घर की [illegible]

[illegible]

[illegible],

मैं तुम्हारे [illegible] मढ़वा दूंगा ।[४]

न जाने [illegible] पनिहारी उत्तर क्या नहीं देती ? जल तो उसने पिला ही दिया होगा, पर क्या पथिक [illegible] हृदय से अपनी मंजिल पर चला होगा ? चलता चलता भी वह एक और गीत गाता गया —

चांद सा [illegible] रूप खिल रहा है।
फ़ुरसत में [illegible]
भगवान ने [illegible] रचना की होगी ।
[illegible] दूर निकल गई,
[illegible], जैसे शराब में आग लग गई ।
[illegible] पहन वह पतली कमर को
[illegible] चली गई ।[५]

पनघट पर [illegible] भांति ही न जाने कितने हृदय टूटे होंगे। पनिहारी को लोकगीत में एक चिरस्थायी स्थान मिला है ।

नारी को लोकगीत में इतना अधिक स्थान क्यों ? खेत की मेड पर बैठा किसान युवक अपनी प्रेयसी को झरने के पास का फल दिखाता है । झरने हरियाने मे नही होते । कल्पना के संसार में तो झरनों की कमी नहीं —

मैं खेत की मेड पर बैठा हूँ ।
इस प्रखर दोपहरी में तू कहाँ जा रही है ?
प्रिय, मेरा हृदय धड़क रहा है ।
तू जा मत, मेरा जी भटकता है ।
तटस्थ भाव से खड़ी होकर चार घड़ी देखती जा,

४ थोड़ा सा नीर पिला दे, बाकी घाल मेरे लोटे मे,
अरे तूँ भले घरांकी दीखै, तन्ने जन्म लिया टोटे मे,
तू मेरी साथ होलेगी, दामन मढ़वा दिऊँ घोटै मैं ।

५ रूप तेरा चन्दा सा लिख रिआ, बे ने घड़ी बैठके ढाली ।
कर तावल वार भाजरी, जिसी दारु माँ आग लाग री
कलियाँदार घाघरी, पतली कमर लचकत चाली ।

झरने के फूल की सुग ध फैल रही है [६]

ईख की निराई करती क या के गान मे स्वाभाविकता की हवा बहती है —

बहुत सताया है ईख, तूने मुझे बहुत सताया है।

पीछे घर मे मै बालको को रोते छोड कर आई हूँ।

डलिया मे अनाज पडा है, पीसना भी अधूरा ही रहा।

दूध देती गाय को भी बिना दूहे ही छोड आई।

निगोडी ईख, तूने मुझे बहुत सताया ह रे!

कतनी मे पूनिया भी बिना काते ही छोड आई।

माता पिता को घर मे छोडकर निराई करने आई हूँ ?[७]

श्रमिक जातियो की स्त्रिया और क याएँ प्राय किसान के यहा निराई का काम करने आती है, पर इससे उ हे हमेशा भर पेट मजदूरी नही मिल पाती। किन्तु क्या क या का यह गान गरीबी की पुकार है ? क्या यह ईख के प्रति दुलार भरा उलहना नही है, जो उसे घर की बन्द हवासे बाहर बुलाती ह ? इस मानवी प्रेम से शायद उसका हृदय सरस हो उठेगा, इसीसे शायद ईख अधिक रसमय होकर उगेगी।

बाजरे की खेती मे जुटा हुआ किसान बाजरे के दिल की बात बूझ लेता है। बाजरा क्या यो ही उगता ह ? यो ही पकता है ? बाजरा खूब जानता है कि उसका जन्म किसान-

६ मै बैठ्या खेत कै डोले पै
कित जासै सिखर दुपहरे नै ?
मेरी जान कालजा खटकै
मत जाइए जी, जी भटकै
लिए देख चार घडी डटकै
खसबू आरई फूल झारे मैं।

७ बहुत सताई इखडे रै तैने बहुत सताई रै!
बालक छाडे रोमते रैं, तैने बहुत सताई रे!
डालडी मैं छाड्या पीसना,
और छाडी सलागड गाय,
नगोडे ईखडे, तैंने बहुत सताई रे!
कातनी मे छाड्या कातना,
और छाडे से बाप और माय
नगोडे इखडे तैने बहुत सताई रे।
बहुत सताई खडे रै, तैने बहुत सताई रे!
बालक छाडे रोमते रै, तैने बहुत सताई रे

[illegible] । यह [illegible] अलबेला [illegible] । वह कहता है 'म दो मूसलो म [illegible] । किसान [illegible] यह कथन हमेशा याद रहता है। [illegible] । पर उगे क्या ? किसान कुलवध [illegible] । बाजरा और जुआर दोनो पति पत्नी [illegible] यह बात आई है बाजरा एक शाहजादा था और जुआर [illegible] उसने उसे बाद म अपनी पटरानी बना लिया था और मरने क बाद [illegible] उगने लग । आषाढ के अन्त म बाजरा और जुआर बोय जाते ह । दोनो पर श्यामल मेघ एक साथ बरसते ह । और खेत म किसान के लिए भोजन लाते समय नारी के हृदय म यह जान लेने की आकांक्षा उत्पन्न होती ह कि बाजरा कहा बोया गया ह और जुआर के लिए कौन सी जगह चुनी गई है । शायद बाजरे क से श्यामल किसान के लिए नारी का रूप जुआर की तरह निखर उठना चाहता ह, एकदम गौरवण होकर, फूलकर —

कोई काली बदली बरसने लगी ह ।

"अजी ओ किसान, म मड मेड पर घूमी फिरी,
तुम्हारा खेत मुझे मिलने मे ही नही आता ।
चार बैलो के लिए तो म 'भूसा' लाई हूँ,
दो आदमियो क खाने लायक 'छाक' लाई हू ।"
कोई काली बदली बरसने लगी है ।
"गोरी बन, जरा किसी ऊँची मेडपर चढकर निहार लो ।
मेरे गोरे बैलके गलेमे बडी घण्टी भी तो बज रही ह ।"
कोई काली बदली बरसने लगी ह ।
"अजी ओ किसान, किस तरफ तुमने बाजरा बोया ह ?
और कहा बोइ गई ह जुआर ?"
कोई काली बदली बरसने लगी है ।
"गोरी बन, ऊपर के खेत मे बाजरा बोया है,
निचले खेत मे जुआर बोई है । '
कोई काली बदली बरसने लगी ह ।'

८ बाजरा कहे मै बडा अलबेला,
दो मूसल मैं लडूँ अकेला ।
जो तेरी नाजो खीचडा खाय,
फूल-फाल कोठी हो जाय ।
९ कोई बरसन लागी काली बादली !
"डोलै तै डोलै, हालीडा, मैं फिरी
मन्ने किते न पाया थारा खेत ।"
बरसन लागी काली बादली !

यह क्या ? जुआर खेत मे भी निचली भूमि मे उगती ह, बाजरा ऊपर के खेत मे जा बिराजा है। अभी वे स्त्री पुरुष की बात नही भूले। एक किसान ने मुझे बाजरे और जुआर की मानव ज म की कथा सुनाते हुए बताया था कि जुआर स्वय अपनी पुरानी सस्कृति को वनाये रखना चाहती ह।

जब 'हरियाली तीज' का गान सावन की फुहार मे भीगना चाहता है, कुलवधू अपने नैहर जाने के लिए लालायित हो उठती है। कितनी पुरानी होगी यह हरियाली तीज ? सीता से भी इसे मनाया होगा, दमयन्ती ने भी। कितने सावन देखे होगे नारी के इस त्योहार ने ! वक्षो पर हिंडोले पड जाते है, दिन दिन भर झूलते बीतता ह। मल्हार के स्वर हृदय में बस जाते है। कुलभधू की चुनरी और इ द्रधनुष मे होड लगती ह। पर हरियाली तीज के गान मे करुण रस को भी तो स्थान मिलता ह। हरएक कुलवधू नैहर नही जा पाती थी। 'सरिहल रानी' का गान शायद किसी लम्बे दु खा त काव्य का एक भग्नावशेषमात्र ह। जरूर इसका कथानक बहुत लम्बा रहा होगा —

'रग-भरा सावन आ गया ह, हरियाली तीज आ रही ह।
सासजी, मुझे नैहर भेज दो।'
'न कोई ब्राह्मण तुझे लिवाने आया है,
न खुद तेरा मा जाया भाई।
कुलवधू, यो बिना बुलाये जाने से
तेरा आदर घट जायगा।
तू यहा ही सावन मान इस बार।'
मैं ऊँची अटा पर चढकर देख रही हू।
कोई आ रहा है, उसे मै देवर भाव मे देखूँ या जेठ के रूप मे ?
अजी ओ बढई के बेटे, च दन का पालना घड ला।

"कोई प्यार बुलदाका, हालीडा, नीरना
दोए जणिएँ की छाक !"
बरसन लागी काली बादली !
"कोई ऊँचै तै चढ कै, गोरी धन, देखे लियो,
म्हारे गोरे बुलद कै टाल !"
बरसन लागी काली बादली।
"कितरज बोया, हालीडा, बाजरा ?
कोई कितरज बोई जवार ?"
बरसन लागी काली बादली !
"थलिया तै बोया, गोरी धन, बाजरा,
कोई डेराँ बोई जवार।"
बरसन लागी काली बादली ?

[illegible] रहता है, 'मै दो मूसलो [illegible] यह कथन हमे याद रहता है। [illegible] पर उससे क्या ? किसान कुलवधू [illegible]। बाजरा और जुआर नाना पति [illegible] जाई है बाजरा एक शाहजादा था और जुआर [illegible] उस बात मे अपनी पटरानी बना लिया था और मरने के [illegible] उगने लगे। आषाढ के अन्त मे बाजरा और जुआर बोये जाते है। [illegible] बरसते है। और खेत मे किसान के लिए भोजन लाते समय नारी के हृदय मे यह जान लेने की आकांक्षा उत्पन्न होती है कि बाजरा कहा बोया गया है और जुआर के लिए कौन सी जगह चुनी गई है। शायद बाजरे के से श्यामल किसान के लिए नारी का रूप जुआर की तरह निखर उठना चाहता है, एकदम गौरवर्ण होकर, फूलकर —

कोई काली बदली बरसने लगी है।

"अजी ओ किसान, मै मेड मेड पर घूमी फिरी,
तुम्हारा खेत मुझे मिलने मे ही नही आता।
चार बैलो के लिए तो मै 'भूसा' लाई हूं,
दो आदमियो के खाने लायक 'छाक' लाई हूं।"
कोई काली बदली बरसने लगी है।
"गोरी धन, जरा किसी ऊंची मेडपर चढकर निहार लो।
मेरे गोरे बैलके गलेमे बडी घण्टी भी तो बज रही है।"
कोई काली बदली बरसने लगी है।
"अजी ओ किसान, किस तरफ तुमने बाजरा बोया है ?
और कहा बोई गई है जुआर ?"
कोई काली बदली बरसने लगी है।
"गोरी धन, ऊपर के खेत मे बाजरा बोया है,
निचले खेत मे जुआर बोई है।"
कोई काली बदली बरसने लगी है।

८ बाजरा कहे मैं बडा अलबेला,
दो मूसल मैं लडूँ अकेला।
जो तेरी नाजो खीचडा खाय,
फूल-फाल कोठी हो जाय।

९ कोई बरसन लागी काली बादली !
"डोलै तै डोलै, हालीडा, मैं फिरी
मन्ने किते न पाया थारा खेत।"
बरसन लागी काली बादली !

यह क्या ? जुआर खेत मे भी निचली भूमि मे उगती ह, बाजरा ऊपर के खेत मे जा बिराजा ह । अभी वे स्त्री पुरुष की बात नही भूले । एक किसान ने मुझे बाजरे और जुआर की मानव ज म की कथा सुनाते हुए बताया था कि जुआर स्वय अपनी पुरानी सस्कृति को वनाये रखना चाहती ह ।

जब 'हरियाली तीज' का गान सावन की फुहार मे भीगना चाहता ह, कुलवधू अपने नैहर जाने के लिए लालायित हो उठती ह । कितनी पुरानी होगी यह हरियाली तीज ? सीता से भी इसे मनाया होगा, दमयन्ती ने भी । कितने सावन देखे होगे नारी के इस त्योहार ने ! वक्षो पर हिंडोले पड जाते है, दिन दिन भर झूलते बीतता ह । मल्हार के स्वर हृदय मे बस जाते है । कुलभधू की चुनरी और इ द्रधनुष मे होड लगती ह । पर हरियाली तीज के गान मे करुण रस को भी तो स्थान मिलता है । हरएक कुलवधू नैहर नही जा पाती थी । 'सरिहल रानी' का गान शायद किसी लम्बे दु खा त काव्य का एक भग्नावशेषमात्र ह । जरूर इसका कथानक बहुत लम्बा रहा होगा —

'रग-भरा सावन आ गया ह, हरियाली तीज आ रही ह ।
सासजी, मुझे नैहर मेज दो ।'
'न कोई ब्राह्मण तुझे लिवाने आया है,
न खुद तेरा मा जाया भाई ।
कुलवधू, यो बिना बुलाये जाने से
तेरा आदर घट जायगा ।
तू यहा ही सावन मान इस बार ।'
मैं ऊँची अटा पर चढकर देख रही हू।
कोई आ रहा है, उसे मै देवर भाव मे देखूँ या जेठ के रूप मे ?
अजी ओ बढई के बेटे, च दन का पालना घड ला ।

"कोई प्यार बुलदाका, हालीडा, नीरना
दोए जणिएँ की छाक !"
बरसन लागी काली बादली !
"कोई ऊँचै तै चढ कै, गोरी धन, देखे लियो,
म्हारे गोरे बुलद कै टाल !"
बरसन लागी काली बादली ।
"कितरज बोया, हालीडा, बाजरा ?
कोई कितरज बोई जवार ?"
बरसन लागी काली बादली !
"थलिया तै बोया, गोरी धन, बाजरा,
कोई डेरा बोई जवार ।"
बरसन लागी काली बादली ?

[illegible], [illegible] पास आठ कु[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] पर चन्दन [illegible] ।
[illegible] छाती फाड़कर रो प[illegible] ।
'[illegible]' वह बोला,
[illegible] ।'
पहला कुल्हाड़ा मारने पर चन्दन में दूध की धारा बह निकली ।
दूसरा कुल्हाड़ा मारने पर रक्त धारा बह पड़ी ।
गोरी कलाइयों पर हरी चूड़ियां पहन रखी है ।
अजी ओ जुहार की रानी, तुम्हारा हृदयेश तो मारा गया है ।[10]

१० सामण आया रगलो कोई आई रे हरीयाली तीज ।
सास म्हारी प्यारी, गजब की मारी,
मोकू ती लडा द पीहरको म्हारी लाड सासुला, प्यारी ।
नई आया थारा नाई बामण, न मा जाया वीर,
राजा की रानी, जहार की रानी,
ता कै आज ई बना दऊँ पालणो,
म्हाणी लाड बहुरिया प्यारी ।
बिगर बुलाए धन जायगी, घट जायगो आदर-भाव,
राजा की रानी, जहार की रानी,
तू आज ई सामण मान, मेरी लाड बहुरिया प्यारी ?
ऊँचै त चढ़कर देख रई तोकै दिवर कहूँ क जेठ,
सुनार खाती कै बगर खाती क,
चन्नणका घर लिया पालना, जाम जले सरिहल रानी ।
अजी आठ गुराण नौ जना, काई दग दग जायँ बनको
राजा की रानी जहार की रानी,
ऊँची पाल तलायो की, जिते खन्दरिया चन्नण को पेड ।
खाती आता देख के कोई रोया छाती पाड
बिरछको पौदा, चन्नणको पौदा
डाल-डाल म्हारी काट लै, रै मन काटै जड से पेड ।
पहलो खुराडो मारियो, कोई निकसी दूध की धार
राजा की रानी, जहार की रानी
एकासे दूजो दियो, जासे निकसी खूना धार ।
हरी-हरी चुरियाँ गोरी गोरी बहियाँ, कुन पै कियो सिंगार ?
राजा की रानी, जहार की रानी,
थारो राजधन मर गयो, रै धरती माँ गयो समाय ।

यह सरिहल रानी कौन थी ? जुहार का सम्बन्ध इतिहास की किस कडी से है ? शायद वे ऐतिहासिक व्यक्ति न होकर किसी परी कथा के पात्रो की परछाई भर हो। हरियाने मे चन्दन नही उगता यह सिर्फ कल्पना के पखो पर उडकर ही यहा आ पहुँचा है।

वृक्ष ने सोचा होगा, बढई ने मेरा प्रस्ताव मान लिया है, वह मेरी जड न काटेगा, इसी से आनन्दित होकर उसका हृदय दूध बनकर प्रकट हुआ। पर वृक्ष को भ्रान्ति हुई थी। ठीक दूसरा ही बार उसकी जडपर किया गया। वृक्ष की मृत्यु नजदीक आ गई थी। उसका हृदय लहूलुहान होकर बाहर आ गया। मरता मरता वृक्ष शायद एक अभिशाप देता गया उसीके फल स्वरूप सरिहल की हरी चूडिया टूट गई वृक्ष की भाति ही उसका पति भी बिन आई मौत मर गया। और जब गश्ती गायक गाता है, "अरे परदेशी ! एक दिन यहा से चल देना होगा !"[११] तो वह शायद चन्दन वृक्ष तथा जुहार का करुण अन्त भी स्मरण करा दिया करता है। मौत का करुण गान एक दिन समस्त जीवन पर छाकर रहेगा शायद। गायक के स्वर विलाप मे डूब जाते है

जीवन की गलियो मे कुछ दिन और बिता ले !
मालिक ने बाग लगाया है, कलिया खूब खिली है।
हाथ मे कई एक डलिया लिए मौत मालिन बनी डोलती है।
वह खिली अधखिली मे भेद नही करती,
सब कलिया तोडने पर तुली है।[१२]

पहले एक छबीली घोडी को निहारिए, फिर जाट नारी को, आप दोनो मे कुछ सादृश्य पाएगे, इसकी पुष्टि भी कर दी है और जाट नारी का क्रोध शेरनी की याद दिलाता है। वह तेज गहरे रग पसद करती है। यही हाल उसकी भाषा का है। वह इठला कर चलना जानती है। लोकगीत ने उससे बहुत कुछ पाया है। सन के बीजो से बनाई गई पाजेब और उससे आती हुई झकार को तो लोकगीत के हृदय मे आसन मिल ही चुका है। नारी-हृदय मे कितनी प्रेरणा भरी है ! नारी के पुजारी एक कवि की बात हर किसान जानता है। पके शहद का सा रग था कवि की प्रियतमा का। सदा वह उसी का गान करता और सदा यही कहता, "यदि अगले जन्म मैं अपनी जून चुनने को मिलेगी, तो मैं पके शहद के रग की एक मुग्धा बनना चाहूँगा।"

११ परदेसी आडे से चलता रे परदेसी।

१२ कौए तौ दिन हाड लै गलिए !
मालिक मेरे ने बाग लुआया
खूब खिली कलिएँ ! कोई तौ दिन
मौत-मलिन फिरै बाग मैं
हात लई डलिए ! कोई तौ दिन
कथे पाका की सैर नै जानी,
तोड रई कलिएँ।

हरियाने के एक गीत की धारा चौथे पादवाली है। नारी ने इसे प्रेरित किया है, उसमें [illegible] भाग लिया है। जाट [illegible] की [illegible] में 'रागनी' एक अलग ही अस्तित्व रखता है। [illegible] भी गाता [illegible] भूमि में [illegible], और 'रागनी' [illegible] है, नारी उसे सुन [illegible]। 'रागनी' के पीछे हमेशा एक [illegible] करुण स्वर में आच्छादित एक गहरी भावु[illegible] रहती है। रागनी के स्वर में मानव प्रेम का [illegible] मर्मी भगवत प्रेम की ओर [illegible] लगता है। शाम की शीतलता और उषा की [illegible] रागनी की पृष्ठभूमि को छू छू जाती है।

'रागनी' की स्वर लहरी नाचती हुई चलती है, एक ज्योति लिए हुए। दिल का [illegible] दीया उसके स्पर्श से फड़क उठता है। पहले पहल किस कंठ ने इसका सरगम [illegible] दिया था? यह प्रश्न मेरे हृदय में तभी उठ खड़ा हुआ था, जब मै पहली बार उसके ससर्ग मे आया। [illegible] न रहा, यह हरियाने की पुरानी विभूति है उसका उद्गम कौन जान सकता है। कुछ बातें इसकी जमीन जरूर पुरानी है, पर इसके वर्तमान रूप का काफी श्रेय दीपचन्द को मिलना चाहिए। [illegible] ने कहा, पहले पहल दीपचन्द के कंठ में ही इसका जन्म हुआ था। [illegible] समय हम [illegible] और [illegible] को याद आ जाती है, रागनी सुनते समय दीपचन्द का स्मरण कर लेना चाहिए।

दीपचन्द का घर रोहतक जिले के अन्तर्गत सेरीखण्ड गाँव में था। उसने कवि का हृदय पाया था, वह गायक भी अच्छा था, और अपनी पारिवारिक ब्राह्मणवृत्ति की ओर न झुक कर उसने जनता का गायक बनना ही पसन्द किया। जब जगे यूरोप शुरू हुआ, दीपचन्द हरियाने का प्रमुख गायक था। उसका गीत सदा ठीक जगह पर जाकर बैठता था। और जब वह एक खास शान से सिर उठा कर गान आरम्भ करता था, ऐसा लगता था, जैसे किसी शिल्पी ने पीतल के एक बड़े टुकड़े को सुन्दरतापूर्वक छैनी से छील छील कर उसके सिर और मुख की रचना की हो। सरकार ने उसे भरती के कार्य में ले लिया, और जाट युवकों को युद्ध में जाने के लिए उसका गान [illegible] अभी बेअसर न रहा। गायक दीपचन्द को अपनी सेवाओं के एवजाने में सरकार से बहुत सा धन मिला था। हरियाने की जनता का तो कहना है कि एक रंगरूट के पीछे तीन रुपये मिले थे और कुल जमा लगभग एक लाख रुपये उसे मिले थे। सरकार ने उसे काफी भूमि दी थी और रायसाहब की उपाधि भी। जब दीपचन्द की मृत्यु हुई, वृद्धावस्था कभी की आ चुकी थी।

दीपचन्द के प्रथमतम भरती गान को अभी हरियाना भूला नहीं —
अजी ओ आओ, फौज में भरती हो जाओ!
तुम्हारे द्वार पर रंगरूट खड़े हैं, देखो तो।
यहाँ कुछ ऐसा ही मैला वेश रहता है,
पहनने को फटे-पुराने वस्त्र ही तो मिलते हैं ना।
पर वहाँ (नवीन वस्त्रों के साथ ही) फुलबूट मिलते हैं?[१३]

१३ भरती हो लैरे थारे बाहर खड़े रंगरूट!

गीत को आगे भी बढाया गया था। 'फुलबूट' के साथ 'बिस्कुट का तुकान्त मिला कर एक और प्रलोभन यह पेश किया गया था कि यहा ग्राम्य जीवन मे चने चबाने को मिलते है और वहा फौजी जीवन मे सिपाही बिस्कुट का आनन्द लेता है। अंग्रेजी शब्द 'रिक्रूट' का देशी रूप रगरूट हरियाने की भाषा का अपना शब्द बन गया। गीत मे किसी विशेष युवक को सम्बोधन नही किया गया था, पर जिसने भी इसे सुना, वही समझा कि उसे ही बुलाया जा रहा ह, और झट उसने अपने को रगरूट मण्डली मे शामिल पाया।

एक दूसरे भरती गान मे जाट कुलवधू ने अपने युवक पति को सम्बोधन किया था—

फौज मे भरती हो जाओ, प्रियतम !
मुझे तुम्हारे क्षत्रीपन का तोल मिलना चाहिए।
जाओ जमनो से लडो।
अपने पूवजो का नाम उज्वल करो।
जाओ तोपो के सम्मुख जाकर अड जाओ।
अपनी छाती खुली कर लेना !
फौज मे भरती हो जाओ, प्रियतम ![१४]

बहुत भरती हुई। युद्ध शुरू हो ही चुका था। कई वष तक जाट सिपाहियो की पलटने जुटी रही। कितने ही जाट युवक वीरतापूवक लड, बहुत से मत्यु के शिकार भी हुए। छ नम्बर की पलटन के बहुत से जाट सिपाही फिर युद्ध भूमि से वापस न लौटे, सैकडो जाट स्त्रिया विधवा बन गई। दीपचन्द ने अपने एक गान म इस ओर सकेत किया था —

जनन ने गोला मारा,
आकाश मे जाकर यह गोला फटा।
लगर मे रोटी खाते सिपाही रोटो छोड कर भागे।

या ऐसा रखते मध्यम बाना
मिलता पटिया पुराना
वा मिलते है फुलबूट।
भरती हो लैरे थारे बाहर खडे रगरूट !

१४ पिया, भरती मैं हो लै ने,
पट जा छत्तरीपन का तोल !
जरमन मैं जा कर लडिए,
अपने मा बाप का ना करिए।
ओ तोपो के आगे डडिए,
अपनी छाती मै दे खोल।
पिया भरती मै हो लै ने,
पट जा छत्तरीपन का तोल !

[illegible]

[illegible] — और फिर [illegible] स्त्रियाँ ने स्वय [illegible] —

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] फौज म [illegible] जाय गये थे।

[illegible]

[illegible] ।१६

[illegible] लोकगीत म समा गई हैं। [illegible] गायक उन्ह बडे चाव स गाते [illegible]। [illegible] समीप [illegible] गाव म मैंने एक सिपाही और उसकी पत्नी का गान सुना था। [illegible] किया था —

मै [illegible], पर म परी सरीखी।

सागर का फलिया सागर मैं फली हूँ।

प्रियतम, आखिर मुझे क्या समझते हो तुम ?

मुझ छोड कर न जाओ, इस कपटी दिल को मार लो।

तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम वेग म आ रहा है।१७

१५, जरमन नै गोला मारिया,

जा फटया, था अम्बर म।

गारद स सिपाही भाज

रोटी छाड गये लगर म

अर उन तिरिउन का जीव,

जिनके बालम छ नम्बर म

१६ जरमन तेरा जाइयो राज,

आज ना तडके।

तन्ने मारे बिराने लाल

जहाज भर भरके।

मैं किस पर करूँ सिंगार,

कालजा धडके।

१७ मैं हूर पुरी बाँगर की, मन्ने फली खा लई सागर की।

मेरीके बूझे भरतार ?

म्हने छोड न जइए, अपना कपटी दिल समझइए

ओ भर' बुरा बनियाँ से पियार।

पति न माना, वह भरती जा हुआ। पत्नी ने मद का भेष धारण किया। उसी पल टन मे वह भी भरती जा हुई। अब पति उसे चुपके से घर चले जाने के लिए समझाता था—

भूल क्यो कर रही हो ?
तेरा रूप सरसो के फूल के समान खिल रहा ह।
दरद की बात क्यो बोलती है तू ?
यदि तुझ वीर मरद का भेद खुल गया,
हवालात मे बन्द करेंगे तुम्हे, कितना पीटेंगे वे।[१८]

कथानक के अनुसार पत्नी ने जब यह वादा ले लिया कि पति भी बाद मे नाम कटा-कर घर लौट आयेगा, वह वापस चली गई थी। गश्ती गायक के कठ मे कितनी मदुलता भरी रहती है, और मैंने देखा कि इस गायक मैं सगात के प्रति एक विशेष रुचि थी, जा कितने ही गायको मैं कामचलाऊ प्रवृत्ति तक आकर ही ठहर जाती है, तभी इस गायक की आखे, जो साधारणतया रूखी सी थी, ग्राम की इस महफिल की पूर्णाहुति के समय चमकने लगी थी।

फौज से पे शन पाने के बाद जाट सिपाहो प्राय अपने ग्राम म लौट आता ह। उसकी रुचि किसो कदर बदल चुकी होती ह। कई नये शब्द भी वह अपने साथ लाता ह। शायद अपनी प्राचीन सस्कृति के प्रति उसकी आस्था भी हिल चुकी होती ह। वह शायद स्वय लोक गीत को अपने कठ मे स्थान नही देता, पर जब ग्राम की आत्मा लोकगीत से स्पन्दित होती ह, इसके स्वर स्वय पे शनयाफ्ता सिपाही को फिर से अपनी ओर आकर्षित कर लेते ह।

हरियाने का लोकगीत एक जि दा विभूति है। इसकी ज़मीन ज़रखेज है। उसे अपना पुराना वैभव याद है, नई कमाई करनेकी सोच भी है। जाटकी कल्पनामे, उसकी भावनाओमे, उसकी भावनाओमे, उसके अट्टहासम, उसकी तटस्थतामे, उसके सुख दु खकी सामग्री मे अब भी सजन शक्ति ह। आजका जाट लोकगीन एक स्पष्ट रेखाचित्र बन जाना चाहता है। पर नूतनताका प्रलोभन जब गायकको अपनी जडे अपनो धरती मे खूब गहरी ले जानेसे विमुख कर देता ह, लोकगीतका भविष्य खतरे मे पड जाता है और फिर एक बात और भी तो ह, आजका गायक जिस भाषाका प्रयोग करता ह, वह ठेठ लोक भाषासे परे हो चली है।

इधर बूढे बैल का गीत लोक प्रिय होने जा रहा है। बूढा बैल रोकर कह रहा है —
अरे पापी, मुझे बेच मत।
मैं तेरे हलमे जुतता आया हूँ, कोल्हूमे भी।

१८ मोरे क्यो गेरे से भूल,
रूप खिल दिया सरसो का फूल
क्यो बोलेसे बाता दरद की।
मेरे चुभसे एणी रे करद की,
मालुम पट जा वीर मरद की,
पा पीटे हवालातमे।

शायद इस गीत की रचना मे किसी गोशाला के गवैये का हाथ हो। अभी यह कुठाली मे ही गल रहा है, भाषा भी बहुत कुछ हिन्दी के पीछे चली ह।

एक नवीन गान मे किसान स्त्री ने अपने पति को कपास बोने से रोका ह। जब आबियाना भी नही निकलता इसी गीत मे सत्य की रेखा दौड जाती है—

प्रियतम मेरी बात मान लो,
कपास मत बोओ।
अबियाना सर चढ जायेगा, डडे अलग खाओगे।
प्रियतम, कपास मत बोआ।[२१]

गरीबी का गान तो है ही बिलकुल नवीन रग लिए हुए —

बुरी ह यह गरीबी, धन बिना कसा नखरा ?
धनी गरीब के घर आकर जो चाहे कह जाये।
गरीब उसकी ऊँची नीची वात सह जाता ह।
धन बिना सर पर बँधा सेहरा भी व्यथ चला जाता है।
गरीब उमर भर दु ख पाता ह।
भूखा नगा रहकर हल जोतता ह।
अरे ओ भोगा, यह बिना घी की चूरी
जो कपडे मे बाध कर तूने पीछे लटका रखी ह,
व्यथ तेरी कमरका भार ही तो ह ना।[२२]

वतमान जाट गीत किसी दीपचन्द की प्रतीक्षा मे ह।

२१ मेरा कैहा मान पिया बाडी मत बोइए,
सर पडेगी उघाई तेरे डडा बाजैं जाई,
पिया, बाडीमत बोइए।

२२ अरे मैं बुरी कगाली धन बिन कीसी रै मरोड ?
भोगा, बुरी रै कगाली, धन बिन किसी रै मरोड।
धनवन्त घरा आण के कह जा
निरधन ऊँची नीची सब सह जा
सर पर बधा बधाया रह जा
माथे पर का मोड।
अरे यै बुरी कगाली, धन बिन कीसी र मरोड।
निरधन सारी उमर दु ख पावे।
भूखा नगा रहके हल बाहवे
भोगा, बिना घी का चू मा
तेरी रहला कमर तै रै तोड।
अरै यै बुरी कगाली, धने बिन कीसी रै मराड।

[विशालभारत से साभार]

कितना अनाज कमाकर
मैने तेरे घरमे डाल दिया है।
जब तूने अपना हृदय पाषाणका बना लिया है।
मैने तेरा किसी कदर बजर खेत भी उपजाऊ बना दिया,
छकडेमे जुतनेमे भी मैने कभी मुह न मोडा
और अब तू मेरी मिट्टी—मेरी यह वृद्ध—बचने जा रहा है ?
अजी ओ किसान, मुझे क्या बेच रहे हो ?[19]

यह गीत अभी विकासके पथपर है। इसी भावका इससे बहुत कुछ मिलता जुलता गीत पजाबी मे भी बना है। शायद आगे चलकर इसका गीत एक आदर्श लोकगीत बन जाय। इसी सिलसिलेमे एक गायका गीत भी बन गया है —

धौली गाय कह रही है, मेरी कोई नही सुनता।
कहा गया वह मेरा गोपाल—मेरा भगवान ?
मै दु ख पा रही हू।
ससार मेरा दूध पीता है, घीसे खिचडी खाता है।
मेरे पुत्र अनाज कमाते है, महगे भावको रुई भी,
मेरे दूध का बना दही खाकर ससार सुखी हो रहा है,
तो भी मेरे गलेपर छुरी चलती है।[20]

१९ अरे निऊँ रोवै बूढ बैल,
म्हाने मत बचै रै पापी।
तेरे कुल कोल्हूम चाल्या
नाज कमाकै तेरे घरा घाल्या
इब त ने कर ली है बज्जरकी छाती।
अरे निऊँ रावै
तेरा बज्जड खेत मन्ने तोडया,
गाडीते न मुह मोडया,
इब मेरी बेचै से माटी।
मेरी रे क्या बेचै से माटी ?
अरे निऊँ रोवै

२० निऊँ कह रही धौली गाय, मेरी कोई सुनता नई।
मेरे कित गये सिरी भगवान, मैं दुख पाय रई।
मेरा दूध पीवे ससार, घी से खाय खिचडी,
मेरे तूह कमावै नाज मैंघे मा की रुई।
मेरी दहीए सुखी ससार, जम भी मेरे गल पै छुरी।

शायद इस गीत की रचना मे किसी गोशाला के गवैये का हाथ हो। अभी यह कुठाली मे ही गल रहा है, भाषा भी बहुत कुछ हिन्दी के पीछे चली है।

एक नवीन गान मे किसान स्त्री ने अपने पति को कपास बोने से रोका है। जब आबियाना भी नही निकलता, इसी गीत मे सत्य की रेखा दौड जाती है—

प्रियतम मेरी बात मान लो,
कपास मत बोओ।
अबियाना सर चढ जायेगा, डडे अलग खाओगे।
प्रियतम, कपास मत बोओ।[२१]

गरीबी का गान तो है ही बिलकुल नवीन रग लिए हुए —

बुरी है यह गरीबी, धन बिना कैसा नखरा ?
धनी गरीब के घर आकर जो चाहे कह जाये।
गरीब उसकी ऊँची-नीची बात सह जाता है।
धन बिना सर पर बँधा सेहरा भी व्यर्थ चला जाता है।
गरीब उमर भर दुःख पाता है।
भूखा नगा रहकर हल जोतता है।
अरे ओ भोगा, यह बिना घी की चूरी
जो कपडे मे बाध कर तूने पीछे लटका रखी है,
व्यर्थ तेरी कमरका भार ही तो है ना।[२२]

वर्तमान जाट गीत किसी दीपचन्द की प्रतीक्षा मे है।

२१ मेरा कैहा मान पिया बाडी मत बोइए,
सर पडेगी उघाई तेरे डडा बाजै जाई,
पिया, बाडीमत बोइए।

२२ अरे मैं बुरी कगाली धन बिन कीसी रै मरोड ?
भोगा, बुरी रै कगाली, धन बिन किसी रै मरोड !
धनवन्त घरा आण के कह जा
निरधन ऊँची नीची सब सह जा
सर पर बधा बधाया रह जा
माथे पर का मोड।
अरे यै बुरी कगाली, धन बिन कासी र मरोड !
निरधन सारी उमर दुःख पावे।
भूखा नगा रहके हल बाहवे
भोगा, बिना घी का चूरमा
तेरी रहला कमर तै रै तोड।
अरै यै बुरी कगाली, धने बिन कीसी रै मरोड !

[विशालभारत से साभार]

वेदान्त दर्शन

सुधीन्द्र चन्द्र चक्रवर्ती

'वेद' तथा अन्य [illegible] याग [illegible] गठित हुआ है। जो वेद के अन्त में है उसी का वेदान्त [illegible] किसी पुरुष द्वारा रचित ग्रन्थ नहीं है [illegible] ज्ञान किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं है। [illegible], नित्य सनातन है। शुद्ध-चित्त ऋषियों के माध्यम से यह ज्ञान प्रकाशित होता [illegible] ज्ञानरत्नराजि का दूसरा नाम श्रुति है। चिरकाल से यह गुरु शिष्य परम्परा द्वारा श्रुत हुई चली आ रही है। श्रुति में जो तत्त्वोपदेश है व्यास देव ने उसे संकलित करके चार भागों में विभक्त किया—ऋक्, यजु, साम और अथर्व ये चार विभाग चतुर्वेद के नाम से परिचित हैं। प्रत्येक वेद भी विभिन्न अंशों में विभक्त है। वेदों के अंश विभाग के सम्बन्ध में नाना मत प्रसिद्ध हैं। किसी के मतानुसार प्रत्येक वेद 'संहिता', 'ब्राह्मण', और 'आरण्यक' नामक तीन प्रधान अंशों में विभाजित है। संहिता में मंत्रों का संकलन, ब्राह्मणों में याग यज्ञ के विविध उल्लेख और आरण्यक में वानप्रस्थ के कर्तव्यों का वर्णन है। निरुक्तकार यास्क वेद के दो भाग स्वीकार करते हैं। उनके मत से आरण्यक अंश 'ब्राह्मणों' के ही अन्तर्गत आता है। प्राचीन स्मृतिकार आपस्तम्ब का भी यही मत है। कई के मतानुसार उपनिषद समूह आरण्यकों का अश मात्र है। इससे भिन्न मोटे तौर पर वेद का और एक प्रधान विभाग भी स्वीकार किया जाता है। उसके अनुसार वेद का वक्तव्य विषय 'कर्म प्रधान' और 'ज्ञान प्रधान' भेद से दो श्रेणियों में विभक्त है। कर्मप्रधान अश स्तव, स्तुति, याग, यज्ञ इत्यादि की आलोचना से पूर्ण है। सहिता और ब्राह्मण ये कर्म प्रधान अश के अन्तर्गत है। दूसरी ओर ज्ञान प्रधान अश प्रधानत आत्मा, ब्रह्म, सृष्टि इत्यादि दार्शनिक विषयो की आलोचना का आग्रही है। ये दार्शनिक तत्त्व ही उपनिषद् के नाम से परिचित हैं। उपनिषद् वेद के ज्ञानकाण्ड नाम से भी अभिहित हैं। कोई कोई वेद के तीन काण्डो या विभागो की भी चर्चा करते हैं। उनके मत से सहिता और ब्राह्मण को कर्मकाण्ड, आरण्यक को उपासना काण्ड और उपनिषद को ज्ञानकाण्ड नाम से अभिहित करना युक्तियुक्त है, जो वेद के कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड भेद से दो भाग मात्र स्वीकार करते हैं उनके मत से सहिता और ब्राह्मण कर्मकाण्ड के अन्तर्गत हैं और आरण्यक और उपनिषद् ज्ञानकाण्ड के अन्तर्गत हैं। कहने की आवश्यकता नहीं हिन्दुओं के लिए सहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् ये चारो ही वेद के अन्तर्गत हैं। किन्तु योरोपीय वेद से केवल सहिता को ही समझते हैं। इसी कारण उनके अनुसार वेद और उपनिषद पृथक ग्रन्थ हैं। हिन्दुओं के मतानुसार उपनिषद वेद के अतिरिक्त कोई ग्रन्थ या रचना नहीं है, ये वेद के अविच्छेद्य अश हैं। सहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद इन चारो को लेकर ही वेद हैं। इन चारो मे स्तर के हिसाब से उपनिषद् वेद का अन्त या चरमभाग है। इसी कारण हिन्दू मानते हैं कि उपनिषद् ही वेदान्त

है। प्राचीन आयसमाज मे उपनिषद चतुथ आश्रम या भिक्षुजीवन के लिए निर्दिष्ट पठनीय शास्त्र के रूप मे परिगणित होता था। आया का जीवन चार आश्रमा मे सुविन्यस्त था। वे वाल्यावस्था मे वेद का मन्त्र भाग या सहिता मुखस्थ करते थे और ब्रह्मचर्याश्रम मे अध्ययन समाप्त होने पर यौवनावस्था मे गहस्थाश्रम म प्रवेश करके वेद के ब्राह्मण भाग मे उपदिष्ट यज्ञादि का अनुष्ठान करते थे। वे प्रौढ जीवन मे घर ससार का त्याग करके वनवासी या वान प्रस्थावलम्बी होते थे। उस समय उनका नाम आरण्यक होता था। आरण्यको क पाठय रूप मे वेद का जो अश निर्दिष्ट था उसी अश का नाम आरण्यक शास्त्र हुआ। वानप्रस्थ के परवर्ती आश्रम का नाम सन्यास था। आय जब इस आश्रम म प्रवेश करते थे तब उन्हे भिक्षु नाम से अभिहित किया जाता था। भिक्षु या सन्यासी का आश्रम ही चरम आश्रम था। उपनिषद इस चरम आश्रम का पठनीय शास्त्र था इसीलिए इसको वेद का चरम भाग या वेदान्त कहा जाता है। उपनिषद वेद के अन्तिम भाग मे अवस्थित ह केवल इसी कारण इसको वेदान्त कहा जाता ह ऐसा नही है। वेदो के नानाविध उपदेशा के बीच बिखरे ब्रह्मविद्या के उपदेश ही श्रेष्ठतम उपदेश ह। ब्रह्मविद्या ही वेदा का सार तत्त्व ह। क्योकि उपनिषदो मे वेद की सार बात अर्थात ब्रह्मविद्या निबद्ध हुई ह इसीलिए इसको वेद का अन्त या शिराभाग कहना साथक ह। उपनिषद मे समग्र वेद का चरमज्ञान सुरक्षित है, फलस्वरूप उपनिषदो के अध्ययन द्वारा सम्पूण वेद के तात्पय को प्राप्त किया जा सकता ह। उपनिषद केवल वेद का शेष भाग ही नही ह, वह वेद का सारभाग भी ह। वेद का अन्त कहने से वेद का अन्तिम भाग एव वेद का तात्पय इन दोनो अर्थो का बोध होता ह।

वेद के साथ वेदान्त का क्या सम्पक ह ? इस प्रश्न के उत्तर मे मुक्तिकोपनिषद मे श्री रामचन्द्र ने मारुति से कहा ह, 'हे वत्स तेल जिस प्रकार तिल का सार भाग ह, उसी प्रकार वेदान्त वेद का सार भाग ह, तेल जिस प्रकार प्रच्छन्न भाव से समस्त तिलमे परिव्याप्त रहता है वेदान्त या उपनिषद भी उसी प्रकार समस्त वेद का परिव्याप्त किए हुए ह। सदानन्द ने अपने वेदान्त सार नामक ग्रन्थ मे लिखा ह कि उपनिषद ही मुख्य वेदान्त ह। उपनिषदो के तत्त्व को समझने मे सहायक होने के कारण भगवदगीता, ब्रह्मसूत्र एव उनक भाष्य, टीका एव निबन्धादि भी गौणरूप से वेदान्त ह। वेदान्तिक आचार्यो के मत से वेद के कमकाण्ड मे वर्णित याग-यज्ञ, विधि निषेध प्रभृति का विवरण निम्न स्तर के अधिकारियो के लिए ह। याग-यज्ञ का अनुष्ठान एव विधिनिषेध के पालन द्वारा स्वगलाभ हो सकता ह किन्तु मोक्ष लाभ नही हो सकता। मोक्ष लाभ का उपाय है ब्रह्मविद्या। उपनिषद उसी विद्या के आकर है। उपनिषदो की सख्या के सबध मे मतभेद ह। किन्तु ईश, केन, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय तैत्तिरीय, बृहदारण्यक, छान्दोग्य, एव श्वेताश्वतर उपनिषदो की प्रामाणिकता के सबध म समस्त वेदान्तिक आचाय एक मत है। नि सन्दिग्धभाव से श्रुति के अन्तगत होने के फलस्वरूप ये दश उपनिषद् वेदान्त के श्रुति प्रस्थान नाम से अभिहित किए जाते है। उच्चस्तर के अधिकारी के लिए उपनिषदो का अनुशीलन ही ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के लिए यथेष्ट है। किन्तु दु ख का विषय यह है कि उपनिषद का तत्त्व सवसाधारण के लिए बोधगम्य नही है। उपनिषद् शब्द का अथ 'विनीत भाव से (गुरु के) समीप बैठना' है। यह गुरुमुखी विद्या है। योग्य समझकर गुरु

जिसको दान करते हैं केवल उसी को यह रहस्यविद्या जानने का सौभाग्य घटित होता है। श्वेताश्वतर उपनिषद में कहा है, 'प्रशान्तचित्त पुत्र या शिष्य को छोड़कर अन्य को यह विद्या दान न करे।' उपनिषद समूह वेदमार्ग के दार्शनिकों के ग्रन्थों के समान सुसम्बद्धरूप से तत्त्व विश्लेषण का ग्रन्थ नहीं है। उपनिषदों में जीव, जगत और ब्रह्म तत्त्व को धारावाहिक प्रणाली बद्धरूप से सज्जित करके नहीं रखा गया है। जो अन्तरंग शिष्य द्वारा गुरु के पास से तत्त्व-श्रवण करते हैं, केवल वे ही उपनिषद के तात्पर्य को समझ सकते हैं। दूसरों के लिए उपनिषदों के वाक्य विश्रृङ्खल और स्वविरोधी लगेंगे—वे इन समस्त वाक्यों में निहित प्रकृत सामञ्जस्य को खोजकर नहीं निकाल सकते।

समाज के अधिकाश लोग ही वेद और उपनिषद के तात्पर्य का अवधारण करने में अक्षम हैं, यह विचार करके परवर्ती आचार्यो ने सहज और विश्रुतभाव से श्रुति के अभिप्राय को प्रकट करने के उद्देश्य से स्मृतिशास्त्र प्रणयन किया। स्मृतिमात्र ही श्रुति की अनुसरण कारिणी है। श्रुति के अन्तर्गत उपनिषद के मूल तत्त्व को समाज की बुद्धि के लिए उपयोगी भावसे व्याख्या करने में गीताकार ने असामान्य दक्षता का परिचय दिया है। भगवद्गीता में वेदान्त का अनुसरण करते हुए तत्त्व समीक्षा करते हुए सिद्धान्त ग्रहण हुआ है—इसी से भगवदगीता को वेदान्त का स्मृति प्रस्थान कहा जाता है। जो उपनिषद के उपदेश एवं भगवदगीता के सिद्धान्त श्रवण से सन्तुष्ट न होकर वेदान्त वाक्य समूह की यौक्तिकता तथा सामंजस्य देखने की इच्छा करते हैं उनके लिए महात्मा बादरायण ने उपनिषद उद्यान की महामूल्यवान कुसुमराजि का चयन करके एक अमूल्य माला की रचना की, इस मालिका का नाम है ब्रह्मसूत्र। ब्रह्मसूत्र या वेदान्त सूत्र श्रुति और स्मृति का अनुगामी होने पर भी विचार प्रधान है। युक्तिवादी दार्शनिकों के विचार, आलोचना एवं द्वन्द्वयुद्ध से इसकी कलेवर वृद्धि हुई है। इसी कारण यह वेदान्त के तर्कप्रस्थान या न्यायप्रस्थान नाम से ख्यात है। उपनिषद, भगवदगीता और ब्रह्मसूत्र ये तीनों ही वेदान्त नाम से परिचित हैं। इनको वेदान्त की "प्रस्थानत्रयी" संज्ञा दी जाती है। उपनिषद वेदान्त का श्रुतिप्रस्थान, भगवदगीता इस शास्त्र का स्मृति प्रस्थान और ब्रह्मसूत्र इसका न्यायप्रस्थान या तर्कप्रस्थान है। वेदान्त के प्रत्येक साम्प्रदायिक आचार्य ने प्रस्थानत्रय की व्याख्या के माध्यमसे अपना मत स्थापित करने की चेष्टा की है।

आधुनिक पण्डित वेदान्तदर्शन कहने से प्रधानरूप से ब्रह्मसूत्र को ही लेते हैं। केवल ऋषियों की आध्यात्मिक अनुभूति और स्मृति के सिद्धान्तों की चर्चा में उनके मन नहीं लगते। युक्ति-विचार की कसौटी पर कसे बिना वे किसी भी सिद्धान्त को ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं। इसी से उनकी दृष्टि वेदान्त के तर्कप्रस्थान की ओर है। उनके मत से बादरायण प्रणीत ब्रह्मसूत्र ही प्रकृत वेदान्त दर्शन है क्योंकि इसके सिद्धान्तसमूह युक्तितर्कद्वारा समर्थित हैं। किन्तु आश्चर्य का विषय यह है कि वेदान्तिक आचार्यों के एक ही ब्रह्मसूत्र के अनुसरणकारी होते हुए भी उन सबके मत एक प्रकार के नहीं हैं। सबने ब्रह्मसूत्रों की दुहाई दी है किन्तु कोई अद्वैतवादी, कोई द्वैतवादी, कोई विशिष्टाद्वैतवादी, कोई द्वैताद्वैतवादी और कोई अचिन्त्य भेदाभेदवादी है। गहनशास्त्रारण्यानी के बीच में ब्रह्मसूत्र कल्पवृक्ष के समान स्थित है। जो

कोई जो अभिलाषा लेकर उसके पास गए है उनकी वह अभिलापा पूण हुई ह । आचार्यों ने एक के पश्चात दूसरा ब्रह्मसूत्र का भाष्य लिखकर अपने अपने सम्प्रदाय खडे कर लिए है । आजकल ब्रह्मसूत्र के जितने भाष्य प्राप्त ह उनमे आचाय शकर का 'शारीरक भाष्य' ही सबसे प्राचीन ह । उनका भाष्य विद्वानो मे इतना प्रसिद्ध ह कि वेदात कहने से अनेक शाकरभाष्य का ही समझते ह । आचाय शकर ने अपने भाष्य म अद्वत मत की स्थापना की ह । उनका अद्वैतवाद गौडपाद प्रणीत माण्डूक्यकारिका से प्रभावित ह । आगम' वयथ्य', 'अद्वैत' एव 'अलातशाति नामक अध्यायचतुष्टयसमन्वित कारिका का पाठ करने पर लगता ह कि गोडपाद ने नागार्जुन की कारिका से माध्यमिक बौद्ध मत और 'लङ्कावतार' से विज्ञानवादी बाद्धा क मत का आहरण किया ह । उनके मत से शून्यवाद और विज्ञानवाद का मिलाने से जो होगा वही उपनिषद की शिक्षा है । गौडपाद के प्रशिष्य आचाय शकर और भी कुछ अग्रसर हुए ह । उन्होने गौडपाद के मत को बौद्ध प्रभाव से मुक्त स्पष्ट रूप से उपनिपद का मत कहकर चलाने की चेष्टा की है ।

ब्रह्मसूत्र चार अध्यायो मे विभक्त ह । इसके प्रत्येक अध्याय मे चार पाद ह । प्रत्येक पाद मे कुछ अधिकरणा या विचारणीय विषयो की मीमासा की गइ ह । प्रत्येक अधिकरण मे कुछ सूत्र है । सूत्रो की सख्या एक समान नही ह । आचाय शङ्कर के अनुसार सूत्रो की सख्या ५५५ है । ब्रह्मसूत्र के प्रथम अध्याय का नाम ह समन्वय अध्याय । इस अध्याय मे उपनिषद मे उल्लिखित ब्रह्मबोधक स्पष्ट, अस्पष्ट और सन्दिग्ध सभी वाक्यो की आलोचना करके यही प्रदर्शित किया गया है कि ये समस्त वाक्य ब्रह्म का निर्देश करने के उद्देश्य से प्रयुक्त हुए ह । एकमात्र ब्रह्म ही इन समस्त वाक्यो का समन्वय हो सकता ह । प्रथम अध्याय के प्रथम चार सूत्र विशेषरूप से उल्लेख योग्य ह । अथातो ब्रह्मजिज्ञासा जन्माद्यस्य यत, शास्त्रयोनित्वात, और तत तु समन्वयात—इन चार सूत्रो को वेदात का चतु सूत्री कहा जाता ह । प्रथम सूत्र मे ब्रह्मजिज्ञासा के अधिकार का विचार किया गया ह । द्वितीयसूत्र मे ब्रह्म लक्ष्य का वणन किया गया है । तीसरे सूत्र मे कहा गया है कि शास्त्र ही ब्रह्मज्ञान प्राप्ति का उपाय है । चौथे सूत्र मे उपनिषद वाक्य समूह का ब्रह्म-तात्पय प्रदशन किया गया है । प्रथम अध्याय के अन्यान्य सूत्रो मे भी साधारण रूप से इसी मत का समथन किया गया ह कि साख्यदशन और मीमासादशन के मत उपनिषद को अभिप्रेत नही है, ब्रह्मज्ञान ही उपनिपद को अभिप्रेत है । ब्रह्मसूत्र का द्वितीय अध्याय 'अविरोध' अध्याय के नाम से प्रसिद्ध ह । इस अध्याय मे ब्रह्म की जगतकारणता के सम्बन्ध मे श्रुति, स्मृति और युक्ति के विरोध का परिहार और साख्यादि मतो की अलौकिकता का दिग्दशन किया गया है । पच महाभूत, जीव और लिङ्गशरीर के सबध मे कुछ श्रुति वाक्यो का विचार भी इस अध्याय मे किया गया ह । तीसरे अध्याय का नाम साधनाध्याय है । इस अध्याय का आलोच्य विषय ह जीव की परलोकगमन प्रणाली, जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध, विविध उपासना प्रणाली एव साधनो का बहिरग और अतरग रूप । चतुथ अध्याय फलाध्याय के नाम से परिचित ह । इस अध्याय मे साधन प्रणाली, देहत्याग प्रणाली, देवयानपथ, मुक्ति का स्वरूप, मुक्त पुरुष की गति तथा ब्रह्मज्ञान के फल के विषय मे आलोचना की गई है ।

अन्यान्य दर्शनों में सूत्रपाठ [illegible] मुक्ति [illegible] है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग [illegible] नहीं है। किन्तु वेदान्तसूत्र [illegible] की व्याख्या में सदाय उपनिषद् [illegible] किया करता सम्भव है। आचार्य [illegible] उपनिषदों के तात्पर्य [illegible] व्याख्या [illegible] मत में प्रकृति तत्त्व श्रुतिगम्य [illegible] कितना ही श्रुति मधुर क्यों न हो [illegible] तत्त्व नहीं है। [illegible] ने कभी श्रुति पर आघात नहीं किया, वरन श्रुति की [illegible] और प्रच्छन्न शत्रुपक्ष के ऊपर गम्भीर प्रहार किए हैं। [illegible] सांख्य, वैशेषिक आदि मतों [illegible] खण्डन में [illegible] है। श्रुति के प्रच्छन्न शत्रुओं को लेकर ही उनको [illegible] था। सांख्य और मीमांसा मतों के खण्डन के लिए उन्होंने विशेष प्रयत्न किया। [illegible] प्रामाणिकता मान्य है किन्तु दोनों ही अन्तर्गत के विरोधी [illegible] है। सांख्य का कथन है कि उनका मत ही उपनिषद् [illegible] चेतन ब्रह्म जगत का उपादान कारण नहीं है अचेतन प्रकृति ही जगत का उपादान कारण है। चरम तत्त्व एक अद्वितीय ब्रह्म नहीं है, चरम तत्त्व दो हैं—पुरुष और प्रकृति। [illegible] सांख्य सिद्धान्त को ही उपनिषद का तात्पर्य समझकर स्वीकार कर लें इस भय से आचार्य शंकर ने 'ईक्षतेर्नाशब्दम्' (१ १ ५) सूत्र की व्याख्या आरंभ करने के साथ साथ सांख्यमत के ऊपर तीव्र कटाक्ष करना प्रारंभ किया है और जहां भी सुयोग मिला है वहीं समझाना आरंभ किया है कि सांख्यमत भ्रान्त है। आचार्य शंकर के मत से अचेतन प्रकृति जगत का मूल कारण नहीं है, ब्रह्म ही जगत का 'अभिन्न निमित्तोपादान कारण' है। सांख्य मतानुसार पुरुष या आत्मा [illegible] एक नहीं हैं, बहुत हैं, किन्तु वेदान्त—मतानुसार आत्मा एक है, ब्रह्म ही आत्मा है ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई नहीं है। सांख्य मत से अज्ञान बन्धन का कारण है। वेदान्त के मत से भी अध्यास दुःख का कारण है। सांख्य के मत से अज्ञान का हेतु पुरुष और प्रकृति का अविवेक है, और मुक्ति का हेतु इन दोनों का पार्थक्य ज्ञान है। किन्तु वेदान्त के मत से अध्यास तभी होता है जब वस्तु का स्वरूप अज्ञान के द्वारा आवृत होने पर उसके ऊपर एक अनिर्वाच्य मिथ्या विन्दु की सृष्टि होती है। इस मत के अनुसार मुक्ति एकत्व के ज्ञान से होती है। सांख्य परिणामवादी है। किन्तु वेदान्तिक विवर्त्तवादी है। वेदान्त के साधनपाद के साथ योग का अनेक विषयों में मेल है, किन्तु जिन जिन विषयों में सांख्य के साथ योग की अभिन्नता है उन विषयों के विरुद्ध वेदान्त का कठोर प्रतिवाद घोषित हुआ है। पूर्वमीमांसा के साथ वेदान्त का अनेक विषयों में पारिवारिक ऐक्य है। दोनों ही मीमांसा दर्शन हैं। एक कर्म मीमांसा है और दूसरा ज्ञान मीमांसा। वेदान्त दर्शन का दूसरा नाम है उत्तरमीमांसा दर्शन। उत्तम दर्शन ही सब प्रकार से वेदतन्त्र है। दोनों ही स्वतः प्रामाण्यवादी हैं। किन्तु वेद के तात्पर्य के सम्बन्ध में दोनों में मतभेद विद्यमान है। मीमांसक कहते हैं कि कर्मकाण्ड ही मूल वेद है। याग यज्ञ, विधि निषेध

की बात वेद की सार बात ह। ज्ञानकाण्ड की बातो को कमकाण्ड की उक्तियो का अनुगत बनाकर व्यारया करनी चाहिए ' क्रियाथक वाक्यो को छोडकर वद मे अन्य जो सब बचन है वे वेदोक्त विधि निपेध की स्तुति या नि दा का छोटकर और कुछ नही ह। वेदान्ती इस मत को स्वीकार नही करते। उनक कथनानुसार याग यज्ञादि कम ओर उससे सम्बन्धित विधि निपेध निम्न स्तर के अधिकारियो के लिए है। ब्रह्मजिनासा की योग्यता प्राप्त होने पर इनके लिए और कोई आवश्यकता नही रह जाती। न्याय और वशेपिक मत स्पष्ट ही शकर के अद्वत मत के विरोधी ह न्याय का आरभवाद और वैशेषिक का परमाणुकारणवाद अद्वैतवादियो को स्वीकाय नही है। अद्वैतवादियो ने वैशेपिको द्वारा स्वीकृत समवाय और 'जाति नामक पदार्थो के स्वीकार करने के विपय मे अयौक्तिकता का दिग्दशन कराया ह।

वेदान्तशास्त्र की आलाचना मे उसके अधिकारी, विपय सम्बन्ध एव प्रयोजन प्रसग का उत्थापन अपरिहाय ह। ये चार प्रसग वेदान्त क अनुब ध चतुष्टय के नाम से परिचित ह। ब्रह्मजिज्ञासा का अधिकारी कौन ह ? इस प्रश्न के उत्तर मे आचाय शकर ने कहा ह कि नित्या नित्यवस्तु विवेक, इहामूत्रफलभागविराग, शमदमादिसाधनसम्पद एव मुमुक्षत्व, इन चार के न होने पर ब्रह्मजिज्ञासा का अधिकार नही होता। जो इन चार की प्राप्ति कर चुका ह उसके लिए ब्रह्मजिज्ञासा के लिए और कोई बाधा नही है। नित्यानित्यवस्तुविवेक का अथ ह नित्य और अनित्य वस्तु का पाथक्यज्ञान। इहामूत्रफलभोगविराग से तात्पय ह लौकिक एव पार लौकिक भोग्य विपया के प्रति वैराग्य। शमदमादि से शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान की ओर सकेत ह। शम के अवलम्बन करने का अथ ह लौकिक व्यापारो के सम्बध मे चिन्ता न करना। दम के अवलम्बन करने का अथ है चक्षुप्रभति इद्रिया का बाहर के विषयो के प्रति धावित न होने देना। उपरति का अथ ह आत्मज्ञान प्राप्ति का सकल्प ग्रहण करके अन्याय कर्मो का त्याग। तितिक्षा शब्द का अथ ह शीत ग्रीष्म, सुख दु ख इत्यादि द्वन्द्वो को सहन करने की क्षमता श्रद्धा शब्द का अथ है गुरु और वेदान्त वाक्य मे विश्वास। समाधान शब्द का अथ ह आलस्यादि का त्याग करके एकमात्र आत्मा के सम्ब ध मे ही चिन्ता करना। मुमुक्षत्व कहने का अभिप्राय है मुक्तिलाभ के लिए यथाथ आग्रह।

वेदान्तशास्त्र की विषयवस्तु क्या है? इस प्रश्न के उत्तर मे वेदा ती आचाय कहते है कि ब्रह्म ही वेदा त का विपय ह। आचाय शकर के मत से ब्रह्म निगुण, निर्विशेप, निर्विकार, निष्क्रिय, नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव है। ब्रह्म कोई व्यक्ति नही ह, वह चैतन्यमात्र है। ब्रह्म प्रज्ञाघन, अखण्डैकरस तत्त्वमात्र 'एकमेवाद्वितीयम' ह। ब्रह्म के बाहर उसका सजातीय या विजातीय कुछ भी नही है। उसकी सत्ता मे कोई अश अशी विभाग या स्वगत भेद भी नही है। वह सभी प्रकार के भेदो से परे ह। श्रुति मे उसके स्वरूप और तटस्थरूप दो भेद लक्षणो की चर्चा हुई ह। ब्रह्म सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप और अन त है। 'सत्य ज्ञान अन त ब्रह्म'— यही ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है। आचाय शकर के मतानुसार सत्य, ज्ञान और अन तता ब्रह्म के गुण या उपाधि नही है, क्योकि ब्रह्म निर्गुण एव सर्वोपरिविवर्जित है। सत्य ज्ञान और अन त एक ही ब्रह्म के नाम है। जो सत्य है वही ज्ञान और अन त है। ब्रह्म को सत्य कहने का तात्पय ह कि मिथ्या उनका स्पश नही कर पाता, उसे ज्ञान कहने का अथ है कि उसमे

अन्यान्य दशना के [illegible] है। न्याय, वैशेषिक, साख्य, योग और [illegible] नहीं है। किन्तु वेदान्तसूत्र [illegible] की व्याख्या में सशरा उपनिषद [illegible] सभव है। आचार्य [illegible] उपनिषदो के तात्पर्य [illegible] की व्याख्या [illegible] मत से प्रकृति तत्त्व अतिगम्य तथा उपर्लो [illegible] विषय है। [illegible] कितना ही श्रुति [illegible] नहीं है। [illegible] ने कभी श्रुति पर आघात नहीं किया, [illegible] और प्रच्छन्न शत्रुपक्ष के ऊपर गम्भीर प्रहार किए है। [illegible] भाष्य में साख्य, वशेषिक आदि मता [illegible] उस प्रहार का स्पष्ट परिचय मिलता है। श्रुति के प्रच्छन्न शत्रुओ को लेकर ही उनको बहुत कठिना [illegible]। साख्य और मीमासा मतो के खण्डन के लिए उन्होने विशेष यत्न किया। दोनो [illegible] प्रमाणता मान्य है किन्तु दोनो ही अन्त [illegible] है। साख्य एव मीमासा [illegible] है। साख्य का कथन है कि उनका मत ही उपनिषद [illegible] उनका कहना है कि चेतन ब्रह्म जगत का उपादान कारण नहीं है अचेतन [illegible] ही जगत का उपादान कारण है। [illegible] तत्त्व एक अद्वितीय ब्रह्म नहीं है, परम तत्त्व दो है—पुरुष और प्रकृति। पीछे लोग साख्य सिद्धान्त को ही उपनिषद का तात्पर्य समझकर स्वीकार कर ले इस भय से आचार्य शकर ने 'ईक्षतेर्नाशब्दम्' (१ १ ५) सूत्र की व्याख्या आरंभ करने के साथ साथ साख्यमत के ऊपर तीव्र कटाक्ष करना प्रारंभ किया है और जहा भी सुयोग मिला है वही समझाना आरंभ किया है कि साख्यमत भ्रान्त है। आचार्य शकर के मत से अचेतन प्रकृति जगत का मूल कारण नहीं है, ब्रह्म ही जगत का 'अभिन्न निमित्तोपादानकारण' है। साख्य मतानुसार पुरुष या आत्मा मात्र एक नहीं है, बहुत है, किन्तु वेदान्त—मतानुसार आत्मा एक है, ब्रह्म ही आत्मा है, ब्रह्म से अतिरिक्त और कोई नहीं है। साख्य मत से अज्ञान बन्धन का कारण है। वेदान्त के मत में भी अध्यास दुख का कारण है। साख्य के मत से अज्ञान का हेतु पुरुष और प्रकृति का अविवेक है, और मुक्ति का हेतु इन दोनो का पार्थक्य ज्ञान है। किन्तु वेदान्त के मत में अध्यास तभी होता है जब वस्तु का स्वरूप अज्ञान के द्वारा आवृत होने पर उसके ऊपर एक अनिर्वाच्य मिथ्या बिन्दु की सृष्टि होती है। इस मत के अनुसार मुक्ति एकत्व के ज्ञान से होती है। साख्य परिणामवादी है। किन्तु वेदान्तिक विवर्त्तवादी है। वेदान्त के साधनपाद के साथ योग का अनेक विषयो में मेल है, किन्तु जिन जिन विषयो मे साख्य के साथ योग की अभिन्नता है उन विषयो के विरुद्ध वेदान्त का कठोर प्रतिवाद घोषित हुआ है। पूर्वमीमासा के साथ वेदान्त का अनेक विषयो मे पारिवारिक ऐक्य है। दोनो ही मीमासा दर्शन है। एक कर्म मीमासा है और दूसरा ज्ञान मीमासा। वेदान्त दर्शन का दूसरा नाम है उत्तरमीमासा दर्शन। उत्तम दर्शन ही सब प्रकार से वेदतन्त्र है। दोनो ही स्वत प्रामाण्यवादी है। किन्तु वेद के तात्पर्य के सम्बन्ध में दोनो मे मतभेद विद्यमान है। मीमासक कहते है कि कर्मकाण्ड ही मूल वेद है। याग-यज्ञ, विधि निषेध

की बात वेद की सार बात है। ज्ञानकाण्ड की बातो को कमकाण्ड की उक्तियो का अनुगत बनाकर व्याख्या करनी चाहिए क्रियाथक वाक्यो को छोडकर वद मे अन्य जो सब बचन हैं वे वेदोक्त विधि निपेध की स्तुति या नि दा को छोडकर और कुछ नही हैं। वेदान्ती इस मत को स्वीकार नही करते। उनक कथनानुसार याग यज्ञादि कम और उससे सम्बन्धित विधि निपेध निम्न स्तर के अधिकारियो के लिए है। ब्रह्मजिज्ञासा की योग्यता प्राप्त होने पर इनक लिए और कोई आवश्यकता नही रह जाती। न्याय और वशेपिक मत स्पष्ट ही शकर के अद्वत मत के विरोधी ह न्याय का आरभवाद और वैशेषिक का परमाणुकारणवाद अद्वतवादियो को स्वीकाय नही ह। अद्वैतवादियो ने वैशेपिको द्वारा स्वीकृत समवाय' और 'जाति' नामक पदार्थो के स्वीकार करने के विपय मे अयौक्तिकता का दिग्दशन कराया ह।

वेदान्तशास्त्र की आलोचना मे उसके अधिकारी, विपय सम्बन्ध एव प्रयोजन प्रसग का उत्थापन अपरिहाय ह। ये चार प्रसग वेदान्त क अनुब ध चतुष्टय के नाम से परिचित ह। ब्रह्मजिज्ञासा का अधिकारी कौन ह ? इस प्रश्न के उत्तर मे आचाय शकर ने कहा ह कि नित्या नित्यवस्तु विवेक, इहामूत्रफलभोगविराग, शमदमादिसाधनसम्पद एव मुमुक्षत्व, इन चार के न होने पर ब्रह्मजिज्ञासा का अधिकार नही होता। जो इन चार की प्राप्ति कर चुका ह उसके लिए ब्रह्मजिज्ञासा के लिए और कोई बाधा नही है। नित्यानित्यवस्तुविवक का अथ ह नित्य और अनित्य वस्तु का पार्थक्यज्ञान। इहामूत्रफलभोगविराग से तात्पय ह लौकिक एव पार-लौकिक भोग्य विपया के प्रति वैराग्य। शमदमादि से शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान की ओर सकेत ह। शम के अवलम्बन करने का अथ ह लौकिक व्यापारो के सम्ब ध मे चिन्ता न करना। दम के अवलम्बन करने का अथ है चक्षुप्रभति इद्रिया को बाहर के विषयो के प्रति धावित न होने देना। उपरति का अथ ह आत्मज्ञान प्राप्ति का सकल्प ग्रहण करके अन्या य कर्मोका त्याग। तितिक्षा शब्द का अथ है शीत ग्रीष्म, सुख दु ख इत्यादि द्वन्द्वो को सहन करने की क्षमता श्रद्धा शब्द का अथ ह गुरु और वेदान्त वाक्य मे विश्वास। समाधान शब्द का अथ ह आलस्यादि का त्याग करके एकमात्र आत्मा के सम्ब ध मे ही चिन्ता करना। मुमुक्षत्व कहने का अभिप्राय है मुक्तिलाभ के लिए यथाथ आग्रह।

वेदान्तशास्त्र की विषयवस्तु क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर मे वेदान्ती आचाय कहते हैं कि ब्रह्म ही वेदा त का विषय ह। आचाय शकर के मत से ब्रह्म निगुण, निर्विशेष, निर्विकार, निष्क्रिय, नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव ह। ब्रह्म कोई व्यक्ति नही ह, वह चैतन्यमात्र है। ब्रह्म प्रज्ञाघन, अखण्डैकरस तत्त्वमात्र 'एकमेवाद्वितीयम' ह। ब्रह्म के बाहर उसका सजातीय या विजातीय कुछ भी नही है। उसकी सत्ता मे कोई अश अशी विभाग या स्वगत भेद भी नही है। वह सभी प्रकार के भेदो से परे ह। श्रुति मे उसके स्वरूप और तटस्थरूप दो भेद लक्षणो की चर्चा हुई ह। ब्रह्म सत्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप और अनन्त है। 'सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्म'— यही ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है। आचाय शकर के मतानुसार सत्य, ज्ञान और अनन्तता ब्रह्म के गुण या उपाधि नही है, क्योकि ब्रह्म निर्गुण एव सर्वोपरिविवर्जित हैं। सत्य, ज्ञान और अनन्त एक ही ब्रह्म के नाम है। जो सत्य है वही ज्ञान और अनन्त है। ब्रह्म को सत्य कहने का तात्पय ह कि मिथ्या उनका स्पश नही कर पाता, उसे ज्ञान कहने का अथ है कि उसमे

अज्ञान नही रह सकता [illegible] उसे अनन्त कहने का अभिप्राय है कि सभी सीमाएं एव सभी क्षुद्रता उसमे विलीन हो जाती है। ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन किसी गुण [illegible] किया जा सकता। जहा पर गुण है वही पर सीमा [illegible]। ब्रह्म किसी सीमा मे आबद्ध नही है। इसीलिए उपनिषद मे ब्रह्म के वर्णन मे 'नेति नेति' [illegible]। [illegible] ब्रह्म का स्वरूप वर्णन असम्भव होने पर भी [illegible] की सहायता से उसका [illegible] उपनिषद मे भी हुई है। ब्रह्म के परिचायक इन सभी उपनिषद् वाक्यो [illegible] श्रुति कहा जाता है।

"जिसके द्वारा इस जगत की सृष्टि हुई है, जिसके द्वारा यह जगत प्रतिपालित होता है एव जिसके परिणामस्वरूप यह जगत विनष्ट होगा, वही ब्रह्म है।" इस वाक्य मे ब्रह्म का तटस्थ लक्षण का उल्लेख है। ब्रह्म जिस स्वरूप मे है, वही उसका स्वरूप-लक्षण है, और अन्य लोगो के सम्पर्क मे उसे जैसा देखा जाता है वही उसका तटस्थ लक्षण है। जब कोई अभिनय निपुण दरिद्रव्यक्ति फाकारत पुत्र कन्या को छोड़ कर गाव के जमीदार के नौटकिया नाट्य दल मे महाराजा हरिश्चन्द्र की भूमिका निभाते हुए राज्यदान करता है तब अपरिचित दर्शक के लिए वह राजा के रूप मे दिखाई पड़ता है। यही राजसीवेश उसका तटस्थ लक्षण है। उसके बुभुक्षु स्त्री पुत्र जिस रूपमे उसे देखते है, वही इस दरिद्र व्यक्तिका स्वरूप लक्षण है। ब्रह्म के स्वरूप लक्षण को ही लक्ष्य करके श्रुति मे कहा गया है कि ब्रह्म निर्विशेष, निर्गुण निष्क्रिय, निराकार, 'एकमेवाद्वितीयम' है। यह प्रश्न उठ सकता है कि एक ब्रह्म ही यदि सत्य वस्तु है तो हमलोग उसे न प्राप्त कर एक विचित्र जगत की प्राप्ति क्यो करते है? इस विचित्र जगत का ब्रह्म के साथ क्या सम्बन्ध है। हमारे साथ ब्रह्म का सम्बन्ध ही क्या है? इन सभी प्रश्नो के उत्तर मे अद्वैतवादी आचार्य कहते है कि अज्ञान या अविद्या का प्रभाव ही इस नाना वस्तु पूर्ण जगत दर्शन का कारण है। वस्तुत निर्विशेष ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है। विभिन्न वस्तुओ से परिपूर्ण जगत एक मिथ्या छविमात्र है। हमलोग स्वरूपत ब्रह्म है।

सध्याकालीन अन्धकार मे कभी भी मनुष्य रस्सी को साप समझ कर डर जाता है। यह सर्पज्ञान जिस प्रकार मनुष्यका भ्रमज्ञान है, उसी प्रकार ब्रह्म मे असख्य जीव और विविध दर्शन भी एक भ्रमज्ञान है। जिस प्रकार प्रकाशमे रस्सी को देखने पर सर्प भय नही रहता उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के पश्चात जगत भ्रम नही रहता। जिस प्रकार रस्सी रस्सी होते हुए भी अज्ञानवश सर्प जैसी दीखती है उसी प्रकार ब्रह्म भी स्वरूपत अविकृत रह कर माया के कारण बहुरूप मे प्रतीत होता है। जब वस्तु अविकृत रहते हुए अन्य रूप मे प्रतीत होती है तब प्रतीत रूप को 'कार्य' एव वस्तु को 'कारण' कहा जाता है। आचार्य शकर ने इस रूप 'कार्य' को विवर्त्त नाम से अभिहित किया है। उनके मतानुसार हमारा प्रत्यक्ष जगत ब्रह्म का 'विवर्त' होने पर भी रज्जुसर्प की भाति सर्वथा मिथ्या नही है। उन्होने पारमार्थिक, व्यावहारिक एव प्रातिभासिक भेद से त्रिविध सत्ता स्वीकार की है। ब्रह्म ही पारमार्थिक सत्ता है। अतीत, वर्तमान और भविष्यत इन तीनो कालो मे से एक मे भी उसकी सत्ता का व्यभिचार नही हुआ। जगत् की सत्ता पारमार्थिक नही है, क्योकि ब्रह्मज्ञान से जगतज्ञान 'बध' जाता है। जब तक ब्रह्मज्ञान नही होता तब तक बहुत्त्व की दृष्टि के अनुसार एक विचित्र जगत का विभिन्न प्रकार

से व्यवहार होता रहता ह। आचाय शकर ने इस विचित्र जगत की सत्ता को व्यावहारिक सत्ता की आरया दी ह। ब्रह्मसत्ता की तुलना मे जगतसत्ता मिथ्या ह। व्यावहारिक जगत के भीतर भी एक अन्य प्रकार की सत्ता का परिचय मिलता ह। वह सत्ता यावहारिक सत्ता की तुलना मे मिथ्या ह। रज्जुसप और शुक्ति रजत इमी ततीय श्रेणी की सत्ता मे आते हैं। आचाय शकर के अनुसार इस प्रकार की सत्ता को प्रातिभासिक' सत्ता कहत ह। प्रातिभासिक सत्ता की अपक्षा व्यावहारिक सत्ता दीघकाल स्थायी हाती ह, लेकिन दोना मे काई भी चिरस्थायी नही ह। पर माथ सत्ता ही एकमात्र चिरस्थायी ह व्यावहारिक सत्ता पारमार्थिक सत्ता की अपक्षा निम्न स्तर की होने पर भी आकाश पुष्प की भाति अलीक नहं ह। जगत की पारमार्थिक सत्ता नही ह। इसीलिए इसे सत्य' नही कहा जा सकता। जगत आकाश पुष्प अथवा शश शृग की भाति तुच्छ नाममात्र नही ह। इसीलिए इसे असत्य' भी नही कहा जा सकता। यह अज्ञान या माया की सृष्टि ह। माया ब्रह्म की शक्ति ह, यह सत्य नही ह, मिथ्या भी नही ह, अनिवेच नीय ह। माया या अज्ञान केवल ज्ञानाभाव नहीं ह, यह भाव रूप अर्थात अस्तित्वशील पदाथ की भाति प्रतीयमान है। ब्रह्म के आधार पर जगत की प्रतीति उत्पन्न करने एव आत्मा का बन्धन बोध कराने मे सक्षम होने के कारण इसे विघटन घटन पटु कहा जा ा ह। यह आवरण विक्षेपमय ह। इसकी आवरणशक्ति के प्रभाव से ब्रह्म का स्वरूप आवत हाता ह एव वि-ेपशक्ति के प्रभाव से एक ब्रह्म बहु पदार्थो मे दिखाई पटता ह। पारमार्थिक दष्टि से माया या अज्ञान का कोई स्थान नहा ह। जो लाग पारमार्थिक दष्टि सम्पन ह, उनके ि्लए सृष्टि मिथ्या ह, जीव, जगत्त, ब वन एव मोक्ष भी मिथ्या है। ब्रह्मज्ञानी की द ि मे गुरु भी नही ह, शिष्य भी नही ह, साधन मी नही ह और साध्य भी नही ह, केवल ब्रह्म ह।

जिस शास्त्र मे ब्रहम के स्वरूप का वणन है, उस शास्त्र के साथ ब्रह्म का सम्ब ध क्या ह? इस प्रश्न के उत्तर मे वेदा तिक आचार्यो का कहना है कि ब्रह्म जिस जगत का कारण है वह केवल उपनिषद या वदान्त शास्त्र द्वारा ही जाना जाता है। प्रत्यक्ष प्रमाण अथवा शास्त्र निर पेक्ष स्वाधीन युक्ति विचार द्वारा ब्रह्म के स्वरूप का निर्धारण नही किया जा सकता। ब्रह्म के यथाथ स्वरूप को जानने के लिए मुरय रूप से वेदा त या उपनिपद का आश्रय लेना पडेगा। स्वाधीन युक्ति तक द्व ा कभी भी काई स्थिर सिद्धा त प्राप्त नही किया जा सकता। इसीलिए शास्त्रनिर्दिष्ट प्रणाली द्वारा बुद्धि या तक को परिचालित करना आवश्यक ह। केवल बुद्धि की सहायता से वेदा त का पतिपाद्य ब्रह्मतत्त्व के सम्ब ध मे काई स्थिर नियम निकालने की कोई सभावना नही है। अथच, जो समस्त तकयुक्ति उपनिपद के सिद्धा ता के अनुकूल ह केवल वे ही तक युक्ति ग्रहण करने योग्य हैं। उपनिपद ही ब्रह्मतत्त्व को जानने का एकमात्र उपाय ह।

वेदान्तानुशीलन का चरम फल मोक्ष प्राप्ति है। वेदान्तशास्त्र का क्या प्रयोजन है? इस प्रश्न के उत्तर मे अद्वैतवादी कहते हैं कि मोक्ष ही ब्रह्म-जिज्ञासु का प्रयोजन ह, इसीलिए मोक्ष की अवस्था मे अनथनिवत्ति और आन द प्राप्ति होती है, अनथ या दु ख का कारण अविद्या है। वेदा त के अनुसार आत्मा स्वरूपत आन द स्वरूप ब्रह्म है। लेकिन अविद्या के कारण जब उसका वह ज्ञान तिरोहित होता ह तब वह देह, इन्द्रिय, मन और बुद्धि का (यहा तक कि स्त्री

पुत्रादि के देह [illegible] आरोपित करके स्वय को सुखी या [illegible] आत्मा जीव रूपमें सुख [illegible] सभी प्रकार का [illegible] प्राप्ति नहीं होती [illegible] बार होने पर ही अविद्या [illegible] जाता है कि सुख दुःख [illegible] स्वप्ना वस्था में ही होता [illegible] भी आधार नहीं रहता। लेकिन [illegible] स्थापित हो जाता है। सुषुप्तावस्था में अल्प समय के [illegible] आत्मा का स्वरूप ही प्रकाशित होता है। [illegible] की अभिज्ञता से ही जाना समझा जाता है। सुषुप्तिकाल [illegible] द्वारा स्वीकाय नहीं है। वेदान्त के अनुसार आत्मा सुषुप्तिकाल में विषयरहित [illegible] अवस्था में अवस्थान करती है, लेकिन उसका स्वरूपगत [illegible] इसीलिए सुषुप्ति के पश्चात निद्राभंग [illegible] सो रहा था। सुषुप्तिकाल में जो आत्मानुभूति होती है उसका [illegible] कि उस समय तक जो अविद्याप्रसूत संस्कार समूह निष्क्रिय रूपसे [illegible] मात्र अवस्थान करता है, उसका एक दम विनाश नहीं होता। इस पुञ्जीभूत संस्कार [illegible] नष्ट करने के लिए ज्ञानाग्नि की आवश्यकता होती है। जीव और ब्रह्म का ऐकान्तिक अभेद ज्ञान, [illegible] तादात्म्य ज्ञान ही यह ज्ञानाग्नि है। जीव और ब्रह्म का अभेदज्ञान आचार्य के [illegible] है। सर्वप्रथम ब्रह्मज्ञ आचार्य से वेदान्तवाक्य का श्रवण करना पड़ता है। [illegible] अपने युक्ति तर्क द्वारा आचार्य के उपदेश की युक्ति समझ लेनी पड़ती है। अन्त में आचार्य से प्राप्त तत्त्वों का निरन्तर ध्यान करना पड़ता है। वेदान्त विचार के इन तीन अंगों के नाम [illegible] —श्रवण, मनन और निदिध्यासन।

जीव और ब्रह्म पारमार्थिक दृष्टि से दो भिन्न वस्तुएँ [illegible]। दो भिन्न वस्तुओं में कभी भी तादात्म्य सम्बन्ध स्थायी नहीं हो सकता। लेकिन यदि [illegible] वस्तु को [illegible] पृथक वस्तु कह कर भ्रम किया जाय तो उन दोनों वस्तुओं के अभेद या तादात्म्य [illegible] निर्देश द्वारा भ्रम निवारण सम्भव होता है। उपनिषद में 'तत् त्वं असि' महावाक्य इसी उद्देश्य से व्यवहृत हुआ है। जीव एवं ब्रह्म यदि दो पृथक तत्त्व होते तो आचार्य के सहस्र उपदेश के बावजूद भी उनमें तादात्म्य स्थापित करना सम्भव नहीं होता। वस्तुतः ब्रह्म ही सत्य है, जीव की कोई पृथक सत्ता नहीं है, जीव कहने से ब्रह्म के अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं है। अज्ञान या अविद्या के प्रभाव से ब्रह्म को ही ससारी जीव समझा जाता है। आचार्य के उपदेश से यह भ्रम कट जाता है और शिष्य समझता है कि वह ससारी नहीं है, वे किसी के पिता अथवा पति नहीं हैं, जो प्रकृत सत्य वस्तु है, जो ब्रह्म है वह वही है। इस आत्मोपलब्धि का नाम आनन्दस्वरूपब्रह्म की उपलब्धि है। इसी का नाम मोक्ष या मुक्ति है। जीव और ब्रह्म का एकत्व सभी कालों में

सत्य रहा है। अविद्या के कारण इस सत्य को भूल जाने पर अपारमार्थिक भेद दपणजनित ब धन की सृष्टि होती है। अ य रूप से इसी सत्य की साक्षात प्रतीति हाने पर मोक्ष की प्राप्ति होती ह। मोक्ष एक चिरन्तन सत्य ह। यह कोइ उत्पन्न पदाथ नही ह। जिसको बद्धावस्था कहते ह उस अवस्था मे भी जीव स्वरूपत मुक्त होता ह कि तु स्वरूप विस्मति के फलस्वरूप अपने को बद्ध समझता ह। सचमुच का सिह यदि कभी आत्मविस्मति के कारण शृगालदल मे मिलकर शगालाचित व्यवहार करता है फिर भी वह सिह ही ह शृगाल नही ह। जिस मुहूत मे उसकी विस्मति विनष्ट होगी उसी मुहूत वह समझेगा कि वह शगाल नही, सिंह है। सिंह की सिंहत्व प्राप्ति जिस प्रकार कुछ नयापन की प्राप्ति नही ह उसी प्रक र जीव की ब्रह्मत्व प्राप्ति भी एक अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति नही ह। यह प्राप्त प्राप्ति अर्थात मिली हुई वस्तु का पाना' ह। जो ह उसी को पाना ह। कुछ लाग कह सकते ह कि जो ह वह तो ह ही, उसे फिर पाना क्या ? इस प्रश्न क उत्तर मे यही कहना ह कि जा ह उसके सबध मे यदि ज्ञान न रहे तो वह नही रहने के समान ही है। विपुल पैतक सम्पत्ति का मालिक रहने पर भी पुत्र जाने बिना भिक्षा वत्ति अपनाये ता उसकी सम्पत्ति का रहना न रहने के समान ह। कोई यदि उसी सपत्ति का पता बता दे तो पुत्र उसे प्राप्त कर आनन्दित हा सकता है। इस क्षेत्र मे जिसे जो मिलेगा वह उसी की वस्तु ह अज्ञात अवस्था मे भी वह उसी की थी। इस प्रकार की प्राप्ति का नाम 'प्राप्तप्राप्ति ह। कहा गया ह कि एक राजकुम री प्रत्यक्ष रात मे शयन काल मे अपने गले का हार तकिये के नीचे रखती थी एव दूसरे दिन वहा से उठा कर पहन लेती थी। एक दिन प्रात काल जब तकिये के नीचे उसका हार नही मिला तो उसके दु ख की सीमा नही रही। पर तु अ त मे एक आदमी ने दिखला दिया कि हार उसके गले मे ही है, गत रात वह बिना हार निकाले ही सो गई थी। खैर, राजकुमारी हार पाकर प्रसन्न हुई। राजकुमारी का यह हार पाना प्राप्त प्राप्ति' का एक श्रेष्ठ उदाहरण है।

अद्वैतमतानुसार आत्मा एक एव चैत यस्वरूप है। न्याय मतानुसार आत्मा बहु एव स्वरूपत चैत यविहीन ह। अद्वतमतानुसार मोक्ष का अथ केवल दु ख निवत्ति नही ह इसका वास्तविक अथ ह आन दस्वरूप ब्रह्म का प्रकाश। न्याय के अनुसार चैत य आत्मा का आग तुक धम है। मोक्षावस्था मे आत्मा का काई चत य या सुख दु ख बोध नही रहता। आत्मा उस समय पाषाण के समान हो जाती ह। अद्व तवादी आत्मा की मोक्षत्व प्राप्ति म विश्वास नही करते। उनके कथनानुसार मोक्षावस्था चितस्वरूप ह। साख्य के अनुसार भी मुक्त आत्मा चैतन्यस्वरूप है। लेकिन साख्यकार कहते है कि आत्मा सख्या मे बहु ह एव काई भी आत्मा आन दस्वरूप नही ह। उनक मतानुसार मोक्षावस्था मे काई आन द नही मिलता। अद्वैतवादियो के अनुसार मोक्षावस्था मे जीव सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म का प्राप्त कर ब्रह्म ही हो जाता ह ब्रह्म के साथ जिसका इस रूप एकत्व की उपलब्धि हाती है उसके लिए क्या ससार का और कोई काय करना सभव होता ह ? जो सत्य, ज्ञान, अनन्त स्वरूप हो जाता है उसका शरीर क्या रहता ह ? इसी शरीर मे बँधे रहने पर भी क्या मोक्षानन्द की प्राप्ति सम्भव है ? इस प्रकार के प्रश्नो के उत्तर मे आचाय शकर और उनके मतावलम्बी वेदान्तिक आचायगण कहते ह कि जीवितावस्था मे भी मोक्ष

पुत्रादि के [illegible] आरोपित करके स्वय को सुखी या [illegible] आत्मा जीव रूपमे सुख [illegible] सभी प्रकार [illegible] प्राप्ति नही होती तबतक [illegible] होने पर ही [illegible] जाता है कि सुख दुख [illegible] जागरण एव स्वप्ना वस्था मे ही होता [illegible] भी आधार नही रहता । [illegible] आविष्ट हो जाता है । सुषुप्तावस्था मे [illegible] स्वरूप ही प्रकाशित होता है । आत्मा [illegible] अभिज्ञता से ही जाना समझा जाता है । सुषुप्तिकाल [illegible] द्वारा स्वी काय नही है । वेदान्त [illegible] अनुसार आत्मा सुषुप्तिकाल मे [illegible] अवस्था मे अवस्थान करती है, लेकिन उसके [illegible] । इसीलिए सुषुप्ति के पश्चात [illegible] सो रहा था । सुषुप्तिकाल मे जो आत्मानुभूति होती है उस [illegible] उस समय तक जो अविद्याप्रसूत सस्कार समूह निष्क्रिय रूपमे [illegible] अवस्थान करता है, उनका एक दम विनाश नही होता । इस पुजीभूत सस्कार [illegible] नष्ट करने के लिए ज्ञानाग्नि की आवश्यकता होती है । जीव और ब्रह्म का [illegible] ज्ञान, [illegible] तादात्म्य ज्ञान ही यह ज्ञानाग्नि है ।जीव और ब्रह्म का अभेद ज्ञान आचार्य के लिए उपदेशमात्र है । सर्वप्रथम ब्रह्मज्ञ आचार्य से वेदान्तवाक्य का श्रवण करना पड़ता है । इसके बाद अपने युक्ति तर्क द्वारा आचार्य के उपदेश की युक्ति समझ लेनी पड़ती है । अन्त मे आचार्य के पास तत्त्व का निरन्तर ध्यान करना पडता है । वेदान्त विचार के इन तीन अगो के नाम इस प्रकार है—श्रवण, मनन और निदिध्यासन ।

जीव और ब्रह्म पारमार्थिक दृष्टि से दो भिन्न वस्तुए नही है । दो भिन्न वस्तुओ मे कभी भी तादात्म्य सम्बन्ध स्थायी नही हो सकता । लेकिन यदि एक ही वस्तु को दो पृथक वस्तु कह कर भ्रम किया जाय तो उन दोनो वस्तुओ के अभेद या तादात्म्य के निर्देश द्वारा भ्रम निवारण सम्भव होता है । उपनिषद मे 'तत् त्वं असि' महावाक्य इसी उद्देश्य से व्यवहृत हुआ है । जीव एव ब्रह्म यदि दो पृथक तत्त्व होते तो आचार्य के सहस्र उपदेश के बावजूद भी उनमे तादात्म्य स्थापित करना सम्भव नही होता । वस्तुत ब्रह्म ही सत्य है, जीव की कोई पृथक सत्ता नही है, जीव कहने से ब्रह्म के अतिरिक्त कोई पदार्थ नही है । अज्ञान या अविद्या के प्रभाव से ब्रह्म को ही ससारी जीव समझा जाता है । आचार्य के उपदेश से यह भ्रम कट जाता है और शिष्य समझता है कि वह ससारी नही है, व किसी के पिता अथवा पति नही है, जो प्रकृत सत्य वस्तु है, जो ब्रह्म है वह वही है । इस आत्मोपलब्धि का नाम आनन्दस्वरूपब्रह्म की उपलब्धि है ।इसी का नाम मोक्ष या मुक्ति है । जीव और ब्रह्म का एकत्व सभी कालो मे

सत्य रहा ह। अविद्या के कारण इस सत्य को भूल जाने पर अपारमार्थिक भेद दपणजनित ब धन की सष्टि होती ह। अ य रूप से इसी सत्य की साक्षात प्रतीति होने पर मोक्ष की प्राप्ति होती ह। मोक्ष एक चिरन्तन सत्य ह। यह कोइ उत्पन्न पदाथ नही ह। जिसको बद्धावस्था कहते ह उस अवस्था मे भी जीव स्वरूपत मुक्त होता ह कि तु स्वरूप विस्मति के फलस्वरूप अपने को बद्ध समझता ह। सचमुच का सिह यदि कभी आत्मविस्मति के कारण शृगालदल मे मिलकर शगालोचित व्यवहार करता है फिर भी वह सिह ही ह, शृगाल नही ह। जिस मुहूत मे उसकी विस्मृति विनष्ट होगी उसी मुहूत वह समझेगा कि वह शगाल नही, सिंह है। सिंह की सिंहत्व प्राप्ति जिस प्रकार कुछ नयापन की प्राप्ति नही ह उसी प्रकार जीव की ब्रह्मत्व प्राप्ति भी एक अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति नही है। यह प्राप्त प्राप्ति' अर्थात मिली हुई वस्तु का पाना' ह। जो ह उसी को पाना ह। कुछ लोग कह सकते ह कि जो ह वह तो है ही, उसे फिर पाना क्या? इस प्रश्न के उत्तर मे यही कहना ह कि जो ह उसके सबध मे यदि ज्ञान न रहे तो वह नही रहने के समान ही ह। विपुल पैतक सम्पत्ति का मालिक रहने पर भी पुत्र जाने बिना भिक्षा वत्ति अपनाये तो उसकी सम्पत्ति का रहना न रहने के समान ह। कोई यदि उसी सपत्ति का पता बता दे तो पुत्र उसे प्राप्त कर आनन्दित हो सकता है। इस क्षेत्र मे जिसे जो मिलेगा वह उसी की वस्तु ह, अज्ञान अवस्था मे भी वह उसी की थी। इस प्रकार की प्राप्ति का नाम 'प्राप्तप्राप्ति ह। कहा गया ह कि एक राजकुमारी प्रत्यक्ष रात मे शयन काल मे अपने गले का हार तकिये के नीचे रखती थी एव दूसरे दिन वहा से उठा कर पहन लेती थी। एक दिन प्रात काल जब तकिये के नीचे उसका हार नही मिला तो उसके दु ख की सीमा नही रही। परन्तु अन्त मे एक आदमी ने दिखला दिया कि हार उसके गले मे ही ह, गत रात वह बिना हार निकाले ही सो गई थी। खर, राजकुमारी हार पाकर प्रसन्न हुई। राजकुमारी का यह हार पाना प्राप्त प्राप्ति' का एक श्रेष्ठ उदाहरण ह।

अद्वैतमतानुसार आत्मा एक एव चैतन्यस्वरूप है। न्याय मतानुसार आत्मा बहु एव स्वरूपत चैतन्यविहीन ह। अद्वतमतानुसार मोक्ष का अथ केवल दु ख निवत्ति नही ह इसका वास्तविक अथ ह आनन्दस्वरूप ब्रह्म का प्रकाश। न्याय के अनुसार चैतन्य आत्मा का आगन्तुक धम है। मोक्षावस्था मे आत्मा का कोई चतन्य या सुख दु ख बोध नही रहता। आत्मा उस समय पाषाण के समान हो जाती है। अद्वतवादी आत्मा की मोक्षत्व प्राप्ति म विश्वास नही करते। उनके कथनानुसार मोक्षावस्था चितस्वरूप ह। साख्य के अनुसार भी मुक्त आत्मा चैतन्यस्वरूप है। लेकिन साख्यकार कहते है कि आत्मा सख्या मे बहु ह एव कोई भी आत्मा आनन्दस्वरूप नही ह। उनके मतानुसार मोक्षावस्था मे कोई आनन्द नही मिलता। अद्वैतवादियो के अनुसार मोक्षावस्था मे जीव सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त कर ब्रह्म ही हो जाता ह ब्रह्म के साथ जिसको इस रूप एकत्व की उपलब्धि होती ह उसके लिए क्या ससार का और कोई काय करना सभव होता ह? जो सत्य, ज्ञान अनन्त स्वरूप हो जाता है उसका शरीर क्या रहता ह? इसी शरीर मे बधे रहने पर भी क्या मोक्षानन्द की प्राप्ति सम्भव है? इस प्रकार के प्रश्नो के उत्तर मे आचाय शकर और उनके मतावलम्बी वेदान्तिक आचायगण कहते है कि जीवितावस्था मे भी मोक्ष

का आनन्द प्राप्त हो सकता [illegible] जीव मुक्त कहते हैं। जीवन मुक्ति [illegible] प्राप्त [illegible] किन्तु क्रियमाण और संचित [illegible] जगत में क्षय प्राप्त होने पर [illegible] जीवन्मुक्त को फिर पुनर्जन्म नहीं होता। [illegible] मुक्त पुरुष के लिए काम्य या प्राप्तव्य कुछ भी नहीं [illegible] तब तक उसका कुछ न कुछ कर्म रहता है। [illegible] कर्मफल में उसकी आसक्ति नहीं होती। सकाम [illegible] भी बंधता नहीं। भगवद्गीता में जिस निष्काम कर्म [illegible] कर्म ठीक उसी प्रकार का है। जीवनमुक्त हो [illegible] समाज के कल्याण [illegible] मनुष्य के आदर्श हैं। वे लोग पूर्ण ज्ञान के अधिकारी होने पर भी समाज [illegible] विरत नहीं होते। वे लोग अपनी आवश्यकतानुसार अथवा स्वार्थ [illegible] नहीं लगते। उनका कर्म जीव के कल्याण के लिए [illegible] जन साधारण का भ्रम दूर करने के लिए, भगवद्गीता [illegible] होता है। भुना हुआ बीज जिस प्रकार अंकुरित होने में असमर्थ होता है [illegible] पुनर्जन्म या पुनर्बन्धन का कारण नहीं हो सकते हैं।



हिंदी भवन का उदघाटन ३१ १ ३८ ई०



हिन्दी भवन के उद्घाटन (३१-१-३९) के समय [illegible] [illegible] की ओर से बोलते हुए श्री भागीरथ कानोडिया। उनके दाहिनी ओर आचार्य क्षितिमोहन सेन, पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा श्रीमती इन्दिरा नेहरू गांधी बैठे हैं।

शान्तिनिकेतन का हिन्दी-भवन

दीनबन्धु सी० एफ० एण्ड्रूज

आधुनिक भारत के लिए यह बडे ही सौभाग्य और प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी को लोकप्रिय बनाने और उसके साहित्य की श्रीवृद्धि करने के लिए देश के विभिन्न भागों में संस्थाएं स्थापित हो रही हैं। नागरी लिपि का—जिसमें हिन्दी लिखी जाती है—उस मूल संस्कृत से सीधा सम्बन्ध है जिसमें प्राचीन भारत के गूढ़तम धार्मिक विचार लिपिबद्ध किये गये और सुरक्षित हैं। इस प्रकार हिन्दी का—विशेषकर इसके मध्यकालीन रूपों का असाधारण सांस्कृतिक महत्त्व है।

आज हिन्दी को अग्रसर करने का जो कार्य हो रहा है उसमें हिन्दी के श्रेष्ठ साहित्य के पुनर्जन्म के चिह्न स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं। हम अपनी आंखों के आगे आज फिर कबीर, दादू, तुलसीदास, रैदास और नानक की भक्ति रस की गंगा को बहता देख रहे हैं। मैं सन १९०४ के आरंभ में भारत आया था, तब से हिन्दी के लेखकों में जो पूर्ण परिवर्तन हुआ है, उसे मैंने आंखें खोलकर देखा। आज मैं उनमें वह आत्म विश्वास और उत्साह देख रहा हूँ, जो उन दिनों उनमें नहीं था। अपने कार्य की महत्ता वे समझ रहे हैं और यह महसूस कर रहे हैं कि नवचेतन के इस युग में पैदा होने का अर्थ क्या है?

इस मामले में बंगाल अग्रणी रहा है, क्योंकि मातृभाषा के पुनर्जन्म का इतिहास इसी प्रान्त से शुरू हुआ है। राजा राममोहन राय से लेकर रवीन्द्रनाथ तक यहां एक के बाद एक महान और विश्वविख्यात लेखक पैदा हुए हैं जिन्होंने राष्ट्रभाषा की श्रीवृद्धि की है।

हिन्दी की मौजूदा उन्नति का बहुत कुछ श्रेय बंगाल में आरम्भ हुई इस नवचेतना को है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की अनेक रचनाओं के हिन्दी अनुवादों ने भारत के नई पीढ़ी के लेखकों के सामने बहुत से नये विषयों को मनन के लिए उपस्थित किया है और उन्हें सीधी-सादी भाषा लिखने की प्रेरणा दी है, ताकि उनकी रचनाओं को वे लोग भी अधिकाधिक संख्या में पढ़ और समझ सकें, जो अब तक पुरानी, भारी-भरकम और संस्कृत मिश्रित भाषा की लेखन-शैली के कारण साहित्य में वंचित से रहे हैं। अब तो मेरी समझ में हिन्दी एक ऐसी आधुनिक भाषा बन गई है, जिसमें नये शब्दों की खपत आसानी से हो सकती है और नये विचारों को बडी ही सरल भाषा में व्यक्त किया जा सकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हिन्दी के आधुनिक लेखकों को जो संघर्ष करना पडा है, वह समूचे हिन्दी संसार के लिए अमूल्य और महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी के लिए भारत की राष्ट्रभाषा होना बडा आसान हो गया है, क्योंकि अब उसमें संस्कृत और फारसी के शब्द समान रूप से खप सकते हैं। अतः रवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्रारम्भिक बंगला रचनाओं के अनुवाद का आधुनिक हिन्दी के विकास पर स्वस्थ बडा अनुकूल असर पडा है और वे उसे इस नवीन और विकास की ओर आगे

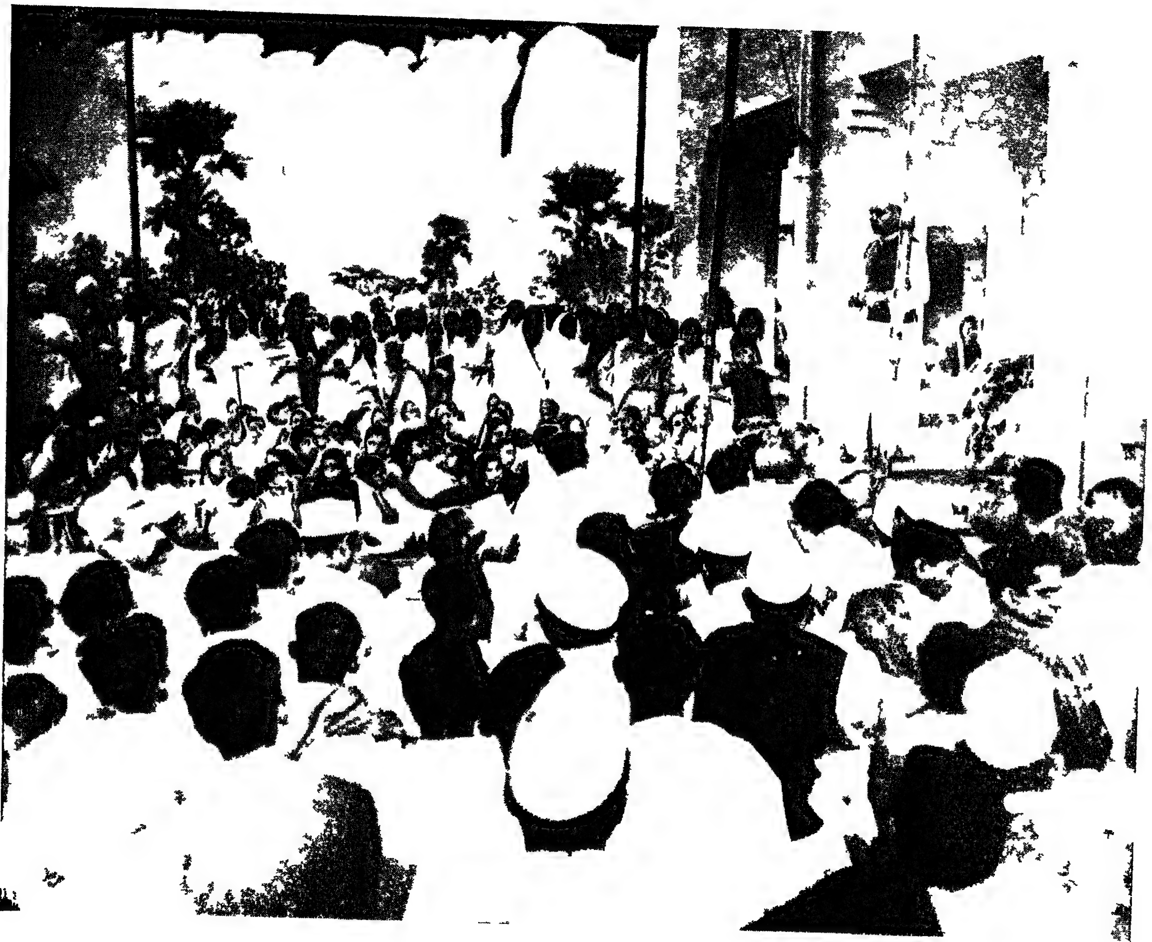
बढ़ने में सहायता [illegible] और [illegible]
यह [illegible]
[illegible]
है और [illegible]
[illegible]
वह [illegible]
बनाया नहीं जा [illegible]
अपना रास्ता वह स्वयं [illegible]
अवरोधों को दूर [illegible]।

जिस प्रकार नदी अपना रास्ता स्वयं [illegible] जाती है और कहीं अपनी [illegible] साहित्य [illegible] भी है। जहाँ ऐसा होता है [illegible] किया जा सकता है, किन्तु [illegible] को एकदम बदलना सम्भव नहीं। [illegible] बाबू तथा [illegible] साहित्यकार मिले हैं। उन्होंने भाषा को उचित मार्ग पर आगे बढ़ाने में सहायता [illegible] और [illegible] बाद दूसरे अवरोध को हटाकर उसके प्रवाह को अधिकाधिक सुगम बना दिया है। [illegible] रूप में इस धारा को ठीक दिशा में बहने का [illegible] भी मिला है—यद्यपि वे महाकवि न होकर एक महात्मा है। वे भी हमारे समय के उन व्यक्तियों में से हैं, जो 'वास्तविक तत्त्व से जन्मे है' और अपनी प्रतिभा के बल से यह समझ लेते हैं कि धारा किधर बह रही है और हवा का रुख क्या है? वे जानते हैं कि अपने महान कार्यों की पूर्ति के लिए इस धारा और हवा के रुख से किस प्रकार फायदा उठाया जा सकता है।

यह हिन्दी साहित्य के पर्यवेक्षण और उसके विकास की स्पष्ट जानकारी प्राप्त करने के लिए मनोवैज्ञानिक समय है, ताकि जो लोग इस सत्कार्य में संलग्न हैं, वे अपने प्रयत्नों का एकीकरण कर भविष्य की रूप-रेखा का मानचित्र तैयार कर सकें। हिन्दी की उन्नति के लिए होनेवाला कोई भी प्रयत्न पृथक नहीं छूटना चाहिए, बल्कि उसका अन्य [illegible] होनेवाले प्रयत्नों से निकट सम्पर्क स्थापित किया जाना चाहिए।

हमें हिन्दी के मुकाबले में अन्य भाषाओं की उपेक्षा करने के खतरे से भी बचना चाहिए। किसी भी रूप में हमें हिन्दी को जबर्दस्ती किसी पर नहीं थोपना है, क्योंकि उसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया अवश्य होगी। हिन्दी भाषा और साहित्य व्यापक रूप से पढ़े और समझे जायँ, यह हमारी प्रसन्नता का कारण हो, पर हिन्दी को उसी प्रकार अन्य प्रान्तीय भाषाओं की उन्नति में सहायक होनेवाली शक्ति बन जाना चाहिए, जिस प्रकार की शक्ति उसे बंगाल के महान् लेखकों से प्राप्त हुई है—जिन्होंने पुरानी परिपाटी से ऊपर उठकर बंगला भाषा को वास्तव में महान् बनाया है।

हिन्दी के अध्ययन को प्रोत्साहन देने के लिए स्थापित हुई मौजूदा संस्थाओं में हमारा



प० जवाहर लाल नेहरू द्वारा हिंदी भवन का उद्घाटन ३१-१ ३९ ई०। उपस्थित जनसमूह की एक झांकी।



हिन्दी-भवन का उद्घाटन करते हुए प० जवाहर लाल नेहरू ३१-१-३९ ई०। पीछे गुरुदेव बैठे हुए हैं।
नीचे बाईं ओर श्रीमती इन्दिरा नेहरू गान्धी बैठी हुई हैं।

शान्तिनिकेतन का हिन्दी भवन सबसे छोटी सस्था है। लगभग दो वर्ष पहले मुझे इसकी आधार शिला रखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और पिछले वर्ष पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने इसका उदघाटन किया था। इन दोनो अवसरोपर हमे अपने गुरुदेव महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का आशीर्वाद प्राप्त हुआ था। तब से इसकी उन्नति ने हमारे सभी अल्प भावना को बडी तेजी से क्षीण कर दिया है। हम इसकी बढती हुई आवश्यकताओ को पूरा करने मे असमर्थ हो गए है, और इसीलिए उन्हे अपर्याप्त ढग से पूरी करना पड रहा है। हिन्दी के मध्यकालीन महा कवियो—जैसे कबीर, दादू, नानक आदि के बारे मे प्रा० क्षितिमोहन सेन जो शोध कार्य वर्षो से कर रहे है, उसका केंद्र अब हिन्दी भवन ही बन गया है। उनके परिश्रम के इस फल को अब ससार के हाथो से कोई छीन नही सकेगा, बल्कि वह इस दिशा मे होनेवाले अध्ययन क्रम का आधार बन जायगा।

हमारा यह दृढ विश्वास है कि इस प्रकार के नाजुक काम मे लोगो की सख्या का कोई खास महत्त्व नही है। इसके विपरीत जिनके हृदय मे हिन्दी के लिए सच्चा अनुराग हो, ऐसे कुछ चुने हुए विद्वानो और लेखको का त्याग और लगन भाषा और सस्कृति की भावी उन्नति के लिए अधिक आवश्यक और मूल्यवान है। साथ ही यह उन नवीन लेखको के लिए जो अभी साहित्यिक क्षेत्र मे आ रहे है—सबसे बडी प्रेरणा होगी।

अपनी इस बात को मैं जरा और स्पष्ट रूप मे दोहरा दूँ, क्योकि मेरा विश्वास है कि इसका बहुत बडा महत्त्व है। बगाल मे ठीक ढग से हिन्दी के अध्ययन को लोकप्रिय बनने के के लिए किसी भी कार्य से इतनी सफलता नही मिल सकती थी जितनी प्रो० क्षितिमोहन सेन के कार्य द्वारा मिली है क्योकि उनके द्वारा किये गये मध्यकालीन हिन्दी लेखको की रचनाओ के अनुवाद ने बगला भाषा भाषी जनता की नजरो मे हिन्दी भाषाको बहुत ऊँचा उठा दिया है। सौभाग्य से क्षिति बाबू का यह कार्य अभी जारी है, और हिन्दी भवन मे काम करनेवाले नये लेखको को उनके व्यापक और बहुमूल्य अनुभव से लाभ उठाने का अवसर मिलेगा। इसके अतिरिक्त जब जरूरत पडेगी, हिन्दी भवन के सस्थापक सभापति रविबाबू की उदार और कृपापूर्ण सहायता भी मिलेगी, क्योकि यह उन्ही के क्रियात्मक मस्तिष्क की एक नई उपज है।

इस समय मे हिन्दी भवन मे कार्य करनेवाले केवल दो व्यक्ति है, जो वहा सपरिवार रह रहे है। एक है—प० हजारीप्रसाद द्विवेदी और दूसरे श्री भगवतीप्रसाद चदोला, जो हिन्दी के इस नवचेतन कार्य के हृदय और आत्मा है। यह दोनो विश्वभारती मे हिन्दी के नियमित अध्यापक है और पढाने के अतिरिक्त अपना सारा समय हिन्दी भवन के विशेष कार्य मे लगाते है। इनका अपने पडोस के चीना भवन से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है जहा चीन और तिब्बत के बौद्ध भिक्षु तथा सस्कृत के विद्वान चीन और भारत के बीच एक नया सास्कृतिक सामजस्य स्थापित करने के कार्य मे सलग्न है, क्योकि चीन और तिब्बत दोनो ने अपनी बहुत सी प्राचीन सस्कृति उस काल मे भारतवर्ष से ही सीखी थी, जब कि यहा सस्कृत का जीवित साहित्य मौजूद था और यही पूर्व के सब धर्मो का दार्शनिक आदि स्रोत था। बौद्ध मत

[illegible] में
और फिर [illegible]

[illegible] तथा
[illegible] भवन
में [illegible] लगा
हुआ [illegible] पुस्तकालय [illegible] का
अभाव [illegible] फिर भी [illegible]
मुझे [illegible] पृष्ठ
पर श्री [illegible] गये
हैं, पर इस नाटक में [illegible] प्रेम और
लगन का एक [illegible]।

हिन्दी भवन का [illegible] कुछ आव-
श्यकताएं इस प्रकार हैं —

(१) हिन्दी भवन [illegible] कुछ नए
प्रतिभाशाली लेखकों [illegible] २५) मासिक [illegible] छात्रवृत्तियां।

(२) हिन्दी ग्रन्थों के परिचय [illegible] पुस्तकालय।

(३) केवल [illegible] के लिए अपना पूरा समय [illegible] कार्यकर्त्ता।

(४) एक मामूली सी [illegible] (१००० या २०००) में
बन सके।

(५) हाल पुस्तकालय और धर्मशाला के लिए [illegible] (मेज, कुर्सी [illegible])।
हिन्दी भवन की स्थापना के समय से ही मैं उसके कार्य में पूरी दिलचस्पी लेता रहा हूं, और
इसके संस्थापक सभापति रवि बाबू अपने मनोवाञ्छित उद्देश्य की पूर्ति के लिए समय समय पर
मुझे आदेश परामर्श देते रहते हैं। किसी के मन में नाममात्र को भी यह भ्रम नहीं होना चाहिए
कि यह संस्था साम्प्रदायिक ढंग पर चलेगी, या किसी दूसरी भाषा या साहित्य की प्रतियोगिता
में पड़ेगी। बल्कि हम तो यह आशा करते हैं कि यह सभी भारतीय भाषाओं और उनके
साहित्य की उन्नति में सहायक होगी। अपने सहायकों को हम यह विश्वास दिला सकते हैं
कि मुख्य संस्था का अंग होने के कारण हिन्दी भवन को हम सदा सहायता देते रहेंगे।

सर्वश्री भागीरथमल कनोडिया[2] और सीताराम सेकसरिया ने हमें प्रारम्भ से ही जो

१ अब दीवालें सूनी नहीं हैं। पुस्तकालय भी पर्याप्त अच्छा है।

२ श्री भागीरथ जी कानोडिया का हिन्दी भवन के कार्यों में सक्रिय सहयोग हमें बराबर मिल रहा है।



हिन्दी भवन के उदघाटन के अवसर पर (३१-१ ६९) भाषण देते हुए प जवाहर लाल नेहरू पासमे गुरुदेव बैठे हुए है।



काशी-गंगाघाट स्नान ।

प्रेरणात्मक सहायता प्रदान की है उसके लिए उन्हे पूरी तरह साधुवाद देना मेरे लिए अस म्भव ह । उनके बिना हम हि दी भवन की मौजूदा उ नति करने मे भी समथ नही हो सक्ते थे, कि तु अब समय आ गया ह कि इस सत्काय म आर लोग भी हाथ बटाये और इसे आगे बढाय । अनुरागपूण हृदय से दिये जानेवाले छाटे छाटे उपहारा का भी हम उसी प्रकार स्वागत करेगे, जिस प्रकार बडी आर्थिक सहायताआका, जिनकी हमे सख्त जरूरत ह ।

पडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने हि दी भवन को उसके ज मकाल से ही जो सहायता दी है, उसके लिए भी मै उनका बहुत कृतज्ञ हूँ । हि दी भवन के विचार और उसकी काय प्रणाली का श्रेय प्रधानत उ ही को मिलना चाहिए । अपने पुराने मित्र रा० ब० रामदेव चोखानी का भी—जि हाने सवप्रथम फीजी से शतब द कुलीगीरी को हटाने के लिए होनेवाली लडाई मे मेरी और विली पीयसन की सहायता की थी—बहुत कृतज्ञ हूँ । हमारे इस सेवाकाय मे भी उनकी हार्दिक सहानुभूति बरावर हमारे साथ रही ह ।

अ त मे म गुरुदेव के प्रति भी अपनी कृतज्ञता और प्रेम प्रकट करना चाहता हूँ, जा इस काय के आरम्भ से अब तक प्रेरणा और स्फूर्ति के आधार रहे है । समय समय पर उन्होने अपने आदेश और सत्परामश से हमे लाभान्वित किया ह और हमे उज्वल एव आशाप्रद भविष्य का विश्वास दिलाया ह । उनके आशीर्वाद के बिना हम इस काय का इतनी असाधारणतया प्रतिकूल परिस्थितिया मे शुभारम्भ कदापि नही कर सकते थे ।

इस समय शा तिनिकेतन मे हि दी और आधुनिक भारत की अन्य भाषाआ मे सास्कृ तिक सान्निध्य पैदा करने के लिए हमारे सामने एक असाधारण अवसर उपस्थित ह । जो लोग इस काय मे हमारे समान अनुराग रखते हो, उनसे मेरा निवेदन ह कि वे आगे आये और इसे व्यावहारिक रूप से सफल बनाने के लिए हमारी पूरी पूरी सहायता करे ।[1]

शान्तिनिकेतन, बोलपुर

विशाल भारत, जनवरी १९४० से साभार]



१ शान्तिनिकेतन के हि दी भवन के मुख्य भवन तथा साथ मे अध्यापको के लिए तीन घर हलवासिया ट्रस्ट के आर्थिक अनुदान से निर्मित हुए है, बीच के हालमे श्री विनोदबिहारी मुकर्जी तथा श्री कृपाल सिंह शेखावत के आकर्षक भित्ति चित्र है । गत वष ट्रस्ट की सहायता से पुस्तकालय भवन का निर्माण हुआ है । हिन्दी भवन केपुस्तकालय मे इस समय पद्रह हजार से अधिक ग्रथ है । विश्वभारती मे यह सबसे बडा विभागीय पुस्तकालय है और हिन्दी विभाग के सदस्यो के अतिरिक्त सभी विभागो के सदस्य पुस्तकालय का उपयोग करते है । विश्वभारती पत्रिका का पुनप्रकाशन भी ट्रस्टके हो अनुदान से आरभ हुआ है । हलवासिया शोध ग्रथमाला के प्रकाशन का भार ट्रस्ट ने लिया ह । हमे आशा है दीनबधु एण्ड्रूज के द्वारा परिकल्पित योजना के अनुकूल हि दी भवन काय कर सकेगा । —सपा०